पुस्तक : "अन्तर्दृष्टि"

प्रवचनकार : मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'कमल'

भूमिका : श्री विजयमुनि शास्त्री

प्रवचन स्थल : इन्दौर वर्षावास १९७६

संकलिका श्रीमती भुवनेश्वरी भण्डारी
(धर्मपत्नी स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी)

प्रकाशक : जैनरत्न श्रीयुत सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी

प्रेरक : श्री जसवीरसिंह जी० भण्डारी
श्री जम्बूकुमार जी० भण्डारी
श्री सतीशकुमार जी० भण्डारी

संपादन-सज्जा : श्रीचन्द सुराना 'सरस', आगरा

प्रथम मुद्रण : दिसम्बर १९७६ (४७वी जन्मतिथि के उपलक्ष्य मे)

मुद्रक : पुरुषोत्तमदास भार्गव, दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-४

मूल्य : भण्डारी परिवार की ओर से सस्नेह भेंट

युवा पीढ़ी के प्रेरणा स्रोत, प्रतिभा और पुरुषार्थ के धनी

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भन्डारी

जन्म

६ नवम्बर १९२९

स्वर्गवास

२४ सितम्बर १९७१

समर्पण

मुनिवर 'कमल' कथित भावांजलि
"अन्तर्दृष्टि" समर्पित सादर !
पुत्रत्रय के कर - कमलों से
ग्रहण कीजिए पितः ! समादर ॥

श्रद्धावनत :—
जसवीरसिंह जी० भण्डारी
जम्बूकुमार जी० भण्डारी
सतीशकुमार जी० भण्डारी

प्रकाशकीय

जीवन मे कभी-कभी ऐसे अप्रत्याशित और अकल्पित क्षण आते हैं जो एक दर्द की गहरी लकीर छोड जाते हैं और जिन्हे भूलने पर भी प्राय भुलाना असम्भव हो उठता है। जिसे हम नही होने देना चाहते, विडम्वना यह है कि वही अनचाही और वही अनहोनी घटनाये घटित होती है और मर्म पर गहरी चोट करती है। इन स्थितियो के वीच से गुजरना कितना दुष्कर है इसे वही जान सकता है जिस पर इस तरह की वज्रपात की घटनायें घटित होती है।

मैंने कल्पना भी नही की थी कि मुझे ऐसे अनचाहे अनहोने और अनचीन्हे जीवन प्रसगो के वीच मे से गुजरना होगा और जो मुझसे छोटे हैं, जिनके कधो पर सारा दायित्व आ जाना चाहिए, वे मुझे असमजस मे छोडकर दिवगत हो जावेंगे। लेकिन यह सव हुआ ऐसा जो मेरे लिए मर्मवेधी है। और दुस्सह अन्तर्विरोध यह उपस्थित हुआ है कि जो काम गज्जू को ही करना चाहिए था, जिन स्वप्नो को वह आकार देना चाहता था जिन आदर्शों के लिए वह समर्पित था उन्हे मुझ जैसे के कमजोर कन्धो पर छूट जाना पडा है।

अव तो मात्र स्मृति शेप है और शेष है वो सारा पुरुषार्थ जिसके माध्यम से हम उसके जीवन आदर्शो को मूर्तिमान कर सकते हैं। वार्द्धक्य मे यह मेरी कठोर और निमर्म परीक्षा ही हुई है, वल्कि यूँ कहूँ कि अग्नि-परीक्षा हुई है। मुझे विश्वास है धर्म की उज्ज्वलताओ के माध्यम से हम इस वज्रपात को मानव-मात्र की सेवा मे रूपान्तरित कर सकेंगे। मुनिश्री महेन्द्र कुमार जी 'कमल' के प्रवचनो का यह प्रकाशन इसी श्रृ खला की एक कडी है।

इन प्रवचनो का स्वाध्याय कर हम अपनी आत्मशान्ति को अधिक प्रवुद्ध कर सकेंगे और जीवन के सुख-दु ख, उतार-चढाव को समभावपूर्वक सहकर जीवन-ज्योति के सदा प्रज्ज्वलित रख सकेंगे।

—सुगनमल भंडारी

मणि-कांचन-योग

परम श्रद्धेय महामनीषी मेवाड-केशरी पूज्य गुरुदेव श्री मोहनलाल जी के सुशिष्य जैनरत्न-प्रभाकर मुनिश्री महेन्द्र कुमारजी 'कमल' एक प्रतिभावान जैन सत होने के साथ ही एक प्रबुद्ध कवि और वाग्मी-प्रखर वक्ता और साहित्यकार भी हैं। इन्दौर भाग्यशाली है कि इस वर्ष उनका वर्षायोग यहाँ सम्पन्न हुआ और उनकी प्रवचन पीयूषधारा से यहाँ के आबाल-वृद्ध नर-नारी उपकृत हुए। उनकी प्रबुद्ध अध्यात्मिक सुकृतियो मे जनमानस और जन-जन को धर्म के पथ पर गतिशील करने की अपार शक्ति है। ऐसे महान् सन्त के प्रभावशाली प्रवचन दिग्दिगन्त तक सर्वत्र गूज सकें और समाज को सर्वतोमुखी उन्नति के प्रशस्त मार्ग पर डाल सकें। इसी ध्येय से पूज्य पितुश्री की पुनीत-पवित्र स्मृति मे प्रवचनों का यह सकलन श्रद्धाजलि-रूप समर्पित है।

यह मणि-काचन संयोग ही है कि एक महान् सन्त और एक प्रतिभाशाली पुरुषार्थ-सम्पन्न व्यक्ति की युगल जीवन-धाराएँ संयुक्त रूप मे प्रस्तुत कृति मे सग्रथित हुई हैं। और यहा इस बात का उल्लेख भी उचित प्रतीत होता है कि इन प्रवचनो का संकलन हमारी मातुश्री भुवनेश्वरीजी के अनवरत श्रम से ही सम्भव हुआ है।

हमारा विश्वास है कि मुनिश्री "कमलजी" के प्रवचनो की यह उत्कृष्ट चयनिका "गजेन्द्र-स्मृति" के माध्यम से पाठको को एक उदात्त श्रेष्ठ और समर्पित जीवन की प्रेरणा देने मे सफल होगी। प्रतिपल हमारा प्रयत्न रहा है कि चयनिका को एक स्वस्थ और विचारोत्तेजक व्यक्तित्व प्रदान किया जा सके। इसीलिये जहाँ एक ओर यह हमारे पूज्य पिताश्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के आदर्शों की ज्वलन्त प्रतीक है, वही दूसरी ओर श्रमण सस्कृति और साहित्य की जीवन्त प्रतिनिधि भी यह है। निश्चय ही हम मुनिश्री के असीम कृतज्ञ हैं कि उन्होंने सम्पूर्ण भण्डारी-परिवार को अध्यात्म की परम पवित्र श्रोतस्विनी मे अवगाहन का यह शुभ अवसर प्रदान किया है।

नन्दनवन
१ म०गा० मार्ग
इन्दौर
६ नवम्बर, १६७६

—जसबीरसिंह जी० भण्डारी
—जम्बूकुमार जी० भण्डारी
—सतीशकुमार जी० भण्डारी

पुस्तक के विषय में

"अन्तर्दृष्टि" पुस्तक मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी "कमल" के प्रवचन, मेरे पति स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की जीवनी एवं उनके अविस्मरणीय सस्मरणो का सकलन है। इस पुस्तक की प्रेरणा निसन्देह मुझे मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी "कमल" के इस वर्ष चातुर्मास मे हुए प्रवचनो से मिली। मैं यह पुस्तक अपने स्वर्गीयपति के श्रीचरणो मे श्रद्धाजली के रूप मे समर्पित करने जा रही हूँ। जानती हूँ कि मेरा यह प्रयास उस तिनके के समान है जो अथाह सागर के भँवर से निकलने या उसमे आत्मसात होने का असफल प्रयास कर रहा है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि अनुभूतियाँ अनेक है, और शव्दकोश के शव्द भी असीम। किन्तु जिनका जीवन व्यापक रहा हो, उनकी स्मृतियो की अभिव्यक्ति सूर्य को दीपक दिखाने के समान है।

जव-जव भी मैं मुनिजी के सम्पर्क मे आई, तो वे सदैव मुझ से यही कहते कि पति के सस्मरणो की अभिव्यक्ति ही आपकी सच्ची साधना है और आपको किसी भी स्थिति मे अपने कर्तव्य से विमुख नही होना चाहिये। आपके सस्मरण के अभाव मे इस पुस्तक का कोई भी औचित्य नही और न ही यह आपकी सच्ची श्रद्धाजली ही होगी।

उनके इस आत्मीयता भरे सम्वोधन ने मेरे हृदय को झकझोर दिया और आज जव मैं अपने पति स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी की अनगिनत स्मृतियो को लेखनी के माध्यम से साकार रूप प्रदान करने का प्रयास कर रही हूँ, तो सोचती हूँ, कि विधि के विधान ने इतिश्री तो करदी है, किन्तु आरम्भ कैसे करूँ ? यदि एक भी सस्मरण लिखना भूल गई तो वे मुझे कदापि क्षमा नही करेगे। एक ओर मुनिश्री के आदेश, तो दूसरी ओर पति की अनगिनत स्मृतिया। आदेश की अवहेलना करती हूँ तो स्वर्ग असमव और यदि एक संस्मरण का अनजाने मे परित्याग करती हूँ तो यह उनके प्रति अन्याय। भावना और कर्तव्य के प्रति अन्तरमन मे उठे इन विचारो का समाधान कैसे करूँ, समझ नही पा रही हूँ। पुन विचार आता है कि यदि भावना के श्रोत मे वहती चली गई तो मृत्यु उपरात आत्मा सदैव भटकती ही रहेगी अत कर्तव्य के माध्यम से मुक्ति के पथ का अनुसरण कर क्यो न स्वर्ग मे जा पहुँचूं, जहाँ वे मेरे आने की आतुरता से वाट जोह रहे हैं। जव उन्हे मेरे अन्तरमन की भावनाओ की अनुभूति होगी तो वे मुझे अवश्य क्षमाकर देंगे और दो आत्माएँ सदैव के लिए एक हो जावेगी।

इन विचारो ने विगत जीवन की उन स्मृतियो की ओर दृष्टिपात करने के लिए विवश कर दिया और मैं अतीत की उन स्मृतियो मे खो गई। एक के बाद एक कई स्मृतिया मानस-पटल पर उभरने लगी। यह जानते हुए भी कि उन असीम स्मृतियो को शब्दो की सीमित भाषा मे आबद्ध करना सहज नही है आज वे भौतिक रूप से मेरे पास नही है किन्तु उनकी जाज्वल्यमान आत्म-ज्योति हर पल, हर क्षण मेरे जीवन रूपी दीपक को प्रज्ज्वलित करती रहती है। जब भी मैं अपने जीवन मे निराश हो जाती हूँ तो उनकी प्रेरणा निराशा के आवरण को दूर कर पुन नव-जीवन का संचार कर देती है। ऐसी महान आत्मा को मेरी अश्रुपूर्ण श्रद्धाजली सर्मपित है।

री लेखनी, बस बहुत है अब और बढ़ना व्यर्थ है,
है यह अनन्त कथा तू सर्वथा असमर्थ है।
करती हुई शुभ कामना निज वेग सविनय थामले,
करती हुई जय गजेन्द्र की, जीवन तनिक विश्राम ले॥

—भुवनेश्वरी जी० भंडारी

शुभकामना

स्वामी आत्मानन्द

दूरभाष—१०४६
रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम
रायपुर ४९२-००१ (म० प्र०)

यह जानकर विशेष प्रसन्नता हुई कि मुनिश्री मोहनलालजी महाराज के सुयोग्य शिष्य मुनिश्री महेन्द्र कुमार 'कमल' के प्रवचनो का सग्रह 'अन्तर्दृष्टि' के रूप मे प्रकाशित हो रहा है। मुझे समूचे ग्रन्थ के अवलोकन का अवसर तो नही मिला पर जो कुछ मैंने देखा है, वह निस्सन्देह सभी धर्मो और सम्प्रदायो के साधको को आध्यात्मिक जीवन के दुरूह और कण्टकाकीर्ण पथ पर आगे बढने के लिए बहुमूल्य पाथेय प्रदान करेगा। ग्रन्थ का प्रत्येक अध्याय अपने आप मे पूर्ण है और वह उत्थापित विषय की सम्यक् विवेचना करता है।

यही कामना है कि यह ग्रन्थ अपने पाठको मे अन्तर्दृष्टि की उद्भावना कर अपने नाम को सार्थक करे।

रायपुर
३-११-७६

—स्वामी आत्मानन्द

शुभ सन्देश—

आदरणीय श्री सेठ साहब
सादर जय श्रीकृष्ण,

भगवत कृपा से स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी के पावन स्मृति मे मेवाड केसरी मुनिश्री मोहनलालजी महाराजजी के शिष्य कविरत्न महेन्द्रमुनि जी 'कमल' उनके पावन चातुर्मास प्रवचनो एव स्व० गजेन्द्रसिंहजी के पावन संस्मरण को पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने का शुभ संकल्प किया है, बहुत प्रसन्नता हुई।

परमपिता परमात्मा के श्रीचरणो मे प्रार्थना है कि इस प्रकाशित हो रही पुस्तक को सभी धर्म व जाति के धर्म प्रेमीजन पढ़े तथा उससे प्रेरणा प्राप्त कर समाज मे लोकोपकारी तथा कल्याणकारी कार्य करें। यही प्रार्थना है।

वैसे स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी तथा उनके परिवार की असीम कृपा व सहयोग इस सस्था पर प्रारम्भ से ही रहा है।

सभी सहयोगियो को सादर जय श्रीकृष्ण।
शेष भगवत् कृपा।

आपका ही बाबा
बालमुकन्द
सस्थापक, गीता भवन ट्रस्ट, इन्दौर

●

RAMAKRISHNA MISSION
Along, Dist Siang
Arunachal Pradesh
12 November 1976

I am very glad to learn that an anthology of Revered Mahendramuni 'Kamal's writings on spiritual subjects is being brought out by the Bhandaris of Indore I hereby convey my heartfelt congratulations to the Bhandaris for their noble venture It is needless to mention the usefulness of such a publication to the spiritually minded people of India in general and of Indore in particular.

Swami Gautamananda
Secretary

आभार दर्शन

प्रस्तुत 'अन्तर्दृष्टि' मे सकलित प्रवचनो एव सस्मरणो के लेखन-कार्य से लेकर मुद्रण पर्यन्त मुझे यह लिखते हुए अत्यन्त गौरव एव सन्तोष की अनुभूति हो रही है कि इस प्रयास हेतु परमपूज्य गुरुवर मेवाड केसरी श्री मोहनलाल जी महाराज साहब एव पूज्य मुनिवर श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' का शुभ आशीर्वाद एव मार्गदर्शन सदैव मेरे साथ रहा जिसके फलस्वरूप मैं इस स्मारिका को प्रकाशित करने का दृढ सकल्प कर सकी ।

संकलन कार्य नि सन्देह मेरे लिए अत्यन्त दुष्कर एवं नवीन था लेकिन इन महान् तपस्वियो की स्नेहसिक्त प्रेरणा के सबल से ही मैं यह पुस्तक प्रकाशित कर सकी ।

इस कृति मे पूज्य गुरुवर श्री महेन्द्र मुनि 'कमल' के ओजस्वी एव मधुर प्रवचनो की पावन शृंखला का रसास्वादन आप करेंगे । जिसमे उनके व्यक्तित्व की सुवास एव सुरभी व्याप्त है । इसमे मुनिश्री की साधनोज्वल वाणी प्रस्फुटित हुई है जो समाज के अन्तराल मे गूंजकर उसे सर्वतोमुखी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करेगी तथा जिसकी सौरभ दिगदिगन्त तक फैलकर आध्यात्म प्रेमियो की प्यास बुझाती रहेगी ।

द्वितीय खण्ड मे मेरे पतिदेव स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की पुण्य-पावन स्मृति मे उनके पुरुषार्थपूर्ण जीवन की झाकी सस्मरणो के माध्यम मे आप पढेंगे ।

यह संकलन जहाँ एक सत की वाणी को मुखारित करता है, वही दूसरी ओर एक कर्मनिष्ठ व्यक्ति के जीवन का दर्पण दर्शाता है ।

पाठक वर्ग ने इस स्मारिका के माध्यम से जहा एक ओर अध्यात्म लाभ लेगा वहीं दूसरी ओर समाज एव देश के कल्याण के लिये सोचने को अवश्य विवश होगा । मेरी यह हार्दिक अभिलाषा है कि यह सुकृति केवल प्रचार का साधन-मात्र न बनकर मानव-जीवन के उत्कर्ष पथ का सृजन कर सकी तो मेरा यह प्रयास सार्थक होगा ।

रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम रायपुर के सचालक पूज्यपाद स्वामी आत्मानन्द जी महाराजजी ने अपने अत्यधिक व्यस्त समय मे से समय निकालकर प्रस्तुत पुस्तक के विमोचन के लिये स्वीकृति प्रदान कर हमे गौरवान्वित किया, इसके लिये मैं उनकी हृदय से आभारी हूँ ।

मेरे परम श्रद्धेय पूज्यवर बाबूजी (ससुर साहब श्रीमान जैनरत्न सुगनमलजी साहब भण्डारी) के प्रति मैं किन शब्दो मे कृतज्ञता व्यक्त करू जिन्होंने विपदाओ की घडी मे धैर्य के साथ मेरा मार्ग प्रशस्त कर मुझे समाज सेवा के लिये प्रेरित किया ।

श्रीमती रजनी भण्डारी (धर्मपत्नी स्वर्गीय श्री महेन्द्रसिंह जी भण्डारी) जिन्होंने सम्पूर्ण प्रतिक्रियाओ मे छाया की तरह मुझे असीम सहयोग प्रदान किया। साथ ही परिवार के समस्त सदस्यो का भी अभूतपूर्व योगदान रहा।

मेरे तीनो ही पुत्र चि० जसवीर, जम्बू एव सतीश भण्डारी इस संकलन के पीछे एक अकप दीपशिखा की तरह खडे रहे। उनके मन मे सदैव यही भावना रही कि, 'हमारे पापाजी जाने किस रूप मे कब और कहा हमारे समक्ष आकर खडे हो जावेंगे और उन्हें कभी भी यह महसूस न हो कि हम मे शिथिलता का आभास हो रहा है" शायद इसी भावना एव उनकी अटूट निष्ठा ने मेरे प्रयास को अडिग बनाये रखा।

मेरे निष्काम स्नेही भाई श्री योगेन्द्र कीमती एव उनके परिवार की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने महाराज साहब के प्रवचन स्थलो पर जाकर समय-समय पर प्रवचनो को टेप करके शब्द शृ खला मे बाधा है।

शब्दो के अपार समूह को श्री वरणगावकर ने कठिन परिश्रम द्वारा भाषा को सुचारु रूप प्रदान कर टाईप द्वारा सुन्दर प्रेस कापी मे परिणित किया एव श्री रमेश जोशी जिन्होंने इस सकलन के सभी प्रयासो मे अविश्रात श्रम करके उचित समय मे सम्पूर्ण कार्य निपटाया है। यह उनका अपने स्वर्गीय भैयासाहब के प्रति असीम स्नेह एव श्रद्धा का ही परिचायक है।

श्री पार्थसारथी एवं श्री मेहता जी जिनके मन मे अपने भैयासाहब के प्रति सदैव अनुराग रहा है, इन्होंने पुस्तक के प्रकाशन मे जो सक्रिय योगदान दिया, उसका मूल्य शब्दो एव रूपयो से चुकाया नही जा सकता।

श्री अमर भारती आगरा के संपादक प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीचन्दजी साहब सुराणा 'सरस' ने इस स्मारिका को सुसज्जित करने मे जो अपूर्वयोगदान दिया, तथा श्री दुर्गा प्रिंटिग वर्क्स, आगरा के सचालक श्री पुरुषोत्तमदास जी भार्गव ने रात-दिन की परवाह किये बिना समय पर मुद्रण किया उनका यह सहयोग अवर्णनीय है। इसके लिये मैं उनकी आभारी हूँ।

अन्त मे मेरे स्वर्गीय पतिदेव के प्रति श्रद्धा एवं आदर रखने वाले उन सभी महानुभावो के प्रति अन्त करण से आभारी हूँ, जिन्होंने अपने संस्मरण भेजकर इस पुस्तक को साकार रूप प्रदान किया, साथ ही जिन्होंने भी प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से इस स्मारिका के सकलन से प्रकाशन तक मुझे अटूट सहयोग प्रदान किया।

सर्वगुण सम्पन्न प्रभु से यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि अज्ञान तिमिर के नाशक मुनिश्री सत्-सत् दीर्घायु हो।

—भुवनेश्वरी गजेन्द्रसिंह जी भंडारी

स्व० श्री गजेन्द्रसिह जी भन्डारी स्मृति अक के लिए गुरुदेव श्री मोहनलालजी महाराज अपना स्मृति वचन प्रदान करते हुए।

श्री महेन्द्रमुनि जी 'कमल' स्व० श्री गजेन्द्रसिह जी भडारी के प्रति अपनी स्नेह एव आदरपूर्ण श्रद्धाजलि का आलेखन करते हुए।

अन्तर्दृष्टि पर एक दृष्टि

भारतीय-संस्कृति मे जैन-सस्कृति अपना एक विशिष्ट स्थान रखती है। जैन-सस्कृति का विविध वाङ्मय विशाल तथा व्यापक है। जीवन-स्पर्शी एक भी दृष्टि-कोण इस प्रकार का नही है, जिसके विषय मे 'जैन-वाङ्मय मे संख्यावद्ध ग्रन्थ उपलव्ध न हो। परन्तु यह समग्र वाङ्मय संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओ मे उपनिवद्ध किया गया है। अत आज का पाठक वर्ग प्राचीन भाषाओ से परिचय न होने के कारण उस उर्वर, सरस एव सुन्दर साहित्य का आनन्द नही ले सकता। सौभाग्य से इस आधुनिक-युग मे हिन्दी भाषा मे प्राचीन ग्रन्थो का अनुवाद प्रारम्भ हो चुका है। भले ही हिन्दी मे मौलिक ग्रन्थ उपलव्ध न हो, फिर भी पर्याप्त सख्या मे प्राचीन साहित्य सामग्री को हिन्दी भाषा मे अवतरित किया जा रहा है। यह एक भविष्य के लिए मगलमय सकेत है।

जैन-परम्परा का अधिकाश साहित्य धर्म-दर्शन तथा आगम से सम्वद्ध है। काव्य के क्षेत्र मे जैनाचार्यो ने जो उपादेय सहयोग दिया है, वह अत्यन्त अल्प भले ही हो, किन्तु उस क्षेत्र को शून्य नही कहा जा सकता। आचार्य हेमचन्द्र का काव्यानुशासन तथा वाग्भट का वागभट्टालकार काव्य-शास्त्र सम्वद्ध प्रसिद्ध ग्रन्थ है। जैनाचार्यो ने इस विषय पर ग्रन्थ लिखे अवश्य, पर उनका पर्याप्त परिष्कार नही हो सका। यद्यपि साहित्यिक क्षेत्र मे सम्प्रदायवाद को लेशमात्र भी अवकाश नही है, तथापि मनुष्य का सम्प्रदाय मोह टूट जाना उतना सहज नही है। यही कारण है कि भारत के विशिष्ट विद्वान अभी जैन वाङ्मय की ओर उतने उन्मुख नही हुए, जितना होना आवश्यक है। स्वय जैन भी इस दिशा मे दिशा-शून्य और साथ ही विचार-शून्य प्रतीत होते हैं। काव्य-शास्त्र तथा काव्य के क्षेत्र मे जैनाचार्यो का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। भारतीय-साहित्य शास्त्र को समझने के लिए जैन-आचार्यों द्वारा प्रणीत काव्य-शास्त्र ग्रन्थो के अध्ययन की परम्परा अव विकसित होती जा रही है। कुछ विद्वानो ने इस दिशा मे मात्र प्रयास ही नही किया, सफलताएँ भी प्राप्त की हैं।

जैन वाङ्मय का द्वितीय क्षेत्र प्रवचन-साहित्य अथवा प्रवचन-कला है।

स्थानकवासी-परम्परा ही नही, समग्र जैन-परम्परा में सर्वप्रथम प्रवचन-साहित्य ज्योतिर्धर आचार्य जवाहरलाल जी महाराज का प्रकाशित हुआ था। यह साहित्य अनेक नूतन वक्ताओ के लिए उपजीव्य बना। अनेक व्यक्तियो को प्रवचन-कला मे सफलता प्राप्त करने का आधार जवाहर-साहित्य रहा है। यह एक आश्चर्य ही है, जो लोग जीवनभर ज्योतिर्धर जवाहर का विरोध करते रहे, वे लोग भी जवाहर-साहित्य को आधार बनाकर उससे प्रेरणा लेकर अथवा उसमे सामग्री लेकर अपने प्रवचनों में उनका खुलकर प्रयोग करते रहे और आज भी यह साहित्य उतना ही प्रेरणाप्रद है, जितना पहले कभी भी था।

प्रवचन-साहित्य के क्षेत्र मे जवाहर-युग के बाद अमर-युग का भव्य प्रारम्भ होता है। विविध विषय, भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से अमर-प्रवचन-साहित्य निश्चय ही अगला चरण कहा जा सकता है। अमर-प्रवचन-साहित्य माला मे प्रकाशित पुस्तकें समाज मे सर्वत्र समादर एव सन्मान के साथ पठन-पाठन के उपयोग मे आ रही है। इस साहित्य से विशेष रूप मे युवक और युवतियो को पर्याप्त प्रेरणा मिली है।

इस प्रकार जैन-परम्परा का प्रवचन-साहित्य तथा प्रवचन कला पर्याप्त मात्रा मे विकसित हो चुकी है। आज तो अनेक ओर से अनेक प्रकाशन इस दिशा मे किए जा रहे हैं। इस क्षेत्र मे एक प्रकार की प्रतिद्वन्द्विता-सी प्रारम्भ हो चुकी है। इस क्षेत्र मे आज योग्यता और अयोग्यता की कोई कसौटी नही की जा सकती। कारण स्पष्ट है, कि कुछ लोगो ने इस क्षेत्र मे दूसरे के विचारो का अपहरण करके, दूसरे स्थान से सामग्री लेकर अपनी योग्यता और क्षमता न होते हुए भी प्रवचन पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इस प्रकार की प्रकाशित पुस्तको मे न कुछ मौलिकता है, न अपने विचारो की कोई देन है, और न ही उनसे कुछ प्रेरणा पाठक को प्राप्त होती है। परन्तु नाम की भूख मनुष्य से अनुचित कार्य भी करा सकती है, यह उनका एक ज्वलन्त उदाहरण कहा जा सकता है।

कुछ प्रवक्ता सहज-स्वभाव से अपनी जन्म-जात प्रतिभा लेकर प्रवचन-कला के क्षेत्र मे अवतरित हुए हैं। निश्चय ही इन लोगो ने अपने श्रम से अपना पथ चुना है। उनकी अपनी शैली है। उनकी अपनी भाषा है। उनकी अपनी अभिव्यक्ति है। अपने विचारो को प्रकट करने की उनकी अपनी पद्धति है। मैं इस प्रकार के प्रवक्ताओ को प्रवचन-कला का सफल प्रवक्ता घोषित करता हूँ। अपने श्रम से अपना विकास-पथ तैयार करना एक प्रशसनीय कार्य है।

मुनि प्रवर महेन्द्रकुमार जी 'कमल' एक उदीयमान कवि है, उदीयमान साहित्यकार हैं, तथा एक उदीयमान सफल प्रवचनकार भी हैं। इनके प्रवचनो मे सरलता,

सौम्यता तथा सहजता ने अच्छी अभिव्यक्ति पाई है। न कही भावो की गहनता है, न कहीं भाषा का अटपटापन है। सीधी-सादी मुहावरेदार भाषा मे सुन्दर विचारो की अभिनव अभिव्यक्ति है। मैं समझता हूँ, एक सफल प्रवक्ता मे जिन गुणो की आवश्यकता है, वे समस्त गुण कमलजी मे विद्यमान हैं। प्रसन्नता है, कि अपने चरण-न्यास के अवसर पर ही वे इस दिशा मे पर्याप्त सफल हुए हैं।

मुनि प्रवर महेन्द्र कुमारजी 'कमल' की प्रस्तुत प्रवचन पुस्तक 'अन्तर्दृष्टि' एक प्रवचन पुस्तक है। मुनिश्री ने मालव देश की राजधानी इन्दौर मे अपने सफल चातुर्मास मे अपने ओजस्वी एव मधुर प्रवचनो से इन्दौर नगर के जन-मन को मन्त्र मुग्ध कर दिया था। मुनिश्री की जादूभरी वाणी का ही प्रभाव था, कि जनता उनसे जो कुछ सुनने उमे प्रकाशित करने का भी उनका आग्रह रहा। यदि ये प्रवचन न लिखे जाते, तो काल के गाल मे समाहित होकर विखर जाते। श्रोताओ के मस्तिष्क की स्मृति भी धुँधली पड जाती। प्रवचनो का सकलन कराकर उन्हे प्रकाशित करके सावकों के लिए एक मधुर प्रेरणा का कार्य हुआ है। प्राय समस्त प्रवचन भाव, भाषा एव शैली की दृष्टि से रुचिकर और मधुर है। मुनिश्री की भाषा व्यग्यात्मक है और परिहासात्मक भी। प्रवचनो के शीर्षक भी वडे सुन्दर दिये गये हैं, जैसे—"वाहर से कुछ दीखे नही, भीतर चमके नूर, माया के वात्याचक्र, विपन्नता से दूर, तथा सम्पन्नता से भरपूर, धर्म की वैज्ञानिकता, और विज्ञान की धार्मिकता"—इन शीर्षको से प्रतीत होता है, कि मुनिश्री के चिन्तन की दिशा स्पष्ट है। प्रवचनो मे सस्कृत, प्राकृत, और हिन्दी-भाषा के सुभाषित पद्यो को यथास्थान उद्धृत किया गया है। कही-कहीं पर प्रवचनकार मुनि ने स्वय अपनी कविताओ का भी यथास्थान सुन्दर उपयोग किया है। जैसे कि—

"कह रहा है मूक रवि क्यो,
तुम मेरा पूजन करे रे।
पुष्प कलियों जल चढ़ाकर,
क्यो मेरा अर्चन करे रे।
तू स्वयं है ज्योतिर्मय,
वह ज्योति सारा तमस हरती।
सुप्त मानव की समझ मे,
जागृति का ज्ञान भरती।"

इस प्रकार की अन्य कविताएँ भी प्रस्तुत प्रवचन पुस्तक मे यथाप्रसंग अकित की गई हैं। वस्तुतः यह निर्णय करना कठिन है, कि मुनिश्री सफल प्रवचनकार हैं

अथवा सफल कवि हैं। उनके प्रवचन और उनकी कविताएँ—दोनों पाठक के मन मस्तिष्क पर एक मधुर प्रभाव छोडने मे सक्षम हैं।

इस पुस्तक की एक सर्वोत्तम प्रेरणा यह है कि इनका संकलन एक अत्यन्त सम्पन्न परिवार की विदुषी महिला (श्रीमती भुवन भण्डारी) ने किया है। जिनके सामने आत्मिक शाति की प्रेरणा का एकमात्र ध्येय रहा है। और फिर इनका प्रकाशन भी वे अपने स्वर्गीय पति की स्मृति मे करवा रही हैं जो प्रेरक और उद्बोधक है।

मैं आशा करता हूँ कि भविष्य मे इनसे भी अधिक सुन्दर कृति मुनिश्री समाज देवता को समर्पित करेंगे। मुनिश्री की अन्य कुछ पुस्तकें भी मैंने देखी हैं—गद्य और पद्य दोनो प्रकार की भाषा पर कमल मुनिजी का समान अधिकार प्रतीत होता है। निश्चय ही इस प्रवचन पुस्तक के अध्ययन, मनन एव चिन्तन से वर्तमान पाठकों को तथा भावी प्रजा को एक प्रेरणा मिलेगी, जीवन की एक स्वस्थ दिशा मिलेगी।

प्रस्तुत पुस्तक साहित्यिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक सभी दृष्टियों से सुन्दर है। प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन तथा प्रकाशन मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' ने जो श्रम और प्रयास किया है, उसे सोने में सुगन्ध कहा जा सकता है।

जैन भवन
मोती कटरा, आगरा

विजय मुनि 'शास्त्री'

एक वियोग : एक सुयोग : एक अभिनव प्रयोग

यह एक कटु सत्य है, कि जो मनुष्य नियति का निर्माता है वह उसके हाथ का खिलौना भी है। अपनी प्रतिभा, पुरुषार्थ और अदम्य साहस के वल पर जो मनुष्य नियति का, भाग्य का निर्माण करता है, न केवल अपना ही वल्कि, अपने अन्य स्नेही-स्वजनो का, अपने समाज और राष्ट्र का भी, वही पुरुष कभी-कभी क्रूर नियति के निर्मम हाथो का खिलौना वनकर सवको मझधार मे छोडकर चला जाता है, यह नियति का कैसा क्रूर मजाक है!

हम, अल्पज्ञ व्यक्ति नियति की इस कौतुक-क्रीडा को मजाक या खिलवाड ही कहते हैं, किन्तु सम्भव है इसके पीछे भी कोई विशिष्ट रहस्य छिपा हो? नियति, उस महिमाशाली व्यक्तित्व के माध्यम से सम्भवत और भी अधिक महत्त्व का, कोई विशिष्ट कार्य सम्पन्न करना चाहती हो, जो न केवल एक राष्ट्र के, किन्तु सम्पूर्ण मानवता के लिए कल्याणकारी सिद्ध हो, और उस महान् कार्य की सिद्धि के लिए हमारी धरोहर को हम सव के वीच से उठा लिया हो, यह भी हो सकता है।

जहाँ तक मेरा अनुमान है, युवा पीढी के होनहार उद्योगपति श्रीगजेन्द्रसिंह भण्डारी का असामयिक वियोग प्रकृति व नियति के किसी विशिष्ट सुयोग की अज्ञात योजना का ही परिणाम होगा। नही तो यह कैसे सम्भव था कि एक परम धार्मिक आस्थाशील पिता, एक सुशीला साध्वी-सती विदुषी पत्नी, और फूलो से कोमल भाग्यशाली पुत्रो को विलखते छोडकर तथा राष्ट्र निर्माण के महान् स्वप्नो को अधूरा ही छोडकर वे हमारे वीच से चले जाते? मन समाधान खोजता है, पर अन्य कोई समाधान अव तक नही मिला।

उन वियोगजन्य दुखद स्मृतियो के वोझ को उतार फेकना सहज नहीं है। किन्तु यह एक सुयोग ही कहना चाहिए कि उनकी स्मृतियो की प्रेरणा को निर्माण मे नियोजित कर उनके अधूरे सपनो को पूरा करने मे आज उनका समस्त परिवार जुट गया है। इस पुस्तक के परिवेश मे यह रूपान्तर छिपा है।

प्रवचन पुस्तकें भी अनेक निकलती हैं, और वडे आदमियो के स्मृतिग्रन्थ, तथा स्मारिकाएँ भी समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। किन्तु प्रवचन-

पुस्तक के साथ स्मारिका को जोडने का प्रयोग, कई अर्थों मे एक अभिनव प्रयोग कहा जा सकता है। उन वियोग एव शोक की कटु स्मृतियों को आध्यात्मिकता की रसधार से कटुता विहीन वनाने का प्रयत्न इस पुस्तक मे हुआ है। उन स्मृतियो मे निर्माण के स्वप्न साकार करने का सकल्प यहाँ व्यक्त किया गया है, सचमुच यह नया प्रयोग है। इस नव प्रयोग की कल्पना की है श्रीमती भुवनेश्वरी गजेन्द्रसिंह भण्डारी ने। सचमुच एक कर्त्तव्यपरायण, विचारशील विदुषी पत्नी से ऐसी ही अपेक्षा समाज करता है। जो पति-वियोग की असीम वेदना को हृदय मे छुपाकर भी अपनी सतति को हँसी-खुशी के वातावरण मे जीने का कठोर दायित्व पूरा करती है और नव-निर्माण की मलहम से उन घावो को भरने मे प्रयत्नशील वनती है। इस 'अन्तर्दृष्टि' के अथ से इति तक निर्माण मे, सकलन-सयोजन तथा सम्पादन प्रकाशन मे एक नारी की निष्ठा, त्याग, कठोर साधना और अडिग आत्मबल के स्वर मुखरित हो रहे हैं—यह एक आश्चर्यकारक गौरव की वात है।

मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' जो स्थानकवासी जैन समाज की युवा पीढी के चिन्तनशील श्रमण हैं, ओजस्वी वक्ता और भावनाशील कवि हैं। उनके प्रवचनो से उनकी जादुई वाणी से प्रभावित होकर श्रीमती भण्डारी ने यह उपक्रम किया है, कि पाठक प्रवचनो के स्वाध्याय से, जहाँ धार्मिक नव चेतना प्राप्त करें वहाँ एक प्रेरक व्यक्तित्व की स्मृतियो से, सस्मरणो मे राष्ट्र एवं समाज के सत्सकल्पो के लिए प्रबुद्ध भी हो। श्रीमती भण्डारी, तथा श्री जसवीर, जम्बू एव सतीश भण्डारी एवं भण्डारी परिवार के सभी सदस्य, स्नेही जन इस शुभ प्रयत्न के लिए धन्यवादार्ह तो हैं ही, साथ ही उनकी उदात्त कल्पना हम सब के लिए प्रेरक भी है।

इस उपक्रम को पूर्णता देने मे कुछ यश मुझे भी प्राप्त हुआ इसलिए मैं पुन मुनिश्री जी की कृपा, तथा भण्डारी परिवार के सत्सकल्पो के प्रति अपना आदर व्यक्त करता हूँ।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

| गुरु गंगाजल सारखा |

(मेवाड केशरी पूज्य श्री मोहनलाल जी महाराज का सरल संक्षिप्त जीवन परिचय)

मेवाड भूमि अनेक महापुरुषो की प्रसवभूमि रही है अनेक नग मणियो ने विश्व को चमत्कृत किया है। वीरता से ओतप्रोत जीवन यदि महाराणा प्रताप का रहा, तो त्याग, वैराग्य और सयम, तप-साधना पूर्ण जीवन मीराबाई का रहा। इसी पावन भूमि के आँचल मे पूज्य मोहनलाल जी महराज साहब का जन्म वि०स० १९७६ आसाढ सुदी ७ को साहपुरा के एक ब्राह्मण कुल मे हुआ, आपकी मातुश्री विरजूबाई एव पिताश्री कालूलाल जी ने आपको सुसस्कारों से शृ गारित किया।

भारतीय परम्परा के अनुसार ब्राह्मण-श्रमण धार्मिक तेजस्विता के प्रतीक रहे हैं। पूज्य श्री मोहनलाल जी भी इसी के अनुरूप पूर्व सस्कारो से प्रेरित होकर श्रद्धेय भूरालाल जी एव छोगालाल जी महाराज साहब के सम्पर्क मे आए तथा सस्कृत-प्राकृत का अध्ययन कर लेने के पश्चात् १७ वर्ष की अल्पवय मे वि०स० १९९८ मे पार सोली मे आपने पूज्य गुरुदेव के चरणो मे प्रव्रज्या ग्रहण की। गुरुदेव के चरणो मे बैठकर आपने १६ शास्त्र कठस्थ किये। आपका स्वर मधुर एव ओजस्वी हैं। जब प्रवचन करते हैं तो श्रोतागण झूम उठते हैं। जैनदर्शन के साथ ही अन्य दर्शनो का भी आपको अच्छा अध्ययन है। शास्त्रो की गम्भीर से गम्भीर बात भी आप इतने सरल और सहज ढग से प्रस्तुत करते हैं कि तत्त्व की सूक्ष्म बातें भी श्रोताओ की समझ मे आ जाती हैं।

परम आदरणीय श्रद्धेय मेवाडकेसरी मोहनलाल जी महाराज साहब के जीवन मे सहिष्णुता एवं मधुरता विशिष्ट रूप से विद्यमान है। आपने बाल्यकाल से ही जैन सत की कठिन साधना स्वीकार की। क्षणभगुर जीवन की गतिशीलता देखकर भव्यात्माएँ प्रबुद्ध हो उठती हैं। गुरु का निमित्त पाकर आपश्री ने सभी सासारिक सुख-साधन दुष्प्रवृत्तियो का त्यागकर आत्म साधना के राजमार्ग पर आरूढ हो गये।

आपका अध्ययन बहुत गहन गम्भीर है। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी पर आपका पूर्ण अधिकार है। जैन आगमो का आपने तलस्पर्शी अध्ययन किया है। आपकी वक्तृत्वकला मे जनमान को आकृष्ट कर लेने की विलक्षण क्षमता है। गम्भीर चिन्तन एव

वाणी का जादुई असर । इस उम्र मे भी आपके कण्ठ मे माधुर्य विद्यमान है और जब आप शास्त्रो को अभिव्यक्त करते है तो जन-जन का मन महज ही आपकी ओर आकर्पित हुए विना नही रहता है ।

आपके ओजस्वी प्रवचनो मे अहिंमा और अभयदान की भावना रमी होती है । जैन माव् अहिंमा का जीता-जागता प्रचारक है । आपका एकमात्र ध्येय हिंमा को मिटाकर ससार मे अहिंमा का एकाधिपत्य स्थापित करना है । महाराजश्री मे जीव दया की भावना कूट-कूट कर भरी पडी है और आपके सदुपदेश का अमृतपान करके कितने ही भाई-बहनो ने हिंमा प्रवृत्ति को त्यागा है—इसका जीता-जागता उदाहरण है मेवाड जोगणी माता का स्थान, जहाँ पर सैकडो मूक पशुओ की वलि हर वर्ष दी जाती थी । जब मूक पशुओ की करुण चित्कार अव्यक्त रूप मे आपको सुनाई दी तो आपके मन मे अभयदान की प्रेरणा स्फुरित हुई और हृदय की इसी तीव्र सवेदना, करुणा की मन्दाकिनी की तीव्रधारा और अभयदान की भावना के कारण आप चले हिंमा-परायण लोगो को समझाने 'जीओ और जीने दो' की आवाज को उन लोगो मे जागृत करने के लिए अपने प्रभावशाली व्यक्तित्व मे उन लोगो के हृदय मे सद्भावना पैदा की । उनके हृदय से हिंमा भावना को परिष्कृत करके कोमल बनाया और उन हिंसक लोगो के मन मे अहिंसा के बीज आपने जैन मुनी के सिद्धान्त एव आगमो के द्वारा व 'अहिंसा परमोधर्म' का नारा गाँव-गाँव शहर-शहर तक गुंजायमान किया ।

सन्त पुरुषो के विषय मे लिखना अत्यन्त दुष्कर कार्य है क्योंकि उनका व्यक्तित्व हिमालय जैसा महान होता है और कृतित्व अनन्त सागर की तरह विराट होता है । उनके विराट व्यक्तित्व और कृतित्व को शब्दो की सीमा मे आबद्ध करना मेरी लेखनी के वश की बात नही है । आपका आगमन मालव प्रान्त की शस्य श्यामला भूमि पर बडे ही सुखद क्षणो मे हुआ आपके दर्शनों का सौभाग्य मुझे इन्दौर के गीता भवन प्रागण मे मिला । आपका पदार्पण इन्दौर मे गांधी नगर से उसी दिन हुआ था । आपकी मधुरवाणी सुनने का मौका मुझे वही मिला । उसके पश्चात् हम सभी दर्शन करने ऊपर कमरे मे गये वहाँ पर श्रीमती बाफना ने हमारे परिवार के सदस्यो का परिचय श्रद्धेय महाराज साहब एव वहाँ पर विराजित सभी सन्तो से करवाया । प्रथम परिचय प्राय जल्दी एका एक नही होता है किन्तु इस सन्त समुदाय के दर्शनो के पश्चात् मुझे ऐसा लगा कि यह मेरा प्रथम परिचय है—कुछ ही दिनो मे अतीत की असाध्य दूरी समाप्त हो गई ।

आप सबो के सम्पर्क मे आने से मुझे अनुभव हुआ कि उनकी प्रबुद्ध विचार चेतना दृढनिष्ठा मे मेरे अन्तर मन को अनिर्वचनीय शान्ति प्राप्त हो रही है, बस, जिज्ञासा जगने की देर थी कि आपके सुशिष्य आदरणीय महेन्द्रमुनि जी महाराज साहब के प्रवचनो का टेप रिकार्डर द्वारा सकलन चालू कर दिया । इतने अल्प समय मे

मेवाड़ केसरी श्री मोहनलाल जी महाराज

जन्म
वि म १९७६ आषाढसुदि ७
शाहपुरा (राजस्थान)

दीक्षा
वि स १९९८
पाडसोली

हृदय वड़ा ही सरल आपका
समता-रस मे रहते लीन ।
गुरुवर मोहन, है जन-मोहन
ज्ञान-ध्यान मे सतत प्रवीण ।

श्री महेन्द्र मुनि 'कमल'

चिन्तक, वक्ता, कविवर लेखक
मानवता के स्वर संधायक।
मुनि महेन्द्रकुमार 'कमल' है
जैनधर्म के सद् उन्नायक।

वाणी में है ओज, हृदय में स्नेह, नयन में करुणा
धर्म क्रान्ति का शंखनाद कर आगे बढ़ते
रूढ़िवाद की जंजीरों को तोड़, प्रगति का सुन्दर पथ दिखलाते
सदा सत्य के साथ साम्य के उच्च शिखर पर चलते।

पुस्तक तैयार हो जावेगी उसकी कल्पना हमे भी न थी न महाराज साहब को थी। श्रद्धेय महाराज साहब की ओर से सदैव मुझे पूर्ण सहयोग मिलता रहा मेरा मनोबल सदैव बढाते रहे। जब भी पुस्तक के विषय मे चर्चा होती—बडे ही स्नेहयुक्त सम्बोधनो से बरबस अपनी ओर खीच लेते कभी भी प्रमाद नही आने दिया। आप श्री की निरन्तर प्राणदायक प्रेरणा से ही यह प्रवचन साकार रूप लेने मे समर्थ हुए और आदरणीय महेन्द्र मुनिजी ने तो इस कार्य मे अपनी शक्ति और बुद्धि तो क्या अस्वस्थ शरीर की भी परवाह न की। यदि यह कह दू कि प्राण भी उडेल दिया तो अतिशयोक्ति नही होगी।

गुरु कारीगर सरीखा, टाची वचन विचार।
पत्थर की प्रतिमा करे पूजा लहे अपार।

२०३३ का इन्दौर का चातुर्मास यदि एक ऐतिहासिक चातुर्मास कह दिया जाय तो कोई अतिशयोक्ति नही होगी गुरु महाराज की ही भाषा मे कि 'माणो इन्दौर रो चातुर्मास जीसो चातुर्मास तो पिछला वर्षा का कठा को ही नी हुओ।' और इदौर निवासियो की भी एक ही आवाज रही कि अनेको सन्त साध्वी मण्डल आये, किन्तु इस बार जैसी धर्म की गगा एव छटा देखने को कम ही बार मिली, पर्युषण के समय का रजवाड़े का जो दृश्य था देखते ही बनता था।

और मेरे लिये तो यह वर्षावास गगा की पवित्र धारा का स्रोत सिद्ध हुआ। मेरे जीवन की एक अतृप्त प्यास आप श्री एव आपके सुशिष्य 'कमल' मुनिजी के प्रवचन की पीयूषधारा के कुछ सकलन एव पुस्तक मुनिश्री द्वारा अपने अभिन्न श्रावक के प्रति अभिव्यक्त की गई यह श्रद्धा युग-युग तक जन-जन की स्मृति मे रहेगी।

—भुवनेश्वरी जी० भण्डारी

चिन्तनशील कवि, मधुरवक्ता श्री महेन्द्रमुनि 'कमल'

अरावली की पर्वत शृंखलाओ मे कई छोटे-छोटे ग्राम नगर हैं, जिनमे लाखों लाख मनुष्य रहते है और सामान्य जीवन व्यतीत करते है। ग्राम वेगूं भी मेवाड के चित्तौड जिले का ऐसा ही छोटा किन्तु सुन्दर गाँव है। यह गाँव प्राकृतिक सुषमा से ओतप्रोत है, और इसकी माटी मे आध्यात्मिक सुरभियो का निवास है। यहाँ एक भाग्यशाली क्षण मे स्व० श्री मोहनलालजी गोखरू की धर्मपत्नी श्रीमती सुन्दरबाई की पुण्यशालिनी कोख से एक शिशु रत्न का जन्म हुआ जो आगे चलकर न केवल वेगूं का अपितु सम्पूर्ण मानवता का रत्न सिद्ध हुआ। कहावत है, 'होनहार विरवान के होत चिकने पात' यह उक्ति चरितार्थ हुई। मुनिश्री महेन्द्रकुमार 'कमल' के नटखट किन्तु आध्यात्मिक वैभव से सम्पन्न शैशव पर।

इतिहास साक्षी है कि प्रतिभा पर वज्रपात होता है। हमारे चरित्र-नायक जब छ वर्ष के थे तभी अचानक इस दु खद वियोग ने उन्हे झकझोरा अवश्य किन्तु तूफानो के बीच भी एक अकम्प व्यक्तित्व विकसित होता चला गया। ससार की क्षण-भगुरता ने उनकी आध्यात्मिक शक्तियो को उद्घाटित किया, अपने परम गुरु मेवाड केसरी महाराज साहब श्रद्धेय मोहनलालजी का सानिध्य पाकर उनकी ज्ञानान्जन शलाका से कमल मुनि के आध्यात्मिक पुरुषार्थ ने अँगड़ाई ली। वे ससार से विरक्त हो उठे और आत्म-साधना के राजमार्ग पर आरूढ हो गये। इस क्षेत्र मे वे इतने तेजस्वी सिद्ध हुए कि मेवाड मे उनके व्यक्तित्व का आलोक चारो ओर विस्तीर्ण होता गया।

इस वर्ष युवा कविरत्न मुनिश्री 'कमलजी' का वर्षावास इन्दौर मे हुआ। यह एक महत्त्वपूर्ण और अविस्मरणीय घटना है। प्रतिदिन इनके प्रवचन हुए। प्रवचन ज्ञान के खजाने है ये प्रेरणा और उत्साह के कभी न समाप्त होने वाले स्रोत हैं। इन प्रवचनो का सग्रह हम अपने विज्ञ पाठको को 'अन्तर्दृष्टि' शीर्षक से प्रस्तुत कर रहे हैं। यह प्रवचनमाला एक युवासन्त साधक के जीवन का दीव्य सन्देश लेकर अवतरित है। समस्त प्रवचन मर्मस्पर्शी हैं, युगानुरूप हैं और विश्व की अनेक समस्याओ पर प्रकाश डालती है, इनमे केवल एक कवि का भावाविष्ट हृदय ही नही है, अपितु

तत्त्वदर्शी चिन्तन भी है। इन्हे श्रोताओ ने मन्त्रमुग्ध होकर सुना है और इन्हे जहाँ तक सम्भव हुआ है अपने जीवन मे प्रतिविम्बित भी किया है।

मैंने अनुभव किया है कि मुनिश्री न केवल एक प्रवुद्ध कलाकार है अपितु मौलिक चिन्तक भी है, उन्होंने अपनी काव्यकला से आत्मस्थ सौन्दर्य को जीवन्त शैलियो मे अभिव्यक्त किया है। वे सफल वक्ता है और श्रोता के भीतर सुपुप्त अन्तर चेतना को जगाने मे पूरी तरह समर्थ हैं।

सन्त का जीवनदर्शन मनुष्य को उत्तरोत्तर श्रेष्ठ मनुष्य वनाने की ओर रुचि रखता है। वो अपनी प्रतिभा से सासारिक व्यक्तियो को माँजता है और एक समत्व-पूर्ण जीवन की ओर प्रेरित करता है। जैन धर्म और दर्शन मे गम्भीर विपयो की चर्चा है। अनेक मनीषी आचार्य हुए हैं। जिन्होंने आध्यात्मिक तथ्यो का गहराई से मन्थन किया है। ऐसे आचार्यो की सख्या छोटी नही है। इन आचार्यो ने जहाँ एक व्यक्ति की समस्या पर विचार किया है वही दूसरी ओर अपने युग के सन्दर्भो का ध्यान रख-कर विश्व समस्याओ पर भी अपना स्वस्थ और रचनात्मक चिन्तन प्रस्तुत किया है। उन्होंने विगत और वर्तमान दोनो ही पीढियो के वीच न केवल समन्वय स्थापित किया वरन् दिशा ढूँढते तरुणो का नेतृत्व भी किया। उनका विशाल विराट चिन्तन सभी युगो मे भारत के कोटि-कोटि कण्ठो द्वारा न केवल सराहा गया, अपितु उसे मील के पत्थर की तरह भारतीय मनीषा का दर्शन भी किया।

इसी परम्परा मे हम मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल' का स्मरण करते है जिन्होंने अखिल मानवता को एक प्रामाणिक रचनात्मक और युगानुरूप दिशा देने का प्रयत्न किया है। उनके विचारो मे ऐसा आध्यात्मिक चुम्वक है जो धर्म से विमुख युवा पीढी को स्वयमेव आकर्पित करता है। मुनिश्री न केवल एक ओजस्वी वक्ता है, अपितु गायक और सगीत मर्मज्ञ भी हैं। उनकी वाणी मे ओज व प्रवाह है और अपने श्रोताओ को अपने निष्कपट चिन्तन से प्रभावित करने की अपूर्व ऊर्जा भी है। एक सयमपूर्ण जीवन सूर्य की तरह निरन्तर श्रमनिष्ठा, स्वाध्याय मे गहरी रुचि, समस्याओ के प्रति एक सवेदन, जागरूक भाव, चिन्तन मे उदारता और अनेकान्त की झलक कुछ ऐसे गुण हैं, जो उन्हे अन्य सन्तो से भिन्न तो करते ही है, विशिष्ट भी वनाते हैं।

—भुवनेश्वरी जी० भडारी

प्रवचन खण्ड

परिशिष्ट

श्री गजेन्द्रसिह भण्डारी स्मृति-परिशिष्ट

संदेश एवं प्रेरक सस्मरण

श्रद्धांजलियाँ

लेखनी की नोंक से गुदगुदाती स्नेहिल यादें

संस्मरणो के आइने में

1

ज्योतिर्मय दशा

□

ज्योति की खोज है। पर वह ज्योति, परम ज्योति, कहीं बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर ही छुपी है। अज्ञान, मोह और कषाय के आवरण इसे ढके हुए हैं। जब ये आवरण हट जायेंगे, तो वह अनन्त प्रकाशपुंज, आलोक की अनन्त-अनन्त किरणें जगर-मगर कर अन्तर्लोक को ज्योतिर्मय बना देंगी। आइये, पढ़िये ज्योतिर्मयदशा प्राप्त करने की सरलतम परिभाषा ······

१

ज्योतिर्मयदशा

□ □

अब विष से छुटकारा पाकर, अमृतमय बन जाओ।
आओ निर्विकार जीवन की, नूतन नींव लगाओ॥

आत्मा का जो मूल स्वरूप है, उसे आलोकमय माना गया है, जैसे कि कर्म मैल के पूरे तौर पर हट जाने के बाद जब आत्मा सिद्ध स्वरूप का वरण करती है तो वह अपने मूल रूप मे पहुँच कर पूर्ण ज्योतिस्वरूप बन जाती है—मात्र आलोकमय रह जाती है। आत्मा का यही आलोक साधना के बल पर जितने अशो मे प्रकट होता जाता है, उतने ही अशो मे उसका विवेक भी जाग्रत बनता जाता है, क्योकि आलोक को विवेक का ही प्रतीक माना जाता है।

जीवन मे जब विवेक दृष्टि जाग्रत एव सतर्क बनती है, तभी वह आत्मा अपने विकास की दिशा खोजने लगती है और सही दिशा पाकर उस ओर गति करने लगती है।

मोक्ष : अन्तिम लक्ष्य

सुप्रसिद्ध आचार्य उमास्वाति ने विवेकदृष्टि का सही दिशाबोध कराने के लिये तत्त्वार्थसूत्र मे अन्तिम लक्ष्य को स्पष्ट किया है—

"सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग ।"

अर्थात्—मोक्ष के अन्तिम लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन एव सम्यक्चारित्र के मार्ग पर ही चलना पडेगा। इन तीनो तत्वो मे सम्यक् दर्शन है, उसे ही सही विवेकदृष्टि के नाम से जान जा सकता है। आत्मभाव के

आलोक के अन्दर जब कोई प्रविष्ट होता है—तभी उसकी विवेक दृष्टि जाग्रत बनती है उसका दर्शन स्पष्ट बनता है। जहाँ पर सम्यक् दर्शन का भाव है यानि कि सही विवेक दृष्टि एव सही आस्था है, वहाँ सम्यक् ज्ञान का विस्तार सहज बन जाता है और उसके बाद जिस चारित्र्य की आराधना की जाती है, वह सम्यक् होता है। इस प्रकार तीनो तत्त्वो के माध्यम से मोक्ष की मजिल पर पहुँचा जा सकता है।

किन्तु जब विवेक दृष्टि सजग न बने, जीवन के हित एव अहित को सोचने वाले मौलिक प्रकाश की रश्मियाँ प्रकट न हो एव आत्म-रमण की दिशा मे गति करने वाला चरित्र क्रियाशील न बने तो यह मोक्ष का मार्ग कैसे सुलभ हो सकता है? आज देखें तो सामान्य जन ने अपनी विवेकदृष्टि को शिथिल या कुठित बना कर इस मुक्ति के मार्ग को भुला दिया है।

मुक्ति के मार्ग को व्यक्ति ने जब से भुलाया है, एक प्रकार से उसने अमृत को भुला दिया है। आप ही बताइये कि अमृत को भुलाने वाला किस पेय को पीएगा? अमृत को भुलाकर वह अपने हाथ मे जहर को ले आया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जहर से प्यार करने पर जिन्दगियो से हाथ धोना ही पडता है। जिस जहर का मैं जिक्र कर रहा हूँ, वह ऐसा विचित्र जहर है, जिसने अनन्त-अनन्त आत्माओ को सम्मोहित एव पीडित बनाकर ससार मे भटकने के लिए छोड दिया है।

स्वाद मधुर, परिणाम कटु

यह जहर खाने मे मधुर होता है, किन्तु उसे खाने के बाद उसका जो फल प्रकट होता है, वह अत्यन्त ही कटु होता है। इस जहर का ही कुप्रभाव देखा गया है कि आत्मा कई बार मोक्ष के सान्निध्य तक पहुँच कर फिर ससार मे भटक गई और अपने मिथ्यात्व को तोड नहीं सकी। इस जहर की तुलना आगमो मे एक किंपाक-फल के जहर से की गई है। किंपाकफल सम्पूर्णरूप से जहर का पिंड होता है, किन्तु वह जहर ऐसा होता है कि खाने मे बहुत ही मधुर प्रतीत होता है। इस कारण किंपाकफल खाते समय बडा आनन्द देता है, लेकिन जब वह विष फूटता है तो उसका परिणाम बडा ही भयावह होता है। स्वाद मे मधुर और दीखने मे अत्यन्त मनोरम-इस विषैले किंपाकफल के दृष्टान्त से ज्ञानियो ने ससारी आत्माओ को सावधान बनाया है।

जरा आइये, हम भी विचार करें कि इस जहर की वास्तविकता के प्रति क्या हमारी विवेकदृष्टि जाग्रत भी बनी है अथवा मूर्च्छित बने इस जहर को निरन्तर खाते रह कर हम अपने जीवनतत्त्वो का विनाश कर रहे हैं? आज नागपचमी का दिन जो

है, अत यह भी देखे कि इस तरह के जहर को हम प्रतिदिन अपने जीवन मे फैला रहे है या जीवन मे से उसे निकाल रहे है ? यदि किंपाकफल के समान इस जहर से अविवेकी दृष्टि के कारण प्यार किया जाता है तो उसके कटुपरिणामों को भुगतने की भी तैयारी रखनी होगी। वे परिणाम कैसे होगे—इसका उत्तर कवि की ही भाषा मे जानिये—

फल किंपाक मधुर होते है,
किन्तु भक्षक फिर रोते है।
यो विकार क्षण मधुर परन्तु,
जन्म-जन्म मे विष बोते हैं।

अब विष से छुटकारा पाकर,
अमृतमय बन जाओ।
आओ, निर्विकार जीवन की,
नूतन नींव लगाओ ॥

किंपाकफल के आकर्षक रग-रूप को देख कर तथा उसके मधुर स्वाद मे मग्न बन कर उसका भक्षक उसे देखते व खाते समय अपनी अन्तिम स्थिति को भूल जाता है और आसक्त होते हुए उस जहर से प्यार कर लेता है, किन्तु वह जहर इस जन्म को डुबोता ही है, लेकिन कई भावी जीवनो को भी विषमय बना कर छोड देता है। किंपाक फल जैसा ही जहर होता है—कषायवृत्ति का जहर—जिसका अविवेक से पान करती रह कर आतमा अपने आलोक से हीन बनी रह कर अंधेरी गलियो मे भटकती रहती है।

दाहक ज्वालाएँ

कषाय का भाव वह विष का बीज है, जो आत्मा के प्रागण को विषैला बनाकर उसमे राग-द्वेष की दाहक ज्वालाएँ भडका देता है। अनन्त-अनन्त भवो से वीतराग की वाणी उद्घोष करती रही है कि आत्मा मे जब यह विष का बीज पनपता हुआ चला जाता है तो जन्म-जन्मान्तर तक पतन का पीछा नही छूटता। ससारी आत्माओ ने अतीत के अन्दर इस विष से बहुत प्यार किया है—कषायगत भावो मे आनन्द मनाया है और उससे घनघाती कर्मों का बंध किया है। ऐसी अवस्था मे उन कर्मो का फल तो भोगना ही पडेगा।

यह आपको अटपटा लग रहा होगा कि आप जहर से प्यार कर रहे है। भला जहर को कौन चाहता है ? केवल वही चाह सकता है, जिसको अपनी जिन्दगी

से प्यार न हो। आप यह भी मानने को तैयार नही होंगे कि आपको अपनी जिन्दगी से प्यार नही है। किन्तु आप गभीरतापूर्वक विचार कीजिये—महावीर-दर्शन की गहराई मे उतरिये तो आपको प्रतीत होगा कि आप जहर से प्यार कर रहे हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि क्या आप अपने जीवन मे क्रोध के जहर से लिप्त नही है ? क्या आप मान के जहरीले पर्वत पर बैठ कर गरूर मे नहीं ऐंठते ? क्या आप माया का कटीला जहर पी कर दूसरो को कष्टो मे नही उलझाते ? क्या आप लोभ के जहर मे मदमस्त बन कर अनैतिकता के गर्त मे नही गिरते ? क्या आप राग और द्वेष की दाहक ज्वालाओ से दूसरो को उत्पीडित नही बनाते ?

क्या कषाय का यह सारा जहर आपको महसूस नही होता ? हकीकत मे किपाक का फल खाते समय उसके जहर की अनुभूति नही होती—उस समय तो उसके स्वाद का आनन्द आता है। उसी प्रकार रागद्वेष की उत्तेजना मे या क्रोध, मान, माया, लोभ की अविवेकी अवस्था मे आपको परिणाम की अनुभूति नही होती है, लेकिन जब उसका विष आत्मतत्त्व की रग-रग मे व्याप्त होता जायगा और वह अपना दुष्प्रभाव दिखाना शुरू करेगा, तब जीवन के सर्वनाश के सिवाय और कुछ भी दिखाई नही देगा। उस विष के फलभोग से किसी तरह छुटकारा नही मिलेगा। कषाय की ज्वालाओ का दाह कई जन्मो तक जलाता रहता है।

मोह से मुक्ति, जहर से मुक्ति

राग एव द्वेष के इसी मधुर जहर के कारण आत्म-विकास को कितनी क्षति पहुंचती रही है और इसी विचार से मैं जाग्रति के स्वर मे आप से पूछना चाहता हूँ इन्द्रपुरी के निवासियो ! जरा बोलिए कि आप इस मधुर जहर को कब तक पीते रहोगे ?

अगर यह जहर नही छूटता तो समझिये कि विवेकदृष्टि अभी जागी नही है। विवेकदृष्टि नही है, तो सम्यक्दर्शन कहाँ है ? बिना दर्शन के ज्ञान और चारित्र कहाँ से आयगा ? फिर सोचिये कि मोक्ष की मजिल कितनी दूर है ?

जैनदर्शन स्पष्ट कहता है कि राग-द्वेष आदि कषायो के विषमय भावो को मिटाने के लिये जब तक कठोर साधना का पाँव नही उठता, तब तक मोक्ष का मार्ग भी नही मिलता। द्वेष यदि जटिल है तो राग जटिलतर है। समझने की आवश्यकता है कि द्वेष और राग के भाव कैसे होते हैं, वे क्यो जागते है तथा क्यो कर्मबन्धन का कारण बनते हैं ?

ससार के विभिन्न पदार्थो मे—विभिन्न तत्त्वो मे अथवा विभिन्न व्यक्तियो मे प्रत्येक प्राणी किन्हीं को अपने लिये प्रिय मानता है और अन्य को अप्रिय। अप्रिय

पदार्थों, तत्त्वो तथा व्यक्तियों से वह घृणा करता है—उन्हे चाहता नही। मनोभावो की ऐसी जो अवस्था होती है उसे द्वेष कहते हे। वह अप्रियो के साथ द्वेष रखता है। जिसके साथ द्वेष होता है—उनके अस्तित्त्व को अपने सामने देख कर उत्तेजना होती है तथा द्वेष उन्हे प्रत्येक प्रकार से हानि पहुँचाने को तत्पर वनाता है।

राग को द्वेष का विपरीत भाव कहा गया है। राग अपने प्रिय पदार्थों, तत्त्वो वा व्यक्तियो के प्रति होता हे। जिन्हे चाहा जाता है, उनके प्रति घना ममत्त्व हो जाता है एव उस मोह-भरी स्थिति मे कई प्रकार के पापकार्यो मे प्रवृत्ति होने लगती है। इस प्रकार द्वेषवश एव रागवश जो उत्तेजना होती है, वह चाहे क्रोध की उत्तेजना हो या मोह की—उनका अन्त सदा हिंसामय ही वनता है। इसी कारण कषाय की वृत्तियो को ज्वालाओ की उपमा दी जाती है। चिकने भावो की दृष्टि से द्वेष की अपेक्षा भी राग को छोडना अतिकठिन होता है क्योकि इसके प्रतीकात्मक भाव होते हैं मोह व ममता के। राग छोडने का महत्त्व इस शब्द से ही स्पष्ट है कि मोह-ममता को सर्वथा छोड देने वाली विभूति को हमने वीतराग कहा हे।

और वीतराग वनने का मार्ग है—कठोरतम साधना का मार्ग—सम्यक् दर्शन, ज्ञान एव चारित्र की आराधना का मार्ग। इसके मूल मे होना चाहिए—कषाय से मुक्ति का सकल्प और यह सकल्प परिपुष्ट होता रहे विवेकदृष्टि के विकास के साथ। मोक्ष के लक्ष्य को प्राप्त करने का यही पाथेय है।

कषाय का दुष्प्रभाव

भगवान् महावीर ने कषाय के जहर के विषय मे कहा था कि रागद्वेष के मनोभाव ही मुख्यरूप मे भवभ्रमण के कारण हे। आज इस नागपचमी के दिन नाग की पूजा की जाती है, किन्तु क्या आप जानते हैं कि ऐसा क्यो आरम्भ हुआ? जैनदर्शन से आप परिचित हे और आपने चडकौशिक नागराज का नाम व कथानक भी सुना ही होगा। चडकौशिक-सा भयकर विष-धर अपने पूर्वभव मे अमृतनिधि मुनि था। मुनि निर्ग्रंथ होता है और 'तिन्नाण तारयाण' कहलाता है। किन्तु मुनि भी अगर कषायो के जहर से भभकने लग जाय तो उसका सारा अमृत भी जहर हो जाता है। उस मुनि को इसी जहर के कारण अपने अगले भव मे चडकौशिक सर्प होना पडा, जिसका भयकर विष कराल काल वन कर भभका कि आकाश मे उडते पक्षी भी उसकी फुत्कार से मृत्यु को प्राप्त हो जाते। उसके घातक विष का आतक चारो ओर फैल गया।

कषाय-सेवन का कुप्रभाव देखिये कि एक मुनि—एक साधक अपने अमृतमय जीवन से पतित हो कर स्वय विष का भण्डार वन गया। किन्तु चडकौशिक सर्प

के जीवन मे इसी तथ्य का दूसरा पहलू भी सामने आता है। इसके ही जीवन मे कषाय-सेवन का कुप्रभाव दिखाई देता है तो कषाय-त्याग का सुप्रभाव भी परिलक्षित होता है।

भगवान् महावीर तो समदृष्टि थे। उनके ज्ञान मे चण्डकौशिक का वर्तमान भव था, तो पूर्वभव भी था और वे जानते थे कि यह जीव कषाय से मुक्त भी होगा। तब उस जहर को फिर से अमृत मे बदलने के लिए महावीर तत्पर हो गये। सारे विषाक्त वातावरण के बावजूद महावीर जब चडकौशिक की बाबी पर ध्यानस्थ खडे हो गये तो उस सर्प को भी कम आश्चर्य नही हुआ। उसे दुस्साहस मान कर चडकौशिक उत्तेजित हो उठा—उसने महावीर के पैर को डस लिया। दूध-सा सफेद खून और मुह पर शान्त मुस्कुराहट—वह सर्प तो ठगा-सा देखता रहा जिस पर कि उसका विष सर्वथा प्रभावहीन सिद्ध हुआ। भगवान् के प्रतिबोध से उसे अपना पूर्वभव याद आया और उसने अपनी आत्मा को समस्त रागद्वेप के भावो से मुक्त बनाने का कठोर सकल्प ले लिया। मुह बांबी मे रखा और बाकी शरीर बाहर। बदले की भावना से कईयो ने उसे यातनाएँ दी तो कई उसकी पूजा करने लगे। सब उसने समभाव से सहन किया। तभी से नागपूजा और नागपचमी चल पड़ी है।

भगवान् ने चडकौशिक को प्रतिबोध दिया—'चडकोशिया! बुज्झह, बुज्झह' और चडकौशिक ने अपने जहर को कठोर साधना के बल पर बाहर निकाल दिया—फिर से अपने जीवन को अमृतमय बना लिया। क्या वीतराग-वाणी आपको प्रतिबोधित नही करती है? फिर इस जहर को आप भी तो निकालने का सकल्प कीजिये।

उपासना अमृत की

जहर को जो भी पियेगा—चाहे वह श्रमण हो या श्रावक—उसके कुप्रभाव से उसे पीड़ित होना ही पडेगा। शरीर मे विष के व्याप्त होने पर क्रन्दन फूट ही पडता है किन्तु वह क्रन्दन भी मुस्कुराहट मे बदल सकता है, यदि कोई उस विष को बाहर निकाल दे। इसी प्रकार रागद्वेपादि कषायो के जहर को अगर बाहर निकाल लिया जाय एव अमृत की उपासना की जाय तो आत्मा विवेकदृष्टि के आलोक से आलोकित बन सकती है तथा मोक्षमार्ग पर आगे बढ सकती है। एक कवि ने इस सन्दर्भ मे क्या ही अच्छा कहा है—

सम्यक् दर्शन, सम्यक् संयम, सम्यक् होवे ज्ञान
उसी को मिलते हैं भगवान्

चाँद-सा निर्मल, फूल-सा कोमल
उज्ज्वल सूर्य समान
उसी को मिलते हैं भगवान्

डसे न जिसको, क्रोध का काला, करे न मद का पान
माया का भी कर ले अवसान
उसी को मिलते है भगवान्

जले न क्रोध की ज्वाला, शान्त धीर हो नम्र महान्
त्यागी निर्लोभी गुणवान्
उसी को मिलते है भगवान्

आज जीवन की यात्रा पर आप भी चल रहे हैं, हम भी चल रहे हैं। आप भी साधना कर रहे है, हम भी साधना कर रहे हैं। जब कोई इन्सान किसी राह पर चलता है—जीवन के मैदान मे आगे बढता है तो क्या कारण है कि मजिल फिर भी नजदीक नही आती ?

चीखे, चिल्लाए, उछले, कूदे और खूब टहले
हिर फिर के हम वहीं रहे, जहाँ थे पहले।
पर जरा बोलिए कि आखिर ऐसा क्यो ?

बात स्पष्ट है। आज कषाय के बन्धन जिस रूप मे जीवन को कसे हुए हैं, ये कदम उस कारण आगे नही बढ पाते है। कदम आगे नही बढेंगे तो मजिल नजदीक कैसे आ सकेगी ? कषायो का विष निकले बिना कैसी भी साधना या आराधना सार्थक नही हो पाती है। इसलिए आत्म-विकास की दिशा मे सर्वप्रथम प्रयास यही होना चाहिए कि राग द्वेषादि कषायो के जहर को अपने जीवन की प्रत्येक वृत्ति एव प्रवृत्ति मे से बाहर निकाल फैंकें तथा समता रूपी अमृत की निराबाध उपासना करें।

निर्माण की ओर

एक ज्ञानगम्भीर गुरु ने अपने आतुर शिष्य के भीतर से जहर निकालने की किस प्रकार चिकित्सा की—यह कहानी मैं आपको इसलिए बता रहा हूँ कि आप भी इस जहर की गहरी मार को समझ सकें।

एक शिष्य अपने गुरु के आदेश से तपस्या करने लगा—तपस्या को वह निरन्तर बढाता हुआ चला जा रहा था। लम्बी तपस्या के बाद वह गुरु के पास पहुंचा और बोला—गुरुदेव, मैंने इतनी कठिन तपस्या कर ली है। अब बताइए कि मेरे उत्थान की दिशा कब प्रशस्त होगी—कब मेरे अन्दर प्रकाश बिखरेगा ? गुरु पहुँचे हुए योगी थे, उन्होने दो मिनट तक शिष्य की अन्तर्वृत्तियो का सूक्ष्म निरीक्षण

किया और स्थिति को समझकर बोले—'अरे शिष्य, तू तपस्या कर रहा है, किन्तु तेरे लिए मेरा सन्देश है कि अभी और पतला कर—और पतला कर।' शिष्य बडा झल्लाया, क्योकि उसने गुरु-सन्देश के रहस्य को अपनाया नही। फिर भी गुरु आज्ञा विचारणीया मान कर वह पुन तपस्या करने के लिए चला गया।

पहले से भी अधिक समय तक शिष्य ने और तपस्या की एव फिर गुरु के पास लौट आया। उसने फिर पूछा—'मेरा मोक्ष कब होगा, गुरुदेव ?' गुरु ने फिर पैनी नजर डाली और फिर कह दिया—'अभी और पतला करो तथा इसके लिए और तपस्या करो।' लाचार होकर शिष्य फिर तपस्या करने चला गया। कठोर तप से उसका शरीर जर्जर हो गया तो उसने सोचा कि अब तो गुरु उसे मुक्ति का मार्ग अवश्य ही बता देंगे। वह गुरु के पास लौट आया—बडी आकुलता से उसने फिर अपने उद्धार की बात पूछी। गुरु ने फिर वही पहले वाला उत्तर दे दिया। तब तो शिष्य तिलमिला उठा—उसका दबा हुआ कषाय का जहर उबल पडा और अपना अगूठा तोड कर गुरु के सामने फेक दिया। उसने तपस्या की थी, किन्तु उस जहर को नष्ट नही कर सका था—इसी कारण गुरु उसे बार-बार वापिस भेज देते थे। उसकी सफल चिकित्सा हो ही नही पा रही थी।

तो समझने की बात यह है कि जीवन के निर्माण का तत्व कषायो को जीतने मे रहा हुआ है। जब तक कषायो की ज्वाला जलती रहेगी, शीतलता का सचार नही हो सकता एव बिना शीतलता के कही फूल खिल सके हैं ? जीवन के फूल तभी खिल सकेंगे, जब राग-द्वेषादि के कटु मनोभावो को नष्ट कर दिया जाय। जीवन-निर्माण के इस तत्व को गहराई से समझने की आवश्यकता है।

आत्मोन्नयन मे खुले नयन

जीवननिर्माण के इस तत्व का चिन्तन करने मे जैनदर्शन मे उल्लिखित चौदह गुणस्थान बडे सहायक हो सकते हैं। ये चौदह गुणस्थान एक प्रकार से आत्म-विकास के चौदह सोपान हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि आत्मा किस प्रकार से आत्मीय गुणो को धारण करती हुई ऊपर चढती है, लेकिन कब कषाय के एक झटके से ही ऊपर से नीचे आ गिरती है ? कषायमुक्ति के क्रम मे आत्मा अपनी कठिन सुदृढता के साथ टिकी रहे और ऊपर चढती रहे तो फिर ऊपर ही ऊपर के सोपानो से फिर उसके नीचे गिरने की सम्भावना नही रहती। पूर्ण कषायमुक्ति की अवस्था को ही वीतराग या अरिहन्त कहा गया है।

पहला गुणस्थान मिथ्यात्व का है, जो सर्वथा अज्ञानमय होता है। साधक जब इससे ऊपर चढता है तो उसकी दो श्रेणियाँ हो जाती है—एक उपशमश्रेणी एव

दूसरी क्षपकश्रेणी। उपशमश्रेणी मे कर्मों का सर्वथा नाश नही होता—वे राख के अंगारे की तरह दब जाते है तो क्षपकश्रेणी मे कर्मों को सम्पूर्णत नष्ट कर दिया जाता है। उपशमश्रेणी के कर्म इस कारण सयोग मिलने पर फिर से भभक उठने वाले अगारे की तरह सक्रिय हो उठते है। उपशमश्रेणी वाला साधक भी सहयोगी परिस्थितियो मे दशवें गुणस्थान तक पहुँच जाता है। इतने ऊँचे सोपान तक चढ जाने के बावजूद मूल मे उसकी दुर्बलता समाप्त नही हो सकी—जहर नही निकल सका तो उसकी भभक के अनुसार उसका नीचे पतन हो जाता है। किन्तु इस बीच यदि उपशम-श्रेणी का साधक अपने जहर को क्षय कर डालता है तो वह बारहवें गुणस्थान तक चढ सकता है एव तदनन्तर योगो का निरोध करते हुए अयोगी की सीढी पर भी चढ जाता है।

इस विश्लेपण से यह स्पष्ट हो जाता है कि कपाय की सम्पूर्णत समाप्ति न होने पर आत्म-विकास के चौदह सोपानो मे से दशवे सोपान तक चढ आने पर भी वह नीचे के पहले सोपान तक गिर सकता है। आत्मा को गिराने मे इस प्रकार कपाय इतनी शक्तिशालिनी होती है। शिप्य का दृष्टान्त जो मैंने ऊपर बताया, इसी सत्य को प्रकट करता है कि कठोर से कठोर तपस्या कर ली तथा और प्रकार से उच्चतर साधना भी सम्पादित की, फिर भी अगर कपाय पर विजय प्राप्त नही की तो उस कपाय का एक ही उबाल उसकी सारी साधना को पलभर मे भ्रष्ट कर सकता है।

मैं भी आपको तप करने के लिये कह रहा हू—तेले करने का आग्रह कर रहा हूँ, क्योकि मैं चाहता हूँ कि पूर्वसचित कर्मो को नष्ट करने एव जीवन मे ज्योति जलाने के लिये हर इन्सान को कुछ तप करना चाहिए और वह तप ऐसा होना चाहिये जिससे उसकी कपाय-वृत्तियाँ पतली पड़े।

विश्वासभरे कदम

मैं तो विश्वास के साथ चलता हूँ और मानता हूँ कि विश्वास के आधार पर ही सफलता मिलती है। जिस व्यक्ति का विश्वास सुप्त हो चुका हो, भला उसका भी कोई जीवन है। कवि कहता है—

पखो पर विश्वास नही, वह परिन्दा क्या,
चरणो पर विश्वास नही, वह चरिन्दा क्या।
स्वास लेने का नाम ही कोई जिन्दगी नही,
जिसको अपने पर ही विश्वास नहीं, वह जिन्दा क्या।

मेरा तो यही कहना है कि आप साधना करो, पुरुषार्थ को जगाओ और विश्वास को सुदृढ बनाओ तो कोई कारण नहीं कि आप ऊँचे से ऊँचे लक्ष्य को प्राप्त न कर सको। कोई कारण नही कि जीवन मे बहार न आए—चमकती हुई रौनक न आए। मोक्ष का द्वार भले ही जम्बुस्वामी ने बन्द कर दिया होगा, किन्तु उसकी चाबी अपने पास है। साधना की चाबी—तपस्या की चाबी अपने पास है और उससे कभी न कभी वह द्वार अवश्य खुलेगा ही।

इसमे ध्यान मे रखने की मुख्य बात यही है कि किसी भी स्तर पर कषाय के मधुर जहर मे न फसो और जो जहर पहले से अन्दर रमा हुआ है, उसे विवेकी साधना के बल पर बाहर निकालो। किन्तु यह कार्य आत्मविश्वास से ही सफल होगा और तब अमृत अवश्य मिलेगा।

2

बाहर से कुछ दीखे नहीं,
भीतर चमके नूर !

□ □

हाड-मांस-चाम का यह पुतला, यह मृण्मय देह, बाहर से भले ही गोरा या काला, सलोना या सांवला प्रतीत हो, पर भीतर में, सब के भीतर में एक दिव्य ज्योति-पुंज, एक विचित्र विभास्वर तेज विद्यमान है, जिसका दर्शन होते ही आंखें तृप्त हो जाती है, मन विमोहित हो जाता है। यहाँ पढ़िए इस भीतर के नूर की व्याख्या और कीजिए 'रूहानी-नूर' का दर्शन एक महान् संत की छवि में ....

२

बाहर से कुछ दीखे नहीं, भीतर चमके नूर !

□ □

आज हमारा हृदय श्रद्धा एव भक्ति से उछल रहा है, क्योकि आज एक ऐसे आदर्श सन्त की जन्मजयन्ती है, जो हमारे आचार्यदेव हैं। अत उन वन्दनीय महामहिम सन्तरत्न परमपूज्य आचार्यदेव श्रीआनन्दऋपिजी महाराज के चरणो मे शत शत वन्दन !

आचार्य देव के आत्मिक गुणो के सम्बन्ध मे आप लोगो के सामने अभी-अभी इतनी महिमा गाई गई है। अब मैं और क्या कहूँगा ? फिर भी उस विराट् व्यक्तित्व के विषय मे जितना कुछ कहा जायगा, वह भी पूर्ण नही होगा। महापुरुषो के चरित्र को शब्दो के ससार मे बाँधने की ताकत न तो मेरे मे है और न मेरे विचार मे, न अन्य किसी मे होती है। उनका चरित्र तो नित्य प्रति महनीय एव वन्दनीय ही होता है।

सेवा मे समर्पित

सन्तपुरुष का हम जो गुणगान करते हैं, वह उस सन्तपुरुष के लिए नही, अपितु हमारे स्वयं के आन्तरिक आनन्द के लिए होता है। गुणगान जितना मार्मिक होगा—हृदय की गहराइयो को छू लेने वाला होगा, आनन्द का परिमाण भी उन्ही अशो मे अभिवृद्ध होता जायगा। और यदि हम सन्त-सेवा मे अपने आपको सम्पूर्णत समर्पित कर देते है, तो आन्तरिक आनन्द का ऐसा अबाध प्रवाह फूट पडेगा, जो निरन्तर प्रवाहित होता रहेगा एव हृदय को सदा सदा आह्लादित करता रहेगा।

आचार्यदेव के सन्त-व्यक्तित्व में भी जब हम अपनी श्रद्धा एव भक्ति को समाहित करेंगे तो ऐसी ही आनन्द की धारा प्रवाहित होने लगेगी। फिर आचार्यदेव

का तो नाम ही आनन्द है। इस लक्ष्य से हमारे हृदय की श्रद्धा—हमारे हृदय की भक्ति आज के दिन विशेषरूप से उनके चरणो मे समर्पित है और मुझे लगता है कि आप लोग भी इसी प्रकार की तरल भावना प्रदर्शित कर रहे है। और क्यो न करें ? क्या आपको आनन्द की चाह नही है ? आनन्द को कौन नही चाहता ? सबको आनन्द और सुख अभीप्ट होता है। मन से प्रत्येक प्राणी आनन्द की ही कामना करता है। यह दूसरी बात है कि उसमे उस आनन्द को ग्रहण करने की कैसी और कितनी क्षमता है तथा उसका विवेक सच्चे आनन्द की दिशा मे जाग्रत है अथवा झूठे आनन्द के जगल मे भटक रहा है ? सन्तसेवा मे समर्पित होने का वास्तविक अभिप्राय यही है कि बाहर से दिखाई देने वाले आनन्द के नकलीपन मे न फँस कर हृदय को निरन्तर आल्लादित करने वाले सच्चे एव स्थायी आनन्द को ग्रहण करने की दिशा मे हम उन्मुख बनें।

सन्त : सम्प्रदायातीत, वर्गातीत

आज की धर्म-सभा का उल्लास यह तथ्य प्रकट कर रहा है कि छोटे बडे सभी के मन आचार्यदेव के प्रति अपने श्रद्धा सुमन चढाने की उमंग मे आनन्द की लहर से लहरा रहे हैं। बच्चा-बच्चा इस जयन्ती-समारोह को मनाने के लिए प्रसन्नता से उछल रहा है। आज सुबह प्रार्थना के समय छोटे-छोटे बच्चे भी आये तो मुझे पूछने लगे—महाराज, आज तो आप प्रवचन मे जल्दी पधारेंगे न ? आचार्यदेव के लिए आप से बहुत कुछ सुनने के लिए हम लालायित रहेंगे। आचार्यश्री के प्रति, आप सोचिये कि छोटे-छोटे बच्चों के मन मे भी कितनी प्रगाढ भक्ति है ? इसे देख कर एक मुक्तक अभी-अभी मेरे मानस मे उभर आया है—

> छोटे बडे सभी के मन
> आज आनन्द की लहर मे लहराये हैं।
> बच्चे-बच्चे के हृदय के अन्दर
> श्रद्धा और भक्ति के दीप जगमगाये हैं॥

बहुत कुछ सोचने के बाद मुझे तो यों लगता है कि—आचार्यश्री का जन्म-समारोह मनाने देवलोक से ये देवता उतर आये हैं।

सन्त किसी भी वर्ग, समूह या सम्प्रदाय के नही होते। उनका जीवन तो अतीव विस्तृत एव व्यापक होता है। उनके कल्याण-क्षेत्र की भी कोई सीमा नही होती। उनकी प्रत्येक प्रवृत्ति समग्र प्राणी-समूह के कल्याण हेतु प्रवृत्त होती है। उन्हे कोई वन्दे या कोई निन्दे—इसका भेद भी उनके मन को प्रभावित नही करता। इस दृष्टि से जब भी किसी सन्तजन का गुणगान किया जाता है, तो वह उस व्यक्ति का

गुणगान नहीं, उसके सन्त-जीवन का गुणगान होता है। गुणी की पूजा उसके गुणो के कारण होती है तथा पूजा का उद्देश्य होता है—वन्दना का लक्ष्य होता है गुण-ग्राहकता— कि उन गुणो का हम केवल गान करके ही न रह जाय, बल्कि उनका अनुसरण करने की ओर भी प्रवृत्त बनें।

गुणीजनों को देख'''''

सन्तजीवन विश्व मे सदा ही अनुकरणीय माना गया है और इन्ही महान् सन्तो के जीवन की महान् गरिमा से परिपूर्ण यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए एक मनीषी ने लिखा था—

साध्नोति स्वपरकार्याणि, समुचितरूपेण इति साधु ।

अर्थात् जो साधक निज के और अन्य के कल्याण के कार्यो को समुचितरूप से साधता है, वही साधु है। ऐसे महान् साधुत्व के धारक हमारे आचार्यदेव हैं, जिनका जीवन एक ओर तो आत्म-साधना के मार्ग पर अबाधगति से अग्रसर हो रहा है तो दूसरी ओर विश्व के महान् मंगल की आकाक्षा और तडप ले कर लोक-कल्याण मे प्रवृत्त हो रहा है। यही कारण कि आचार्यदेव इस वृद्धावस्था मे भी सर्वत्र पादविहार करते हुए विचरण कर रहे हैं। वे जन-जन के हृदय मे मानव-धर्म की—जीवन के पावन कर्त्तव्यो की एक ज्योति जला रहे हैं। ऐसे सन्तो के बल पर ही हमारा भारतवर्ष गौरवान्वित होता रहा है।

हमारी गौरवमय सस्कृति की आधारशिला यह रही है कि हम गुणी-जनो के गुणो को सराहते रहे हैं और अपने सामर्थ्य के अनुसार उन गुणो का अनुकरण भी करते रहे हैं। यही कारण है कि गुणग्राहकता की अक्षुण्ण परम्परा बनी रही है और हमारी सस्कृति मूलगुणो से सम्पन्न दिखाई देती रही है। भारतीय सस्कृति की प्राचीनता का यही रहस्य है।

किन्तु इस परम्परा का निर्वाह करने का सभी को अपना उत्तरदायित्व मानना चाहिए और वह उत्तरदायित्व है—सन्तो के गुणो को अपने जीवन मे भी उतारना। गुणो की सराहना करें—यह अच्छी आदत है, लेकिन सराहना के साथ ही अपने कर्त्तव्य को समाप्त हुआ समझ लें तो फिर उस आदत को बुरी भी कहनी होगी। गुणगान का मूल अभिप्राय यही होता है कि उन गुणो के मार्मिक स्वरूप को समझ कर उन्हें यथासाध्य अपने आचरण मे स्थान देने का प्रयत्न करें। ऐसा प्रयत्न दीखने मे व्यक्तिगत होता है कि प्रयत्नकर्त्ता उन गुणो को ग्रहण करके अपने ही जीवन को विकसित बनायेगा, किन्तु ऐसी वृत्ति का सामूहिक एव समाजगत प्रभाव भी अवश्य ही होगा—गुणीजन की सुवास अपने आसपास के वातावरण को अवश्य ही सौरभमय

बनायेगी। अत गुणग्रहण की भावना को आप भी सबल बनायें, जिससे व्यक्ति एव समाज दोनो का स्वस्थ निर्माण हो सके।

व्यक्ति के साथ समाज भी

व्यक्ति-व्यक्ति के निर्माण से एक तरफ सामाजिक निर्माण का धरातल तैयार होता है तो दूसरी तरफ वैसे पुष्ट सामाजिक धरातल पर चल कर व्यक्ति भी अपने निर्माण को सहज बना सकता है। जहाँ निर्माण की गति समन्वय की ऐसी सुरीली लय के साथ चलती है, वहाँ चहुँमुखी निर्माण का मार्ग स्वत ही प्रशस्त होता जाता है। ऐसे चहुँमुखी निर्माण मे निकलने वाले रचनात्मक स्वरों मे प्रस्फुटित होने वाली संस्कृति न केवल ठोस आधारशिला पर खडी होती है, अपितु चिरस्थायी भी रहती है। विश्व की विभिन्न सस्कृतियो मे ऐसी ही गौरवपूर्ण हमारी भारतीय संस्कृति है।

भारतीय सस्कृति की तुलना यदि आप अन्य देशो की सस्कृतियो से करें तो यह तथ्य और अधिक स्पष्ट हो जायेगा। जहाँ अन्य देशो की सस्कृतियो मे भौतिकवाद को बढावा दिया गया है, केवल धनप्राप्ति की लालसा दिखाई देती है, वहाँ हमारी सस्कृति व्यक्ति एव समाज के नैतिक स्तर को ऊपर उठाने की प्रेरणा देती है—मानवीय गुणो को विकसित करने हेतु प्रोत्साहित करती है। आत्म-तत्त्व की मान्यता तथा लोक-कल्याण की भावना हमारी सस्कृति की ऐसी विशेषता है जिसके सामने अन्य देशो की सस्कृतियाँ थोथी-सी लगने लगती हैं। हम जब आत्म-शान्ति, आत्म-विकास एवं आत्म-साधना के साथ प्राणी-मात्र के हितचिन्तन की बात कहते हैं तो विदेशी लोग उसे आश्चर्य से देखते हैं, क्योकि वे तो इसी तथ्य को सबसे ऊँचा मानते हैं कि चाहे कैसे भी हो—ज्यादा से ज्यादा धन कमाओ, वैभव जुटाओ और भोग-विलास मे लग जाओ। इन सस्कृतियो के कुफल भी अब सामने आने लगे हैं। अमेरिका मे सम्पन्नता की कमी नही—अधिकांश नागरिको को अधिकतम भौतिक सुविधाएँ प्राप्त हैं, फिर भी आज वहाँ के नागरिक अशान्त हैं—अपने चित्त को उद्वेलित एव दु खित मानते हैं। वे कुछ क्षणो के लिए भी शान्ति प्राप्त करना चाहते हैं जो उन्हे प्राप्त नही है। इसीलिये एक ओर वहाँ मादक द्रव्यो का प्रचार हो रहा है तो दूसरी ओर भारतीय कीर्तन एव योगपद्धति के पीछे आकर्षित हो रहे हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ अन्य भौतिकवादी सस्कृतियो की देन अशान्ति है तो हमारी सस्कृति ने सदा ही आत्मिक शान्ति का सन्देश गुंजाया है और यह आध्यात्मिक शान्ति हमारी शानदार सन्त-परम्परा की देन है। सन्तो का साधक एव परोपकारी जीवन हमारा प्रेरणा-केन्द्र है कि हम अपने जीवन को भी त्याग की ओर ले जाएँ तथा एक गुणसम्पन्न समाज की रचना करें। यही कारण है

कि भारतीय संस्कृति मे भी श्रमणसंस्कृति का अतिविशिष्ट महत्त्व माना गया है। श्रमण अर्थात् सन्त हमारे समग्र जीवन का केन्द्र रहा है। श्रमण के ही आदर्श त्यागी जीवन का समाज मे सदा प्रभाव रहा कि हम व्यक्ति के आध्यात्मिक निर्माण के साथ-साथ स्वस्थ, सम्पन्न किन्तु नैतिक समाज का निर्माण करते रहे।

श्रमण संस्कृति के दीपाधार

हमारा दर्शन, हमारी संस्कृति एव हमारी सभ्यता सन्तो की भव्य महिमा से सदैव ही मण्डित रही है। श्रमण संस्कृति के उदात्त प्रभाव के कारण हम हमेशा सन्तो की प्रगाढ भक्ति करते रहे हैं। सन्तो का गुणगान हमारे जीवन का अग बना हुआ है। सन्त के दर्शन, सन्त की सेवा, सन्त का गुणानुवाद एव सन्त का अनुकरण—यह गृहस्थ के लिए नैतिक कर्त्तव्य माना गया है। वही व्यक्ति समाज मे सम्मान का पात्र माना गया, जो सच्चे हृदय से सन्तो की भव्य महिमा को स्वीकार करता है तथा उनका अनुसरण करता है। सन्तो के लिए आज भी भक्तो के श्रद्धासिक्त हृदय मे अनायास ही इस प्रकार के विनम्र स्वर फूट पडते हैं—

मन मारा, तन वश किया किया, भरम सब दूर।
बाहर से कुछ दीखे नहीं भीतर चमके नूर॥

इन चार पक्तियो मे सन्तजीवन की अपार महिमा व्यक्त हुई हैं। सन्तो का सम्मान क्यो किया जाता है—इसका स्पष्ट उत्तर इस दोहे मे मिलता है। सन्त का सम्मान, व्यक्ति का सम्मान नही है, वह तो उसके भव्य गुणो का—कठोर साधना का सम्मान है, जो किसी भौतिक स्वार्थ के लिये नही, आत्मशान्ति एव लोकोपकार के लिये साधी जाती है। इस दोहे मे एक सच्चे सन्त का चित्र खीचा गया है कि वह अपने मन को मारता है, यानी मन को अपने वश मे कर लेना है। उसका मन अपने स्वार्थ, अपने भौतिक सुख एव अपने भोगविलास को तिलाजलि दे देता है और नियन्त्रित बन कर साधना मे जुट जाता है। उसने मन ही नही, अपने तन को भी वश मे किया है—अपने शरीर से भी अपनी ममता हटा ली है, ताकि वह अपने शरीर को कठोरतापूर्वक साधना मे जुटा सके। कठोरक्रिया की पृष्ठभूमि मे वह ज्ञान भी निर्द्वन्द्व साधना करता है—उसने अपने मन के सभी भ्रमो को दूर कर लिया है—दर्शन की स्पष्ट भूमिका पर वह ज्ञान एव क्रिया की आराधना करता है। ऐसा होता है हमारी श्रमणसंस्कृति का सन्तजीवन! इसीलिये कहा है कि सन्त बाहर से तो कृशकाय व विनम्र मुख लिये सामान्य-सा लगता है, किन्तु उसके भीतर एक अनुपम तेज चमकता है—उसकी रूह का नूर दमकता है। ऐसे सच्चे सन्त की सेवा भाग्य से ही प्राप्त हो सकती है, क्योंकि ऐसी दृष्टि समुन्नत संस्कृति की देन के विना मिलती

नही है। सन्तो की भव्य महिमा एव भक्तो की गुणग्राहक दृष्टि—दोनो मिल जाय तो फिर भला श्रेष्ठ से श्रेष्ठ सस्कृति के निर्माण को कौन-सी शक्ति अवरुद्ध बना सकती है? श्रमण सस्कृति के ये ही आधार-स्तभ उसे आज भी देदीप्यमान बनाये हुए हैं।

सन्त : सामाजिक जीवन का सिरमौर

जिस सन्तजीवन के अन्दर किसी भी प्रकार का दिखावा नही, किसी भी प्रकार का आडम्बर नही, किसी भी प्रकार की विकृति नही—बाहर के किसी प्रदर्शन मे जो विश्वास नही रखता, किन्तु जिसका साधना-सम्पन्न हृदय हमेशा आन्तरिक तेज से जगमगाता रहता है—ऐसे समुन्नत सन्तजीवन के प्रति बरबस ही बिना किसी औपचारिकता के हमारा हृदय श्रद्धा के साथ समर्पित होने लगता है। यह सन्तजीवन की अद्भुत प्रेरणा होती है।

और मैं सोचता हूँ कि आज के विशृखल वातावरण मे सन्तजीवन की कितनी महती आवश्यकता है? जब जब भी विश्व के क्षितिज पर दु खो के बादल आये हैं—कष्टो की घटाएँ छाई है और भयानक युद्धो की परिस्थितियाँ बनी है, हमारे यहाँ इन्ही सन्तो ने अपने तेजोमय जीवन मे उन घटाओ को छाटा है और उन परिस्थितियो को पाटा है। हिसा से जलते हुए हृदयो को उन्होने अहिसा के अमृत से शान्त बनाया है तथा साधनात्मक दृष्टि से एक नये मगलमय वातावरण की रचना की है। इन तथ्यो की गहराई में उतर कर आप विचार करे तो समझ में यही आएगा कि सन्त हमारे सामाजिक जीवन के सिरमौर रहे है, क्योकि गृहस्थजीवन को नैतिक बनाये रखने तथा साधकजीवन का बीजमन्त्र देने का पुनीत कार्य सन्त ही करते रहे है। इस प्रकार के सन्तो के लिये कुछ विचार काव्यभाषा में हृदय से इस प्रकार निकलना चाहते हैं—

अगर ये सत्य सयम का हृदय मे बीज ना बोते
सभी ससार-सागर मे यहाँ खाते रहे गोते
न पावन आत्मा होती, न जीवित मत्र ये होते
कभी का देश मिट जाता, जो ऐसे सन्त ना होते।

सच पूछो तो सन्त-परम्परा की आवश्यकता शाश्वत है। कल यह आवश्यकता थी, आज इसकी महती आवश्यकता है और आने वाले कल को भी इस परम्परा की उतनी ही आवश्यकता बनी रहेगी। जब तक ससार है और जीवन है, तब तक इनके कलुष को धोने के लिये सन्तजीवन के आदर्श की आवश्यकता बनी ही रहेगी।

वाहर सन्त, भीतर असन्त

यह निर्विवाद सत्य है कि अगर सच्चे सन्त हमारे यहाँ नही होते तो यह देश मिट जाता—अपनी सांस्कृतिक सम्पन्नता को खो वैठता। किन्तु इस तथ्य को दुर्भाग्य का विषय ही समझिये कि जहा विशुद्ध सन्त-परम्परा का सम्मान होता रहा है, वही सन्त के परिधान मे सन्त-जीवन को लज्जित करने वाले वहुत से इस प्रकार के विषैले तत्त्व भी यत्र-तत्र उभरने लगे है, जो कई वार भीतर ही भीतर वातावरण को विषैला वनाते रहते हैं। किन्तु ऐसे लोगो को हम सन्त-संस्कृति के अनुरूप कभी नही कह सकते है। सन्तजीवन में घुस आने वाले ऐसे तत्त्वो के प्रति पूरी सजगता की जरूरत है। जहाँ भी ऐसे तत्त्व उभर कर आते हो, उन्हे वही प्रकट कर देना चाहिये, ताकि वे भक्तजनो की श्रद्धा का दुरुपयोग करने का साहस न कर सके।

एक छोटा-सा दृष्टान्त इस सन्दर्भ में मुझे याद आ गया है। है यह दृष्टान्त कुछ हसी आने लायक, लेकिन विचार करने लायक भी है। एक वार कुछ मित्र मिलकर वन-प्रान्तर में घूमने के लिये पहुचे। अन्दर जाने पर उन्हे एक आलीशान महल दिखाई दिया, जिसके वाहर एक व्यक्ति खडा हुआ था। एक मित्र ने उस व्यक्ति से पूछा—'यह महल किसका है? इस महल का निर्माण किसने करवाया?' उस व्यक्ति ने गर्व के साथ उत्तर दिया—'तुम इस महल के सम्वन्ध में पूछना चाहते हो तो सुनो कि यह महल तो सन्यासियो का है।' सभी मित्रो को यह उत्तर अटपटा-सा लगा कि सन्यासी भी वन गये और ऐसे महल पर अपना एकाधिकार वनाये हुए है। यह कैसी विरोधी स्थिति है? मित्रमण्डली कुछ और आगे वढी तो उन्हे दिखाई दिया कि कही हाथी झूम रहे हे तो कही घोडो की कतार वधी हुई है। उसे देख कर उस व्यक्ति से मित्रो ने एक और प्रश्न किया—'महल तो सन्यासियो का है, किन्तु ये हाथी-घोडे किस के हैं?' उसने फिर उत्तर दिया—'यदि आप सुनना ही चाहते है तो ये हाथी घोडे उदासियो के हे।' कुछ दूर आगे पहुचे तो देखा कि छोटे-वडे कई वच्चे खेल रहे हैं। मित्रों की जिज्ञासा फिर वढी और उन्होने पूछा—'यह भी वताइये कि ये वाल-वच्चे किसके है?' हसी आए ऐसा उत्तर उन्हे मिला—इसमे पूछने की क्या वात है—'ये वाल-वच्चे व्रह्मचारियो के है।' वात सुन कर हँसी आ सकती है, किन्तु यह सन्त के परिधान मे सन्तजीवन को लज्जित करने वाले तत्त्वो का एक कटु सत्य है।

खरे बनें, प्रखर वनें

आज जीवन के अन्तर की गहराइयो मे उतर उन्हे स्पर्श करने की आवश्यकता है, क्योंकि यही प्रवृत्ति हमको आत्मोन्मुख वना सकती है। जो व्यक्ति आत्मोन्मुखी वन जाता है, वह अपने समग्र जीवन को खरा वना लेता है। सोने को आग मे डालते है, तव उसकी खोट जलती है और वह खरा वनता है। इसी प्रकार सन्त-

जीवन भी साधना से तप कर निखरता है, खरा बनता है। जो स्वय खरा बनता है, वह खरेपन को पहचानने भी लगता है। यह खरे बनने एव खरेपन को परखने की क्षमता जीवन की गहराइयो मे उतरने से ही उत्पन्न हो सकती है। ऐसी क्षमता प्राप्त करने की जड़े हमारी श्रमण सस्कृति मे रही हुई हैं।

हमारी श्रमणसस्कृति एक गौरवपूर्ण एव प्रेरक सस्कृति है और उसके प्रतीक श्रद्धेय आचार्यप्रवर के महान् जीवन के सम्बन्ध मे मैं और क्या कहूँ ? उस महान् आत्मा के सान्निध्य मे जब मेरी दीक्षा हुई तो मेरी आयु केवल बारह वर्ष की थी। आचार्यश्री के चरणो मे आठ महीने तक रहने का मुझे सौभाग्य मिला और मेरा प्रथम केशलुचन भी आचार्यश्री के करकमलो द्वारा अजमेर साधु-सम्मेलन के समय हुआ। दशवैकालि आदि सूत्रो का अध्ययन भी मुझे आचार्यश्री ने कराया। इस निकटतम सान्निध्य मे मैंने अनुभव किया कि आचार्यजी के हृदय मे ज्ञान की अभिवृद्धि एव क्रियाओ की शुद्धि की कितनी तड़प व लगन है ? हमारा सगठन शानदार रूप से चलता रहे। इसके लिए भी उनकी कितनी प्रेरणा है ? पदलिप्सा से दूर आचार्यश्री कई बार कहा करते हैं कि श्रावको ने यह भार उनके कधो पर डाल दिया है, वरना वे तो एक सामान्य साधु के रूप मे ही शासन की सेवा करना चाहते हैं। कितना त्यागपूर्ण सकल्प है उनका ? आचार्य जैसे महामहिम पद पर आसीन होने के बाद भी उनमें उसके प्रति कोई आसक्तिभाव नहीं—यह कितनी बड़ी बात है ?

आचार्यश्री का सघ के जीवन-निर्माण मे बहुत बडा योगदान रहा है। स्थान-स्थान पर आचार्यजी ने मानवता को प्रोत्साहित करने वाली कई रचनात्मक प्रवृत्तियो को सचालित करने मे अपनी वाणी एव सयम साधना की मर्यादा मे रह कर काम किया है। आचार्यश्री ऐसे महान् विभूति हैं, जिन्होंने जीवन की गहराइयो को स्पर्श किया है तथा अपने जीवन को सोने की तरह खरा बनाया है। वे खरेपन को परखते हैं तथा खरेपन को प्रोत्साहित करते हैं।

प्रेरक आचार्यप्रवर

आचार्यश्री के महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध मे उनकी गुणगरिमा को प्रकट करने हेतु मे एक राजस्थानी कवि की स्वर-लहरी का सहारा ले रहा हूँ—

आपा मार जगत मे बैठे, नहीं किसी से काम।
उनमे तो कुछ अन्तर नहीं, सन्त कहो या राम ॥

हमारी सस्कृति में तो गुरु को गोविन्द से बड़ा माना गया है। क्योंकि गुरु की प्रेरणा से ही गोविन्द को पाया जा सकता है—फिर सन्त और राम मे कैसा अन्तर ? विश्व में सब ओर मगल की अभिवृद्धि हो—इस दृष्टि से सन्तो के हृदय मे

कितनी व्यथा होती है—कितनी पीडा होती है—आचार्यश्री के सान्निध्य मे रह कर कोई भी इसका सजीव अनुभव ले सकता है। जो सर्वप्रकार से सन्त के गुण होने चाहिये, वे श्रमणसघ के आचार्य मे है और श्रमणसघ मे हैं—यह मैं कोई प्रशस्ति नही कर रहा हूँ, वल्कि यथार्थ का ही चित्रण कर रहा हूँ।

आचार्यप्रवर ने जिस प्रकार की साधना की है, उनकी जयन्ती मनाने के पीछे हमारा यही सकल्प होना चाहिये कि हम उनकी साधना के आदर्शो को समझें तथा ग्रहण करें। ससार को त्याग कर मुनिधर्म अपनाने की क्षमता न भी हो, तब भी श्रावक के व्रतो को ग्रहण करके आप आचार्यश्री के जीवन से आदर्शो की प्रेरणा ले सकते हैं। यदि वारह व्रतो की भी एक साथ प्रतिपालना नही कर सकते तो एक व्रत ग्रहण कर के भी उसको पालने की चेष्टा करें। ससार के अनावश्यक प्रपचो से दूर होते हुए जीवन को साधना के पथ पर आगे वढाएँ—यही उनकी जन्मजयन्ती पर आचार्यश्री को अपनी ओर से सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

महापुरुपो की जयन्तियाँ मना कर भी यदि हम रिक्त-से रह जाते हैं तो कहना चाहिये कि हम वास्तविक जागृति से वहुत दूर है। यही कहा जायेगा कि जयन्ती मना कर भी हम नींद मे ही सोये हुए है। ऐसी अवस्था मे जयन्ती मनाने का कोई महत्व नही रह जाता है। जयन्तियो के समारोह का महत्व तभी हमारे सामने उभर-कर आयगा, और हमारा हृदय पुलक उठेगा, जव हम आचार्यप्रवर जैसे महिमामय सन्त के जीवन के अनुरूप—उनके दिव्यसन्देश के अनुरूप अपने जीवन मे एक चमकती हुई रोशनी को आमन्त्रण देंगे तथा उस सन्देश को अपने जीवन मे व्यवहारिक रूप से ढालेंगे।

सन्त हृदय नवनीत-सम

सन्त को हमारे यहाँ 'तिन्नाण तारयाण' कहा गया है अर्थात् वे स्वय तिरते हैं और अपने आदर्श जीवन की प्रेरणा से सवको तारते हैं—सवके जीवन विकास का मार्ग प्रशस्त वनाते हैं। सन्तो की व्याख्या, सन्तो की गरिमा, सन्तो की महिमा और सन्तो के जीवन का आदर्श त्याग—ये सव ऐसे विपय है, जिन पर जितना गहरा विचार किया जायेगा, प्रकाश की नित्य नवीन किरणें प्रकट होती जायेंगी। गोस्वामी तुलसीदासजी ने सन्तजीवन की महिमा का वखान करते हुए कहा है कि—

सन्त-हृदय नवनीत समाना।
कहा कवि पर कह नहीं जाना॥

अर्थात् सन्तो का हृदय मक्खन के समान अति सुकोमल होता है, जो विश्व की वेदना को देख कर इस प्रकार द्रवित होता रहता है कि उस हृदय मे से लोक-कल्याण

के सिवाय अन्य किसी प्रकार का भाव उपजता ही नही है। वह सुकोमलता भी ऐसी अद्‌भुत एव अवर्णनीय होती है कि कवि स्वय अपनी असमर्थता प्रकट करते है। कवि की कल्पना को देख कर कल्पना नही, यथार्थ को सुन कर आप भी आत्म-विभोर हो जायेंगे कि कवि आगे क्या कहते हैं—

निजदु ख-ताप द्रवहि नवनीता।
परदुःख द्रवहि सो सन्त पुनीता॥

क्या सुन्दर विश्लेषण दिया है कि मक्खन तो अपनी ही पीडा मे—अपना ही ताप सहन करके पिघलता है, किन्तु सन्त तो दूसरो के दु खो को स्वय ग्रहण करते हैं, अर्थात् दूसरों के दु खो से कातर बन कर लोककल्याण का मार्ग दिखाते है। जो ऐसा करते हैं, उन्हे ही पवित्र सन्त कहा जाता है।

बैठें सन्त-जहाज

परदु खकातर, पवित्र सन्त ही दु खो से भरे विश्व मे जहाज के समान होते है। ससार-समुद्र के खतरो से अपने जीवन को बचाना है और मानवता को सफल रूप देना है तो ऐसे जहाज मे आपको बैठना ही होगा। सन्तो के जहाज मे बैठ कर आप आसानी से इस ससारसमुद्र के पार उतर सकेंगे।

महान सन्तो की वन्दना करने, उनकी गुण-गरिमा गाने तथा उनकी जयन्तियाँ मनाने का स्पष्ट लक्ष्य यही है कि आप भी कुछ न कुछ त्याग करके उनके आदर्श पर चलने के लिए सकल्पबद्ध हो जाइये। आज भी आप कोई न कोई व्रत ग्रहण करें तथा इस वृत्ति को भविष्य मे विस्तृत बनाने मे प्रयासरत हों। इस मगल अवसर पर यह प्रतिज्ञा करें कि जीवन को कर्मबन्धनो से मुक्त करने के लिए हम सन्तो के महान् सन्देशो को निष्ठापूर्वक स्वीकारेगे तथा आस्थापूर्वक उन पर आचरण करेंगे।

3

माया के वात्याचक्र

□

जैसे अन्धड निर्मल आकाश को धूलि-धूसरित कर देता है, वैसे ही माया का वात्याचक्र भी विभिन्न रूपो मे आ कर आत्मा को मलिन और अज्ञानान्धकार से आच्छादित कर देता है। सरलता ही उस मलिनता को दूर करने की एकमात्र प्रक्रिया है। जीवन मे सरलता के आते ही माया के तमाम वात्याचक्र शान्त हो जाते हैं। आइए, सत की सशक्त भाषा मे पढिये माया के वात्याचक्रो को पहचान कर उन्हें दूर करने के सरस सरल उपाय।

३

माया के वात्याचक्र

□ □

चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु !!

भगवान् हमे वह बल देना.
हम अपने मन का ध्यान, धरें ....

है क्रोध, अह मन मे भारी,
हम कैसे हैं समकित-धारी
मिट जाए मन की बीमारी,
हम अपनेपन का ध्यान धरें .....

हम शुद्ध शान्त बन जाएँ जी,
अरिहन्तदेव को ध्याएँ जी,
गुण आत्मधर्म के गाएँ जी,
हम अपनेपन का ध्यान करें ....

उपस्थित धर्मप्रिय आत्मबन्धुओ !

माताओ एव बहिनो !

असीम आस्था के साथ महाप्रभु भगवान् महावीर स्वामी एव पूज्य गुरुदेव के चरणो मे अनन्त वन्दन !

अभी अभी आप और हम गुरुदेवजी के द्वारा शास्त्र का श्रवण कर रहे थे ।

समग्र जीवन-दर्शन

प्रकृति के शत-सहस्र रूप आप प्रतिदिन देखते हैं और जो भावुक-हृदय व्यक्ति होते हैं, वे उन विविध रूपों की गहराई मे उतरते हैं। क्योंकि उन्हें उन रूपों मे अपने ही जीवन के विविध रूपों की प्रतिच्छाया दिखाई देती है। प्रकृति के विविध रूप और पुरुष के विविध रूप एक दूसरे मे घुल-मिल कर समूचे जीवन-चित्र का अकन करते हैं। प्रकृति का एक-एक रूप जैसे जीवन का एक-एक पट उघाड़ता है और वे पट सत्य के ही एक-एक पटखण्ड होते हैं, जिन खण्डो को यदि विवेक एव विधिपूर्वक जोडा जाय तो एक पूरा जीवन-दर्शन समुपस्थित हो जाता है।

एक ऐसे ही प्रकृति के रूप को आज मैं आपके सामने चित्रित कर रहा हूँ, जिसमे आप को जीवन के एक ठोस सत्य की झलक मिल सकेगी।

साफ-सुथरा आकाश

कल्पना कीजिये कि साफ-खुला आकाश आपके सामने हो—दूर क्षितिज तक नीला आकाश! कितना सुहावना दृश्य होता है? साफ आकाश अपने आप मे एक मनोरम आकर्षण होता है, क्योंकि उसके नीचे जल की निर्मलता, धरती की हरीतिमा एव वृक्ष-लताओं की पुष्पित सुन्दरता अधिकतम रूप से मनमोहक बन जाती है। निस्पन्द एव स्थिर सारा दृश्य चित्रलिखित-सा दिखाई देता है।

तो मैं यहाँ आपसे कहना चाहता हूँ कि दो क्षण के लिए जरा आप सभी इस दृश्य को दृष्टि मे रखते हुए दूसरी कल्पना कीजिए कि किसी एक कोने से उठती हुई आधी धीरे-धीरे फैल कर सारे आकाश को ढक लेती है—सारा वातावरण धूलि-धूसरित हो जाता है एव वात्याचक्रों का भीषण स्वर दिल को कंपाने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है, जैसे प्रकृति का वह मनमोहक, निर्मल एव शान्त स्वरूप समाप्त हो गया है और न जाने क्यों उसका रौद्ररूप चारों ओर छा गया है?

आप इन दोनों दृश्य की तुलना करें और दोनों के बीच सही अन्तर आकें।

निश्छल-निश्चल चित्त

मन का नील गगन भी अधिक आकर्षक रूप से निर्मल होता है, किन्तु तभी जब वह निश्छल बन जाय। निश्छल मन निर्मल होता है, जिसकी निर्मलता मे समूचा जीवन सुखद अनुभूतियों का भण्डार बन जाता है। परन्तु छलों की आंधियाँ जब तक मन के दायरों को धूलि-धूसरित बनाती रहती हैं, वह मन कभी शान्त और स्थिर नही बन पाता—अधेरे मे डूबा वह मन माया के वात्याचक्रों की भयानक ध्वनि से सदा आतंकित बना रहता है। माया के वात्याचक्र मन के नील गगन को तमसावृत बनाये रखते हैं।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंध-मोक्षयो'—अर्थात् मनुष्यो के वन्धन का कारण उनका अपना ही मन होता है तथा मुक्ति भी उसी मन के कारण होती है। मन छल-कपट से—माया से जितना दूर हटता है—एक तरह से उतना ही वह मैल से दूर हटता है। उसका मैला रूप छलरहित बनकर उजला होता जाता है। जितनी निश्छलता बढती है, उतनी ही निर्मलता भी निखरती जाती है। जो मन जितना निर्मल होगा, उतना ही वह सुस्थिर एव शान्त बनेगा। शान्ति भयमुक्ति से प्राप्त होती है। अत निर्भय मन ही शान्त बन सकता है। मन जब इस मार्ग पर चलता है तो वह मोक्ष की ओर अग्रसर होता है।

परन्तु बन्धन का कारण भी यह मन ही होता है। माया के मैल मे लिपट कर यह मन जब अपनी निर्मलता को खो देता है—छलो की आधियो के थपेडो मे प्रकाशहीन बन जाता है, तब वह अस्थिर भी हो जाता है एव अशान्त भी। क्योकि वह मन अधेरे की परतो मे अपने मूल स्वरूप को भूल कर भ्रम और शका के दलदल मे फँस जाता है एव निज के कर्त्तव्याकर्त्तव्य का भान खो देता है। ऐसी भ्रमित स्थिति मन को भय एव आतक से भीरु बना देती है। ऐसी मन स्थिति मनुष्य को हर तरह से पतन की राह पर धकेल देती है।

इस हेतु मन का सन्तुलन, सयमन एव नियमन एक आवश्यक पुरुषार्थ माना गया है। जो मन को छलो की आधियो मे भटकने से रोक देता है और उसे मोड कर संयम की सपाट सडक पर चलाने लगता है, वही अपने मन को निश्छलता की पृष्ठ-भूमि पर निर्मल बनाता हुआ मुक्ति के अखूट आनन्द को हृदयगम कर सकता है।

माया छोडें, सरलता लायें

महान् पुरुषो की वाणी सदा यथार्थ का उद्‌घोष करती रही है। मन की निर्मलता के सदर्भ मे भगवान् महावीर ने आत्मशुद्धि के गूढ रहस्य का प्रतिपादन करते हुए अपना आप्त वचन कहा है—

सोही उज्जूयभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई

अर्थात् जिसका हृदय सरल है, जिसके मन के कण-कण मे धार्मिकता, विद्वत्ता एव पवित्रता का निवास है, वही धर्म की उच्चता को प्राप्त करता है। जिस हृदय के अन्दर किसी प्रकार का छल नही, टेढापन या वर्बरता का भाव नही, वही हृदय सरल कहलाता है। आगम की भाषा मे इस टेढेपन का नाम माया है, जिसे व्यवहार मे कपट या छल कहा जाता है। आप माया का मतलब दौलत से लेते हैं। उसे वाह्य सम्पत्ति कहते हैं, किन्तु वास्तव मे छद्म, छल या दभ को ही माया कहा गया है। सम्पत्ति को माया इसलिये माना जाता है कि वह भी अधिकाशत माया की शक्ति से

उपजती है। आप अपने अनुभव से ही जानते होंगे कि बिना माया के सम्पत्ति कहाँ सचित होती है ?

सरलता की विरोधी शक्ति इस प्रकार माया होती है। माया है, वहाँ वंचना है, दंभ है, आडम्बर है, थोथा प्रदर्शन तथा असत्य का आवरण है और जहाँ यह सब कुछ है, वहाँ सरलता का निवास नहीं होता। इसीलिये भगवान् महावीर का कथन है कि धर्म का निवास उसी हृदय मे रहता है, जिस हृदय मे सरलता का निवास रहता है। जहाँ सरलता रहती है, वहाँ निर्मलता रहती है—सच्चता रहती है।

जीवन को वास्तविक विकास के मार्ग पर आगे ले जाना है तो उसका मूल उपाय यही है कि माया को त्यागिये और सरलता को लाइये। अन्धकार की शक्ति को क्षीण बनाने पर ही प्रकाश की रेखाएँ चमक सकती है।

मैं कौन हूँ ? कौन हूँ मैं ?

आइये, जरा हम विचार करें कि इस माया के वात्याचक्रो ने हमारे जीवन को कितना क्षत-विक्षत बनाया है ? अनेक जन्म बीत गये, पर भवभ्रमण का चक्र फिर भी घूम रहा है—ससार के गह्वर मे डूबी हुई आत्माएँ कीड़ो की तरह कुलबुला रही हैं और आश्चर्य की वस्तुस्थिति तो यह है कि वे उसी गटर मे झूठे आनन्द मनाती हुई अपने सही स्वरूप की पहिचान से भी परे हो गई है। मैं पूछूं कि क्या यह आत्मा की अपनी मूल अवस्था है ? क्या यह आत्मा का स्वभाव है कि वह तृष्णाजन्य दुःखो के सैलाव मे सदा डूबती उतराती रहे, माया की टेढी-मेढी घाटियो में भटकती रहे और छल-छद्मो के गहन अंधकार मे ठोकरें खाती रहे ? नहीं, यह उसका कतई स्वभाव नहीं है। यह आत्मा की अपने स्वभाव से विपरीत स्थिति है, जिसे विभाव कहते हैं। स्वभाव का अर्थ है निजी भाव और विभाव कहते हैं विपरीत भाव को। सासारिक आसक्ति विभाव को बढावा देती है, जिसे समाप्त करने पर ही स्वभाव की स्थिति मे आना सम्भव हो सकता है।

आत्मा का मूल स्वभाव है कि वह माया आदि की विकृतियो मे डूबे नही, उनसे ऊपर उठे और सद्गुणो को ग्रहण करती हुई—अपने मैल को साधना से धोती हुई विकास की उन ऊँचाइयो को छू ले, जहाँ पहुँच कर वह पूर्णत· अपने स्वभाव मे स्थित हो जाती है।

ऐसी शानदार जीवन-प्रक्रिया का हमें निर्माण करना है, जहाँ माया के विभिन्न रूपो का कुप्रभाव आत्मा एव मन को मलिन न बना सके। माया को परास्त करने के लिए स्वार्थ को परास्त करना होगा। स्वार्थ ही होता है जो मनुष्य को छल, कपट, दंभ, आडम्बर आदि माया के विविध रूपो मे उलझाता है, राग एव द्वेष की ज्वालाएँ

भडकाता है। इस प्रकार समस्त जीवन मे विकास के अवसरो को क्षीण वना देता है। स्वार्थ की साधिका होती है माया। अत स्वार्थ छोडिये, जिससे माया भी छूटेगी और माया छूटेगी तो आत्मा का मूल स्वभाव प्रकाशित होने लगेगा। इस वातावरण मे 'मैं कौन हूँ, मैं कौन हूँ' की अन्तर्ध्वनि को वलवती वनाइये, फिर देखिये कि आपके भीतरी पट एक-एक करके किम तरह खुल जाते हे और किम तरह सारा जीवन प्रकाश से ओत-प्रोत बन जाता है ?

सरलता की सीढियाँ

माया के कुटिल पजो मे पड कर मनुष्य अपने यथार्थ जीवन का गला घोटने लगता है—अन्दर और बाहर का मायावी भेद उसके मन को टूक-टूक कर देता है। अन्दर क्या है और वाहर क्या है—इसका भेद वढता जाता हे। धर्मस्थान के प्रागण मे देखेंगे तो जिस व्यक्ति का धार्मिक स्वरूप दिखाई देगा, उसी व्यक्ति को जव अपने मकान मे, अपनी दुकान मे या ऐसे अन्यत्र स्थानो पर कार्यरत देखेगे तो शायद वह आपको माया और पाखण्ड की घिनौनी प्रवृत्तियो मे घिरा हुआ दिखाई देगा।

ऐसा रूप कैसे वन जाता है, एक ही व्यक्ति का और क्यो ? माया क्या है ? जो जैसा है, उसे उससे दूसरे रूप मे देखना, दिखाना और समझाना। मायावी भेद का अर्थ है—सत्य को छिपाना। सत्य को छिपाने का सदा ही कोई न कोई दुर्लक्ष्य होता है। जिस जीवन मे दुर्लक्ष्यो की प्रवलता हो, वह भला उन्नति की राह पर कैसे चल सकता है ? माया दूर होती है, तभी वस्तु को उसके यथावत् रूप मे देखने की प्रवृत्ति पनपती है। जो जैसा है—वैसा ही देखा जाय और वैसा ही दिखाया व समझाया जाय, यानी सत्य का सम्मान किया जाय—सत्य को अपने विचार एव आचार मे प्रतिष्ठित किया जाय। सत्य जव प्रतिष्ठित होता है तो सरलता की शीतलता फैलती है।

अन्दर-बाहर के मायावी भेदो मे भ्रमित वन कर मनुष्य अपने जीवन मे कैसे-कैसे घिनौने तथ्यो को उभारता है —वह स्थिति उसकी दयनीयता की ही परिचायक है। किन्तु हँसी तो तव आती है, जव व्यक्ति मायावी भेदो की वास्तविकता को जान कर भी उन्हे अपने जीवन से लिपटा कर आनन्द प्राप्त करने का स्वप्न देखता है। आनन्द क्या यो ही मिल जायेगा ? आगमो के पृष्ठो पर अकित है कि निरन्तर सरलता के सोपानो पर चढते जाइये और उन ऊँचाइयो के अन्तराल से ही सच्चे आनन्द की अनुभूति हो मकेगी। मैं इसी भाव को अपनी कविता में रखता हूँ—

हुआ हजारो सत्य का, एक कपट से नाश।
'कमल' न आने दीजिये, छल को अपने पास॥

यह एक कठोर वास्तविकता है कि माया का कुप्रभाव सत्य की हत्या कर देता है। माया हृदय की सरलता का नाश करती है और सरलता एव सत्य सहगामी होते है।

प्रकाश सत्य का : पुष्टि सत्य की

जीवन के महान् सत्य का—जीवन की महान् अवस्था का इसी मायाजाल में फँस कर विनाश किया जाता है। जब सत्य का विनाश कर दिया तो प्रकाश का ही विनाश हो गया क्योकि सत्य स्वय प्रकाश होता है। आत्मा के मूल स्वभाव की दृष्टि मे देखा जाय तो इसकी सत्य मे परिपूर्ण अवस्था थी—यह आत्मा सरलता से भी सम्पन्न थी तो पवित्रता के आनन्द से ओत-प्रोत भी। परन्तु माया के जाल में गिर कर इस आत्मा ने अपने रूप-स्वरूप को कैसे विकृत बना डाला—इसका विश्लेषण कवि के स्वरो मे ही समझिये—

सत्य सरल था, किन्तु उसे परिभाषाओ ने जटिल कर दिया,
हृदय विमल था, किन्तु उसे अभिलाषाओ ने कुटिल कर दिया।
वस्त्र धवल था, किन्तु उसे प्रत्याशाओ ने कपिल कर दिया,
नर निर्मल था, किन्तु उसे तृष्णाओ ने तरल कर दिया।
मन अविचल था, किन्तु उसे भ्रमणाओ ने चचल कर दिया,
तर्क सरल था, किन्तु उसे कुण्ठाओ ने जटिल कर दिया।

जीवन के मौलिक स्वरूप मे किसी भी प्रकार का व्यवधान नही था, किसी भी प्रकार का असत्यभरा विकल्प नही था, एव अशान्ति भी व्याप्त नही थी, किन्तु व्यक्ति के अनावश्यक विकल्पो एव स्वार्थी दृष्टिकोणो ने माया का मकडी-जाल रचा और वह अपने ही जाल मे खुद फसता चला गया। ऐसे व्यक्तियो मे से जिसका विवेक कभी जाग्रत होता है, वह अपनी इस दयनीय अवस्था पर पश्चात्ताप करता है और उस जाल से निकलने का सकल्प ले कर सघर्ष मे जुट जाता है। परन्तु ऐसे अनेक व्यक्ति होते हैं जो अपनी इस हीनावस्था को समझने मे भी अक्षम बने हुए हैं और उस जाल के झूठे सुख को सच्चा सुख मान कर चलते हैं। किन्तु इन सभी प्रकार के व्यक्तियो को भगवान् महावीर का उदघोष सुनाना है कि वे चेतें, जागें और माया के जाल को तोड कर सरलता के सुखद स्पर्श से अपने को आह्लादित बनाएँ।

महावीर ने लक्ष्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि माया-कपट को आधार बना कर व्यक्ति न केवल व्यवहार के क्षेत्र मे ही अविश्वास का पात्र बनता है, बल्कि आध्यात्मिक क्षेत्र मे तो माया-कपट को आधार बना कर वह भयकर रूप से विश्वास-घातक कहलाता है। भगवान् मल्लिनाथ का पूर्वभव इस तथ्य का प्रमाण है। पूर्वभव

मे वे एक साधु थे तथा अपने साथी साधुओ के साथ साधक-जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी साधना मे तपस्या का सर्वोपरि स्थान था। तपस्या का लक्ष्य था—कर्म-मल से मुक्ति तथा जीवनशुद्धि। इस दृष्टि से सभी साथ-साथ तपस्या कर रहे थे, किन्तु मल्लिनाथजी के जीव ने तपस्या करने मे भी कपट का आचरण शुरू कर दिया—इस विषमभाव से कि वे अपने साथियो से बढकर फल प्राप्त कर सके। इस कपटाचरण का उन्हे ही फल भोगना पडा कि उन्हे स्त्रीलिंग प्राप्त हुआ। उत्कृष्ट भावनाओ एव विशुद्ध क्रियाओ के परिणामस्वरूप उन्हे तीर्थंकर नामकर्म का बध तो हुआ, परन्तु एक कपट ने उन्हे नारीरूप मे परिवर्तित कर दिया।

तात्पर्य यह है कि आत्मविकास के हेतु सरलता सदा ही ग्राह्य एव साध्य समझी जानी चाहिए। क्या सासारिक व्यवहार मे और क्या आध्यात्मिक क्षेत्र मे सर्वत्र, सरलता रहे। माया दुराचरण है और वह कही भी आचरण मे लाई जाय—दुराचरण के रूप मे ही रहेगी। सरलता ही ऐसी वृत्ति है जो एक ओर इसके साधक को निर्मल, निर्भय तथा निर्द्वन्द्व बनाती है तो दूसरी ओर वही सत्य को पुष्ट एव प्रकाशित करती है।

आत्मालोचना के तट पर

प्रायश्चित्त एव आलोचना आत्म-शुद्धि की क्रियाएँ मानी गई हैं, जिनका अभिप्राय यह है कि अपने पूर्व-मायाचार को दुर्गुण के रूप मे समझें तथा उसे दुर्गुण मान कर उसके लिए प्रायश्चित्त करें और आत्मालोचना करें कि वह ऐसे आचरण की पुनरावृत्ति नही करेगा। अब ऐसी शुद्ध क्रियाओ मे भी अगर कोई कपट का व्यवहार करे तो अत्यन्त जघन्यदृष्टि से देखा गया है। कवि ने ऐसी कुटिल वृत्ति पर अपना अभिमत इस रूप मे प्रकट किया है—

जो माया करे, उसे रोना पडेगा
रोना पडेगा, दुख ढोना पड़ेगा, नारी होना पडेगा।
पापो का प्रेमी माया करेगा
प्रपंचो से वह तो जरा न डरेगा
कहेगा सही, किन्तु करेगा नहीं
उसको पाखड ढोना पडेगा ... रोना पडेगा।

व्यवहार के क्षेत्र मे भी मायाचार का फल बहुत कडवा माना गया है। किन्तु प्रायश्चित्त एव आलोचना के सदर्भ मे, यानी आध्यात्मिक क्षेत्र मे यदि किसी भी प्रकार से माया का आचरण किया जायगा, उसे वास्तव मे बहुत रोना पडेगा और जन्म-जन्मान्तर तक रोना पडेगा।

भगवान् महावीर ने व्यवहारसूत्र मे एक बहुत ही गभीर बात कही है। कल्पना कीजिये कि एक साधक है, छद्मस्थ है और साधना के मार्ग पर चल रहा है। इस प्रक्रिया मे जाने-अनजाने कोई दोष लग सकते हैं और उनके निवारण के लिये महावीर ने प्रायश्चित्त एव आलोचना के उपाय बताये हैं। ये उपाय रोजाना दिन-रात के, अष्टमी-चतुर्दशी के या सवत्सरी के प्रतिक्रमण के समय आज भी प्रयोग मे लाये जाते हैं—उनके साथ वास्तविक भावना का कितना अश होता है, यह तो सम्बन्धित व्यक्ति ही जाने—किन्तु सच्ची आलोचना वही होती है, जिसमे निश्छल रूप से अपने पापो व दुष्कृत्यो को सार्वजनिक रूप से प्रकाशित कर दिया जाय। यह व्यवहार-सूत्र की बात है। होती है ऐसी विशुद्ध आलोचना या उसमें भी माया मिली रहती है? पाप का प्रकाशन न्यूनाधिक भी होता है या नही? इस पर भी विचार करना पडेगा। उस गाथा का निम्न हिन्दी रूपान्तर इस दृष्टि से पठनीय है—

कपट-सहित आलोचना, जो करता इन्सान।
उसको दुगुने दण्ड का करता शास्त्र विधान॥

प्रायश्चित्त एव आलोचना के सन्दर्भ में किसी भी प्रकार से माया का कपट के आचरण को पाखण्ड की सज्ञा दी गई है। सरलता के जीवन में भी सरलता नही आयेगी तो फिर वह कब आयेगी!

रामायण का एक जीवन्त पृष्ठ

सरलता कितनी और माया कितनी है? इसकी तुला पर, यदि वर्तमान को रखें तो आज के जीवन को देख कर सम्भवतः बडी निराशा होगी, तितिक्षा जागेगी और ग्लानि पैदा होगी।

वर्तमान की स्थिति वास्तव में गम्भीरतापूर्वक विचारणीय है कि एक ओर तो लम्बी-लम्बी बाते की जाती हैं भगवान् से मिलने की, सत्य मे साक्षात्कार करने की और आदर्श आचरण को स्थापित करने की, किन्तु दूसरी ओर आन्तरिक विकृतियो का दृश्य बडा ही भयावह होता है। यह ऊपर का जो झूठा प्रदर्शन है—वही माया है, कपट है, दम्भ है, आडम्बर है और पाखण्ड है। अधिकाश अशो में वर्तमान को पाखण्ड-युग कहा जा सकता है। बाहरी सफाई और सजावट का तो पूरा ध्यान रखा जाता है, लेकिन अन्तरग में कितना दम्भ और पाखण्ड फैल रहा है—इसका भी क्या कभी सच्चा आकडा निकाला है?

वर्तमान की गुत्थियाँ उलझ-उलझ कर इस तरह चारो ओर फैली हुई हैं कि एक बार तो कठोर साधक का मन भी डगमगा जाय, उनको सुलझा पाने की सम्भावना से। ससार मे गृहस्थ दभी है तो आध्यात्मिक क्षेत्र मे साधक भी दभ की साधना कर रहा

है। फिर भी ऐसा साधक विकास की ऊँचाइयो को छू लेना चाहता है। ऐसी मायावी मन स्थिति की उपमा पगडी से दी जाती है कि पगडी के एक-एक पेच मे जितने आटे (टेढापन) होते हैं, यदि वैसी कुटिलाई कोई व्यक्ति अपने जीवन के विचार एव व्यवहार मे समा ले तो क्या उसका उद्धार आसान रह जायगा ?

इस सन्दर्भ मे मैं रामायण का एक ज्योतिर्मय पृष्ठ प्रस्तुत कर रहा हूँ। वनवास के लिए गमन के वाद राम, लक्ष्मण और सीता वन मे घूम रहे थे। यह उस समय का चित्र है, जव वन मे आगे वढते हुए सवसे आगे राम चल रहे थे, सवसे पीछे चल रहे थे लक्ष्मण तथा दोनो के वीच मे सीता चल रही थी। इस चित्र का अकन महाकवि तुलसी ने अपनी पैनी दृष्टि से यो किया कि

सीता की गति लागै ऐसे।
जीव ब्रह्म विच माया जैसे ॥

सन्त तुलसीदासजी ने तीनो की गति को किस रूप मे आध्यात्मिक दृष्टि दी है ? राम ब्रह्म है और लक्ष्मण जीव और दोनो के वीच चलने वाली सीता को उन्होंने माया के रूप मे देखा—कितना गहरा तथ्य उन्होंने इस प्रकार अकित किया है।

जैन दर्शन ने मूल रूप मे आत्मा और परमात्मा की शक्ति एक-सी मानी है। इस ससार में जो कर्ममल से युक्त है, वह आत्मा है और जिस आत्मा ने उस मैल को सम्पूर्णतया धो कर परमपद प्राप्त कर लिया, उसे परमात्मा कहा गया। आत्मा और परमात्मा के वीच का अन्तर है माया का—कर्मो की माया की। कर्मों की माया है तो आत्मा ससार मे भटक रही है और इस माया के हटते ही आत्मा परमात्मा वन जायेगी। माया को हटाइये और अपने आपको परमात्मा मे रूपान्तरित कर लीजिए, जैसा कि कवि कह रहा है—

लक्ष्मण आत्मा, राम परमात्मा,
वीच माया-सम सीता जान।
तेरा तू ही खुद भगवान्।
वन्धनो को तोड दे, जीवन-किश्ती मोड दे,
जाग जाग अरे नादान।
तेरा तू ही खुद भगवान् ॥

वर्तमान की जितनी गुत्थियाँ सर्वक्षेत्रो मे आपको दिखाई देती है, उन सव के मूल मे इसी सत्यसहारिणी, सरलता-नाशिनी माया की ही माया मिलेगी। इसके घातक रूपो पर गहरा विचार करें और इसके कुटिल वात्याचक्रो से अपनी प्रगति-रेखा को मुक्त वनायें।

मन बने, दर्पण दुनिया का

जब अपने मन को आप माया के वात्याचक्रो मे मुक्त करने की दिशा मे कठिन साधना करेंगे तो दुर्लक्ष्यो, दुर्गुणो एव स्वार्थान्धता की धूल छंटने लगेगी—समग्र वातावरण मे निर्मलता का एक नया निखार आने लगेगा। व्यक्ति अपने हृदय की वक्रता का जितना अधिक प्रतिकार करेगा, उतनी ही अधिक सरलता का सचार उसके विचार, वचन एव कर्म मे होने लगेगा।

सिद्धान्तरूप मे यह प्रक्रिया एक सत्य है और हम इसे सत्य के रूप मे जानते व मानते भी हैं, किन्तु क्या इतने मात्र से हमारे मन की भीतरी तहो मे समाई हुई माया नष्ट हो जायगी और उसके स्थान पर क्या सरलता व्याप्त हो जायगी? इस पर एक मेवाडी भाषा के कवि का विचार जानिये—

सांच काई है, पतो ही नी चाले,
दीखे वो तो सगलो कपट ही कपट है।
केवाने तो घणी घणी वातां केवे घणा घणा मनख,
पण चारू मेर छल नै पाखंड री भपट ही भपट है।
सुखां रो वगीचो खिले नी तो क्यान खिले,
आज तो सब दूर आग की लपट ही लपट है।

सरलता और सत्य की आराधना मे इन लपटो से न सिर्फ अपने आपको ही बचाना होगा, वल्कि स्वय वच कर दुनिया को भी बचाना होगा। आपका मन निर्मल हो कर ऐसा नील गगन हो जाय कि वह दुनिया को दर्पण का काम दे। दुनिया आपके मन मे झांके और उसे उसमे अपने आगे बढने की कामयाब रात दिखाई दे। एक शायर ने कहा—

दिल के दरपन मे छिपी है यार की तस्वीर वो,
जब जरा गर्दन झुकाई, देख ली तस्वीर को।

वह तस्वीर है परमात्मा की—जिसके रग अपनी यह आत्मा ही भरेगी। माया आदि विकृतियो की कालिख को धो-पोंछ कर सरलता, निर्मलता और सत्य के रग भरे जायेंगे कि वह सुरगी तस्वीर परमात्मा की बन जायेगी—आत्मा ही तब परमात्मा हो जायेगी—आवश्यकता है केवल अपनी दृष्टि को मोडने की। □

4

विपन्नता से दूर : सम्पन्नता से भरपूर

□ □

आत्मा पारमार्थिक भावो के अभाव मे पद-पद पर आध्यात्मिक सम्पन्नता की रिक्तता का अनुभव करके निरन्तर पीडित होती रहती है। रिक्तता की स्थिति मे आत्मा चन्द्रमा की निर्मलता, सूर्य की उज्ज्वलता और समुद्र की गम्भीरता नही प्राप्त कर पाती, जबकि स्वरूपरमणता मे पुरुषार्थ करने पर वह चन्द्र से भी निर्मल, सूर्य से बढकर उज्ज्वल और समुद्र से भी बढकर गभीर बन सकती है। परन्तु आत्मा ऐसी पूर्णसम्पन्नता की स्थिति तभी प्राप्त कर सकेगी, जब उसमे स्पष्ट प्रतीति होगी और वह भौतिकता के बीहड मे भटकते हुए मन को वहाँ से हटा कर आध्यात्मिक उद्यान मे लगा देगी।

आत्मा को विपन्नता से दूर करने और सम्पन्नता मे भरपूर बनाने के लिए प्रस्तुत प्रवचन को ध्यान से पढ़िए ···

४

विपन्नता से दूर : सम्पन्नता से भरपूर

□ □
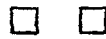
उपलब्धि, पारमार्थिकता की

अभी-अभी महामहिम गुरुदेव आप सबको शास्त्र का श्रवण करा रहे थे और मैं सोचता हूँ कि यह शास्त्र का श्रवण जीवन मे बहुत बडी शक्ति एव ज्योति प्रदान करता है। शास्त्रो के श्रवण, अध्ययन तथा चिन्तन का मूल अभिप्राय यह है कि आत्मा पारमार्थिक भाव की उपलब्धि करे। पारमार्थिक भाव की उपलब्धि के बिना आत्मा की विचारणा मे गूढ विश्वास नही जागता तो उसके आचरण मे सुदृढ आस्था जन्म नही लेती। इस भाव के अभाव मे कदम-कदम पर जीवन मे एक रिक्तता का अनुभव होता रहता है। पारमार्थिक भाव से दूर रहने वाले व्यक्ति के अपने जीवन मे सदा ही वितृष्णा, वेदना एव पीडा का क्रन्दन मचा रहता है।

वास्तविक सपन्नता

आप कल्पना कीजिये कि एक व्यक्ति विश्व की भौतिक शक्तियो से समृद्ध तो है, किन्तु उसके हृदय मे पारमार्थिक भाव का अभाव है तो क्या उसके जीवन मे वास्तविक सम्पन्नता आ सकेगी ? उसे तो रिक्तता का ही कटु अनुभव होता रहेगा। वह उस अभाव मे ग्रस्त एव त्रस्त-सा ही दिखाई देगा। हमारे विचारको का मानना है कि अभाव जीवन की वास्तविक अवस्था नही है—रिक्तता उसमे कभी सच्चा सुख

पैदा नही होने देती। एक विकासशील जीवन मे अभाव और रिक्तता का कोई औचित्य नही माना जा सकता है।

जीवन की वास्तविक सम्पन्नता पारमार्थिक भाव के विकास से ही सभव हो सकती है, जिसकी दिशा है आध्यात्मिकता की दिशा। आध्यात्मिक दर्शन का जो सागर है, उसमे आत्मा जितने गहरे गोते लगायगी—उतने ही मूल्यवान मोती वह वाहर निकाल सकेगी और ऐसे मोती ही भव्य आत्मा का सच्चा शृङ्गार वन सकते हैं। आत्मीय गुणो के ऐसे मूल्यवान मोतियो से ही जीवन की वास्तविक सम्पन्नता प्रकट होती है। यही सम्पन्नता उस समय परिपूर्ण अवस्था को प्राप्त होती है, जब सुसम्पन्न आत्मा अपने क्रमिक विकास से परमात्मपद का वरण कर लेती है।

रिक्तता भरें

इस सम्पन्नता की खोज मे जव आप निकलेंगे तो जरूरी है कि पहले आप अपनी वर्तमान विपन्नता के कारणो को जान लें, क्योकि वर्तमान विपन्नता को मिटाये विना—वर्तमान रिक्तता को भरे विना सम्पन्नता प्राप्न करने का मार्ग मिल नही सकेगा। वर्तमान विपन्नता का मूल कारण यही है कि ससारी आत्माएँ कपाय, विभाव एव अभाव से परिपूर्ण हैं—तो अविवेक व अज्ञान से भी ओतप्रोत हैं। इस कारण उनकी मौलिक शक्तियाँ दवी हुई हैं। अपने मूल रूप मे जो आत्मा शुद्ध, बुद्ध और अविनाशी है एव अनन्त शक्ति की धारिणी है, वही विकारो के मैल से लिप्न वन कर शक्तिहीन एव निष्क्रिय वनी हुई है, अभावग्रस्तता से दयनीय दिखाई दे रही है—यही इसकी घोर विपन्नता का मूल कारण है। इस विपन्नता को दूर करने का जब ज्ञानदृष्टि से सत्य प्रयास किया जायगा, तभी आध्यात्मिक सम्पन्नता का उद्गम प्रारम्भ हो सकेगा।

अधिक निर्मल, अधिक उज्ज्वल, अधिक गम्भीर

आत्मिक सम्पन्नता के कुछ शिखर मैं आपको गिनाऊँ। आप लोगो का ध्यान रहता है या नही, किन्तु प्रतिदिन प्रवचन के प्रारम्भ मे 'लोगस्स' के पाठ से तीर्थंकर-देव की जो स्तुति की जाती है, जिसमे उपर्युक्त भाव की एक गाथा है और उस गाथा का मैं प्रतिदिन उच्चारण करता हूँ। वह गाथा वहुत महत्वपूर्ण है, जो इस प्रकार है—

चंदेसु निम्मलयरा,
आइच्चेसु अहिय पयासयरा।
सागरवर— गभीरा,
सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु॥

अर्थात्—जो चन्द्र से भी अधिक निर्मल हो गये हैं, सूर्य से भी अधिक प्रकाश-पुंज बन गये हैं, तथा सागर से भी अधिक गम्भीर रूप जिनका ढल गया है—ऐसे सिद्ध भगवान् मुझे भी सिद्धि प्रदान करें। सिद्धस्वरूप आत्मा का सर्वोच्च विकास माना गया है—आत्मिक सम्पन्नता का यह चरम पद है।

चरम पद तो सर्वोच्च लक्ष्य होता है, किन्तु यह नही होता कि चरम लक्ष्य की प्राप्ति एक साथ ही हो जाय। लक्ष्य तक पहुँचने के लिये तो लम्बी यात्रा पूरी करनी होती है, लेकिन यात्रा तभी पूरी होगी, जब वह कही से भी शुरू तो कर दी जाय। वह यात्रा अपने जीवन मे शुरू भी हुई है या कि नही—यह प्रत्येक व्यक्ति के लिये अपने अन्दर झाकने एव अन्दर का लेखा-जोखा करने का विषय है। अन्तरावलोकन के बाद ज्यो ही आत्मविश्वास के साथ यह यात्रा प्रारम्भ कर दी जायगी—फिर गति कैसी भी हो—लक्ष्य की ओर उन्मुख होते जाने की स्थिति तो उत्पन्न हो ही जायगी। उत्साह जितना अधिक होगा, विवेक जितना सतर्क रहेगा एव कर्मठता जितनी क्रियाशील बनेगी— उतनी ही गति अधिक शीघ्र—अधिक उग्र बनती जायगी। ऐसी गति से प्रगति त्वरित बन जायगी और त्वरित प्रगति लक्ष्य के निकटतर पहुँचाती जायगी।

प्रश्न यही है कि ऐसी निर्मलता, तेजस्विता एव गभीरता के लक्ष्य के प्रति लौ लगा कर वर्तमान विपन्नता से सघर्ष करने के लिये कमर कस ली जाय। विपन्नता ज्यो ज्यो कटती जायगी, सम्पन्नता का प्रादुर्भाव होता जायगा।

अन्तस् अगड़ाई ले

चन्द्र से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और सागर से भी अधिक गभीर बनना अतश्चेतना की जागृति पर निर्भर करता है। कभी विभाव मे—अज्ञान की असज्ञा मे कोई आत्मा अपने आपको ऐसी निर्मल, तेजस्वी या गभीर समझने लग जाती है अथवा वैसा अपने आपको बताने लगती है—यह उसका मिथ्याभास होता है। हमारा दर्शन आध्यात्मवाद मे विश्वास रखता है—आत्मा की पवित्रता एव सौम्य शक्तियो मे विश्वास रखता है। जिसका अर्थ है कि आन्तरिक चेतना ज्यो ज्यो अधिकाधिक जागृत होती जाती है त्यो-त्यो आत्मा का स्वरूप भी निखरता जाता है तथा वह अपने निज स्वभाव मे प्रतिष्ठित होती जाती है। यह प्रतिष्ठा जब परिपक्व बनती है, तभी कहा जाता है कि इस भव्य आत्मा ने इस प्रकार की उच्च निर्मलता, तेजस्विता एव गभीरता प्राप्त कर ली है। अत हमारा यह दर्शन उस विभाव के पर्दे को दूर हटाने के लिये प्रेरणा का सन्देश देता है, ताकि आत्मा स्वभाव मे स्थित हो।

उसे चन्द्र से अधिक निर्मलता प्राप्त हो, उसके लिये कवि के शब्दो मे चन्द्रमा की प्रेरणा को सुनिये—

सौम्य शशि को देखता नर,
किन्तु शशि की प्रेरणा है।
मुझसे तो निर्मल, तुम्हारी,
ऐ मनुज निज चेतना है।
देख आत्म-सुधाश मे,
सम सौम्य रस की धार झरती।
प्रकृति की अनुपम प्रेरणाएँ,
सुन तेरा आह्वान करती।
सुप्त मानव की समझ मे,
जागृति का ज्ञान भरती।

व्यक्ति यदि जागृति की दृष्टि से देखे तो उसे शशि से भी फूटती हुई प्रेरणाएँ समझ मे आ जायेगी। दूज का चाँद बढता हुआ चाँद माना जाता है और दुनियाँ चाव से उसके दर्शन करती है। ऐसा क्यो ? इसका अर्थ है प्रगति की पूजा। जो आगे बढता है। उसका सम्मान किया जाता है। दूज के चाँद का यही मूक सन्देश है कि मेरी तरह प्रगति-पथ के यात्री बनोगे तो ससार तुम्हारे भी दर्शन कर हर्ष मनायेगा। अध्यात्म की जिन महान् शक्तियो को हमने नकार दिया है, उन्ही शक्तियो को समझने के लिये जैसे चाँद सकेत करता है—ऐ मनुष्य ! मुझसे तो अधिक निर्मल तेरी अपनी चेतना है। क्या समझा आपने ? चाँद से भी अधिक निर्मल, पवित्र एव सौम्य आपकी अपनी स्वय की अन्तश्चेतना है। आप सोचते होगे कि हमे तो ऐसा प्रतीत नही होता, किन्तु ऐसा प्रतीत होना स्वय प्रतीति का प्रश्न है कि वह कितनी समुन्नत है ?

पुलक-प्रतीति

यही प्रतीति—यही चेतना-यही अन्तरतम को देख लेने वाली दृष्टि जब पुष्ट बन कर पुलकित हो उठती है तो वैसी प्रतीति सूर्य के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशित हो उठती है। सच पूछें तो सूर्य के प्रकाश से चैतन्यतत्त्व के प्रकाश का महत्त्व अधिकाधिक होता है। आत्मा का स्वरूप सूर्य से अधिक तेजस्वी होता है, जो परमात्मा के स्वरूप मे ढलता है। यह स्वरूप कर्मो मे बधी हुई—कषाय से रगी हुई आत्मा का नही होता। कर्मबद्ध आत्मा का मूलस्वरूप कर्म-मल से ढक जाने के कारण उसकी निर्मलता, तेजस्विता एव गभीरता अस्तित्वहीन हो जाती है—ऊपर का मैल ही मुख्य बन जाता है। कर्मबद्ध आत्मा मलिनस्वरूपी हो जाती है—इसी कारण वैसी आत्मा को सूर्य अधिक तेजस्वी दिखाई देता है, वरना मूल रूप मे आत्मा का प्रकाश

तो सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होता है। कर्ममुक्त आत्मा का ऐसा ही दिव्य स्वरूप निखर उठता है।

अपने तेजोमय स्वरूप से विस्मृत बनी हुई आत्मा सूर्य की तेजस्विता को अधिक मान कर सूर्य की पूजा करती है—उस पर जल चढाती है, किन्तु एक कवि की भाषा मे जैसे सूर्य पूजा करने वाले से कहता है—"अयि आत्मा, तू मेरे तेज को महान् मान कर मेरी पूजा-अर्चना कर रही है, किन्तु यदि तू निज स्वरूप को पहिचान ले और प्राप्त कर ले तो तुझे प्रतीति हो जायगी कि तेरा अपना स्वरूप मुझसे भी अधिक प्रकाशमान है। काव्य की पक्तिया इस तरह हैं—

कह रहा है मूक रवि, क्यो,
तू मेरा पूजन करे रे।
पुष्पकलियाँ जल चढा कर,
क्यो मेरा अर्चन करे रे?
तू स्वय है ज्योतिमय,
वह ज्योति सारा तमस हरती—
सुप्त मानव की समझ मे,
जागृति का ज्ञान भरती।

कवि की प्रेरणा कितनी सुन्दर है, जो कहना चाहता है कि बाहर का सूर्य क्या है—असली सूर्य तो तू स्वय है। कर्ममुक्त आत्मा के तेज के सामने सूर्य का तेज क्या महत्व रखता है? कर्ममुक्त आत्मा की प्रतीति अत्यन्त वास्तविक होने से पूर्णतया पुलकित होती है और प्रकाश की तरलता मे चार चाँद लगाती है।

प्रतीति की परख

प्रतीति, चेतना या कि अन्तर्दृष्टि की परख यदि परिपक्व न हो तो आत्म-वचना की स्थिति पैदा हो जाती है। हम पश्चिम दिशा मे जा रहे है और प्रतीति बैठ जाय कि पूर्व दिशा मे जा रहे है तो यह विपरीत प्रतीति पूरी आत्मविकास की दिशा को ही गलत मोड दे देती है। इस कारण इस प्रतीति की सही परख बहुत आवश्यक होती है।

कसौटी स्वभाव की, विभाव की

इस परख के लिए कसौटी बनाई जानी चाहिये स्वभाव एव विभाव की स्थितियों को। आत्मा जब स्वभाव मे रमण करे—अपने मूल स्वरूप को प्राप्त करने मे यत्नशील बने, तब उस धरातल पर किसी विषय मे जो प्रतीति होगी—चेतना

जिस तरह का मोड लेगी, उसका सम्बन्ध स्वभाव से होगा । विभाव स्वभाव की विपरीत स्थिति का नाम है। विभाव की अवस्था तव होती है, जब आत्मा पर-द्रव्यो मे रमण करती है, किन्तु मिथ्यात्व या भ्रान्ति के कारण ऐसा समझती है कि वह अपने अन्तर्भाव पर चल रही है। यह विपरीत प्रतीति आत्म-वचना की अवस्था होती है।

ऐसी भ्रान्तिपूर्ण एव अनिश्चित स्थिति मे आत्मा न इधर की रहती है, न उधर की। दिशा-स्पष्टता के अभाव मे आत्मा की प्रगति ही अवरुद्ध नही बनती, वल्कि वह अपनी हानि भी कर वैठती है। इस प्रसग की एक छोटी सी कहानी याद आ गई है। एक दामाद अपने ससुराल पहुचे। वडे दिनो वाद दामाद आये थे, सो उनके आतिथ्य मे खूव घी डाल कर दाल का हलुआ वनाया गया। घी इतना था कि दामाद ने कौर उठाया तो घी हथेली से रिस कर कोहनी तक पहुँच गया। दामाद ने सोचा कि हाथ का कौर तो फिर खा लूंगा—पहले इस रिसते हुए घी को चाट लूँ। अत कौर समेत हथेली को ऊपर उठा कर कोहनी के घी को वे चाटने लगे। ऊपर वैठा कौआ भला इस सुअवसर को कैसे चूक सकता था? उसने झपट कर हथेली पर चोच मारी और हाथ का कौर छीन कर ले गया। अफसोस से दामादजी ऊपर देखने लगे। तव तक दूर खडा कुत्ता तेजी से झपटा और थाली का हलुआ साफ कर गया। दामादजी की इस अटपटी हालत पर एक शेर भी याद आ गया है—

न इधर के रहे, न उधर के रहे
न खुदा ही मिला, न विसाले सनम।

अभिप्राय यह है कि अस्पष्ट प्रतीति अथवा आत्मवचना की स्थिति वडी भ्रान्तिमूलक होती है। और यह भ्रान्ति पैदा होती अथवा पनपती है स्वभाव एव विभाव की कसौटी को ठीक मे न समझने के कारण। निजभाव कौन-सा है और परभाव कौन-सा है—इसे आत्मा को भलीभाँति पहिचानना सीखना चाहिए। यह कसौटी अगर सही वन गई तो प्रतीति की परख भी सही ही होगी।

कर्ममुक्त आत्मा

सही प्रतीति अर्थात् जागृत-चेतना आत्मा को सही मार्ग पर चलाती है और गति सम्यक् होने पर आत्मा अपने लक्ष्य तक पहुँच जाती है। कर्ममुक्त आत्मा की निर्मलता एव तेजस्विता ही अनुपम नही होती, वल्कि उसकी गम्भीरता भी इतनी गहरी होती है कि सागर की गहराई भी उस आत्मा के समक्ष उथली हो जाती है।

'सागर-वर-गम्भीरा'—यह एक शुद्ध, बुद्ध, पारमार्थिक भाव से ओतप्रोत स्थिति का चित्रण है कि आत्मा अपने विशुद्ध, उत्कृष्ट, अविकारी एव अविनाशी स्वरूप

को प्राप्त कर परमात्मा का स्वरूप ग्रहण कर लेती है। उसके सामने चन्द्रमा मैला दीखता है, सूर्य का तेज फीका पड जाता है तो सागर भी उथला बन जाता है। चन्द्र एव सूर्य की तरह सागर का सन्देश भी कवि की भाषा मे सुनिये—

लहराता सिन्धु कहे रे,
क्यो तेरा आश्चर्य मुझ पे ?
मुझसे तो लाखों गुना अविचल,
अतल गाम्भीर्य तुझ मे।
गुण-मौक्तिकों से भृत अरे क्यो,
दीनता तुझ मे उभरती ?
प्रकृति की प्रेरणाएँ,
सुन तेरा आह्वान करती।
सुज्ञ मानव की समझ मे,
जागृति का ज्ञान भरती।

सागर की आत्मा को जागृति का सन्देश देता है कि वाहर की गहराइयो को देखने की अपेक्षा अपने ही अन्तर्मन की गहराइयो मे डूब और तब पता चलेगा कि तेरी अपनी गहराई कितनी गूढ और कितनी मार्मिक है ? तब आत्म-शक्तियो की गहराई मे गाभीर्य का अतल केन्द्र दिखाई देगा। इसलिए वाहर दृष्टि दौडाने और भटकने के वजाय अगर आत्मा अपने ही भीतर देखे, गहराइयो की परतें खोलती हुई गहरी से गहरी उतरती चली जाय, सम्यक्ज्ञान, दर्शन एव चारित्र के क्षेत्र मे और अपनी अनन्त-अनन्त शक्तियो को उद्घाटित करे तो भला वाहर की निर्मलता, तेजस्विता या गम्भीरता का कितना मूल्य रह जायगा ?

मैं कहना चाहूँगा कि इस प्रकार व्यक्ति अपने ही घर के आँगन के भीतर महान् शक्तियो को प्राप्त कर सकता है। इसी जीवन के अन्दर वह वहुत कुछ कर सकता है। आज के इन्सान के मानस का यदि सवसे उलझा हुआ कोई पृष्ठ है तो वह यही कि भगवान् कहाँ है ? ईश्वर कहाँ है ? उस पवित्र स्वरूप के गीत हम सदा सुनते रहे हैं, परन्तु भगवान् आज तक मिला नही। इसके उत्तर मे मैं आपसे कहूँगा निश्चयपूर्वक कि जो इस आत्मा का पवित्रतम स्वरूप वनता है, वही परमात्मा का स्वरूप है। भगवान् कही वाहर मिलते नही, भीतर ही प्रकट होते है। एव आत्मा अपनी परमात्म-अवस्था मे चन्द्र से भी अधिक निर्मल, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी तथा सागर से भी अधिक गम्भीर वन जाती है।

संधान, आत्मा का

मैं पूछता हूँ आपसे कि ऐसी उच्चतम परमात्म-अवस्था के लिये आपकी भी ललक है, क्या ? वेशक इसके लिये आप सब एकदम 'हाँ' मे जवाब देंगे। परमात्मा कौन नही बनना चाहता ? किन्तु क्या परमात्मा यो ही बन जायेंगे ? परमात्मा बनने के लिये अपार पुरुषार्थ की आवश्यकता होगी, सयम एवं तप के क्षेत्र मे अद्भुत पराक्रम दिखाना होगा तथा चन्द्र, सूर्य एव सागर को एक साथ मन मे मिला लेना होगा। जिस दिन यह आत्मा निर्मलता, तेजस्विता एव गम्भीरता के श्रेष्ठतम रूप का सर्वांगत वरण कर लेगी, उसी दिन वह आत्मा से परमात्मा बन जायगी।

इस आत्म-साक्षात्कार के लिये अन्तर की गहराइयो मे निरन्तर डुबकियाँ लगाते रहना होगा। एक शायर ने कहा है—

अपने मन मे डूब कर
पा जा सुराखे जिन्दगी।

इन्द्रपुरी (इन्दौर) के धर्मप्रेमी भाई-बहनो ! मैं आपसे पूछता हूँ कि क्या आप भगवान् मे मिलना चाहते हैं ? आप झिझकेंगे कि अभी मैं तप के लिये कहूँगा या किसी त्याग के लिये। किन्तु मैं आपको आश्वस्त करता हूँ कि मैं तप के लिए भी नही कहूँगा, न परिवार छोडने के लिये और न धन का दान करने के लिये—फिर तो बताइये कि आप भगवान् से मिलने के लिये तैयार हो जायेंगे न ? यह राजस्थानी कहावत तो आप को पसन्द आयगी न कि 'माल भी खाना, वैकुण्ठ भी जाना' ? ऐसे सीधे रास्ते से भगवान् मिलें, तब तो आप मिल लेंगे न ?

एक साधक ऐसे ही सीधे रास्ते से भगवान् को पाना चाहता था। वह एक फकीर के पास पहुँचा। फकीर का नाम था फरीदा। सन्त फरीदा पजाब के एक मुसलमान सन्त हो गये हैं। साधक ने उनसे कहा—'भगवान् से मिलने का कोई आसान रास्ता बता दीजिये।' फरीदा ने आसान रास्ता बताना मजूर कर लिया। सन्त उस साधक को अपने साथ ले कर एक खेत पर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर सन्त ने कहा—'मैंने तुम्हे भगवान् से मिलने का रास्ता बता दिया है, अब भगवान् मे अच्छी तरह मिल लेना।' साधक आश्चर्य करने लगा कि "कैसा रास्ता और कहाँ भगवान् ?" सन्त कैसा मजाक कर रहे हैं ? उसने यही बात सन्त से कही। सन्त ने फिर यही कहा—'रास्ता बता तो दिया है।' साधक ने घबरा कर कहा—'पहेलियाँ क्यो बुझाते हैं ? मुझे साफ और सीधे शब्दो मे कुछ बताइये।'

तब सन्त ने साधक से कहा – 'जरा देखो, इस खेत के अदर तुम किसे देख रहे हो ?'

'महाराज, मुझे एक किसान काम करता हुआ दिखाई दे रहा है'--साधक ने उत्तर दिया।

'क्या काम कर रहा है वह किसान ?'—सन्त ने फिर पूछा।

साधक ने कहा—'वह पौधो को एक तरफ से उखाड रहा है तथा दूसरी तरफ रोप रहा है।'

सन्त ने बताया—"क्या तुमने इस काम के रहस्य को समझा ? यही तो भगवान् से मिलने का आसान रास्ता है।" साधक कुछ समझा नही, तब सन्त ने पजावी भाषा मे कहा—

फरीदा रब दा कि पावणा, इत्थे पटके उत्थे लावणा।

अर्थात्—फरीदा की दृष्टि मे ईश्वर का क्या पाना है ? इधर से उखाडो, उधर लगा दो—यही ईश्वर को पाने का आसान रास्ता है।

विकार से, विचार की ओर

फरीदा सन्त की वात आप समझे या नही ? जब आप तप नही करना चाहते—त्याग नही करना चाहते तो इतना तो कर लेंगे कि इधर से उखाडो, उधर लगा दो। यह वात मन पर लागू की गई है। जैसे किसान पौधो को एक ओर से उखाड़ कर दूसरी ओर लगा रहा था, उसी प्रकार इस मन को कपाय, मोह, माया, रागद्वेप आदि विकारो मे उखाडो और उसे धर्म, सयम, तप आदि सत्प्रवृत्तियो मे लगा दो तो मन की स्थिति ज्यो ज्यो उच्चता को प्राप्त होती जायेगी, आपको भगवान् क्या मिलेंगे, आप स्वय भगवान् वन जायेंगे।

मन का नियोजन प्रमुख होता है। यदि मन विभाव के क्षेत्र से निकल कर स्वभाव मे रमण करने का अभ्यस्त हो जाय तो आत्म-विकास की गुत्थी स्वय ही सुलझ जायेगी। इस कविता मे दी गई है—

चन्द्र, सूर्य और सागर को—मिला लें मन मे एक साथ।

इसका अर्थ है कि मन मे पूर्ण निर्मलता, तेजस्विता एव गम्भीरता को पा लेने की उग्र ललक पैदा कर दें, जो मन की सुदृढता के साथ साध्य को प्राप्त करने हेतु कटिवद्ध वन जाय। फिर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की कठिन आराधना का क्रम चलेगा और कठोर संकल्प के साथ उग्रगामी गति वनेगी। वैसी ही उग्रगति एक दिन चन्द्र, सूर्य और सागर मे भी आगे पहुँचा देगी।

तो मूल समस्या है मन को साधने की। मन का नियत्रण एवं सुनियोजन ही आत्मोन्नति का मूल मत्र है।

एके साधे, सब सधे

कोई अपने को महावीर का भक्त तो कोई राम का उपासक या कृष्ण का पुजारी बताता है, किन्तु इन महापुरुषों ने मन को मोडने की जो बात कही है क्या उसको मानने की सच्ची भक्ति कोई दिखाता है ? इधर भटके हुए मन को उधर लगा दीजिये—भौतिकवादी दलदल से निकाल कर आध्यात्मिक उद्यान में उसे रमण करा दीजिये—फिर देखिये कि आपको परमात्म-पद कितनी शीघ्रता से प्राप्त हो जाता है ?

रामायण में भी इसी प्रकार की पवित्र भावना का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। तुलसीदास जी ने कहा है—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु-मूरत देखी तिन तैसी॥

जीवन में भावना का सर्वाधिक महत्व होता है, जो मन के द्वारा भायी जाती है। मन सधा हुआ हो तो भावना श्रेष्ठ एवं उत्कृष्ट होगी तथा मन भटका हुआ हो तो भावना भी निकृष्ट श्रेणी की उत्पन्न होगी। वस्तुतः अपना निर्माण अपने ही हाथों में है। भगवान् महावीर का दर्शन तो इस सत्य को गुंजाता रहा है—

'अज्झत्थ बंधमोक्खो य'

आपका बन्धन और आपका मोक्ष आपके ही हाथों में है। आप स्वयं ही अपने भाग्य के विधाता हैं। आप भौतिक दृष्टि से अपने मन को उखाड कर धीरे-धीरे भी अध्यात्म की ओर लगाते रहें तो फिर सब कुछ साध सकते हैं। तब न तो भगवान् को वन-वन में खोजने की जरूरत है, न मन्दिर-मस्जिद में पुकार लगाने की। मन को साध लेने पर भगवान् तो भीतर ही भीतर प्रकट हो जायेंगे।

भगवान् तो हमारे पास में ही है, लेकिन लोग अपने पास में कहाँ ढूंढते हैं ? वे तो उसे सभी ओर बाहर के केन्द्रों पर खोज रहे हैं और इस खोज को ज्ञानीजन मूर्खतापूर्ण कार्य के अलावा और क्या कह सकते हैं ?

उठ खड़ा हो, भव्य ! तू स्वयं भगवान् है—

ज्ञानियों ने भव्य आत्माओं का मार्गदर्शन करते हुए सदा आत्म-दर्शन, आत्म-चिन्तन एवं आत्म-साक्षात्कार पर बल दिया है। जागरूक आत्मा को उन्होंने ललकारा है और कहा है—'उठो, जागो, भव्य ! तुम स्वयं भगवान् हो। भगवान् को बाहर ही बाहर कहाँ खोजता हुआ भटकता फिर रहा है, वह तो तेरे ही भीतर है। भीतर को निर्मल कर, प्रकाशमान बना, धीरता-गंभीरता के गुण से सजा—फिर देख और

अनुभव कर तो तेरी अपनी अनुभूति होगी कि "मैं स्वय भगवान् हूँ ।" सभी दर्शनो ने इस आधारगत सत्य को स्वीकार किया है—

चिदानन्दरूपो शिवोऽहम् शिवोऽहम् ।

वह आनन्द एव कल्याणरूप जो भगवान् है, वह तो मैं ही हूँ। जब आप मे ही भगवान् है और आप ही भगवान् है, तब उसे खोजने के लिये मन्दिर-मस्जिद मे और दर-दर भटकते रहो तो क्या यह मेवाडी कहावत सत्य सिद्ध नही होगी कि 'काख मे छोरो ने गाँव मे ढिंढोरो' ? सन्त कबीर ने भी ऐसी वृत्ति की भर्त्सना की है और कहा है—

पानी में मीन पियासी ।
मोहे सुन सुन आवे हाँसी ॥

वास्तव मे पानी मे रह कर भी मछली प्यासी रह जाय तो यह हसी की ही बात होगी । वैसे ही भगवान् अपने ही भीतर और हम कहे कि हमे भगवान् से मिला दो । भगवान् से आप को खुद मिलना पडेगा—अपने मन को उधर से उखाड कर और इधर लगा कर । मन जब मोक्ष का कारण बन कर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उच्च श्रेणियो मे विचरण करने लगेगा तो वह निर्मलता, तेजस्विता एव गभीरता से इतना ओतप्रोत बन जायगा कि उस आत्मा का मूलस्वरूप कई कई चन्द्रो, सूर्यो और सागरो से भी उच्चतर बन जायगा । एक बार भव्य आत्मा इस पुरुषार्थ मे उठ खडी हो तो उसके भगवान् बनने मे अधिक विलम्ब नही लगेगा । □

□ □

आप अवगुणों को रहने दो,
गुण लेने की आदत डालो !

आप अवगुणो को रहने दो, गुण लेने की आदत डालो।
फूल नही ऐसा कोई भी, जिसके पीछे शूल नही हो।
पुरुष नही ऐसा कोई भी, जिसके हाथो भूल नही हो।
शूल भूल को भूल-भुला कर
सौरभ सद्‌गुण जो मिल पाता, क्यो न प्रेम-महित अपना लो !

सगृहीत धान्यो मे क्या कुछ, नहीं चुगाव निकलता देखो।
हार हुआ करती वोटो मे, यही चुनाव विकलता देखो।
तत्त्व अभाव कहाँ जाएगा
नही स्वभाव सुधारा जाता, प्यार विना यदि पशु को पालो !

गुण भी अवगुण, अवगुण भी गुण कभी-कभी दिखलाई देता।
सिद्ध उसे ही करने मे नर, ला कर लाख गवाही देता।
पूर्वाग्रह का फलित यही है
यथार्थता के पास पहुंच कर, दृष्टिदोष को दूर हटा लो !

मुनि महेन्द्र 'कमल' गुणग्राही वन करके गुणवान वनोगे।
घाटे का सौदा न समझना, नीतिमान, मतिमान वनोगे।
गुण पहचानो, ग्रहण करो गुण
जहाँ मिले, जिस कद्र मिले वस, मूल्यवान मणि आप उठा लो।

5

मिट्टी के जीवन की
नपी-तुली परिभाषा !

□ □

सभी यह जानते हैं कि शरीर, जीवन, संसार, वैभव तथा जगत् के सभी पदार्थ अनित्य हैं, नाशवान हैं, किन्तु जानते हुए भी अनजाने-से बने रहते हैं और समय आने पर इस तथ्य से आँखें मूंद लेते हैं कि यह जीवन मिट्टी के ढेले की तरह एक दिन समाप्त हो जायगा और इस शरीर को फूंक दिया जाएगा। प्रवचनकार ने बहुत ही मजी हुई भाषा मे युक्तिपूर्वक मिट्टी के-से नश्वर जीवन का मार्मिक चित्र खींचा है और इस जीवन को अप्रमत्त हो कर आत्म-साधना एव धर्माचरण मे लगाने की प्रेरणा दी है। ध्यानपूर्वक पृष्ठ खोल कर पढिए........ ....

५

मिट्टी के जीवन की नपी-तुली परिभाषा !

□ □

मृत्यु का अभिनन्दन

हमारे भारतीय दर्शन एव हमारी भारतीय सस्कृति के स्वर बराबर गूंजते रहे हैं कि यह ससार नश्वर है, यह जीवन भी क्षणभगुर है तथा यह अपना शरीर भी अनित्य है। मृत्यु इस दृश्यमान जगत् को एक बार तो एक झटके मे ही मिटा देती है और यही कारण है कि सभी लोग मृत्यु से भयभीत रहते हैं। किन्तु इन सभी लोगो मे उन लोगो का समावेश न करें, जो सहजभाव से मृत्यु का वरण करते हैं। कारण, वे ससार के स्वरूप को एवं उसके जड-पदार्थो के स्वरूप को भलीभांति जानते हैं। वे अपनी चैतन्यशक्ति को पहिचानते हैं एव उस चैतन्यशक्ति के सम्पूर्ण विकास मे रत रहते है।

शरीर : कितना अनित्य !

एक मनीषी ने इस अनित्यता के सन्दर्भ मे एक बडी ही मार्मिक, अपितु यथार्थ बात लिख दी थी, व्यक्ति की तन्द्रा को तोडने के लिए—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वत.।
नित्य सन्निहितो मृत्यु., कर्तव्यो धर्मसंग्रह.॥

उस मनीषी की वाणी है कि और तो और, यह स्वय शरीर भी तुम्हारा नही है। यह शरीर भी अनित्य, नश्वर और क्षणभगुर है। जिस शरीर पर अपार

मोह रख कर उसे खिलाते-पिलाते और पुष्ट वनाते हैं, उसे नाना द्रव्यो से सजाते और सवारते हैं, वह भी एक दिन मिट्टी के खिलौने की तरह टूट जाता है। जव यह जीवित शरीर निष्प्राण हो जाता है तो आप ही लोग उसे घर मे तक नही रखना चाहते और श्मशान मे जा कर उसे फूंक देते है। जिस शरीर को जीवित अवस्था मे एक खरौंच भी पहुँचने देना नही चाहते थे, उसे ही आप जलती हुई ज्वालाओ मे भस्मीभूत कर देते हैं। इतना करने पर भी आश्चर्य है कि आप शरीर की अनित्यता को समझते क्यो नही हैं?

शरीर मे ममत्व

इसी क्षणभगुर शरीर के मोह मे पड कर व्यक्ति इस ससार मे लाख-लाख अन्याय और अत्याचार करने पर उतारू हो जाता है। इसी शरीर के पोपण हेतु नीति या अनीति से हजारो-हजार पदार्थों का सग्रह करता है और इसी शरीर की रक्षा के लिए हजारो शस्त्रो का निर्माण करता है। शरीर के ही ममत्व मे इस अमूल्य जीवन को नष्ट कर देता है।

शाश्वत है क्या?

एक प्रश्न आपके मन मे खडा हो सकता है कि जव ससार नश्वर है और शरीर क्षणभगुर है तो फिर यहाँ शाश्वत है क्या? और यह प्रश्न स्वाभाविक है। मैंने आपको ऊपर वताया है कि शरीर जव प्राणवान रहता है, तव तो उसको सहेजा और सवारा जाता है, किन्तु उसमे से ज्यो ही प्राण निकले, कि उसे जला दिया जाता है या नष्ट कर दिया जाता हैं। शरीर की इन दोनो अवस्थाओ मे क्या अन्तर है? आप कहेंगे कि पहले जीवन था, फिर जीवन नही रहा। यह जीवन क्या है? इस जीवन को ही भारतीय दर्शन मे आत्मा कहा है। यह शरीर आत्मा का चोला है। शरीर नष्ट होता है, नश्वर है, किन्तु आत्मा अमर है, अनश्वर है और शाश्वत है। वह कभी नष्ट नही होती। आत्मा केवल चोला वदल लेती है—अपने कर्मो के अनुसार एक शरीर से दूसरे शरीर मे चली जाती है और यही आत्मा अपने कठिन पुरुपार्थ से सारे कर्मो को क्षय करके सिद्ध, वुद्ध और विमुक्त भी वन जाती है, किन्तु आत्मा का अस्तित्व कभी भी समाप्त नही होता।

अमर ज्योति

तो यह आत्मा ही इस नश्वर ससार के वीच शाश्वतता की अमर ज्योति है। और आप लोग भी अपने भीतर गहरे उतर कर सोचें कि यह जो शरीर दिखाई दे रहा है, वह आप नही हैं, वल्कि इस शरीर की जो स्वामिनी आत्मा है, आप वह हैं। इसी

कारण कहते है कि आप आत्म-स्वरूप को पहिचानो, अपनेपन का ही ज्ञान करो—तब आपको समझ मे आएगा कि वास्तव मे यह आपका शरीर भी आपका नही है।

आत्मोन्नति का अवसर

ससार मे चौरासी लाख योनियाँ बताई गई हैं, जिनमे शरीर के अपने-अपने आकार और उनमे रहने वाली आत्माओ की विकास-अविकास के आधार पर अपनी अपनी सज्ञाएँ होती हैं। इन सारे शरीरो मे मानव-शरीर ही सर्वथा समुन्नत, सर्वथा सक्षम बताया गया है। मानव-जीवन को दुर्लभ कहने का यही तात्पर्य्य है। मानव-शरीर विकसित आत्मा की देन होता है और इसी शरीर मे आत्मा विकास की ऊँची से ऊँची मजिलें तय करने के लायक होती है, बशर्ते कि इस शरीर और इस जीवन का सदुपयोग किया जाय। इस अमूल्य जीवन मे यह सामर्थ्य प्राप्त होता है कि विवेक एवं ज्ञान को विस्तृत बनाया जाय एव कठिन आचरण से पवित्रता प्राप्त की जाय। आप्तवाणी ने तो यहाँ तक कहा है कि मोक्ष के लक्ष्य की तरफ गति करने एव वहाँ तक पहुँचने मे यह मानव-जीवन ही सशक्त साधन का काम देता है। इसी दृष्टि से इस मानवजीवन को ऐसा मान कर चलना चाहिये तथा इसके सदुपयोग को कार्यान्वित करना चाहिये कि आत्म-विकास का यह ऐसा स्वर्णावसर है, जिसे अज्ञान, मोह, तृष्णा और कपाय के विकारो मे पड कर गवा दिया तो शुद्ध, बुद्ध एव विमुक्त होने का सुअवसर भी गवा दिया।

न जाने कब····

इसलिये एक ओर तो इस शरीर को क्षणभगुर मान कर चले कि यह न जाने कब नष्ट हो जाय, अत इस शरीर पर ममत्व न रखें—इसके लिये ही इस मूल्यवान जीवन का दुरुपयोग न करें तो दूसरी ओर इसी शरीर पर तटस्थभाव रखते हुए इसको धर्म-साधना करने एव आत्मा को निखारने का बलवान साधन समझे और इससे पूरा पूरा काम लें। शरीर पर मोह नही रहेगा तो शरीर का उपयोग करने मे नरमी नही बरती जायेगी। आत्मा पर लक्ष्य केन्द्रित होगा, तब आत्म-विकास के मार्ग पर शरीर का कठोर से कठोर उपयोग करने मे साधक कभी हिचकिचायेगा नही। यदि आप अपनी भावनाओ को इस दिशा मे मोडेंगे तो आपको नश्वर और शाश्वत का भेद भी स्पष्ट हो जायगा तथा आत्मा एव शरीर के बीच का अन्तर भी अनुभव मे आ जायगा। वैसी मन स्थिति मे इस मानव-जीवन को कैसे सार्थक बनाया जा सकता है—इसका रहस्य एव पाथेय भी हस्तामलकवत् हो जायगा।

प्रमाद मत करो !

भगवान् महावीर ने अपने पट्टशिष्य गौतमस्वामीजी को जागरण-मंत्र दिया कि—

समयं, गोयम ! मा पमायए !

अर्थात् हे गौतम, समयमात्र का भी प्रमाद मत करो। प्रमाद का अर्थ होता है—आलस्य और आलस्य न करने का तात्पर्य्य है कि कर्मठ वनो—निष्क्रिय न रहो। समय कालचक्र का सबसे छोटा घटक माना गया है तो समयमात्र के लिये भी निष्क्रियता धारण मत करो। फिर प्रश्न उठता है कि क्रियाशीलता किस दिशा मे हो—क्या हो ?

चरैवेति चरैवेति

मजिल जव सुनिश्चित हो—मार्ग जव देख लिया हो तो एक ही क्रियाशीलता होती है कि मजिल तक पहुँचाने वाले मार्ग पर पाव चल पड़ें। गति को रोकी तो वह प्रमाद हो जायगा और प्रमाद समय-मात्र के लिये भी नही करना है। अर्थात्—पाँव निरन्तर चलते रहे—कहीं किसी वाधा से भी रुकें नही और तव तक चलते रहे—जव तव कि मजिल न मिल जाय। यह मंजिल क्या है—आप जानते हैं। शाश्वतता की अमर-ज्योति को ज्योति स्वरूप वना लेना—यही हमारी मंजिल है—हमारा मोक्ष है।

तव आप पूछ सकते हैं कि क्रिया-शीलता क्यो और अभी ही क्यो ? मैंने वताया है कि शरीर क्षणभंगुर है और उसके साथ ही वीता हुआ समय कभी वापिस लौटता नही। क्रियाशीलता को इसी समय प्रारम्भ न करें तो कौन जाने अगले ही क्षण इस शरीर का क्या हो जाय और क्रियाशीलता का अवसर ही न आए। शरीर रहे, तव भी समय तो चला ही जायगा। इसीलिये भगवान् महावीर ने यह भी सन्देश दिया—हे देवानुप्रिय, तुम्हे सुख हो, वह करो, परन्तु जो करना है, उसे करने मे कतई देर मत करो। आपने जव मजिल की तरफ वढने का निश्चय कर लिया तो फिर पाव उठाने मे देरी क्यो ? जागरण—सन्देश को हृदयंगम कर लेने के वाद प्रमाद कैसा ?

प्रमाद ही उसे कहते हैं, जव आप इस शरीर और समय के सदुपयोग करने से वचित रहे तथा उन्हे अनावश्यक प्रपचो मे लगाये रखें। व्यर्थ की परिस्थितियो मे यदि आप फँसे रहते हैं तो यह आपकी सुप्तावस्था होगी। नीद मे सोये रह कर न मानव-जीवन सार्थक होगा और न ही समय का सदुपयोग सम्भव हो सकेगा।

मृत्यु को सामने रखो

यह सत्य है कि मृत्यु प्रतिक्षण हमारे समीप आ रही है। जो क्षण बीतता है, वह जीवन के निश्चित क्षणो की निधि मे से समाप्त होता है। जो क्षण बीता है, वह जीवन का क्षण बीता है तो मृत्यु उतनी ही समीप चली आई है—यह निश्चित रूप से मानना चाहिए।

किन्तु आज अधिकाश व्यक्ति क्या इस सत्य को अपने सामने रखते हैं? वे तो संसार के झूठे आनन्द मे इस प्रकार निमग्न दिखाई देते हैं, जैसे उन्हे कभी मरना ही नही है—अमरता का पट्टा ले कर आये है। इसलिए सतत जागृति का उपाय है कि मृत्यु को सदा अपने सामने रखो। आप काम करते रहे और जैसे आपके सामने चित्र टगा हुआ हो कि एक मृत शरीर को अर्थी पर ले जाया जा रहा है और श्मशान मे जलाया जा रहा है, ताकि आप और तेज गति से काम करते रहे कि न जाने कव हमारी भी अर्थी उठ जाय और फिर हाथ का काम अधूरा ही छूट जाय। जीवन के अन्दर सिद्धार्थ-नन्दन महावीर ने एक छोटा-सा निमित्त देखा अनित्यता का और उनके जीवन मे एक यथार्थपूर्ण जागृति उभर आई। कहने की आवश्यकता नही कि अनित्यता के उस स्वरूप के प्रति जव अन्तश्चिन्तन गम्भीर रूप ले लेता है तो फिर वहाँ सारे तत्वो को परीक्षण की कसौटी पर कसने की प्रवृत्ति जाग उठती है।

मैं आप लोगो से पूछना चाहता हूँ कि जव आपकी आँखो के सामने अनेक प्रकार के प्रसग आते हैं—अनित्यता के महत्व को उभारने वाली परिस्थितियाँ पुन-पुन. उठती हैं, तव भी क्या आपके हृदय मे नवीन भावनाओ का सचार नही होता? और तो और, आप तो अपने पारिवारिक सदस्यो, सम्वन्धियो और मित्रो को भी मरघट तक पहुंचा आते हैं, फिर भी क्या इस ससार के प्रति—इस शरीर के प्रति आपको विराग नही होता? अनित्यता को समझ कर क्या जीवन को सार्थक वना लेने का सकल्प नही जागता? श्मशान मे वैठे-वैठे कुछ वैराग्य तो जागता है, लेकिन वह कुछ ही देर रह कर वहाँ से लौटने के वाद समाप्त हो जाता है, जिसे आप हँसी हँसी मे "मसाणिया वैराग" कहा करते हैं। यह "मसाणिया वैराग" आपके लिए "जीवणिया वैराग" क्यो नही वन जाता कि आप मानव-जीवन को मोक्ष के साध्य को प्राप्त करने का कर्मठ साधन वना डालें। किन्तु मानस की ऐसी धारणा तव ही वनेगी और तव ही स्थायी रूप ग्रहण करेगी, जव आप प्रतिक्षण "नित्य सन्निहितो मृत्यु" का ध्यान करते रहेगे।

फिर ममता कैसी, क्यो ?

जव इस ससार मे सिवाय आत्मा के सव कुछ नश्वर है—शरीर भी क्षणभगुर है तो इस सारी अनित्यता से मोह कैसा, ममता कैसी? किन्तु हकीकत कुछ और ही

है। आप मकान मे होते हैं तो अपने परिवारजनो के प्रति मोह—धन-सम्पत्ति, ऐश्वर्य एव विलास-सामग्री से ममता और दूकान मे जाते हैं तो अधिक से अधिक उपार्जित करने की लालसा और सबसे बढकर अपने शरीर का ममत्व। ममता के इसी जाल मे फँस कर सारा जीवन व्यतीत हो जाता है, फिर भी जागरण की वेला विरलो के ही जीवन मे उपस्थित होती है।

मैं कहना यह चाहता हूँ कि जीवन के अन्दर जो भी जाग रहा है, उसने अपनी मोह-ममता को क्षीण बनाया होगा—अनित्यता एवं क्षणभगुरता के बारे मे चिन्तन किया होगा। मौत से बेडर बनने पर ही कोई सच्चे माने मे जाग सकता है। उर्दू शायर ने यही बात बताई है—

दारे फानी मे हो, गाफिल ! मौत से एक पल नहीं।
क्या भरोसा जिन्दगी का, आज है और कल नहीं॥

जाल से बाहर आ

इस नश्वरता के सत्य के सम्बन्ध मे ज्ञान हो, किन्तु विचार इस तथ्य पर आता है कि यह जान कर भी बराबर भूल की जाती रहती है—मोह-ममता के जाल से बाहर निकल आने का कोई सार्थक प्रयास ही नही किया जाता। यह शिथिलता धीरे धीरे अज्ञान मे बदल जाती है। जब यह समझ शुरू हो जाती है कि जिस वातावरण के बीच जी रहे हैं, वही सही है, तब अनित्य को भी नित्य के रूप मे देखा जाने लगता है। मिटने वाले पदार्थों के स्वामित्व पर गर्व करते हुए तब सत्य को धूमिल बनाने की कुचेष्टा भी की जाती है। महत्ता की स्थापना सासारिक उपलब्धियो के आधार पर की जाती है। मोह और ममता की भावना मे लिप्त ऐसा व्यक्ति अपनी भौतिक ऋद्धि के बल पर घमड करने लगता है और सत्य को सत्य मानने से पीछे हट जाता है। एक मेवाडी भाषा का पद सुनिये—

धन नै दौलत और भैंस बाखड़ी
सारा अठे ही रह जासी ने उठ जासी हाटड़ी
कांच का महल सब ढस जासी
थारी प्यारी काया आग माय जल जासी
मिट जासी चार दिन रो चांदणो
भाया, दुनिया मे थोड़ो हे जीवणो ।

आप इस पद के मर्म को गले उतारिये। यह सत्य है कि मृत्यु का कुछ भी पता नही और यह पक्का पता है कि मृत्यु आयेगी ही। मृत्यु आएगी तो ससार छूट

जायगा—अपना शरीर तक छूट जायगा। फिर मोह-ममता को छोडना ही श्रेयस्कर है।

मौत डरती है

सच्चे अर्थों मे जो मौत से डरता है, उसे पहले ही मरा हुआ समझा जा सकता है। मौत का डर भी उसे ही डराता है, जो रात दिन मौत से डरता रहता है। लेकिन जो मौत से डरता नही, किसी भी पल उसकी अगवानी करने को तैयार रहता है, वास्तव मे मौत उससे डरती है। एक शूर-वीर या सैनिक या एक निर्भय साधक अपने-अपने क्षेत्र मे कार्य करते हैं, लेकिन मौत से एक पल के लिए भी नही डरते। मौत के सामने भी जो मुस्कराना सीख जाता है, वही वास्तव मे साहसी होता है। जीवन का सच्चा आनन्द भी उसी को प्राप्त होता है। मृत्यु को समक्ष पा कर भी एक राजस्थानी चिन्तक स्पष्ट शव्दो मे कहता है—

जिस मरने से जग डरे, मुझ मन है आनन्द।
जह मरस्या तह भेंटस्यां, पूरण परमानन्द॥

सोने और जागने का यही अन्तर है कि सासारिक विषयो मे मूर्छित वना व्यक्ति हर समय मौत से डरता रहता है, इसलिए कि उसका सव-कुछ उससे छूट जाएगा। इस मोहग्रस्त स्थिति को ज्ञानी-जन सोने की स्थिति मानते हैं। उनके अनुसार जागने की स्थिति तो यह होती है कि व्यक्ति वाहर के मोह से निकल कर अन्तश्चेतना मे डूबे-अपनी आन्तरिक शक्तियो को उद्घाटित करे। ऐसा सदा जागृत व्यक्ति अपनी शाश्वत आत्मशक्ति के ध्यान मे निरत रहता है, इसलिये वह मृत्यु का हँस कर स्वागत करता है, क्योंकि वह जानता है कि आत्मा अमर है तथा मृत्यु उससे उसका कुछ भी नही छीन सकती। यह अभय-स्थिति ही विकसित जीवन का महत्वपूर्ण अंग मानो गई है।

महान् बनाने का सकल्प

इस नश्वर तन को मिट्टी का जीवन मान सकते हैं। किन्तु यदि सकल्प ले लें तो इसे महान् भी वनाया जा सकता है। भारत के सभी दर्शनशास्त्र मानते हैं कि यह मानवतन वडे पुण्य से प्राप्त होता है। महाकवि तुलसी ने भी इस मान्यता की पुष्टि की है—

वड़े भाग मानुष-तन पावा।
सुरदुर्लभ सब ग्रंथहि गावा॥

जनदर्शन के अनुसार भी मानव-तन दुर्लभ माना गया है, क्योकि एकेन्द्रिय से वेइन्द्रिय, वेइन्द्रिय से तेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय से चौइन्द्रिय, चौइन्द्रिय से पचेन्द्रिय और

उसमे भी असंज्ञी-संज्ञी की सीमाए पार करके आत्मा को यह मानव-तन मिलता है। देव-जन्म मे सुख-सुविधाओ का पार नही है, लेकिन साधना-पथ वहाँ सुलभ नहीं होता। मोक्ष-पथ पर चलने की क्षमता केवल मानव-तन मे है। अत. ऐसा अलभ्य तन आत्मा को महान् बनाने के उपयोग मे आए, तभी उसकी सार्थकता होगी। मिट्टी के इस तन को महान् बनाने का सकल्प ले लें तो समूचे जीवन मे एक अद्भुत परिवर्तन आ जायेगा। एक समर्थ कवि ने कहा है—

फूलो पर आंसू के मोती और अश्रु मे आशा।
मिट्टी के जीवन की छोटी, नपी-तुली परिभाषा॥

मानवतन की क्षणभगुरता का चिन्तन करते हुए ही मनुष्य आत्म-विकास की राह पर मुड सकता है, क्योकि नश्वरता का विचार ही सासारिक लिप्तता में कमी लाता है। नश्वरता ही सतत जागृति की उद्बोधक बन सकती है। इसी नश्वरता के मर्म को भलीभांति हृदयगम कर लिया जाय तो मिट्टी के जीवन को महान् बनाने का सकल्प भी पूर्णत. सफल बन सकता है।

एक दृष्टान्त

ससार के नाशवान पौद्गलिक पदार्थो के प्रति आसक्ति-भाव का परिणाम यह आता है कि व्यक्ति उन्हे पा जाने पर अभिमान करने लगता है। वह यह भूल जाता है कि अनित्य के प्रति किया जाने वाला अभिमान भला कितने दिनो तक टिक सकेगा?

इस तथ्य को स्पष्ट रूप से समझने के लिए एक दृष्टान्त लीजिए—एक सेठ ने एक नई हवेली बनाई और उसमे निवास शुरू किया। एक दिन दुकान से सेठजी भोजन करने के लिये हवेली आये। उस दिन सेठानी ने खिचडी बनाई थी। अत. सेठ की थाली मे उसने गरम-गरम खिचडी परोस दी। नई हवेली मे एक तरफ छत का काम बाकी था, सो उधर कारीगर काम कर रहे थे। सेठजी खाना खाने बैठे ही थे कि कारीगर ने आवाज दी—"सेठ साहब! जरा बता दीजिये कि इस छत का काम कैसे पूरा करना है?" सेठजी थाली मे उठ कर पहले उधर गये, जिधर कारीगर ऊपर छत पर काम कर रहा था। ऊपर कारीगर के हाथ मे हथौड़ा था और सेठजी ठीक नीचे खडे उसकी बात सुनने लगे। दुर्योग की बात, बात करते-करते कारीगर के हाथ से हथौड़ा छूट गया और वह सीधा सेठजी के कपाल पर आ गिरा। वह इस बुरी तरह गिरा कि खून की धारा निकल पडी और सेठजी अचेत हो गये।

नई हवेली की सारी कल्पनाएँ मन की मन मे ही रह गईं। और थोडी देर मे ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। एक कवि ने इसका चित्र यो खीचा है—

हथोडो छूटो हाथ सूँ पड़्यो आई कपाल।
झरोखो भिलतो ही रह्यो बीच मे आ गयो काल॥

झरोखा इन्तजार करता ही रहा कि सेठजी उसका निर्माण किस रूप मे कराएँगे और उधर खिचडी भी इन्तजार करती रह गई कि कव सेठजी फिर से थाली पर आ कर बैठेंगे—

खाई न सकिया खीचडी, पूर न सकियो आस।
सोई न सकियो सेज मे, यूँ ही गयो निराश॥

थाली का कौर हाथ मे आ कर मुँह मे नही जा सका—ऐसी अनित्य अवस्था है संसार की। फिर भी मोह-ममता नही घटे और समभाव का सचार न हो—यह आश्चर्यपूर्ण स्थिति ही कही जायेगी। इस नश्वरता की स्थिति पर गम्भीर चिन्तन किया जाना चाहिये और मन मे एक उद्‌वोधन जगाना चाहिये कि विचार, वचन एव आचार का समस्त प्रयास आत्म-विकास की दिशा मे एकजुट वन सके। कवि की मार्मिक वाणी विचारणीय है—

यह नश्वर काया माया है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु !
यह दुनिया एक कहानी है,
सरिता का वहता पानी है,
दो दिन की यह जिन्दगानी है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु !
जो आता है, वह जाता है,
हर फूल 'कमल' मुरझाता है,
यहाँ कोई न रहने पाता है,
भज वीर प्रभु, भज वीर प्रभु !

वास्तव मे सम्पूर्ण वस्तुस्थिति को समझ कर व्यक्ति को अच्छी प्रवृत्ति की ओर ढलने की आवश्यकता है, अन्यथा वात तो साफ है। कितना ही कह दो कि—

कितने मुफलिस हो गये, कितने तवगर हो गये,
खाक मे जब मिल गये, दोनो वरावर हो गये।

काल के प्रवाह मे सभी समा जाते हैं, किन्तु ससार मे याद रहता है एकमात्र सत्कार्य। अच्छे कार्य को ही मृत्यु के बाद भुलाया नही जाता। कहा जाता है कि बच्चा रोता हुआ आता है, किन्तु सभी को हँसाता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुष वह माना गया है, जो हँसता हुआ मरे, किन्तु सबको रोता हुआ छोड जाय। अनित्य के प्रति अभिमान से जो दूर रहता है, वही अपना जीवन यथार्थत साध सकता है।

कहीं खडे न रह जायें

इस नश्वर ससार मे यह नश्वर मानव-शरीर कब विनष्ट हो जायगा—इसका कोई ज्ञान नही। गहराई से देखें तो आत्मसिद्धि का काम इस मानव-तन से सम्पन्न करा लेना चाहिए, जो कठिनाई से प्राप्त हुआ है। समय कम है और आत्मसिद्धि का कठिन काम सामने है। इसलिए समयमात्र का भी प्रमाद किये बिना मुक्ति की लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थान कर देना चाहिए। यह न हो कि अनिश्चय की स्थिति मे खडे-खडे देखते रहे और जिन्दगी का कारवा निकल जाय। मृत्यु आयेगी—यह ससार की रीति है, किन्तु अपनी यह नीति होनी चाहिए कि इस अमूल्य मानव-जीवन की सीमाओं मे ही हम अपने कठिन पुरुषार्थ मे उच्चतम विकास के महत्तम कार्य को सम्पन्न कर लें।

वृक्ष से पक कर एक पत्ता जब नीचे खिरने लगा तो वेदना के साथ वह वृक्ष से बोला—

पान खिरंता यूँ कहे, सुन तरुवर बनराय।
अबके बिछुडे कब मिलैं, दूर पड़ेंगे जाय।।

वृक्ष ने तुरन्त निरपेक्ष उत्तर दिया—

तब तरुवर उत्तर दियो, सुनो पत्र मम बात।
इस घर या ही रीत है, इक आवे इक जात।।

ऐसी ही निरपेक्ष भावना मनुष्य की अपने तन के प्रति एव सारे पौद्गलिक पदार्थों के प्रति होनी चाहिये, ताकि ममत्व से दूर रह कर मृत्यु से निर्भय बन कर वह मुक्ति की साधना मे निमग्न बन सके। मिट्टी के जीवन की यही नपी तुली परिभाषा माननी चाहिए। □

८

पुरुषार्थ की स्पष्ट दिशा

□ □

पुरुषार्थ जीवन का अमृत है, जबकि आलस्य जीवन को मृत बना देता है । ससार के समस्त महत्त्वपूर्ण कार्य मानव के पुरुषार्थ से ही सम्पन्न हुए हैं। यदि मनुष्य पुरुषार्थहीन हो कर बैठ जाता तो आज जितना वह भौतिक क्षेत्र मे विकास कर सका है, उतना शायद ही कर पाता । किन्तु साथ ही पुरुषार्थ की दिशा स्पष्ट न हो, तो वह पुरुषार्थ मानवजाति के लिए घातक एव आत्म-विनाशक सिद्ध होगा । इस कारण पुरुषार्थ तो हो, लेकिन केवल देहदृष्टि मे न हो, आत्मदृष्टि से पुरुषार्थ की मुख्यता हो । दोनो दृष्टियो से पुरुषार्थ का सन्तुलन जीवन मे क्या चमत्कार ला सकता है ? इस रहस्य को पाने के लिए मुनिश्री का यह प्रवचन पढिए · ······· ·

६

पुरुषार्थ की स्पष्ट दिशा

□ □
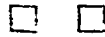
पुरुषार्थ का अमर सन्देश

श्रमणसंस्कृति के अमर देवता, पुरुषार्थ के प्रखर प्रतिपादक तीर्थंकर देव के चरणो मे मेरा अनन्त-अनन्त वन्दन !

अभी परमपूज्य गुरुदेव के श्रीमुख से सुखविपाक-सूत्र का श्रवण कर रहे थे। उसमे गुरुदेव ने भगवान् महावीर का एक दिव्य सन्देश फरमाया था—

जहासुह देवाणुप्पिया
मा पडिबन्ध करेह।

अर्थात्—'हे दवानुप्रिय, तुम्हे जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु उसके करने में तनिक भी विलम्ब मत करो।' यह उनका पुरुषार्थ का अमर सन्देश है कि जीवन मे क्रियाशील बनो—काम करते रहो। पुरुषार्थ से एक पल भी दूर मत रहो। उनके सन्देश को इन शब्दो मे हम कह सकते हैं कि—

'चलने का नाम जिन्दगी, ठह्रे तो मौत है।'

स्वस्थ संगीत

पुरुपार्थ को स्वस्थ जीवन का सगीत माना गया है। क्रियाशीलता ही जीवन को जीवन का रूप देती है। निष्क्रिय जीवन को मृत्यु का ही दूसरा रूप कहा जा

सकता है। पुरुषार्थ-हीन जीता हुआ भी मरा हुआ ही होता है। पुरुषार्थ की शक्ति ज्यों-ज्यों बढ़ती है, जीवन में आनन्द का संचार होता जाता है और पुरुषार्थ की अधिकाधिक सक्रियता के साथ जीवन संगीतमय बनता जाता है। प्रतिक्षण पुरुषार्थी गति में ऐसा मधुर एवं प्रेरक संगीत फूटता है, जो अपने आसपास के वातावरण में और फिर व्यापक रूप से जागृति की लहर फैला देता है।

सम्यक् पुरुषार्थ

महावीर का पुरुषार्थ—उद्घोष आज भी गुंजायमान हो रहा है—'हे साधक, एक क्षण के लिये भी निष्क्रिय बैठने की आवश्यकता नहीं—जीवन की श्रेष्ठ प्रवृत्तियों के लिए प्रमाद एवं विलम्ब नहीं किया जाना चाहिये।' 'प्रमाद नहीं' करने का अभिप्राय है कि जीवन में बराबर सक्रियता बनी रहे और वह सम्यक् पुरुषार्थ में संगठित रूप से संचालित होती रहे।

तूती चली नहीं

प्रत्येक युग में कर्मवीर पुरुषों ने पुरुषार्थ का शंख फूंका है तो उस समय ऐसे भी व्यक्ति रहे हैं, जिन्होंने पुरुषार्थ का विरोध किया। महावीर के समय में ही गोशालक ऐसे व्यक्तियों में से एक था। किन्तु कर्मयोगियों की शंखध्वनि के सामने ऐसे लोगों की तूती चली नहीं। महावीर ने कहा कि यदि व्यक्ति जीवन में पुरुषार्थ नहीं करता है—श्रम नहीं करता है और जीवन-निर्माण के लिये जो आवश्यक प्रवृत्तियाँ हैं, उनमें नहीं जुटता है तो वह मोक्षमार्ग पर गति नहीं कर सकता है। याद रखिये कि पुरुषार्थ से दूर जो गति है—वह विगति है। पुरुषार्थ के अभाव में व्यक्ति कभी प्रगति नहीं कर सकता। पूरे भारतीय वातावरण में सदा पुरुषार्थ के गीत गूंजते रहे हैं और जीवन-निर्माण के लिये ये स्वर झंकृत होते रहे हैं। कुछ कर गुजरने की प्रेरणाएँ सदा जन-मानस को मिलती रही हैं। फिर भी दास मलूका जैसे लोगों ने प्रमाद के प्रचार में कह दिया—

अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥

इसके बावजूद पुरुषार्थ का मूल्य कभी भी कम नहीं माना गया और उसमें स्वस्थ जीवन में सदा ही प्रधानता मिली है। समाज में बैठे ठाले लोग सदा ही लाछना के पात्र बनते हैं। वास्तविकता यही है कि कोई भी प्रवृत्ति हो—पुरुषार्थ के बिना न संचालित हो सकती है और न सफल।

पुरुषार्थ : क्या, कैसे, किधर ?

पुरुषार्थ है क्रियाशीलता या श्रम और किसी भी दिशा मे कोई भी कार्य किया जाय, पुरुषार्थ या श्रम के विना उसमे गति नहीं हो सकेगी। इस क्रियाशीलता को दो विभागो मे विभाजित कर सकते है—(१) क्रियाशीलता देहदृष्टि से, और (२) क्रियाशीलता आत्मदृष्टि से। अपने-अपने स्थान पर दोनो प्रकार की क्रियाशीलता को सन्तुलित वनाते हुए सगठित करने की आवश्यकता है।

प्रश्न यह है कि ˙

देहदृष्टि की क्रियाशीलता मनुष्य के जन्म से ले कर मृत्यु तक वनी रहती है। गृहस्थ-जीवन मे तो यह दृष्टि कभी-कभी प्रमुख भी वन जाती है। साधु-जीवन मे देह-दृष्टि गौण होती है, किन्तु धर्मसाधन के रूप मे देह को चलाने की प्रवृत्ति तो की ही जाती है। प्रश्न यह है कि देहदृष्टि किस सीमा तक रखी जाय ? गृहस्थ को भी एक सीमा तक अपनी देह का पोपण भी करना होता है तो अपने परिवारजनो की देह का ध्यान भी—वल्कि इसी क्षेत्र मे व्यापक दृष्टिकोण के अनुसार ग्राम, नगर, राष्ट्र एव समाज के प्रति अपने स्वस्थ कर्तव्यो का भी पालन करना होता है—एक प्रकार से देह-दृष्टि के अनुसार ही सवके सुनियोजन की समस्याओ का निराकरण करना होता है। सामाजिक सुव्यवस्था एव लोकहित की दृष्टि से देह-रक्षा एव पोपण के क्षेत्र मे भी गृहस्थ पर काफी काम करने का भार रहता है।

किन्तु नीति एव साधना की सीमाओ से आगे वढने पर देह-दृष्टि जीवन-निर्माण के लिए घातक वन जाती है। नैतिक एव आध्यात्मिक क्षेत्र मे सीमाओ मे तो देहदृष्टि से प्रवृत्ति का पालन तटस्थ या निरपेक्षभाव से किया जाता है और वैसी देहदृष्टि समाज-सचालन तथा धर्म-साधन के लिए आवश्यक भी होती है। जहाँ देह के प्रति तटस्थभाव टूटा और ममत्वभाव आया वही समझना चाहिए कि देह-दृष्टि मे विकार आ गया है। ममत्वपूर्ण ऐसी देह-दृष्टि तव आत्मिक गुणो का घात करने वाली वन जाती है। इसी के अनुसार वैसी विकृत देह-दृष्टि के लिए किया जाने वाला पुरुषार्थ भी सच्चे अर्थो मे पुरुषार्थ नही रहता है।

देह-दृष्टि + आत्मदृष्टि

जव केवल देह तक ही दृष्टि केन्द्रित हो जाती है, तो वैसा व्यक्ति मोह-ग्रस्त हो जाता है और विविध प्रकार का श्रम केवल देह-दृष्टि से ही करने लगता है। जहाँ मोह आता है, वहाँ स्वार्थ प्रवेश करता है और जहाँ स्वार्थ है, वहाँ न नैतिकता रहती है, न सामाजिकता। ऐसा मोहग्रस्त स्वार्थ नैतिक तथा स्वस्थ समाज की जडो मे घुन

लगाता है तो आत्म-विकास के मार्ग को पूर्णतया अवरुद्ध बना देता है। ऐसा व्यक्ति आत्मा पर आने वाले मैल को हटाने मे तो असमर्थ बन ही जाता है, बल्कि अपनी स्वार्थपूर्ण एवं अज्ञानपूर्ण विचार-दशा मे अपनी आत्मा को अधिकाधिक मलिन बनाता हुआ चला जाता है। आत्मा के लिए उसका पुरुषार्थ शून्य बन जाता है। क्योंकि जहाँ विकृत देहदृष्टि पनप जाती है, वहाँ पर आत्मदृष्टि शिथिल बन जाती है। उसके जीवन मे आत्मार्थी पुरुषार्थ को लकवा मार जाता है—उसके मन का मथन और चित्तवृत्तियो का ग्रथन भी बन्द हो जाता है।

यहाँ हम पुरुषार्थ की इन दोनो प्रकार की दृष्टियो पर कुछ विशद विवेचन करेंगे।

श्रम की पूजा

कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने एक गीत मे कहा है कि अगर तुझे ईश्वर के दर्शन करने हैं तो मन्दिर और मस्जिद मे ईश्वर नहीं मिलेगा। ईश्वर का रूप वहाँ दिखाई देगा, जहा जेठ की दुपहरी मे अपने खेत मे किसान हल चला रहा है, या एक मजदूर अपने भारी घन पर लोहा कूट रहा है। उस किसान या मजदूर के पसीने की बूँदो मे ईश्वर की प्रतिमा दिखाई देगी। इस प्रकार उन्होंने श्रम को ही ईश्वर माना।

श्रम को इतना महत्त्व देने की भावना के पीछे क्या पृष्ठभूमि है? इसमे कोई सन्देह नहीं कि इस मानव-देह के प्रति घृणा या विनाश की दृष्टि नहीं है, बल्कि इस देह को दुर्लभ बनाया गया है और दुर्लभ वस्तु की रक्षा स्वय मे एक कर्तव्य बन जाता है। एक-एक मानव की देह की समुचित रक्षा का विचार करते हैं तभी गृहस्थधर्म और उनमे ग्रामधर्म नगरधर्म राष्ट्रधर्म, समाजधर्म तथा विश्वधर्म के प्रश्न पैदा होते हैं। अपने अपने स्तर पर इन धर्मों का सम्यक् निर्वाह ही स्वस्थ समाज, समुन्नत राष्ट्र एवं एक विश्व की स्थिति को जन्म दे सकता है। जहाँ समाज राष्ट्र और विश्व का वातावरण व्यक्ति की चहुँमुखी प्रगति मे सहायक बनेगा, वहाँ व्यक्ति एव समाज का सन्तुलन ठीक रहेगा तथा सर्वांगीण विकास के सुअवसर भी सदा उपस्थित रहेंगे।

इस दृष्टि से जीवन मे श्रम की पूजा करते हुए देह दृष्टि का जो सत्पुरुषार्थ किया जायगा, वह प्रत्येक प्रकार से आत्मिक दृष्टि के पुरुषार्थ के लिये प्रोत्साहन एव प्रेरणा का कारण ही बनेगा। देह-दृष्टि का पुरुषार्थ स्वस्थ रहा तो वही पुरुषार्थ आत्मदृष्टि के पुरुषार्थ में एकीकृत बन कर समाज मे समूचे रूप मे एक नैतिक धरातल का निर्माण करेगा तो व्यक्ति के लिए भी उच्चतम आत्मिक विकास की साधना हो जायेगी।

श्रमनिष्ठा : आत्मनिष्ठा

समाज की दृष्टि से श्रम उसको ही माना है, जो सामूहिक आधार पर उपयोगी हो। व्यक्ति का अपना निर्वाह भी ऐसे ही समाजनिष्ठ श्रम के द्वारा होना चाहिये। समाज मे एक नियम होना चाहिये कि प्रत्येक व्यक्ति अपने श्रम से उपार्जित धन पर ही अपना निर्वाह चलाए। जिसका तात्पर्य यह होगा कि समाज मे प्रत्येक व्यक्ति श्रम करे ही—उसका जीविकोपार्जन किसी भी रूप मे दूसरे के श्रम पर टिका हुआ नही होना चाहिये। दूसरे के श्रम पर टिकने का अर्थ होता है—श्रम का शोषण या श्रम की चोरी। यह शोषण और चोरी की प्रवृत्ति जहाँ प्रचलित रहती है, वहाँ समाज मे वातावरण विषम बन जाता है एव अन्याय की परिस्थितियाँ फैल जाती हैं।

समाज सबके श्रम पर कैसे आधारित हो? इसकी परिपाटी को जरा गहराई से समझना होगा। समाज मे सबका जीवन-यापन विभिन्न उत्पादनो की सहायता से होता है, चाहे वह अन्न का उत्पादन हो या अन्य प्रकार के औद्योगिक उत्पादन हो। और उत्पादन का मूल आधार श्रम होता है। चाहे किसान श्रम करे या मजदूर—बिना व्यक्ति के श्रम लगे, कोई भी वस्तु बनती या पैदा होती नही है। यह पट्टा आपको दिखाई देता है, क्या यह बिना मानव-श्रम के तैयार हो सका है? लकडी वृक्ष से मिली, किन्तु खडे वृक्ष को चीरने मे और पट्टा बनाने मे मानव-श्रम ही तो लगा है। आप किसी भी उपयोगी पदार्थ पर दृष्टि दौडा लीजिये—आपको शायद एक भी पदार्थ ऐसा नही मिलेगा, जिसका उपयोग तो हो, किन्तु जिसमे मानव-श्रम न लगा हो।

श्रम-पूंजी-कौशल

आपके मन मे एक शका खडी होगी कि क्या अकेले श्रम से ही वस्तु का उत्पादन हो जायगा? क्या उसमे पूँजी और कुशलता का योग नही होता? उत्पादन मे पूँजी व कुशलता का भी अपना योग होता है, किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान श्रम का ही रहता है। सोचें कि एक मजदूर एक कपडा मिल मे एक कर्घे पर बैठ कर दिन भर मे एक रुपये की रूई को एक मलमल के थान मे बदलता है, जिसका मूल्य चालीस रुपया हो सकता है तो उसे श्रमोपार्जित वस्तु के सारे मूल्य का आधा हिस्सा तो मिलना ही चाहिए। किन्तु एक मजदूर को बीस के स्थान पर आठ-दस रुपया मिलता है तो इसका अर्थ यह है कि श्रम का पूरा मूल्य चुकाया नही जाता। इसे श्रम का शोषण या श्रम की चोरी कह सकते है। एक श्रमिक का शोषण जब हजारो श्रमिको के शोषण मे बदलता है तो एक मिल-मालिक बडे शोषक के रूप मे दिखाई देता है। क्योकि श्रम-चोरी से उसके पास लाखो रुपयो का सचय हो जाता है। इस

सचय से एक वर्ग तो भारी विलासिता का जीवन विताने लगता है तो दूसरी ओर वहुसंख्यक श्रमिकवर्ग दीनता और हीनता के चक्र मे पिसने लगता है। तव समाज मे विपमता का वातावरण व्याप्त हो जाता है।

विपमना के वातावरण मे दोनो वर्गो मे अनैतिकता का फैलाव होता है—एक के पास अविक धन से और दूसरे के पास सामान्य निर्वाहयोग्य भी धन के नही होने से। ऐसी धन-लिप्सा की स्थिति मे जव नैतिकना गिरती है तो स्वार्थ भी बुरी तरह फैलता है। ऐसी अवस्था मे देह-दृष्टि का अतिविकृतस्वरूप हमारे सामने उपस्थित हो जाता है। इसके विपरीत जव सारा समाज श्रमनिष्ठ वन सके तो धन-सम्पदा का न्यायपूर्ण वितरण होगा, क्योकि विपम-सचय के वहाँ अवसर ही नहीं रहेगे। समान वितरण से सवको समान-सी स्थिति होगी और उसमे सव के वीच सहयोग, सम्मान एव सौहार्द का वातावरण वनेगा। इसमे आत्म-दृष्टि का वरावर विकास होता रहेगा।

ऐसा होने से समाज मे विकृत देह-दृष्टि समाप्त हो जायगी एवं श्रमनिष्ठा फैल जायगी तो उस वातावरण के फलस्वरूप आत्मनिष्ठ व्यक्तित्व उभरेंगे, कारण कि वैसे समाज मे आत्मदृष्टि की ही सर्वोपरि महत्ता होगी।

जीवन-कला

देहदृष्टि जव स्वस्थ एव सतुलित होगी तथा उसका सामूहिक एव समाजगत स्वरूप विकसित वन जाएगा तो उसमे अवश्य ही आत्मदृष्टि का विकास हो सकेगा। समता, वन्धुता एव स्वतत्रता के वातावरण मे विचरण करने वाले समाज मे नैतिकता एव आध्यात्मिकता के सुखद प्रभाव का प्रसार होने मे फिर कोई वाधा नही रहेगी। वाह्य वातावरण सुमधुर होगा और तव सभी ओर से आन्तरिक वातावरण को निर्मल वनाने की चेष्टाए होगी।

दर्पण की तरह स्वच्छ आत्मा पर मैल

जैनदर्शन स्पष्ट कहता है कि आन्तरिक वातावरण को निर्मल वनाने का अर्थ है—आत्मा पर लगे कर्म-मैल को धोना और आत्मा को उसके मूल स्वरूप मे चमकाना। एक दर्पण के उदाहरण से इसको समझिए। एक दर्पण मूल मे साफ होता है और उसमें किसी व्यक्ति या वस्तु का प्रतिविम्व एकदम साफ दिखाई देता है। किन्तु मान लीजिए कि उस पर धूल, मैल, चिकनाई, वगैरह चढती गई, जिससे उसकी दर्शनीयता धुधली होती गई। एक दिन ऐसा भी आया कि दर्पण पूरी तरह मैल से ढक गया और उसमें प्रतिच्छाया की झलक तक दीखना वन्द हो गई। किन्तु इससे

क्या दर्पण का मूलस्वरूप एव मूलगुण नष्ट हो गया ? नही, वह दव जरूर गया और चेष्टापूर्वक यदि उस मैल को पूरे तौर पर साफ कर दिया जाय तो दर्पण पुन अपने मूल रूप तथा गुण मे पहुँच जाएगा तथा सामने आने वाले प्रत्येक व्यक्ति एव वस्तु को पहले ही की तरह प्रतिविम्वित करने लग जाएगा। यही स्थिति आत्मा के मूल स्वरूप एव मैल की है तथा आत्मदृष्टि की समुन्नति के वारे मे जितना जो कुछ कहा जाता है, उसका एकमात्र तात्पर्य यही है कि आत्मा के कर्म-मल को भी अपनी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की कठिन साधना द्वारा धो कर उसे इतनी निर्मल वना दें कि वह अपने मूल स्वरूप एव मूल गुण मे पहुँच जाय।

आत्मा अपने मुलस्वरूप एव मूलगुण में निर्मल थी, किन्तु कर्ममल से सयुक्त हो कर ससार के भवचक्र मे भ्रमण करने लगी और जव तक पुन पूर्ववत् निर्मल नही वना दी जाएगी, तव तक वह भवभ्रमण करती ही रहेगी। कर्ममुक्त होने पर ही वह सिद्ध हो कर अपने मूलस्वरूप को प्राप्त कर सकेगी।

इसलिए जीवन-निर्माण की सच्ची कला यही है कि आत्मदृष्टि से पुरुषार्थ को सवल वना कर आत्मा को विकास के लिये अपने चरम लक्ष्य तक पहुँचा दें। समस्त पुरुपार्थ की भावना का यही लक्ष्य है और क्रियाशीलता की यही दिशा है।

अन्तिम लक्ष्य

महावीर-दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि यह आत्मा स्वय ही कर्त्ता, हर्त्ता एव भाग्यनियन्ता है। आत्मा पर कोई अन्य शक्ति शासन करती हो, ऐसा नही है। अपने भाग्य के निर्माण का अधिकार स्वय आत्मा को है। ये सचित कर्म क्या होते हैं ? ये कर्म आत्मा को मलिन क्यो वनाते हैं ? इस सारी प्रक्रिया को कर्मसिद्धान्त के नाम से पुकारा गया है।

आत्मा सक्रिय होती है—उसकी सक्रियता की दिशा शुभ भी हो सकती है और अशुभ भी हो सकती है। शुभ कार्य से जो कर्मवध होगा, वह पुण्यकर्म का वध होगा तथा अशुभ काय से पापकर्म का वध होगा। पुण्य से अच्छा जीवन तथा अधिक सुविधाएँ प्राप्त होगी—यह उसका फल होगा। पापकर्म का फल दुखो और वाधाओ के रूप मे प्राप्त होगा। तात्पर्य्य यह है कि जैसा भी कार्य आत्मा अपने प्राप्त जीवन मे करेगी, उसका वैसा फल उस या अगले जीवनो में उसे भुगतना पडेगा और इस कार्य एव फलयोग का जो माध्यम है, उसे कर्म कहते है। सत्कार्य करने मे पुण्यकर्म का वध होता है व पापकर्म कटता है, जिससे अधिक सत्कार्य कर सकने वाली परिस्थितियाँ उपलव्ध होती हैं, किन्तु मोक्षप्राप्ति के लिये शुभ या अशुभ सारे कर्मसमूह का क्षय करना होता है। इस क्षय की प्रक्रिया को निर्जरा कहते है।

कर्म आठ प्रकार के बताये गये हैं—१. ज्ञानावरणीय, २ दर्शनावरणीय, ३ वेदनीय, ४. मोहनीय, ५ आयुष्य, ६ नाम, ७ गोत्र एव ८ अन्तराय। यह एक प्रकार से समस्त प्रवृत्तियो का आठ भागो मे विभागीकरण है, जिनका स्वरूप शुभ व-अशुभ दोनो प्रकार का हो सकता है। इन आठ कर्मो में चार कर्म घनघाती कर्म माने गये हैं, जिनके क्षय करने मे अपार आत्मिक पुरुषार्थ की आवश्यकता होती है। इन चार घनघाती कर्मो मे भी मोहनीय को परमबली कर्म माना गया है, जो बहुत ही चिकना होता है। ममत्व की जजीरें तोड देने के बाद अन्य कोई बाधा समत्व की भावना के प्रसारित होने के मार्ग मे बचती नही है।

इस कारण पुरुषार्थ का सर्वोपरि एव अन्तिम लक्ष्य यही है कि नये कर्मो के बध को रोका जाय तथा सचित कर्मो का क्षय किया जाय। पुरुषार्थ चाहे देह-दृष्टि से हो—उसमे भी यही लक्ष्य सामने रहना चाहिये, कारण पुरुषार्थ की प्रधान-दृष्टि आत्म-दृष्टि ही मानी गई है। देहदृष्टि का पुरुषार्थ जहाँ तक आत्मदृष्टि मे सहायक बनता है, वह आवश्यक है, किन्तु आत्मदृष्टि को आखो से ओझल करके जो देह-दृष्टि का पुरुषार्थ है, वह विकृत पुरुषार्थ की श्रेणी मे आयेगा। पुरुषार्थ का अन्तिम लक्ष्य पुरुषार्थ आरम्भ करने से ले कर निरन्तर ध्यान मे रहना चाहिये।

सदा जागृत रहो !!

जागृति से ही पुरुषार्थ की सही प्रक्रिया प्रारम्भ होती है तथा पुरुषार्थ की सक्रियता से जागृति की गभीरता बढती जाती है। भगवान् महावीर ने मुनि उनको ही माना है, जो सदा जागृत रहते हैं—

मुणिणो सया जागरंति।

पुरुषार्थवादी व्यक्ति कभी सोता नही है, हमेशा जागता रहता है। वह इस तथ्य से सावचेत रहता है कि पुरुषार्थ से ही भाग्य का निर्माण होगा। आज कोई कष्ट भोग रहा है तो यह उसके गलत पुरुषार्थ का कुफल है तथा आज वह अच्छा काम कर रहा है—सत्पुरुषार्थ कर रहा है तो उसका सुफल भी उसको अवश्य ही मिलेगा। जो सोता है और पुरुषार्थ की प्रक्रिया को नियन्त्रित नही कर पाता—वह स्वय ही अपने दुर्भाग्य की रचना करता है, किन्तु सदा जागने वाला अपने सत्पुरुषार्थ से अपने सौभाग्य का निर्माण करता है। जो सदा पुरुषार्थ करता रहेगा—सदा जागृत रहेगा, वह मुनि धर्म का भी सम्यक् पालन कर सकेगा एव मोक्षमार्ग की सच्ची आराधना भी कर सकेगा। कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

पुरुषार्थ सिद्धि का दाता है
पुरुषार्थ ही भाग्य-विधाता है

पुरुषार्थ मोक्ष पहुँचायेगा
मंगल ही मंगल छायेगा
जब निज पुरुषार्थ जगायेगा
मंगल ही मंगल छायेगा।

सही दृष्टि मे देखें तो भाग्य एव पुरुषार्थ मे कोई परस्पर विरोध नही है, क्योकि स्वय भाग्य का निर्माण पुरुषार्थ के बल से ही होता है। फिर कर्त्ता और कृति मे विरोध किस बात का? पुरुषार्थ की जो जमा निधि है, वही तो भाग्य बनता है, किन्तु कभी-कभी विरोधाभास इस कारण दिखाई देता है कि पहले के अशुभ कर्मो का फलभोग चल रहा हो और इसलिए वर्तमान पुरुषार्थ विफल बन रहा हो, तब भाग्य की विशेषता समझ मे आती है। वास्तव मे भाग्य और पुरुषार्थ एक है—पहले का पुरुषार्थ आज का भाग्य है तो आज का पुरुषार्थ भविष्य का भाग्य बन जायगा।

अत वास्तविकता यह है कि सबकी सच्चे पुरुषार्थ मे निष्ठा जागनी चाहिए। भाग्य के नाम पर निराशा लाने की कोई आवश्यकता नही है। अपनी सक्रियता शुभ मार्ग पर बनाये रखिये—वह सदा शुभत्त्व को ही प्राप्त होगी। कहा है—

रोने से दु:ख दूर नहीं होने का
आंसू से पत्थर चूर नहीं होने का
जीवनभर चाहे कुकुम से पूजो
काला काजल सिन्दूर नहीं होने का

पुरुषार्थ की प्रशंसा मे सभी के एक-से स्वर!

पुरुषार्थ या उद्यम की प्रशसा सभी ने एक स्वर से की है और यह प्रमाण है कि जीवन को उन्नति के उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का प्रधान साधन एकमात्र पुरुषार्थ ही हो सकता है। पुरुषार्थ के विषय मे सस्कृत की यह उक्ति सुनिये, जो बताती है कि सारे कार्यो की सफलता का रहस्य उद्यम ही होता है—

उद्यमेन ही सिध्यन्ति, कार्याणि न मनोरथैः।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य, प्रविशन्ति मुखे मृगा॥

एक राजस्थानी कवि के विचार भी जानिये—

ऊंडो विचार करो आपरो जीवन एक खिलतो फूल है
गाढी धार लेवो तो इ सगला पर तमी धूल है
अचमो है कि यूं रात दिन आप काई रोता रेवो
भाग रे भरोसे बैठो रेवणो तो माया भारी भूल है।

जीवन के अन्दर जो अकर्मण्य हो कर बैठ जाते है, वे स्वय अपनी प्रगति का द्वार ही बन्द कर लेते है, किन्तु जो पुरुषार्थ की सीढी पर पाव रखता है, वह एक-एक सीढ़ी चढता हुआ ऊपर और ऊपर पहुँचता ही जाता है। पुरुषार्थियो के साहस को क्या कोई तोड सका है ? किसी ने लिखा है—

तूफानो के भय से जिसके साहस मे बाधा आई है
ऐसे कम-हिम्मत राही ने, अपनी मंजिल कब पाई है
कर्मवीर के आगे पथ का हर पत्थर साधक बनता है
दीवार भी दिशा बताती, जब मानव आगे बढ़ता है।

कर्मवीर व्यक्तियो के जीवन मे अनेक प्रकार के अवरोध आते हैं, किन्तु वे अवरोध उनके पुरुषार्थ के आगे टिकते नहीं हैं, बल्कि उनके प्रबल पुरुषार्थ के आगे सभी सहयोगी बन जाते हैं—पत्थर भी साधक बनता है तथा दीवार भी दिशा बताती है। सम्यक् पुरुषार्थ तो वास्तव मे सभी को प्रेरणा देता है और इसी कारण सत्पुरुषार्थी के साथ सभी की सद्भावना—सभी का सहयोग जुड जाता है। एक कवि ने इसे सरलता से स्पष्ट किया है—

जलाने से चिराग जला करते हैं
खिलाने से फूल खिला करते हैं
नहीं वक्त है किस्मत के भरोसे जीने का
किस्मत के महल भी बनाने से बना करते हैं।

पुरुषार्थ की प्रशसा मे एक अन्य कवि ने अपनी काव्य-लडियाँ यो पिरोई है—

गैरो का क्या करें भरोसा, तू खुद ही निर्माता है
तू खुद ही है शक्तिपुंज, तू खुद ही भाग्यविधाता है
नहीं शोभा देती कायरता वीर को
हिम्मत से ले काम, बना ले साथी तू तदबीर को
तज करके पुरुषार्थ अगर तू, आसू यूँ ही बहायेगा
समय सुनहरा बीत गया तो फिर पीछे पछतायेगा
व्यर्थ बहाता क्यो नैनों के नीर को
हिम्मत से ले काम, बना ले साथी तू तदबीर को।

उपनिषदो मे भी यह सन्देश पढने को मिलता है कि चरैवेति, चरैवेति; अर्थात चलते रहो—चलते रहो। इसको हम अपने शीर्षक मे यो कह सकते हैं कि—

चलने का काम जिन्दगी है, ठहरें तो मौत है।

सदा चलते रहो, क्योकि चलने वाले को जीवन का मधु प्राप्त होता ही है। जो ठहरता है, वह एक प्रकार से अपनी मौत को आमन्त्रण देता है। विना पुरुषार्थ के कोई मजिल नही मिलती। एक उर्दू शायर ने कहा है—

इरादे तो हैं मजिल के, सफर करना आता नही
हमे कहना तो आता है, मगर करना आता नहीं।

प्रमाद त्यागें, पुरुषार्थी बनें, प्रेम और आनन्द की गगा वह चलेगी।

साररूप मे यह कथन है कि जीवन मे प्रमाद और आलस्य को कही भी स्थान न दें तथा पुरुषार्थ को अपना कर्ममन्त्र मान लें। यदि आपने अपने जीवन मे ऐसा अभ्यास वनाया तथा अपने साथियो को भी ऐसा अभ्यास वनाने की प्रेरणा दी तो सत्य जानिये कि आपके और आपके निकटवर्ती वातावरण मे प्रेम एव आनन्द की गगा वह चलेगी।

प्रमाद जव तक जीवन मे छाया हुआ रहेगा, जीवन मलिन और निष्क्रिय वना रहेगा। 'मेरी छाती पर आम पडा हुआ है, जरा भैया इसे मेरे मुह मे डाल जाना'—वाले आलसी की कहानी आपने सुनी होगी। ऐसे आलसी भला अपने जीवन मे क्या कर सकते हैं? प्रमादवश ऐसे अमूल्य मानवजीवन को जो वरवाद करता है, क्या उसका अपराध क्षम्य कहला सकता है? ध्यान से अन्तरावलोकन करें कि कही आप भी इस श्रेणी मे तो नही आते हैं?

जीवन मे प्राप्त शक्तियो के सदुपयोग का नाम ही पुरुषार्थ है। हम शास्त्र सुनाते रहे और आप लोग शास्त्र सुनते रहे, किन्तु सत्पुरुषार्थ की ओर आप प्रवृत्ति नही करें—अपने जीवन मे जागृति नही लाएँ तो वताइये कि क्या हम एक और अपराध नही कर रहे हैं? पुरुषार्थ से जागृति आयेगी, जागृति से निष्ठा तथा उनके सयोग से जीवन मे प्रेम एव आनन्द की वर्षा होगी। चार पक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

क्या करे तकदीर, जहाँ तदवीर नहीं है
क्या करे फूल कमल जहाँ नीर नहीं है
क्या होवेगी विजय जहाँ पर वीर नहीं हैं
क्या ठहरेगा प्रेम जहाँ पर पीर नहीं है।

पुरुषार्थ का प्रोत्साहन अद्‌भुत होता है क्योकि निराशाओ की काली घटाओ को पुरुषार्थ पल मे छिन्न-भिन्न कर देता है। एक मुक्तक और—

मुसीवतो के जमाने निकल ही जाते हैं,
जो आज गिरते हैं, वे कल सभल ही जाते हैं।

पुरुषार्थ का भविष्य सदा उज्ज्वल रहता है। पुरुषार्थ से भाग्य को वनाइये तथा आत्मा को मजिल पर पहुँचाइये। □

□ □

मानव-जीवन में आ जाये
सिर्फ सादगी और सचाई !

मानव-जीवन मे आ जाये, सिर्फ सादगी और सचाई।
मिल सकती है इनके द्वारा, मन शान्ति कुछ बची-बचाई।

झूठ और फैशन ने कितनी, धूम मचाई है जोरों मे।
इसीलिए नर पास न हो तो, पैसे लेता है औरो मे।
आज नहीं कल दे दूगा जी
कल ही देदेगा फिर ऐसे, दे देता नर अन्य गवाही ·

आय और व्यय विपम बना कर, घोल लिया विप निज हाथो मे।
रूखी-सूखी रोटी ने भी, झगडा बढा दिया दातो से।
नीति हराम नहीं क्यो होगी ?
सुना जा रहा उसने ऐसे, अमुक सेठ की रकम पचाई ·

सादा जीवन जीने वाला, सदा सत्य आचरण करेगा।
लिए सत्य के हंसता-हसता प्राप्त मृत्यु का वरण करेगा।
निभता नही सत्य इस युग मे
खडा सत्य सेनानी ऐसे दिखला सकता नही कचाई····

मोटा पहनो, मोटा खाओ, शान्ति मानसिक मिल जायेगी।
झूठ और फैशन की नीवें, पडी हुई भी हिल जायेगी।
पहचानेगी दुनिया सारी
मुनि महेन्द्र 'कमल' जीने की, विधियाँ जाती नही छिपाई··

□

7

धर्म की वैज्ञानिकता : विज्ञान की धार्मिकता

□ □

पिछली सदी तक विज्ञान और धर्म दोनो के बीच जम कर सघर्ष रहा। रोम का रोगटे खडे कर देने वाला इतिहास इसका साक्षी है। विज्ञान से लाभ भी है तो हानियाँ भी हैं। सामान्य जनजीवन पर आज विज्ञान हावी हो गया है, उधर रूढिगत धर्म अवैज्ञानिक बन जाने के कारण नई पीढी का श्रद्धाभाजन नही रहा, किन्तु कुछ विचारको के प्रयत्न से धर्म मे वैज्ञानिकता का प्रवेश होने पर धर्म का वास्तविक कल्याणकारी रूप उभर आया, उधर विज्ञान राजनीतिज्ञो के हाथ की कठपुतली बन जाने से निरकुश और जनकल्याण-कारी के बदले सहारक बन गया। अब आवश्यकता इस बात की है कि धर्म मे जो वैज्ञानिकता प्रविष्ट हुई है, वह बनी रहे और विज्ञानरूपी अश्व पर धर्मरूपी लगाम रहे। ताकि विज्ञान धर्ममय बने और धर्म वैज्ञानिकता से परिपूर्ण। इसी तथ्य को भलीभाँति समझाने के लिए यह प्रवचन प्रस्तुत है • • ••••

७

धर्म की वैज्ञानिकता : विज्ञान की धार्मिकता

□ □

आज का विज्ञानबल, आधार ही सग्राम का है।
विश्व आतकित रहे वह ज्ञान ही किस काम का है॥

एक पक्षी होता है उसके दोनो बाजू पख होते है। यदि उसका एक पख काट दिया जाय तो क्या वह एक ही पख से उडान भरके गगन मे उन्मुक्त विहार कर सकेगा ? बिजली के भी दो तार होते हैं—एक पोजिटिव, दूसरा नेगेटिव। दोनो ही तार अलग-अलग हो तो कितना ही बटन दबाइये, कमरे मे प्रकाश नही हो सकेगा, न पखे से हवा फैल सकेगी। बिजली को प्रभावकारी बनाने के लिये दोनो तारो को जोडना होगा।

ठीक इसी तरह जीवन की क्रियाशीलता के लिए धर्म एव विज्ञान दोनो आवश्यक हैं, किन्तु दोनो मे सामजस्य उससे भी अधिक आवश्यक है।

दैनदिन जीवन मे धर्म और विज्ञान

सामान्य रूप से वर्तमान युग मे एक सामान्य व्यक्ति की प्रतिदिन की चर्या पर इस प्रयोजन मे दृष्टिपात करें कि वहाँ धर्म और विज्ञान की क्या और कैसी भूमिका है ? इसमे नागरिक एव ग्रामीण जन की दृष्टि मे अन्तर पडेगा।

बम्बई जैसे नगर मे सुबह उठने से ले कर रात मे सोने तक उसके लगभग प्रत्येक कार्य मे विज्ञान का योगदान दिखाई देगा—घर के कामो मे, सुखसुविधाओ मे, आने-जाने मे, दफ्तर के काम-काजो मे एव मनोरजन के साधनो मे विज्ञान का उपयोग समझ मे आयेगा। वैज्ञानिक साधन एव उपकरण नगर के जनजीवन मे तो ऐसे छा गये हैं, कि वे यदि ठप्प हो जायँ तो सारा जन-जीवन ही खतरे मे पड़ जाय। यदि बिजली फेल हो जाय या पानी के नल बन्द हो जाय तो लोगो की जान पर बन आए। एक तरह से उनकी समूची दिनचर्या विज्ञान पर आधारित है। धर्म शहरी लोगो के जीवन मे क्रियाकलाप की दृष्टि से कितना स्थान रखता है—यह व्यक्तिगत या सम्प्रदायगत दृष्टि से तो देखा जा सकता है, किन्तु समूहगत स्थान का अनुमान लगाना आसान नही है। भावनात्मक दृष्टि से भी धर्म का फैलाव उतना उल्लेखनीय नही रह गया है। फिर भी शहरो मे धर्म का आडम्बर अवश्य दिखाई देगा और सामान्य समय मे धर्म-सम्बन्धी विवाद या सघर्ष भी कई बार उभरते दिखाई देंगे।

इसके विपरीत भारत का ग्रामीण-समाज अभी भी महानगरो की स्थिति मे बहुत कुछ अलग है। पहली बात तो वहाँ इक्के-दुक्के वैज्ञानिक सुख-सुविधा के साधन ही पहुँचे है तथा उनके पूरे दैनिक जीवन पर विज्ञान का आधिपत्य नही है। यह अवश्य है कि धीरे-धीरे ग्रामीण क्षेत्रो मे भी वैज्ञानिक उपकरणों व सुख सुविधाओ के साधनो का विस्तार किया जा रहा है। कृषि का मशीनीकरण भी हो रहा है, फिर भी महानगरो वाली स्थिति ग्रामो से काफी दूर है। धर्म का सभी प्रकार से अधिक प्रभाव ग्रामीण क्षेत्र मे अवश्य ही परिलक्षित होगा, चाहे उसका भावात्मक रूप हो—क्रियाकाडी ढग हो या अन्ध-विश्वास का मामला हो। सामान्यतया ग्रामीणजन धर्म भीरु भी पाये जाते हैं।

इस विश्लेषण मे यह परिणाम निकाला जा सकता है कि सामान्यतया लोगो के मन मस्तिष्क पर विज्ञान का प्रभाव गहरा होता जा रहा है और जिस रूप मे भी समझें, धर्म का प्रभाव घट रहा है। इस परिणाम के कारणो की मीमासा की जाय, उससे पहले धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, धर्म की सच्ची व्याख्या एवं विज्ञान के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी समुचित रहेगी।

धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत के दार्शनिक एव सास्कृतिक इतिहास की तह मे जायेंगे तो विदित होगा कि धर्म की आधारशिला पर ही राज्यो का जन्म हुआ, राज्यव्यवस्था का जन्म हुआ। वर्णव्यवस्था मे भी एक वर्ण पर ज्ञान-प्रसार एव धार्मिक क्रियाकाड का

दायित्व सौंपा गया। राजा ऋषि को प्रणाम करता था और ऋषि राजा का सम्मान करता था। दोनों वर्गों के इस सम्बन्ध की पृष्ठभूमि यह थी कि सत्ता के मद में राजा अन्यायी न वने और धर्म की सलाह से काम करे। इस प्रकार धर्म राजनीति को उद्दंड वनने से रोकने में प्रयुक्त होता था।

वैसे धर्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एक वृहद् विषय है तथा मानव समाज धर्म की शक्ति से किस प्रकार सचालित हुआ—इसका विश्लेषण भी सक्षेप मे करना कठिन होगा। यहाँ तो धर्म की व्यापक मान्यता के विकास के वारे मे विज्ञान के सदर्भ मात्र से सोचना है।

विद्वानो की व्याख्या के अलावा देश का सामान्य जन धर्म को विभिन्न प्रवर्तको द्वारा चलाये गये विभिन्न मत-मतान्तरो के रूप में ही समझता है। यद्यपि सभी प्रवर्तको ने मानवीय जीवन के श्रेष्ठ गुणो को अपने विचारो में स्थान दिया है, फिर भी सूक्ष्म दार्शनिक भेद तो उनमें मिलेगा ही। विभिन्न प्रवर्तको मे और उनके वाद अलग-अलग आचार्यों मे निष्ठा रखने के कारण जन-समुदाय नाम से अलग-अलग धर्मो, सम्प्रदायो या उप-सम्प्रदायो मे वट गया। ऐसी अवस्था मे अनुयायियो के लिये धार्मिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन की अपेक्षा अपने सम्प्रदाय की कट्टरता अधिक महत्त्वपूर्ण वन गई, क्योकि सम्प्रदाय के अस्तित्त्व की रक्षा का प्रश्न सर्वोपरि हो गया।

इस प्रवृत्ति में धार्मिक क्षेत्र मे सिद्धान्तो एव विचारो को महत्त्वहीन वनाना शुरू कर दिया तथा सम्प्रदाय की प्रतीक-रक्षा और उसके प्रति कट्टरता अधिक महत्त्व-पूर्ण हो गई। समग्र प्राणी-समाज या मानव-समाज के साथ प्रवर्तको द्वारा उपदिष्ट विचारो का व्यवहार मे अभाव-सा दिखाई देने लगा तथा साम्प्रदायिक उत्तेजना ने लोगो को लगातार सघर्ष मे झौंक दिया।

एक ओर इस प्रकार हिंसा और उत्तेजना वढी तो दूसरी ओर कट्टरता को पुष्ट करने के लिए अधविश्वासो की शृखलाए घडी गई, ताकि सामान्य जन के दिमागो पर ताले लगा कर उनको अपने-अपने वाडो से वाहर निकल कर दूसरो के वाडो मे जाने से रोका जाय। अथवा भावनात्मक महत्व शिथिल वना कर जव धार्मिक परम्पराओ का ऐसा रूप ढलने लगा तो वह युवकवर्ग के लिए पहले उपेक्षा और फिर घृणा का कारण वन गया। धार्मिक क्षेत्र की ऐसी क्षत-विक्षत अवस्था के समय विज्ञान के विकास का युग आरम्भ हुआ।

व्यापक दृष्टि

इसमे कोई सदेह नही कि विभिन्न विचारो एव दर्शनो के प्रवर्तको ने लोक कल्याण को समक्ष रख कर सम्पूर्ण प्राणी-समाज के हित एव मानवता के उद्धार के

लिए ही अपने उपदेश दिए। चाहे राम-कृष्ण हो या महावीर-बुद्ध अथवा मोहम्मद-ईसा या वाद के प्रवर्तक हो—उनकी दृष्टि व्यापक एव यथार्थ थी तथा उन्होने मानवता को टुकडो टुकडो मे कभी देखना पसन्द नही किया, किन्तु प्रवर्तको के शिष्यो ने उनके लाभ को समेटना शुरू किया तो भेद-विभेद की दृष्टिया पैदा हो गई।

धर्म की सार्वजनीन एव सच्ची व्याख्या की जाय तो उसका सम्बन्ध सारे विश्व से, सम्पूर्ण मानवता से जुडेगा। धर्म की विभिन्न व्याख्याए की गई हैं। एक व्याख्या है—धारयति इति धर्म । जो धारण करता है, वह धर्म है। किसी ने धर्म को कर्त्तव्यो के पुज मे देखा तो अधिकाँश ने वाह्य क्रियाकाडो मे। किन्तु इन सारी व्याख्याओ के वीच भगवान् महावीर ने जो धर्म की व्याख्या की है, वह इतनी सार्वजनीन एव सत्य भूमिका पर आधारित है कि वैसी सारपूर्ण व्याख्या अन्यत्र नही मिलती।

भगवान् महावीर ने अपने दर्शन मे धर्म की छोटी-सी किन्तु अत्यन्त ही सारगर्भित व्याख्या की है—

वत्थुसहावो धम्मो

अर्थात् वस्तु का जो स्वभाव है, वही उसका धर्म है। न क्रियाकांड का उल्लेख, न उपदेशो की भनक —यह एकदम वास्तविक व्याख्या है।

वस्तु का स्वभाव क्या—इसे पहले समझ लें। एक दृष्टान्त दे दू । एक लकडी का टुकडा है—उसका स्वभाव है पानी मे तैरना। आप उसे पानी के तले से भी छोडेंगे, तव भी वह पानी की सतह पर आ जाएगा। स्व+भाव का अर्थ है—निज का भाव या मूल स्थिति। किन्तु उसी लकडी के टुकडे को एक लोहे की डिव्वी मे वन्द करके पानी की सतह पर छोडेंगे, तो वह पानी के तले तक दव जाएगा। आप पूछेंगे कि फिर यह लकडी के टुकडे का कौन-सा भाव हुआ ? उसका अपना भाव तो तैरना है, किन्तु वह जव किसी दूसरे के भाव से दवा दिया गया तो पर-भाव मे—पर-प्रभाव मे चला गया तो यह उसका विभाव कहलाएगा। विभाव का अर्थ है—स्वभाव से विपरीत स्थिति।

अव पुन धर्म की व्याख्या पर आइये। वस्तु का जो मूल स्वभाव है, वही उसका धर्म है तथा प्रत्येक वस्तु अपने धर्म मे प्रतिष्ठित रहे—यह सहज स्थिति मानी जानी चाहिये। धर्म की कसौटी पर हम अपनी आत्मा को लें। आत्मा का स्वभाव क्या और, उसका विभाव क्या ? इसे अपनी अन्तरात्मा से पूछो कि कैसा काम करने पर आन्तरिक आनन्द होता है और वैसे आनन्द की अवस्था मे आत्मा कैसा अनुभव

करती है ? शायद इसे कोई भी विवाद का विषय नही मानता कि लोकोपकारी कार्य करने पर आन्तरिक आनन्द मिलता है तथा उससे आत्मा को हलकेपन की अनुभूति होती है। तो यह स्थिति आत्मा का स्वभाव कहलाएगी। इससे विपरीत अन्याय, अपराध करने मे या भोगविलास मे रत रहने मे जो आनन्द का अनुभव किया जाता है, वह आनन्द न स्थायी होता है, न प्रफुल्लतादायक। अत वैसी स्थिति आत्मा के विभाव की होती है, जिसमे वह कर्मों के भार के नीचे दव कर तदनुसार क्रिया करती है।

अत आत्मा को विभाव से हटा कर स्वभाव मे प्रतिष्ठित करना ही धर्म है तथा इस दिशा मे की जाने वाली प्रत्येक क्रिया को धार्मिक क्रिया की सज्ञा देनी होगी।

धारणाओं मे क्रान्ति

वि+ज्ञान को विशेष ज्ञान के नाम से जाना जाने लगा। विज्ञान विशेष ज्ञान क्यो कहलाया, जवकि धर्म का भी मूलाधार ज्ञान ही था। धर्म का पहला मर्म भी ज्ञान के ही आधार पर जाना जा सकता है। धर्म का ज्ञान यदि आपके सामने नही आता है तो धर्म के प्रति श्रद्धा नही होगी यानी दर्शन की प्राप्ति नही होगी। ज्ञान और दर्शन की सशक्त भूमिका पर ही चारित्र के चरण क्रियान्वित हो सकते हैं। यही कारण है कि ज्ञान, दर्शन एव चारित्र को मोक्ष का मार्ग वताया गया। मोक्ष धर्म के उच्चतम विकास का ही तो नाम है। जव धर्म का आधार भी ज्ञान है और विज्ञान का आधार भी ज्ञान है तो फिर विशेष ज्ञान का क्या अर्थ हुआ ?

विज्ञान और धर्म मे ज्ञान के प्रयोग का कुछ अन्तर दिखाई देता है। धर्म मे विचक्षण पुरुषो द्वारा प्रदत्त ज्ञान के आधार पर आचरण का प्रयोग किया जाता है, वहाँ पर विज्ञान मे प्रयोग पहले किया जाता है और प्रयोग की कसौटी पर प्रत्यक्ष खरे उतरने वाले ज्ञान को स्वीकार किया जाता है। ऑक्सीजन और हाइड्रोजन गैसो का मिश्रण किया और वे दोनो गैसें मिल कर अपनी आंखो के सामने पानी वन गई, तव यह सिद्धान्त स्वीकार किया गया कि इन दोनो गैसो को मिलाने से पानी वन जाता है। चूँकि प्रत्यक्ष प्रयोग के आधार पर ऐसा सिद्धान्त वना - ऐसा ज्ञान मिला, अत ऐसे ज्ञान को विज्ञान कहा गया।

क्या विज्ञान की यह प्रणाली सर्वत्र काम मे लाई जा सकती है ? निश्चय ही नही। धार्मिक विचारो का आचरण कुछ ऐसा है, जिसकी साधना जीवनभर की जाती है और जीवनभर की साधना का निर्णय निकाल कर फिर उस पथ पर चलने का समय नही रहता। वैसे महान् त्यागियो ने प्रयोग करके ही अपने जीवन का सार

निकाला और उसे धार्मिक सिद्धान्तों के रूप में जगत् के सामने रखा। धर्म का जगत् सूक्ष्म विचारों एवं भावनाओं का जगत् होता है जबकि विज्ञान का जगत् स्थूल प्रयोगों का जगत् होता है, किन्तु यदि समन्वय की नीति से दोनों जगत् पर दृष्टि दौड़ाई जाय व आलोचना की जाय तो दोनों में परस्पर विरोध के वही चिह्न दिखाई नहीं पड़ते।

किन्तु विज्ञान के विकास के क्रम को देखते हैं तो यह निर्णय निकलता है कि ज्यों-ज्यों विज्ञान का विकास होता गया, प्रचलित धार्मिक धारणाओं पर कुठाराघात होता गया। इसका कारण है कि प्रचलित धार्मिक धारणाएँ अधिकांशत: अन्धविश्वास एवं रूढ परम्पराओं पर आधारित हो गई थी तथा विज्ञान प्रयोग एवं तर्क पर आधारित था। इस स्थिति ने युवा-मस्तिष्कों में हलचल मचा दी एवं वे वैज्ञानिक विचारों तथा निष्कर्षों की तरफ आकर्षित होने लगे। उस समय इस परिवर्तन को धर्मगुरु समझ न सके तथा अपनी उपदेश-शैली में तदनुकूल परिवर्तन भी न ला सके।

धर्म और विज्ञान आमने-सामने

परिणामस्वरूप धर्म और विज्ञान आमने सामने हो गये। धर्मोपदेशक विज्ञान के प्रत्येक विचार एवं अन्वेषण का विरोध करने लगे तो वैज्ञानिकों ने धर्म को अफीम कह कर समाज के लिए अनुपयोगी बता दिया। इस संघर्ष में धर्म की वास्तविकता की ओर किसी पक्ष का पूरा ध्यान नहीं था। यह एक प्रकार से धर्म की प्रचलित रूढ परम्पराओं तथा विज्ञान के प्रयुक्त एवं अनुभूत निर्णयों के बीच युद्ध हो गया। परिणाम स्वाभाविक था कि नई पीढ़ी अन्ध एवं ज्ञानशून्य मान्यताओं के चंगुल से मुक्त हो कर विज्ञान की शरण में जाने लगी। यह एक प्रकार से नई पीढ़ी का अपनी दकियानूस पुरानी पीढ़ी के विरुद्ध विद्रोह भी था।

विज्ञान का जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध एवं वैचारिकता का प्रसार

ज्यों-ज्यों विज्ञान के क्षेत्र में नई-नई खोजें होती गई, नये-नये साधनों का आविष्कार होने लगा और मैंने बताया कि वे साधन प्रतिदिन के जीवन के साथ भी इस तरह जुड गये कि उनके बिना मामूली काम भी नहीं चल सके, ऐसी स्थिति में विज्ञान का जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित हो गया—धार्मिक धारणाएँ जैसे कुछ दूर पड़ गई, क्योंकि उनमें यथासमय वांछित परिवर्तन नहीं लाया जा सका।

विज्ञान का प्रत्येक चरण चूंकि ठोस सत्य पर आधारित होता था, जो नई पीढ़ी के मस्तिष्क में जम जाता था। नई पीढ़ी के लोग जब इस कसौटी पर दोनों प्रकार की धारणाओं की तुलना करने लगे तो निश्चय ही धीरे-धीरे यह प्रवृत्ति घटने लगी कि जो कुछ कहा गया है, उसे बिना तर्क के श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लो, क्योंकि

विज्ञान ने वैचारिकता के प्रसार को भलीभाँति प्रोत्साहित कर दिया था। नई पीढी तव प्रत्येक धार्मिक धारणा पर स्वय विचार करने लगी और तर्क सगत तथ्य न होने पर उसे अस्वीकार करने लगी। धर्मोपदेशक तो उस समय उनकी वैचारिक मांग को भी नास्तिकता का जामा पहिनाने लगे और इस प्रकार प्रत्यक्ष एव परोक्ष रूप से दोनो पक्षो के प्रयासो से धार्मिक वातावरण को आघात ही पहुँचा। धर्म की सेवा करना चाहने वालो से भी वास्तव मे धर्म की सेवा नही हो सकी, कारण वैचारिकता की लडाई वैचारिकता के स्तर पर ही लडी जानी चाहिए थी।

इधर विज्ञान का विकास दिनोदिन चमत्कारिक वनता गया। ऐसी-ऐसी खोजें दुनिया के सामने आईं कि जैसे पुराने विचारो का पूरा का पूरा ढाचा ही हिल उठा।

विज्ञान पर राजनीति हावी

वैज्ञानिक तो निर्लिप्त रह कर ठोस सत्य की खोज करता है और अपने निष्कर्ष दुनिया के सामने रख देता है, किन्तु वैज्ञानिक भी वर्तमान युग मे स्वतन्त्र नही रहा। ज्यो-ज्यो विज्ञान का चमत्कार वढता गया, राजनीति उस पर हावी होती गई। विज्ञान के आविष्कारो का सत्ता के लिए दुष्प्रयोग किया जाने लगा। जापान के नागासाकी एव हिरोशिमा नगरो पर जव पहले अणुवम फैके गये तो उनसे ये नगर ही ध्वस्त नही हुए, वल्कि ये अणुवम एक प्रकार से उन सभी स्वस्थ एव निष्पक्ष विचारकों के मस्तिष्क पर भी गिरे, जो विज्ञान का उपयोग समस्त मानवजाति के कल्याण के हेतु करने के पक्षपाती थे। धीरे-धीरे राजनीति ने विज्ञान का भयकर दुरुपयोग प्रारम्भ कर दिया। सारी दुनिया विभिन्न सत्ता-गुटो मे वँट गई और प्रत्येक गुट ने अपने पास घोरतम भयकर वैज्ञानिक शस्त्रास्त्रो का अम्वार जुटा लिया और आज भी दो-दो महायुद्धो के विनाश के वाद भी ससार हर समय महाभीषण महायुद्ध के आतक से भयभीत वना हुआ है।

वास्तव मे वैज्ञानिक खोज—अणुशक्ति का प्रयोग ससार के भौतिक कल्याण के लिए किया जा सकता है और उससे भूख व गरीवी से तडपती हुई सामान्य जनता को राहत पहुँचाई जा सकती है, किन्तु सत्तालोलुप राजनेताओ के रहते विज्ञान के श्रेष्ठतम आविष्कार भी मानवता का कोई उपकार कर सकेंगे, यह एकदम शका का विषय वन गया है।

विज्ञान के इस सहारक पक्ष ने सारी दुनिया को हिला दिया है और स्तव्ध वना दिया है कि यदि यही क्रम जारी रहा तो कम्प्यूटरो एव राकेटो के नियन्त्रण मे मानवता तो पिस ही जायगी तथा मानव एक शुद्ध मशीन वन कर रह जायगा, जिसे

सत्तालोलुप राजनेता अपनी मर्जी के मुताबिक चलायेगा और स्वतन्त्र चिन्तन का समय मानो समाप्त ही हो जायगा।

विज्ञान के इस अप्राकृतिक आतक ने पुन विचारदृष्टि मे परिवर्तन ला दिया है और अव चिन्तन की दिशाएँ मुड गई हैं।

धर्म की वैज्ञानिकता

दूसरी ओर धार्मिक क्षेत्र मे भी क्रान्ति ने प्रवेश किया और अध व रूढ परम्पराओ से हट कर धर्म की वास्तविकता पर चिन्तन किया जाने लगा, जिसके फलस्वरूप धार्मिक सिद्धान्तो की वैज्ञानिकता पर प्रकाश पडने लगा है। साम्प्रदायिक विवाद कम होने लगे तथा खंडन-मडन का क्रम भी वन्द हो गया। जव वैचारिकता के साथ धार्मिक सिद्धान्तो पर स्पष्ट दृष्टि डाली जाने लगी तो उन सिद्धान्तो का मूल वैज्ञानिक स्वरूप भी सामान्य जन के समक्ष आने लगा।

यहाँ विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों की वैज्ञानिकता पर विस्तार से चर्चा करने का अवसर नही है, किन्तु भारत के विभिन्न दर्शनो मे उन दार्शनिक सिद्धान्तो का विशेप महत्व प्रकट होने लगा, जिनका स्वरूप अधिक वैज्ञानिक एव अधिक सर्वजन-हितकारी था। जैनदर्शन के सिद्धान्त इस दृष्टि से विचारो की श्रेष्ठतम कृतियाँ है। अहिंसा का सिद्धान्त हो या अनेकान्तवाद का सिद्धान्त—इनमे कोई पक्षधरता नही है—सम्पूर्ण मानव-जाति एवं प्राणी-समूह के लिए इनका समान उपयोग है, वल्कि इनका प्रत्येक पहलू तर्कसगत तथा वैज्ञानिक है। इनका ठोस सत्य भी हस्तामलकवत् है कि ये दोनो सिद्धान्त यदि सही निष्ठा से व्यक्तिगत एव समूहगत जीवन मे उतारे जायें तो सारे विश्व की विचारगत एव आचारगत दिशा मे कल्याणकारी नया मोड ला सकते हैं। जैनदर्शन का अपरिग्रहवाद का सिद्धान्त तो आधुनिक साम्यवाद से भी अग्रगामी है, जिसका उद्देश्य शान्ति से, इच्छा से एव त्याग से समाज मे आर्थिक वितरण को समान एव स्वस्थ वनाना है।

आज हम ऐसे युग की देहरी पर खडे हैं, जहाँ दृष्टि की दिशाएँ वदल गई हैं। धार्मिक विवादो एव उसकी रूढ परम्पराओं का एक तरफ खात्मा-सा हो गया है तथा धार्मिक सद्भाव व धार्मिक वैज्ञानिकता का वातावरण वना है, तो दूसरी तरफ इस नई धारणा ने जन्म लिया है कि विज्ञान के दैत्य से यदि मानवता के कल्याण का कार्य सम्पन्न कराना है तो उसे शुद्ध धार्मिकता के नियन्त्रण मे लिये विना काम नहीं चल सकेगा। यदि विज्ञान का दैत्य इस तरह राजनेताओ की नकेल मे चलता रहा तो महाविनाश एव महादासता का युग दूर नही है।

विज्ञानमय ही धर्म है, हो धर्ममय विज्ञान !

अब मानव-मस्तिष्को मे यह धारणा करीब-करीब जमने लगी है कि यदि बिना किसी पक्षधरता के सामान्य रूप से धार्मिक सिद्धान्तो का विश्लेषण किया जाय एवं उन्हे मानव-कल्याण की कसौटी पर कस कर प्रचारित किया जाय तो स्वत ही उन सिद्धान्तो की वैज्ञानिकता उभर कर ऊपर आ जायगी। ज्यो-ज्यो धर्म की वैज्ञानिकता पर अधिक प्रकाश पडने लगेगा, सामान्यजन भी उस ओर प्रभावित होने लगेगा।

धर्म के सार्वजनीन एव वैज्ञानिक स्वरूप पर अधिकाधिक प्रकाश डालना आज के धार्मिक पुरुषो का प्रधान कर्त्तव्य हो जाना चाहिए, क्योकि वैज्ञानिक साधनो ने धन-लिप्सा, सत्ता-लिप्सा एव भोग-लिप्सा की ऐसी आँधी पैदा कर दी है, जिससे घिर कर समूची मानवता कराह रही है। इस कराह को आज धर्मोपदेशक सुनें एव मानव मस्तिष्को को सच्ची शान्ति प्रदान करे, यह उनका परम आवश्यक धर्म हो गया है। धार्मिक पक्ष को आज सामान्यजन के मानस मे सुदृढता से स्थापित करने की महती आवश्यकता है।

एक नया दिशाबोध

धार्मिक पक्ष के प्रबल बनने के साथ एक ओर चिन्तन की दिशा स्पष्टतर होने लगेगी तो दूसरी ओर उसके परिणामस्वरूप सदाचरण का क्षेत्र पनपने लगेगा। समाज में आज जिस रूप मे अनैतिकता का प्रसार हो रहा है तथा स्वार्थ का नगा नाच मचा हुआ है—उस पर रोक लगेगी। नैतिकता के एक सामान्य स्तर की स्थापना हो सकेगी। विचार और आचार की दृष्टि से यह शुभ परिवर्तन एक नया दिशा-बोध देगा।

वह दिशाबोध यह होगा कि विज्ञान को धर्ममय बनाने की चेष्टा की जाने लगेगी। वर्तमान विज्ञान के संहारक-रूप में तब अपने आप परिवर्तन आने लगेगा और इसके कल्याणकारी रूप पर अधिक बल दिया जाने लगेगा। यह माग भी पुरजोर बनेगी कि विज्ञान शक्तिशालियो के अधिकार में नही रहे, बल्कि शक्तिहीनो को सशक्त बनाने के लोकोपकारक कार्य में लगे। ऐसा तभी हो सकता है, जब विज्ञान को धर्म के सुनियन्त्रण में लाया जाय। विज्ञान की शक्ति पीडितो का उपकार करे और धार्मिक निष्ठा को अभिवृद्ध बनाए—ऐसी प्रणाली का विकास करना होगा।

लोक-कल्याण का मार्ग

'विज्ञानमय ही धर्म है एव धर्ममय हो विज्ञान', इसका स्पष्ट अभिप्राय

यही है कि विज्ञान पर धर्म की नकेल डाली जाय, ताकि उससे लोककल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सके।

हम धर्म को आध्यात्मिकता का मार्ग-दर्शक मान सकते हैं तो विज्ञान को भौतिकता का प्रतीक। तो प्रश्न उठेगा कि क्या आध्यात्मिकता एवं भौतिकता परस्पर विरोधी हैं तथा क्या दोनो का समन्वय सम्भव नही है? आत्मा की ओर सम्मुख कराने वाली वृत्ति का नाम ही तो आध्यात्मिकता है। यह वृत्ति सूक्ष्म होती है, वहाँ भौतिकता स्थूलवृत्ति है। सासारिक आवश्यकताओ से सम्बन्धित वृत्ति भौतिकता है। मोटे तौर पर सोचें तो धार्मिक क्रियाओ एव धारणाओ का आधार आध्यात्मिकता है तो वैज्ञानिक प्रयोगो एव निष्कर्षो का आधार भौतिकता। मेरा मानना है कि इन दोनो वृत्तियो मे या धर्म एव विज्ञान के बीच कोई परस्पर विरोध नही है, वल्कि समन्वय की दृष्टि से दोनो की सही जाच-पड़ताल की जाय तो दोनो शक्तिया एक दूसरे की पूरक एव सहायक वन सकती हैं।

घोड़ा विज्ञान का : लगाम धर्म की

मैं इस मान्यता को एक दृष्टान्त से स्पष्ट करना चाहूँगा। विज्ञान को आप एक चपल अश्व मान लीजिए, जो चलने मे इतना तेज है कि उस पर कावू रखना कठिन है। विज्ञान यानी विना लगाम का घोडा। दूसरी ओर धर्म को नियन्त्रण की दृष्टि से लगाम मान लें। विज्ञान के घोडे पर अगर धर्म की लगाम लग जाय, इसका अर्थ हुआ उच्छृंखल भौतिकता पर अगर आध्यात्मिकता का सु-नियन्त्रण हो जाय तो फिर घोडे को कावू मे करना और उसका हर समय सवारी मे उपयोग लेना सरल हो जाएगा। घोड़ा भी नही विगडेगा और सवार का सिर भी नही फूटेगा। लगाम वाले घोडे पर वैठ कर सवार निश्चित लक्ष्य तक तेज गति से पहुँच जायेगा। धर्म और विज्ञान का समन्वय इस रूप मे समाज के लिए वरदान वन जाएगा, वल्कि व्यक्ति भी वैसे सामाजिक धरातल पर दृढता से अपने पैर उठा सकेगा तथा गृहस्थ एव साधु अपने-अपने धर्मों का सम्यक् रीति से पालन करते हुए मोक्षमार्ग की साधना कर सकेंगे।

कर्म मे शूर : धर्म मे शूर

आगम-वाणी मे कहा गया है—

> जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा।

अर्थात् जो कर्म मे शूर होते हैं, वे धर्म मे भी शूर हो सकते हैं, क्योकि मुख्य तत्व है—शौर्य्य का होना। संसार मे रह कर जो अपने शौर्य्यपूर्ण कार्यों से लोककल्याण

□ □

कुप्रथाओं के अनल में मनुज जलता जा रहा है

कुप्रथाओ के अनल मे मनुज जलता जा रहा है

हेज क्या होगा सुता पर, पल रहा है जव दहेज।
व्याहने पर भी सुताएँ, देखती हैं शून्य सेज।
यह न लाई वह न लाई
माल लाने के क्षितिज पर, सूर्य ढलता जा रहा है…

मौत से भी वढ यहाँ पर, मारता है मृत्यु-भोज।
भोज के आयोजनो की, मौज क्या मिलती है रोज।
वेच करके भी स्वय को
आप की ही पीढियो को, आप छलता जा रहा

लाज पर्दे से न रहती, लाज आखो से रही है।
कल कवारी खेलती जो, आज भी लडकी वही है।
पाप से पर्दा नही, पर
वाप[1] से पर्दा रखो यह, खेल चलता आ रहा है

युग वदलता साथ मे ही, रीतिया भी वदल जाती।
उम्र ढलते ही मनुज की, नीतियाँ भी वदल जाती।
सीखिये कुछ वदल जाना
फल वदल करके युगो तक, आम फलता जा रहा है

---

१ ससुर,

8

अनेकान्तवाद
का
अमृतघट

□ □

अनेकान्तवाद वैचारिक विरोधो, सघर्षों और मनभेदो को शान्त करने का सुन्दरतम उपाय है। संसार के सभी क्षेत्रो के विरोध इसका सम्यक् प्रयोग करने पर समाहित हो सकते हैं। तभी परिपूर्ण सत्य प्राप्त हो सकता है। परन्तु मानव अनेकान्त का पुजारी तभी हो सकता है, जब उसमे धैर्य, सहिष्णुता, दूसरो की बात सुनने की क्षमता तथा सन्दर्भों की समझ हो। तत्व एक होता है, उसके पहलू अनेक होते हैं। सत्य-दर्शन के लिए अनेकान्त की आँख का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसी से असीम सत्य का आकलन किया जा सकता है, पकड़ मे तो उसका कुछ ही अश आएगा। अनेकान्त के प्रयोग से विभिन्न धर्मसम्प्रदायो, राजनीतिक वादो, सामाजिक झगड़ो एव विश्व के सभी सघर्षो का अन्त आ सकता है। अनेकान्तरस से पूर्ण अमृतघट कैसे ससार मे शान्ति और अमरता को स्थापित कर सकता है, यह जानने के लिए प्रस्तुत है—सजीव भाषा मे यह प्रवचन ······ ··

८

अनेकान्तवाद का अमृतघट

□ □

सवका सम्मान, खुला दिल रखो, हठवादिता छोड़ो ।
पूर्ण सत्य के दर्शन हेतु खंड-खड सत्य को जोडो ॥

जैनदर्शन का अनेकान्तवाद अथवा स्याद्वाद-सिद्धान्त भगवान् महावीर की अनुपम देन है । इस अमूल्य सिद्धान्त को जितनी गहराई मे उतर कर समझने की चेष्टा की जायेगी, उतना ही इसका व्यापक महत्व प्रकाशित होता जायेगा । आज की जटिलतम विचार-स्थिति मे ऐसा लगता है कि स्याद्वाद के सिद्धान्त को अपनाए विना कही कोई त्राण नही दिखाई देता है । यदि स्याद्वाद के सिद्धान्त को हम लोग और ससार के प्रबुद्ध लोग नकार देते हैं या ठुकरा देते हैं तो वास्तव मे यह विचारशील जीवन की वहुत वडी उपेक्षा होगी ।

वैचारिक वितडावाद एव मतभेदो का आधुनिक युग

जिस समाज मे विचारशील लोगो का वाहुल्य होता है एव विचार की स्वतन्त्रता होती है, वहाँ मतभेद स्वाभाविक है । किन्तु जव इस मतभेद के साथ मनभेद भी जुड जाता है तो वैचारिक वितडावाद हो जाता है ।

वैसे मतभेद हर युग मे रहे हैं और यह स्वाभाविक है कि चिन्तक लोग अपनी अपनी दृष्टि से मौलिक चिन्तन करे और यह जरूरी नही कि सभी लोगो के चिन्तन का निष्कर्ष एक ही निकले। विचारो के आदान-प्रदान से चिन्तन का क्रम बनता है तथा अपने-अपने चिन्तन से अपनी-अपनी मौलिकता के अनुसार एक ही विषय पर कई बार अलग-अलग मान्यताएँ भी बनती हैं। हमारे यहाँ तो कहा गया है—

वादे वादे जायते तत्वबोधः

अर्थात् अलग-अलग विचारो के अस्तित्व मे ही वास्तविक तत्व का ज्ञान होता है। आखिर दोनो पक्षकारो के वकीलो की बहस सुन कर ही जो जज सही निर्णय के स्तर तक पहुँचता है।

धैर्य बहुत कम

आधुनिक युग मे विचार-मथन की प्रणाली की ओर जब दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा लगता है कि अपने-अपने विचारो या वादो के लिए हठाग्रह बहुत ज्यादा है और दूसरो के विचारो या वादो को सुनने के लिए धैर्य बहुत ही कम। इसका स्वाभाविक परिणाम यही देखा जाता है कि अपने-अपने पक्ष की पुष्टि तथा दूसरो के मत का खडन बढ-चढ कर किया जाता है और ऐसे खडन-मडन से अधिक उत्तेजना फैलती है—अधिक द्वेष पनपता है। धार्मिक क्षेत्र मे आज से ३०-४० वर्ष पूर्व ऐसी ही स्थिति थी। विभिन्न सम्प्रदाय परस्पर विचारो का सघर्ष करते थे और खडन-मडन की शैली मे एक उत्तेजनामय वातावरण बना देते थे। सौभाग्य से इस क्षेत्र मे अब वैसे विचार-सघर्ष कम हो गये हैं।

किन्तु राजनीतिक क्षेत्र मे वाद-सघर्ष दुनिया मे बडे जोरो से चले। औद्योगिक क्रान्ति के साथ दुनिया के विचारो मे हलचल मची तथा राज्य-व्यवस्थाओ मे परिवर्तन होने लगे। राजतन्त्र डगमगाने लगे तथा नये-नये जनतन्त्रो का अभ्युदय होने लगा। यह परिवर्तन काफी संघर्ष, काफी रक्तपात के साथ होने लगा। उद्योगो की वृद्धि के साथ एक नये दर्शन ने जन्म लिया, जिसके प्रणेता कार्ल मार्क्स थे, जो मार्क्सवाद या साम्यवाद के नाम से विख्यात हुआ। इस दर्शन ने प्रचलित व्यवस्था को पूँजीवादी व्यवस्था बताया तथा उसे शोषको की व्यवस्था का नाम दिया। इस तरह पूँजीवाद एव साम्यवाद का सघर्ष शुरू हुआ, जो बदले हुए रूपो मे आज भी ससार मे चल रहा है। वैचारिक वितडावाद का प्राधान्य है।

कहने का अभिप्राय यह है कि एक या दूसरी परिस्थिति मे ससार मे विचारो का सघर्ष बराबर चल रहा है और आधुनिक युग मे यह सघर्ष अपनी जटिलतम

अवस्था मे पहुँचा हुआ है। इस समय ऐसे सिद्धान्त की आवश्यकता है, जो विचार-मथन का ज्ञान दे सके एव सत्य-दर्शन की निष्ठा जगा सके।

स्याद्वाद : एक विश्लेषण

ससार मे दो प्रकार के मुख्य सघर्ष होते हैं—एक तो विचारो का सघर्ष तथा दूसरा स्वार्थों का सघर्ष। सभी प्रकार के विवादो को इन दो श्रेणियो मे बाँटा जा सकता है। या तो व्यक्ति अपने ही विचार को सर्वश्रेष्ठ मान कर दुराग्रह पर उतर आता है और इसके लिये हर एक से लडना शुरू कर देता है। उसे अपने विचार का विरोध सह्य नही होता, अत वह पहले वाद-विवाद करता है और बाद मे शुद्ध विवाद के लिये कमर कस लेता है। यही विवाद जब साम्प्रदायिक या समूहगत रूप धारण कर लेता है तो उस विवाद मे समाजगत हिंसा पनपती है। हमने अपने देश मे हिन्दू मुस्लिम-विवाद की हिंसा की अति भी देखी है। विचारो ही के सघर्ष से स्वार्थो का सघर्ष अधिक जटिल बन जाता है, जिसका अमोघ उपाय अहिंसा है। जिस पर हम अभी विचार नही कर रहे हैं। इस समय हम स्याद्वाद के सिद्धान्त का सरल शब्दो मे विश्लेपण करना चाहते हैं, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि यह सिद्धान्त विचार-सघर्षो के निवारण का सुन्दर समाधान है।

तत्त्व एक, पहलू अनेक

किसी भी तत्व या वस्तु का सत्य-स्वरूप समझने की सबकी जिज्ञासा होती है, किन्तु सत्य-स्वरूप कैसे जाना जाय? उसकी प्रक्रिया का सामान्य ज्ञान सबको नही होता। वस्तु या तत्व एक होता है, किन्तु उसके पहलू अनेक होते हैं। जब तक उसके सभी पहलुओ को दृष्टि मे न लें तथा उन सबकी अपेक्षा से उस स्वरूप का मूल्याकन न करें, तब तक सत्य-स्वरूप का ज्ञान नही हो सकता। उदाहरण के लिये हम किसी व्यक्ति को एकान्त रूप से कह दें कि वह पिता ही है। यह सही हो सकता है कि अपनी सन्तान की अपेक्षा से वह पिता भी हो, किन्तु उसके साथ-साथ वह अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र भी होगा—अपने मामा की अपेक्षा से भानजा भी होगा और अपने भानजे की अपेक्षा से मामा भी होगा। इसी प्रकार सम्बन्धो की दृष्टि से या पदो की दृष्टि से या अन्य किसी दृष्टि से उस एक ही व्यक्ति के कई रूप हो सकते हैं, तो फिर उसे एकान्तरूप से पिता ही कैसे कह सकते हैं? इसी प्रकार प्रत्येक तत्त्व अथवा वस्तु के स्वरूप के कई पक्ष हो सकते हैं और उन सभी पक्षो को जान कर ही उस तत्त्व या वस्तु का पूर्ण स्वरूप जाना जा सकता है, किसी एक ही पक्ष को उसका पूर्ण स्वरूप कह कर बताया जाय तो क्या वह सत्य होगा?

सत्य की खोज, संदर्भों की समझ

स्याद्वाद दो शब्दो से बना है—स्यात्+वाद। स्यात् का अर्थ होता है—कदाचित्, यानी यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। वह व्यक्ति अपने पुत्र की अपेक्षा मे पिता भी हो सकता है तो अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र भी हो सकता है। इसे यो कह सकते हैं कि कथचित् वह पिता है, कथचित् वह पुत्र है। केवल पिता ही है या केवल पुत्र ही है—यह कथन सत्य होते हुए भी एकान्त हठ के कारण असत्य कहलायेगा। यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है—इसे ढिलमिलवाद या अनिश्चय की स्थिति न मानें। यह है तो एक अपेक्षा से और वह है तो दूसरी अपेक्षा से। अपेक्षाएँ विविध होती हैं और उन सबके सदर्भ मे ही वस्तु-स्वरूप का निर्णय पूर्णरूपेण हो पाता है। अपेक्षाओ की दृष्टि से ही स्याद्वाद का नाम अनेकान्तवाद के अलावा सापेक्षवाद भी है। अनेकान्तवाद नाम इसलिये है कि अलग अलग अपेक्षाओं के कारण वस्तुस्वरूप का अन्त अनेक स्थानो पर होता है। एक ही स्थान पर अन्त मानने की शैली को एकान्तवाद कहा गया है, जो असत्य का पोषक होता है।

'भी' और 'ही' का भेद

मोटे रूप मे अनेकान्तवाद का प्रतीक है—'भी' और 'ही' एकान्तवाद का प्रतीक है। जहाँ वस्तुस्वरूप का निर्णय लेते समय हम 'भी' का प्रयोग करते हैं तो हम उस स्वरूप की सभी अपेक्षाओ को स्वीकार करते हैं—सभी पहलुओ पर अपनी दृष्टि दौड़ाते हैं। हमने जब यह कहा कि अमुक व्यक्ति पिता भी है तो हमने सत्य ही कहा—चाहे वह पूर्ण सत्य नही है, क्योकि हमने उसकी अन्य अपेक्षाओ का कथन नही किया है। किन्तु इसके विपरीत इसी कथन को यदि यो कहा जाय कि अमुक व्यक्ति पिता ही है, तो इस एकान्त कथन के कारण इस कथन मे सत्याश होते हुए भी वह यथार्थ रूप मे असत्य बन जायगा।

सत्यांशों का आकलन

गम्भीरतापूर्वक विचार करेंगे तो यह कथनभेद साधारण नही लगेगा। हमारा व्यक्ति का तो स्थूल उदाहरण है, किन्तु सूक्ष्म चिन्तन की दृष्टि से भी' समन्वय का प्रतीक है तो 'ही' सघर्ष का। 'भी' के प्रयोग से हम अपने कथन को भी सत्य मानते है तथा दूसरे के कथन मे भी सत्य को खोजते हैं। इस तरह सत्याशो को मिला कर या जोड कर पूर्ण सत्य का दर्शन करने की हमारी प्रवृत्ति बनती है। इस प्रवृत्ति का सीधा लाभ यह होता है कि हम न तो अपने ही विचार की सत्यता के प्रति हठाग्रह या दुराग्रह का भाव रखते हैं और न ही पहली दृष्टि पर दूसरे के विचारो को असत्य

घोषित करने की धृष्टता करते है। हम स्वय का दिमाग खुला रखते हैं कि कोई हमे भी हमारे विचार की असत्यता समझा दे तो हम उसे मान लेंगे और अपनी मान्यता मे से उस असत्य अश को निकाल देंगे। इसके साथ ही हम अपना धैर्य भी अखूट रखते हैं कि जो हमे अपने विचार वतायेगा तो हम उन्हे सम्मानपूर्वक सुनेंगे, उसके साथ सरलता से चर्चा करेंगे तथा उसकी वात मे सत्याश नजर आया तो उसे उस अपेक्षा के साथ ग्रहण करेंगे अथवा उसकी वात मे असत्य नजर आया तो वडी विनम्रतापूर्वक उसे सत्य समझाना चाहेंगे। यह 'भी' का रास्ता है—समन्वय की भावना है, विचार-सघर्ष को दूर रखने का नम्र उपाय है।

हठ : अर्थात् असत्य

अव 'ही' की गति को देखिये। मैंने एक विचार किया और उसकी सत्यता की कसौटी भी अपने ही को मान लिया। इस कारण मैंने जो कुछ कहा, उसको एकान्त रूप से सत्य घोषित कर दिया और हठपूर्वक सवको कहा कि 'मेरा ही कथन सत्य है—जो मेरे कथन के विरुद्ध जाता है, वह असत्य कहता है।' 'ही' के हठाग्रह मे दिमाग पर ताला लग जाता है और वह धैर्य-शून्य वन जाता है। परिणामस्वरूप अपने विचार की परीक्षावुद्धि समाप्त हो जाती है, विरोध को सह सकने की क्षमता नही रहती तथा हर कदम पर उत्तेजना एव हिंसा की उच्छृखल वृत्तियाँ अपना घिनौना सिर उठाती रहती हैं। 'ही' विचार-सघर्ष की आग मे घी का काम देता है। हठ से कभी सत्य नही निकलता, वल्कि सत्याश भी असत्य का रूप ले लेता है। एकान्तवाद या हठाग्रह से सदा असत्य की ही ध्वनि निकलती है। हठवाद पर आधारित विचार-सघर्ष कार्यरूप मे उतर कर साम्प्रदायिक दगे करवाता है, विभिन्न वर्गो के वीच घृणा की भावना फैलाता है तो दो राष्ट्रो या राष्ट्रसमूहो के वीच युद्ध के नगाडे वजवाता है।

अन्धे और हाथी

एकान्तवाद किस प्रकार सत्याशो को भी असत्य मे वदल देता है और किस प्रकार अनेकान्तवाद सत्याशो को जोड कर उन्हे पूर्ण सत्य का रूप दे देता है—इसका स्पष्टीकरण एक कहानी से समझिये।

एक वार कुछ अन्धे व्यक्ति एक हाथी के पास पहुँच गये। हाथी के स्वरूप का उन्हे ज्ञान नही था, न ही उन्होंने उससे पहले कभी हाथी का स्पर्श किया था। अव प्रत्येक अन्धे ने अपनी-अपनी पहुँच के अनुसार हाथी के एक-एक अग पर अपना हाथ रख दिया और स्पर्श से उसके स्वरूप का अनुभव करने लगे। जिस अन्धे का हाथ

हाथी के पैर पर पडा था, वह जोरो से चिल्लाया—"मैंने हाथी का स्वरूप जान लिया है, वह खम्भे के समान ही है।" दूसरे अन्धे का हाथ हाथी की पीठ पर था और वह बोला—"तुम एकदम गलत हो। हाथी तो दीवाल के समान ही है।" जिसने हाथी की पूंछ पकडी- उसने दोनो को झूठा बताते हुए हाथी को रस्सी ही के समान माना। कान पर हाथ रखने वाले अन्धे ने अपने ही अनुभव को सत्य घोषित किया कि हाथी सूप के ही समान है। इसी तरह अन्य अन्धो ने भी हठपूर्वक अपने ही मत को सही बताया। कोई किसी से सहमत नही हो रहा था और सब आपस मे बुरी तरह लडने लगे। सब हाथापाई पर भी आ गये, लेकिन एक ने भी अपना दुराग्रह नही छोडा।

इस विवाद को देख कर एक दोनो आखो वाला विवेकी पुरुष सामने आया, उसने एक-एक अन्धे की बात धैर्यपूर्वक सुनी तथा सारी स्थिति का सही अनुमान लगाया। फिर उसने सभी अन्धो को सम्बोधित करके कहा—

"भाइयो ! हाथी के स्वरूप के सम्बन्ध मे आप लोगो मे से प्रत्येक का कथन सही है किन्तु किसी का भी कथन पूरे तौर पर सही नही है।'

सभी एक साथ चिल्लाये—"यह कैसे हो सकता है?"

विवेकी पुरुष, जिसे स्याद्वादी कह लीजिये, सभी को शातिपूर्वक समझाता हुआ बोला—"हाथी का शरीर बहुत बडा है, आप मे से प्रत्येक का हाथ उसके किसी न किसी एक अग पर पडा है। इसलिये आप स्वय को भी और दूसरो को भी सही मान कर सभी के मतो को एक रूप बना लो तो पूरे हाथी का स्वरूप सामने आ जायगा। किन्तु आप में से हरेक ने अगर अपने ही को सही माना और दूसरो को झूठ तो आपका अपना सही भी झूठ बन जायगा। कारण, कोई भी इसको नही मानेगा कि हाथी खभे के ही समान है या दीवार के ही समान है। परन्तु सब मिल कर जब यह कहेगे कि हाथी खभे के भी समान है, हाथी दीवार के भी समान है, हाथी रस्सी के भी समान है आदि—तो पूरा हाथी खडा हो जायगा।

इसी कहानी को वस्तुस्वरूप पर घटाइये—प्रत्येक विचार के साथ लागू कीजिये, फिर आपको समझ मे आ जायगा कि स्याद्वाद का यह सिद्धान्त कितना समर्थ सिद्धान्त है, जिसमे ससार के विचार-सघर्षो एवं वाद-विवादो को समन्वित करने की अदभुत क्षमता है। यह सिद्धान्त सचमुच मे पूर्ण सत्य का अन्वेषक सिद्धान्त है।

सत्य का साक्षात्कार

जीवन का महान् उद्देश्य माना गया है—सत्य का साक्षात्कार—सत्य का दर्शन। जिन महापुरुषो ने सत्य को खोजा, उन्होने वास्तव मे ससार का महत्तम कार्य किया।

किन्तु सत्य के शत्रु भी ससार मे कम नही है। एकान्तवाद के ऐसे पुजारियो ने सदा ही असत्य एव वितण्डावाद का पक्ष लिया। इस एकातवाद के कारण जन-जीवन आक्रान्त हो जाता है—क्लेशमय बन जाता है। किधर भी दृष्टि डालिये—परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व और यहाँ तक कि धार्मिक क्षेत्र मे भी दुराग्रहो के कारण विविध प्रकार की समस्याएँ पैदा होती रहती हैं। सत्य सुप्त-सा दिखाई देता है और दानवता मानवता को दबोचती रहती है। एकातवादी विचार-प्रणाली के कारण ही युद्धो की विभीपिकाएँ जन्म लेती हैं तथा सघर्षो के काले बादल मडराते हैं। हम दुराग्रही बनते हैं, हठवाद का आश्रय लेते हैं और एकातभाव से अपने ही विचारो को थोपना चाहते हैं तो मैं मानता हूँ कि इस अवस्था मे सत्य का अस्तित्व नही रहता। आप कहेंगे कि सत्य तब कहाँ चला जाता है? तब सत्य एकान्त आचरण मे डूब जाता है। एक मुक्तक प्रस्तुत है—

> सबका सम्मान, खुला दिल रखो हठवादिता को छोडो।
> पूर्ण सत्य के दर्शनहेतु खण्ड-खण्ड सत्य को जोडो॥

सत्य का दर्शन करना है तो सबके विचारो का सम्मान करो और अपने दिल को खुला रखो। इसके साथ ही हठवादिता का पूर्ण-रूपेण त्याग कर दो। पूर्ण सत्य के दर्शन करने का लक्ष्य है तो सत्य की खोज करो और जहाँ जो भी सत्याश मिले, उसे ग्रहण करो तथा सत्याशो को जोड कर पूर्ण सत्य के साक्षात्कार का यत्न करो।

सम्प्रदायवाद या एकान्त आग्रह के अन्दर जो सत्य को ढूँढ रहा है, वह स्वार्थ-दर्शन भले ही करले—सत्य का दर्शन उसे सम्भव नही है। सत्य चैतन्यस्वरूप होता है, उसे जडता मे कैसे खोजा जा सकता है?

सत्य एक दृष्टिया विभिन्न

सत्य एक होता है एव अविभाज्य होता है। सत्य के अन्दर कभी भी भेद नही होते। विद्वान् लोग उसे विविध प्रकार से व्यक्त कर सकते है, किन्तु उसका यह अभि-प्राय नही कि सत्य के अनेकानेक भेद हो। सत्य चन्द्रमा की तरह एक है, उसकी

कलाएँ भले ही विविध दिखाई देती हो। यानी दृष्टियाँ भले भिन्न-भिन्न हो। एक कवि ने वर्तमान समय मे सत्य के स्वरूप के सम्बन्ध मे लिखा है—

सत्य की सुषमा अलौकिक, आज सारी जल गई है।
चांदनी उस पूर्णिमा की, आज सारी ढल गई है॥

सत्य के प्रति यथार्थ चिन्तन किया जाय तो मैं सोचता हूँ कि उस स्थिति मे स्याद्वाद का स्पष्ट स्वरूप समझ मे आ जाएगा कि—

यत् सत्यं तन्मम

अर्थात् ससार मे जो भी सत्य है, वह मेरा है। सत्य जहा भी मिलता हो, वहा से भी ग्राह्य है। सत्य भले ही गिरजाघर मे मिलता हो। मस्जिद या मदिर मे मिलता हो अथवा इस महावीरभवन मे मिलता हो, आप नि:सकोच उसे ग्रहण कीजिए। स्याद्वाद के सिद्धान्त मे परम उदारता समाई हुई है। वहाँ किमी के लिए भेद नही है। दरकार सत्य की है और वह जहा भी मिले-जिससे भी मिले—सहर्ष उसके दर्शन कर लो। स्याद्वाद हृदय मे रम जाय, तव सत्य-दर्शन की लालसा लग जाती है और वैसी अवस्था मे किसी के प्रति राग-द्वेष नही रहता—विग्रह और विरोध नही टिकता। तव सत्य का सही स्वरूप भी समझ मे आ जाता है, जिसका स्वरूप-वर्णन उपनिषदो मे इस प्रकार किया गया है—

एक सत् विप्रा वहुधा वदन्ति

सत्य एक ही है, उसके व्याख्याता कई हो सकते हैं। कवीरदासजी ने भी यही वात वहुत ही सुन्दर शैली मे व्यक्त की है—

कवीरा कुआ एक है, पनिहारियाँ अनेक।
भेदभाव वर्तन वसे, पर नीर एक का एक॥

सत्य की व्याख्या कवीर ने कितनी सरल शैली मे की है? कुआ तो एक ही है, किन्तु उससे पानी भरने वालिया वहुत हैं। उन पनिहारियो ने कुए से पानी निकाल कर अपने-अपने वर्तनो मे भर लिया है तो वर्तनो की अपेक्षा से पानी मे भेद-भाव वन गया है, वरना पानी तो एक का एक ही है। वही हुआ कि सत्य तो एक ही है—उसको देखने वाली दृष्टियाँ भले ही भिन्न-भिन्न एव विविध हो।

सत्य-दर्शन

हमारे गुरुदेव सत्य की पूजा के सम्वन्ध मे एक मेवाडी उक्ति फरमाया करते है—

कोई ध्यावै प्रभुजी, कोई ध्यावै अल्ला ।
सच की करो सेवा या ई बताई सल्ला ॥

कोई किसी महापुरुष को पूजो या किसी गुरु की भक्ति करो, किन्तु मूल वात यह है कि वहाँ सत्य का दर्शन होना चाहिये । सलाह यही है कि सत्य की सेवा करो। परम्पराओ पर झगडने की जरूरत नही है । यह वहुत वडी भ्रान्ति है कि इस युग मे कट्टरता का आश्रय लिया जाय । यह विडम्बना भी होगी, यदि सत्य को चहारदीवारी के दायरे मे ही खोजने का हठाग्रह किया जाय । सत्य के लिये सदा विस्तृत खोज की जानी चाहिये तथा जहाँ भी उसका साक्षात्कार हो, विना किसी भेदभाव के वहाँ पहुँच जाना चाहिये ।

सत्य का आलोक हृदय मे प्रकाशित होता है । कोई कितना ही पढ लो या ज्ञान प्राप्त कर लो, किन्तु यह व्यक्ति की वुद्धि एव भावना के विकास पर निर्भर है कि उसमे सत्य की खोज करने का कितना सामर्थ्य है ? वीतरागदेव ने वताया है कि एक शव्द के अनन्त आशय होते हैं और भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे शव्द के प्रयोग के अनुसार उसका आशय ढूंढना पडता है । किन्तु ऐसे आशय का सही ज्ञान तभी हो सकता है, जव निष्ठा सत्य को खोजने की हो और स्याद्वाद के सिद्धान्त को समझने की हो ।

केवल शव्दो के लेवल पर हम लोग लडने लग जाते हैं, किन्तु जो कुछ भी हम सही दिशा मे भी सोचते हैं, वह पूर्ण सत्य नही, अपितु सत्य का एक अश ही सोच पाते हैं, क्योकि पूर्ण सत्य की साधना एव पूर्ण सत्य का साक्षात्कार एक महत् कार्य है, जो अटूट निष्ठा के वल पर ही सम्पन्न किया जा सकता है। भगवान् महावीर ने सत्य की व्याख्या करते हुए वताया है कि—

सच्च खु भगवं ।

अर्थात्--सत्य ही भगवान् है। अत सत्य की पूजा वास्तव मे भगवान् की पूजा है ।

सत्य, असीम है, अनन्त है

महात्मा वुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द थे । एक वार आनन्द ने वुद्ध से पूछा—"मैं सत्य को पाना चाहता हूँ, कृपा करके मुझे सत्य के दर्शन कराइये । वुद्ध ने मन मे सोचा कि सत्य इतना विराट्, इतना असीम है कि यह आनन्द उसे सीमा मे वाँध कर पा लेना चाहता है—यह कैसे होगा ? वुद्ध तो वड़ी पैनी दृष्टि के महात्मा थे । वे आनन्द से कहने लगे—"आनन्द ! सामने वह वृक्ष देखते हो और उसके नीचे चारो ओर

फैली हुई सूखी पत्तियाँ भी देखते हो, जरा उन सूखी पत्तियो को ले आओ। आनन्द उसी समय उठ खड़े हुए और उस वृक्ष की तरफ चले गये। अपने दोनो हाथो मे जितनी पत्तिया भर कर ला सकते थे, उतनी पत्तियाँ ले कर वे वुद्ध के समक्ष वापिस लौट आए। वुद्ध ने प्रश्न किया—"तुम इतनी ही पत्तिया लाये, क्या वृक्ष के नीचे इतनी ही पत्तियाँ थी ?"

आनन्द ने उत्तर दिया—'भगवन्, पत्तियाँ तो बहुत थी, किन्तु मैं अपने हाथो मे इतनी ही पत्तियाँ ला सका।' तव वुद्ध ने समझाते हुए कहा—"आनन्द ! सत्य तो असीम होता है, किन्तु जो कुछ भी हम देख रहे हैं—अनुभव कर रहे हैं, वह हमारी अपनी क्षमता के अनुरूप ही है। सत्य के कई सिरो मे से एक सिरा किसी व्यक्ति के पास या किसी सम्प्रदाय के पास हो सकता है, किन्तु उसे पूर्ण सत्य नही मान सकते। अगर वह व्यक्ति या सम्प्रदाय उस सत्याश को पूर्ण सत्य मानने का दुराग्रह करे तो वह सत्याश भी असत्य मे वदल जायगा।"

सत्य के विषय मे किसी का इस प्रकार से सोचना उचित नही है कि राम एव कृष्ण ने जो कहा है, वह सत्य ही है तथा किसी और ने कहा है, तो वह असत्य ही होगा। ध्यान रखिये कि एकान्तवाद तो सत्य का शत्रु होता है। सत्य की मजिल तक सुरक्षित पहुँचाने वाला कोई सिद्धान्त है तो वह स्याद्वाद और अनेकान्तवाद का सिद्धान्त ही है। एक मुक्तक प्रस्तुत कर रहा हूँ—

हम सोचते हैं कि हम जैन हैं, हिन्दू हैं और मुसलमान हैं,
अपनी-अपनी कौम और वतन का, सबके दिल मे अभिमान है,
मैं हैरान हूँ आज के लोग अनेकान्तवाद को कैसे भूल जाते हैं—
कि हम सबसे पहले एक हैं, क्योंकि हम सब इन्सान हैं ॥

सत्य की शोध मानवता के सवर्धन हेतु की जाती है। अत सत्य की शोध मे सारे भेदभाव भुला कर सवको कन्धे से कन्धा मिला कर साथ-साथ मे चलना चाहिये, वल्कि नारा यह होना चाहिये—

संगच्छध्वं, संवदध्वम्

सव साथ-साथ चलें और सगत वात कहे। यदि सव साथ-साथ चलें, संघर्ष न हो तो हमारी सारी गुत्थियाँ स्वय ही सुलझ जायेंगी। किन्तु ऐसा होना केवल स्याद्वाद के प्रति निष्ठा रखने से ही संभव होगा।

अनेकान्तवाद का अमृत

अनेकान्तवाद के इस विश्लेषण मे इतना तो स्पष्ट हो गया होगा कि सत्य की वेदी तक पहुँचाने वाला इससे अधिक सशक्त सिद्धान्त अन्य कोई नही दिखाई देता है।

एक प्रकार से यह अनेकान्तवाद का सिद्धान्त अमृत का रूप है, जिसे विधिपूर्वक पी लेने से सत्य के दर्शन होते हैं । जिस आत्मा को सत्य के दर्शन हो—उसकी भव्यता एव महानता अवर्णनीय ही होगी। किन्तु इस अमृत के महत्व को सामान्यरूप से सारा जगत् समझे और अपने वाद-विवादो का समाधान इस सिद्धान्त की छाया मे ढूढे तो इसमे कोई सन्देह नही कि सत्य-दृष्टि, शान्ति-लाभ एव सामूहिक व सामाजिक सदाशयता के सन्दर्भ मे एक प्रकार से धरती पर स्वर्ग ही उतर आयगा।

मेरी हार्दिक मनोकामना है कि जागृति की आखे खुले और ससार भगवान् महावीर के इस आलोक को आत्मसात् कर सके। प्रत्येक प्रवुद्ध आत्मा को इस दिशा मे अपना सत्प्रयास करना चाहिये, क्योकि यदि ऐसा हो सका, यानी ऐसा होने की दिशा मे चरण भी वढ़ सके तो यह लोक-कल्याण का महान् कार्य होगा। फिर ससार मे सत्य का ही शासन होगा, सत्य ही सबका मार्गदर्शक बनेगा और अनेकान्त के अमृतघट से चारो ओर मगल ही मगल परिलक्षित होगा।

□

□ □

देवता अव इस धरा पर जन्म ले कर क्या करेंगे ?

देवता अव इस धरा पर जन्म लेकर क्या करेंगे ?
देखकर कठिनाइयो को, वे नहीं कैसे डरेंगे ?....

जानते हैं देवता यूं, है मनुज उपकारकर्त्ता।
गुणानुरागी, स्वार्थ त्यागी, दुखियो का भारहर्त्ता।
जन्म हमको भी मिले यह
सयमी वन कर स्वय हम, भीम भवसागर तरेंगे....

रहा नहीं संयम, उपेक्षा हो रही कर्त्तव्य की भी।
शेप भी स्मृतियाँ नही है, पूज्यपद स्मर्त्तव्य की भी।
नीति केवल वन गई यह
चुने गये इस क्षेत्र से तो, हम हमारा घर भरेंगे...

दुग्ध, घृत-मक्खन-दही पर, जी चलाना व्यर्थ होगा।
चाय का प्याला मिलेगा, अर्य का यह अर्थ होगा।
देवस्थानो के निकट।
मत्त हो कर मद्यपायी रात क्या दिन मे फिरेंगे..

देवताओ! हो जहाँ पर, आपको रहना वहीं है।
आपके लायक अभी इस स्थान को समझा नही है।
हम मिलेंगे जव 'कमल' तव
आपके प्रस्ताव पर फिर चर्चणा विस्तृत करेंगे....

□ □

१

आँखें जब खुल जाती हैं

☐ ☐

जब आलोक भरपूर हो, आँखें खुली हों, तभी पैरों की गति सक्रिय और लक्ष्य की ओर होती है। आत्मा का नेत्र सम्यग्ज्ञान है, उसका प्रकाश जब आत्मा में व्याप्त हो जाता है, या यों कहिये कि आत्मा का अपना बुझा हुआ मोहावृत प्रकाश जब प्रगट हो जाता है, तब जो कुछ भी क्रिया होती है, वह उत्तम होती है, बन्धन को काटने वाली होती है। आत्मा के भ्रमण की प्रक्रिया को तत्वज्ञान के इसी आलोक के प्रकाश में कैसे देखा जा सकता है और ज्ञान पर आया हुआ आवरण कैसे दूर किया जा सकता है? इन सब जिज्ञासाओं का सही समाधान प्रस्तुत प्रवचन में पढ़िए··· ··· .

६

आँखें जब खुल जाती हैं !

□ □

यदि ज्ञान की ज्योति नहीं है, अंधकार अति-अंधकार है ।
उग्र उग्रतम क्रियाकाड भी, बुझे दीप-से सब असार हैं ॥

यह सारा ससार—इसके सारे दृश्य उसी के लिये दर्शनीय है, जिसके आँखें हैं । इसीलिये तो कहा है कि 'आँख है तो जहान है ।' उसके बाद आँखें भी हो, मगर अंधकार ऐसा हो, जिसको आँखें न बेध सके, तब भी बात वही की वही हो गई, दृश्य फिर भी दर्शनीय नही होते । अत आवश्यक है कि आँखे भी खुली हुई हो तथा आलोक भी फैला हुआ हो और यह आलोक जितना प्रखर होगा, उतना ही प्रत्येक दृश्य एव प्रत्येक स्वरूप अधिक निखर कर दीखेगा ।

जब आलोक भरपूर होगा व आँखें खुली होगी तो दृष्टिगत सारे दृश्य का दर्शन सुलभ होगा और तब आँखो के सरक्षण मे पैरो की गति भी सक्रिय बन जायेगी । इसी दृष्टि से आलोक के ज्ञान का महत्व सर्वोपरि माना गया है ।

ज्ञान ही आत्मा आत्मा ही ज्ञान

श्रमण भगवान् महावीर ने ज्ञान के विशिष्ट महत्व का उल्लेख करते हुए फरमाया कि—

नाणे पुण णियमं आया ।

अर्थात् ज्ञान आत्मा का निज गुण है, जिसे हम यो कह सकते हैं कि ज्ञान ही आत्मा है तथा जो आत्मा है, वही ज्ञाता है । आगे कहा है—

जे आया से विण्णाया ।
जे विण्णाया से आया ।।

व्यवहारनय मे ज्ञान और आत्मा मे भेद है, किन्तु निश्चयनय मे ज्ञान और आत्मा मे कोई भेद नही माना गया है । इसीलिये कहा गया है कि जो आत्मा है, वही ज्ञान है एव जो ज्ञान है, वही आत्मा है ।

स्वरूप का निखार

आत्मा का मूल स्वरूप ज्ञानमय कहा गया है और इसी दृष्टि से ज्ञान आत्मा का निज गुण है । इस मूल स्वरूप पर ज्यो ज्यो मैल चढता जाता है—ज्ञानगुण नीचे दवता जाता है एव धूमिल वनता जाता है । कभी कभी ज्ञानगुण इतना दव जाता है कि आत्मा पूर्णतया अज्ञान मे ही भटकती हुई-सी दिखाई देती है । किन्तु जव इस मैल को—जो कर्म-वध के माध्यम से लिप्त होता है—धोने का प्रयास प्रारम्भ किया जाता है तो आत्मा का स्वरूप निखरने लगता है । जिनका अर्थ है कि आत्मा की आन्तरिकता में ज्ञान का आलोक प्रसारित हो जाता है । यही ज्ञान आत्मा को सिद्ध स्थिति मे पूर्णतया ज्योतिस्वरूप वना देता है ।

ज्ञान तो है, किन्तु उसका ज्ञाता यह आत्मा ही मानी गई है तो आत्मा के स्वरूप पर एक दृष्टिपात कर लिया जाना चाहिये ।

अन्धकार कव, आलोक कैसे ?

समस्त आत्माओ को दो भागो मे विभाजित कर सकते हैं—एक तो ससारी आत्माएँ तथा दूसरी सिद्ध आत्माएँ । सिद्ध आत्माएँ वे हैं, जो अपनी आत्मा के स्वरूप को पूर्णतया निर्मल वना कर जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो चुकी हैं एव मोक्ष मे ज्योति मे ज्योति के समान एकाकार ,होकर विराज रही हैं । उनका गमनागमन समाप्त हो चुका है तथा उनका स्वरूप अव सदा एक-सा आलोकमय-ज्ञानमय वना रहेगा ।

ससार के ये सारे दृश्य ससारी आत्माओ के कारण हैं । वे आत्माएँ, जो अव तक सिद्ध नही हो सकी है और भव-भ्रमण करती हुई ससार के जन्म-मरण के चक्र मे चल रही हैं—वे ससार में परिभ्रमण करने के कारण ससारी आत्माएँ कहलाती है । सिद्ध-आत्माएँ पूर्णतया ज्ञानालोक से आलोकिक होती हैं तो ससारी आत्माएँ अपूर्ण होने से अलग-अलग स्थितियो मे दिखाई देती हैं । कही ज्ञान का अधिक प्रकाश है, तो कही सामान्य, अथवा अधिकाशत अज्ञान का अन्धकार फैला हुआ दिखाई देता है । ससारी आत्माओ मे भी भव्य आत्माएँ साधना के पथ पर आगे चलती हुई ज्ञान के अधिका-

धिक आलोक मे रमण करती है तथा पूर्णालोक की दिव्य-स्थिति मे पहुँचने की अभिलाषा रखती हैं।

जब किरणें फूटती हैं

जब तक आत्मा अपने निज के स्वरूप को नही पहिचानती है, वह अज्ञान के अधकार मे भटकती रहती है—कभी-कभी किसी प्रकाशरेखा से आत्मा मे जागृति का अश आता है तो वह ध्यान लगाती है और अपनी अन्धकारमय स्थिति के कारणो को खोजती है। इस निष्ठापूर्ण चिन्तन मे ज्ञान की जब किरणें फूटती हैं तो आत्मा ज्यो-ज्यो निजगुण को परख कर ग्रहण करती है, उसके अन्तस् मे ज्ञान का आलोक व्याप्त होता जाता है। मूल सत्र यह है कि आत्मा मे सावधानी आए तो आत्मा स्वय ही ज्ञाता है। यह सावधानी कब आती है ? असावधानी क्यो बनी रहती है ? इस गतिचक्र को समझने के लिए हमे कर्मसिद्धान्त के सन्दर्भ मे नौ तत्वो पर सामान्य रूप से दृष्टिपात करना होगा, जिससे यह ज्ञात हो सके कि आत्मा का अन्धकार क्या है ? उसमे आलोक कैसे फैल सकता है ? तथा आत्म-जागृति के सभी विन्दुओ मे ज्ञान का सर्वोपरि महत्व क्यो माना गया है ?

नौ तत्त्व

यह दृश्यमान जगत् दो तत्त्वो के मेल से निर्मित हुआ है। ये दो तत्त्व हैं—जीव एव अजीव अथवा चेतन एव जड। जीव या चेतन-शक्ति आत्मा है तथा उसके सिवाय सारी चीजें अजीव या जड हैं। आत्मा अमर, अनिश्वर एव अरूपी होती है। अत चर्मचक्षुओ से दिखाई नही देती। जो कुछ ससार दिखाई देता है, वह सब जड है। जड को पौद्गलिक भी कहा गया है, यानी यह सारा ससार पुद्गलो की माया है, जिसका स्वरूप रूपी होता है तथा स्वभाव नाशवान। पुद्गल नष्ट-विनष्ट होता रहता है और नये-नये रूपो मे ढलता रहता है। ये सारे शरीर भी पौद्गलिक एव जड हैं, जिनमे आत्माओ के निवास के कारण प्राणो की हलचल दिखाई देती है। यह हलचल चेतन और जड के मेल से बनती है। चूँकि शरीर मे आत्मा है—जीवन का सक्रिय रूप दिखाई देता है और आत्मायुक्त शरीर भी अपनी चैतन्यशक्ति के आधार पर नई-नई वस्तुओ एव शक्तियो की रचना करता है। इस प्रकार जीव तथा अजीव के सयोग से यह सारा ससार है तथा उसका सारा गतिशील ढाचा है।

ससार के ससरण के भीतरी रहस्य को जानने के लिये जब आगे बढते हैं तो इन दो तत्त्वो के आगे नौ तत्त्वो तक चलना होगा। कुल नौ तत्त्व इस प्रकार हैं—१. जीवतत्व, २ अजीवतत्व, ३ पुण्यतत्व, ४ पापतत्व, ५. आश्रवतत्व, ६ सवर

तत्व, ७. निर्जरातत्व, ८. वधतत्व एव ९ मोक्षतत्व। अब इन सभी तत्वो के प्रसग से ससार के ससरण तथा आत्मा के परिभ्रमण को समझना होगा। नौ तत्व एक प्रकार से ज्ञान की प्रथम प्रकाशकिरण है, जिसके आलोक मे आत्मा का निजस्वरूप एव निजगुण पहिचाना जाता है।

आत्मा और शरीर के सयोग मे क्रियाशीलता स्वाभाविक है और ससार की किसी भी शुभ अथवा अशुभ क्रिया मे आत्मा के साथ कर्मों का वध होता है—यह वधतत्व का ज्ञान है। जैसे तैल मालिश किये हुए वदन पर रेत के कण अपने आप चिपक जाते हैं, उसी प्रकार अमुक क्रिया करने पर अमुक प्रकार के कर्म आत्मा मे चिपक जाते हैं, जो समय पर अपना तदनुसार फल दे कर ही छूटते हैं।

आत्मा के साथ वधे हुए कर्म यो तो आठ माने गये हैं, किन्तु मोटे तौर पर उन्हें दो श्रेणियो मे वाँट सकते है और उनके अनुसार पुण्यतत्व एव पापतत्व का निरूपण किया गया है। शुभकार्यों के करने पर पुण्यकर्मों का वध होता है तो अशुभ कार्यों से पापकर्म का वध। मुख्यरूप से ९ प्रकार के कार्यों से पुण्य तथा १८ प्रकार के कार्यों से पापकर्म का वध होना वताया गया है। पुण्य ९ है—अन्न, पान, स्थान, शय्या व वस्त्र का दान, मन, वचन एवं काया का शुभत्व तथा नमस्कार। १८ पाप हैं—जीवहिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, कलक लगाना, चुगली करना, रति-अरति, कपटपूर्ण मिथ्या तथा मिथ्या दर्शन। पुण्यकर्मों का फल शुभ होगा—अच्छा जीवन, अच्छे साधन और अच्छे सयोग मिलेंगे। इसके विरुद्ध वुरा जीवन, वुरे साधन तथा वुरे सयोग के रूप मे पापकर्मों का अशुभ फल भुगतना होगा। जैसा भी फल हो, फल को भोगे विना कर्मवध से छुटकारा नही मिलता है।

कर्मों की प्रक्रिया का ज्ञान आश्रव, सवर एवं निर्जरातत्त्वो से होता है। कर्मों के आने को आश्रवतत्त्व कहा है। जैसे एक हौज मे नाली से पानी आता है, और हौज भरता है। उसी प्रकार अमुक-अमुक क्रिया के फलस्वरूप आत्मा के साथ कर्मों का वध होता है, जिसका स्रोत आश्रव होता है। आश्रव को रोको, यानी आत्मा के साथ कर्मवध न होने दो, अपने विवेक से एव अपने ज्ञान से—तो उसे सवरतत्त्व कहते हैं। हौज में नाली से आने वाले पानी को रोक देना सवर है और उसके वाद हौज मे पडे हुए गन्दे पानी को वाहर उलीच कर फैंक देना निर्जरा है। निर्जरा के वाद वध का सिलसिला समाप्त हो जाने से मोक्ष प्राप्त हो जाता है—वध से मोक्ष, जिस परम अवस्था मे आत्मा अपने समस्त कर्म-मल से मुक्त हो कर शुद्ध, वुद्ध एव सिद्ध आत्मा वन जाती है। इस प्रकार आत्मा का ससार मे परिभ्रमण का गतिचक्र नौ तत्त्वो के ज्ञानमय प्रकाश मे स्पष्ट होता है।

सम्यग्ज्ञान : साधना क्षेत्र

ज्ञान का अर्थ है—जानना। जानना अच्छा भी हो सकता है बुरा भी हो सकता है सच्चे स्वरूप को जानना भी जानना है और झूठे स्वरूप को भी जानना ही होता है। इसलिए ज्ञान के पहले सम्यक् शब्द जोडा गया है तथा मोक्षप्राप्ति के तीन रत्नो मे पहला रत्न सम्यक्ज्ञान को बताया गया है। ज्ञान वही सच्चा होता है जो सत्य की कसौटी पर खरा उतरता हो।

जैन-आगमो मे ज्ञान के पाँच भेद बताये गये हैं—१ मतिज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मन पर्यायज्ञान तथा ५ केवलज्ञान। पहला क्रम मतिज्ञान का है कि अपनी बुद्धि का श्रेष्ठ विकास हो और वह अपनी प्रेरणा से ज्ञान का सचय करे—अध्ययन एव मनन द्वारा। फिर उस ज्ञान को अधिक ज्ञानियो से सुन कर या आप्तपुरुषो के वचनो को पढ-जान कर अभिवृद्ध बनाया जाय—वह श्रुतज्ञान का अर्थ हुआ। अवधि का अर्थ समय से है तो इस जन्म से पहले के जन्म की अवधि का ज्ञान प्राप्त हो—वह अवधिज्ञान कहलाता है। यह पूर्वजन्म का ज्ञान होता है। दूसरो के मन के विचारो को बिना उसके द्वारा प्रकट किये ही जान लेना मन पर्यायज्ञान की शक्ति से सम्भव होता है। अपना आत्मस्वरूप—अपना मन इतना निर्मल बन जाय—पारदर्शी हो जाय कि उसके सामने जो भी आए, वह प्रतिबिम्बित होने लगे—वैसी अवस्था मन पर्यायज्ञानी की होती है। सामने वाले का मन अपने मन मे प्रतिबिम्बित हो जाता है और उसके मन का सब कुछ अपने ज्ञानपथ मे आ जाता है। अन्तिम एव सर्वोच्च ज्ञान है—केवलज्ञान। ज्ञान की परमोत्कृष्ट अवस्था मे केवलमात्र ज्ञान ही रह जाता है, यानी आत्मा का जो कुछ स्वरूप होता है वह सम्पूर्णतया ज्ञानमय हो जाता है। आत्मा का निजगुण ज्ञान अपनी परम विकसित अवस्था को प्राप्त होता है, तब वह आत्मा केवलज्ञानी कहलाती है। केवलज्ञान और मोक्ष मे अधिक अन्तर नही रहता।

इस रूप मे आत्मा की साधना का प्रधान एव पहला क्षेत्र है—ज्ञान का क्षेत्र। इस क्षेत्र मे वह निरन्तर साधना करती रहे तथा मति, श्रुत आदि ज्ञानो के सोपानो पर चढती हुई केवलज्ञान के सर्वोच्च शिखर पर आरूढ हो—यह साधना का सर्वोच्च परिणाम होगा।

ज्ञान जब सम्यक् का आलोक खो देता है और अधकारमय बन जाता है, तब वह अज्ञान कहलाता है। इससे अज्ञान के तीन भेद माने गये हैं—१ मति-अज्ञान,

२ श्रुत-अज्ञान एव, ३ विभगज्ञान । बुद्धि और श्रवणशक्ति जब अज्ञान के अँधेरे मे भटकने लगे तो उसका निश्चित परिणाम ज्ञान का विभग ही होगा । इस कारण इस तत्त्व को हृदय मे धारण कर लीजिये कि ज्ञान की सार्थकता सम्यकत्व एवं सत्य से जुडने पर ही प्रकाशित होती है ।

आत्मा की तीसरी आँख

सम्यग्ज्ञान को आत्मा का तीसरा नेत्र मान लीजिये । क्योकि तीसरा नेत्र खुले विना शिवत्व कैसे प्राप्त हो सकता है ? ज्ञान के तीसरे नेत्र के खुलने से अज्ञान जल जाता है और आत्मा ज्ञान से परिपूर्ण वन कर शिव यानी कल्याण के पथ पर अग्रसर वन जाती है ।

आत्मज्ञान . परमज्ञान

ज्ञान के स्वरूप को सभी दार्शनिको तथा विचारको ने आत्मोत्थान-कारक वताया है । महाकवि शेक्सपियर के शब्दो मे 'ज्ञान वह पख है, जिसकी सहायता से हम स्वर्ग मे उड सकते हैं ।' कन्फ्यूशस ने ज्ञान को आनन्ददाता वताया है । वैदिक दार्शनिको ने भी सम्यग्ज्ञान को सर्वोच्च महत्व दिया है तथा उसे ब्रह्मज्ञान की सज्ञा दी है । मुण्डकोपनिषद् मे कहा गया है—

ब्रह्मविद्या सर्वविद्या-प्रतिष्ठाम् ।

महाभारत ने भी इस मत को पुष्ट किया है—

आत्मज्ञान परमज्ञानम् ।

ज्ञान की खोज मे महावीर-दर्शन वहुत गहरे मे उतरा है तथा भेद-विज्ञान इसकी वहुत वडी विशेषता है । आज हम देखते हैं कि सैकडो मत-मतान्तर केवल क्रियाकाडो के आधार पर ही पनप रहे हैं—अन्ध-श्रद्धा पर चल रहे हैं । वहाँ भगवान् महावीर का दर्शन ज्ञानोपयोग को प्रधानता दे कर चला और चल रहा है । महावीर ने कहा—

नाणं पयासयं ।

अर्थात् ज्ञान प्रकाशक है और यदि ज्ञान का प्रकाश नही है और आँखें उसमे खुली हुई नहीं हैं तो पाँवो के चलने का क्या सार निकलेगा ? पैरो ने पहले नेत्रो की आवश्यकता होती है और ये नेत्र होते हैं—ज्ञान के नेत्र । सत्यमय ज्ञान के आलोक में जीवन का एक-एक अग—एक-एक क्रम पूर्ण स्पष्ट हो जाता है ।

ज्ञान पहले और क्रिया बाद में

जीवन के स्वस्थ विकास की दिशा में ज्ञान को प्राथमिक महत्व दिया गया है। यदि नेत्र प्रकाश में खुले नहीं हैं तो पाँव कहाँ चलेंगे—कैसे चलेंगे ? अंधकार में उठे हुए पाँव भटक ही सकते हैं—काँटों और पत्थरों में उलझ ही सकते हैं। इसी उद्देश्य से कि क्रिया की कर्मठता के पहले ज्ञान का आलोक आँखों में समाना आवश्यक है। महावीर प्रभु ने फरमाया है—

भेदविज्ञान

ज्ञान के इस प्राथमिक महत्व को हृदयंगम करने की आवश्यकता है। जिस भेदविज्ञान के बिना श्रावकत्व तो क्या, सच्चा सम्यक्त्व भी नहीं आ सकता है, उसका ज्ञान आज विस्मृत-सा होता जा रहा है। वर्तमान जीवन की पद्धति इतनी उलझन-पूर्ण एवं जटिल हो गई है कि इसमें आप लोगों को नियमित स्वाध्याय का समय ही नहीं मिल पाता है। तब नये ज्ञान की प्राप्ति एवं पुराने ज्ञान की स्मृति का आपको अवसर ही कहाँ मिलता है ? ऐसे भी कुछ कारण हैं, जिनसे समाज में आँखों के पहले पाँवों का निर्माण करने को बल मिलता है, किन्तु ऐसी स्थिति श्रेयस्कर नहीं मानी जा सकती है। यह क्रियाओं का खण्डन नहीं है, क्योंकि सम्यक्ज्ञान को पहले प्राप्त किये बिना सम्यक् क्रियाओं की आराधना कैसे की जा सकेगी ?

ज्ञान, दर्शन, क्रिया

वीतराग-दर्शन की प्रमुख विशेषता यह है कि वह केवल श्रद्धा पर ही आधारित नहीं है। यहाँ श्रद्धा को दूसरे क्रम पर स्थान प्राप्त हुआ है तथा ज्ञान का क्रम पहले रखा गया है। सम्यक्ज्ञान-दर्शन-चारित्र का यही अर्थ है कि पहले सही जानो उसे सही मानो और तब सही जानने और मानने को अपने करने में उतारो। कई लोगों द्वारा दर्शन का ज्ञान से पहले निरूपण एकांगी कहा जायगा। वास्तव में सम्यक्दर्शन भी ज्ञानरहित अवस्था नहीं है। दर्शन ज्ञानपूर्वक ही होता है तथा होना चाहिए। सम्यक् ज्ञान के प्रकाश में सच्ची श्रद्धा जन्म लेती है और श्रद्धा से भरा ज्ञान सुदृढता से आचरण के क्षेत्र में चरण बढाता है। तत्वार्थसूत्र (उमास्वाति) तथा अनन्त-चतुष्टय (आचार्य हेमचन्द्र) में भी ज्ञान के बाद ही दर्शन का क्रम रखा गया है। सर्वप्रथम वीतराग के अनन्त ज्ञान-विज्ञान को ही महत्व दिया गया है। कहा है—

अनन्तविज्ञानमतीतदोषम् [1]

ऐसे अनेक उदाहरण हैं जिनमें सबसे पहले ज्ञान की गरिमा का वर्णन है। किन्तु खेद का विषय है कि हम सबसे अधिक इस ज्ञान से ही अपना मुख मोड़ते चले

जा रहे हैं। आज जो थोथा वादविवाद होता है—उसमे सही तत्वज्ञान का अभाव ही तो दिखाई देता है।

ज्ञानरहित क्रिया अवरोध

जैन आचार्यों ने "ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्ष" कहा है, किन्तु यहाँ भी ज्ञान का क्रम पहले इसी दृष्टि मे है कि ज्ञानपूर्ण क्रिया की आराधना की जायगी, तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकेगी। ज्ञानहीन क्रिया जीवन-विकासक नही होगी। राष्ट्रसन्त उपाध्याय श्रीअमरमुनि के शब्दो मे स्पष्ट उल्लेख है कि उग्र मे उग्र क्रियाओ की भी आराधना की जा रही है, किन्तु यदि वे ज्ञानशून्य हैं तो उनका जीवन के विकास की दृष्टि से कोई अर्थ नही। सुनिये—

> यदि विवेक की ज्योति नहीं है
> अंधकार, अति अंधकार है।
> उग्र, उग्रतम क्रियाकाड भी
> बुझे दीप-सा सब असार है॥

इस सन्दर्भ मे एक कथा याद आ गई है। एक बार कैलाशपर्वत पर पन्द्रह सौ तीन तापस तपस्या कर रहे थे। कोई औंधे वृक्ष से लटके हुए थे, तो कोई काटो की शय्या पर सो रहे थे। कोई भीषण अग्नि का ताप सहन कर रहे थे, तो कोई अन्य प्रकार से भयकर शरीर-कष्ट झेल रहे थे। कई महीने-महीने तक भूखे रहते और सुई की नोक पर आये उतने-से अन्न मे पारणा करते थे। इतनी कठोर तपस्या के बावजूद उनमे से किसी की मुक्ति नही हो रही थी। गौतम गणधर जब उधर निकले तो उन तापसो के रोमाचपूर्ण तपाराधन को देख कर बोल उठे—

"अहो कष्टं, अहो कष्ट, पुनस्तत्व न ज्ञायते।"

इतना भीषण कष्ट उठा रहे हैं, किन्तु इन्हे सत्य तत्व का कोई ज्ञान नहीं है। भगवान् ने कहा—"क्रिया है, किन्तु विवेक एव तत्वबोध के अभाव मे वह निष्प्राण तथा निष्प्रभाव है।"

आप लोग भी सामायिक-प्रतिक्रमण-पौषध आदि क्रियाएँ करते हैं तथा उपकरणो की रक्षा करते हैं, किन्तु क्या आपकी भी दशा उस पठान जैसी नही है? इसके लिए पठान का किस्सा सुनिये। एक बैंक मे एक पठान चौकीदार था। बैंक मैनेजर जब शाम को अपने घर जाने लगे तो उन्होंने पठान को कहा—मैंने बैंक के दरवाजे पर ताला लगा दिया है तथा ऊपर चिट भी चिपका दिया है, तुम बराबर चौकसी रखना। यह कह कर मैनेजर चले गये। पठान चौकीदारी करने लगा। रात

को चोर बैंक के पीछे की दीवार तोड कर भीतर घुस गये, पठान देखता रहा। फिर उन्होंने तिजोरियाँ तोडी—सारे नोट निकाले, मगर पठान देखता हुआ भी कुछ बोला नही। सुबह जब मैनेजर ने बैंक की यह हालत देखी तो वे पठान पर चिढे—'तुम चौकीदारी कर रहे थे या नीद निकाल रहे थे ?, पठान ने सीधा-सा उत्तर दिया—"मैंने एक मिनिट के लिए भी नीद नही निकाली, मैं तो चोरो की सारी हरकतें देख रहा था।" मैनेजर बिगड़े—'फिर तुमने उन्हे रोका क्यो नही या चिल्लाये क्यो नही ?' पठान बोला—"मैं क्यो चिल्लाता ? आप तो दरवाजे का ताला और उसका चिट देख लीजिए—वैसे के वैसे लग रहे है, बस मेरी यही जिम्मेदारी थी।" यह सुन कर मैनेजर ने सिर पीट लिया।

क्या आपके क्रियाकाड भी कही पठान की तरह तो नही चल रहे हैं—इसके लिए अपने भीतर झांकें, समनियत देखें और अपने आपको सुधारें। बिना ज्ञान की थोथी क्रियाएँ जीवन मे कोई सुधार नही ला सकती हैं। क्रियाओ के इस अन्धेपन को दूर करिए, तभी क्रिया का भीतरी मर्म भी समझ मे आयेगा तथा आत्मसुधार भी होगा।

अनन्त आलोक

ज्ञानालोक अनन्त और असीम होता है और आत्मा जब इस ज्ञानालोक मे मे चिररमण करती हुई इसकी अनन्तता मे अन्तिम रूप से विलीन हो जाती है, तो वहीं इसका मोक्ष हो जाता है। सिद्धशिला पर सभी सिद्धआत्माएँ ज्योति मे ज्योति की तरह घुल-मिल कर ज्ञानरूप बनी हुई हैं तथा नई सिद्ध होने वाली आत्माएँ बनती रहेगी।

क्या हम और आप भी सिद्धि की अभिलाषा रखते हैं ? कहते तो यही हैं और यत्किंचित् साधना करते हुए यही सोचते है कि **"सिद्धा सिद्धि मम दिसतु"**। किन्तु हमारी आज की दशा या दुर्दशा कैसी है—उसकी तरफ गौर किये बिना और उसे सुधारे बिना क्या हमे सिद्धि मिल सकेगी ? सोचिए—

आज सम्यग्ज्ञान बिन, बादल दुखो के छा रहे हैं।
श्रेष्ठ मानव आज दुर्दम दानवी कहला रहे हैं॥

हृदय मे ज्ञान की ज्योति जगाइये और अपने अन्तर को सम्यक् ज्ञान से प्रकाशमान बनाइये—उसके बाद आत्मविकास हेतु चारित्र की आराधना का मार्ग स्वत ही प्रशस्त हो जायेगा। □

शपथ न लो, पर सत्पथ ले लो,
युवकों; अभी बहुत चलना है""

शपथ न लो, पर सत्पथ ले लो, युवको! अभी बहुत चलना है।
भारतीय सस्कृति मे जन्मे, हमे इसी मे ही पलना है!!

सत्य-हमारा जीवन साथी, धर्म अहिंसा प्राण हमारा।
सन्त लोग हमको सिखलाते, नही परिग्रह त्राण हमारा।
क्या लाएँ हैं क्या ले जाना?
तुच्छ स्वार्थ के लिए झगडना, अटना बहुत बडी स्खलना है

आदर करो वडो का, सीखो, जो कुछ उनमे सीखा जाये,
यह न जानते, वह न जानते, केवल कैसे सीखा जाये?
और नया अभ्यास वढाओ
जलती हुई मसाले बन कर, जन्म अनेको तक जलना है

एक दूसरे को समझोगे, तो सहयोग स्वत पाओगे।
जब भी आप खडे हो ओगे, विजयी बना दिए जाओगे।
जीओ, मरो, जनहित करने को
मुनि महेन्द्र बडे परमार्थी--ढाचे में हमको ढलना है

□

10

आचार की ऊँचाइयाँ

□ □

आचार के अभाव मे निष्क्रिय ज्ञान और कोरी श्रद्धा का कोई मूल्य नही है, आचरण मे ही इन दोनो की सार्थकता है । आचरण (चारित्र) ही मनुष्य को आध्यात्मिक उच्चता के शिखर पर पहुँचा मकता है। ससार के ममस्त धर्मधुरन्धरो का यही एकमात्र स्वर रहा है कि आचारहीन मनुष्य, चाहे ज्ञान मे कितना ही आगे वढा हुआ हो, चाहे श्रद्धा मे सुदृढ हो, अपनी आत्मा और पवित्रता की रक्षा नही कर सकता। वह आचार क्या और कौन-सा है ? उमकी कितनी सीढियाँ हैं ? आचारहीन ज्ञान के क्या दुष्परिणाम आते हैं ? विविध अटपटी घाटियो को पार करके मानव आचार की ऊँचाइयो पर कैसे पहुँच जाता है ? पढिए, इन सब गहराइयो को छूने वाला हृदयस्पर्शी प्रवचन और अपनी आत्मा मे गोते लगाइए ‥ ……… … .

१०

आचार की ऊँचाइयाँ

□ □
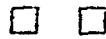
चमन में आज वह वहार क्यो नहीं है ?
मानवमन मे आज आनन्द की सुधाधार क्यों नहीं है ?
इस 'क्यो' का कारण समझ मे यो आता है कि,
क्योकि वर्तमान जीवन मे विचार तो है, पर आचार नहीं है ।।

कोतल घोडों की तरह

'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग', सूत्र का महत्वपूर्ण अन्तिम तथा ठोस पहलू है—चारित्र अर्थात् आचार या आचरण। ज्ञान और श्रद्धा का उपयोग ही आचरण मे होता है। आचरण की सार्थकता के विना गहरा ज्ञान और गहरी श्रद्धा कोतल घोडो के समान ही माने जायेंगे। जो जाने और माने सही रूप मे—उसको करने मे सही तौर पर उतारेंगे, तभी सुपरिणाम सामने आ सकेगा। इस दृष्टि से व्यवहाररूप मे आचरण मोक्ष का मूलाधार वन जाता है।

निष्क्रिय ज्ञान एव ज्ञानहीन क्रिया—दोनो ही जीवन मे अलग-अलग निरर्थक है। ज्ञान और क्रिया के सम्यक् सयोग से ही आत्म-विकास का मार्ग प्रशस्त वनता है।

चन्दन भी बोझ

एक वार एक जिज्ञासु ने भगवान महावीर से प्रश्न किया—भगवन् ! समस्त आगम-शास्त्रो का क्या सार है ? 'अगाण कि सारो ?'

महाप्रभु ने समाधान दिया और वह समाधान सामयिक समाधान मात्र नही था, उसका शाश्वत महत्व है। उन्होने कहा—"अगाणं सारो आयारो।" अर्थात् सारे आगमशास्त्रो का सार आचार है। आचार की इस बुनियादी महत्ता को कोई अस्वीकार नही कर सकता कि कर्मठता का प्रतीक आचार ही होगा। यह सही है कि सम्यक् ज्ञान एव सम्यक् दर्शन के पहलू सुगठित हो, किन्तु आचरण ही ज्ञान और दर्शन की सक्रियता का स्पष्ट प्रमाण हो सकता है। आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कहा था—

जहा खरो चन्दण-भारवाही,
भारस्स भागी न तु चदणस्स।
एवं हु किरियाविहीण नाणी,
नाणस्स भागी न तु चंदणस्स॥

अर्थात् जैसे गधे पर बावना (सर्वाधिक मूल्यवान) चन्दन का बोझ लाद दिया तो वह चन्दन के मूल्य या महत्व से अनभिज्ञ केवल उसका बोझ ढोता है, उसी प्रकार क्रियाहीन ज्ञानी केवल ज्ञान का भार ढोता है—ज्ञान का सक्रिय हिस्सेदार नहीं बनता।

कार्य सफल, कारण सफल

अभिप्राय यह है कि आचार की बुनियादी महत्ता को सभी दार्शनिको एव विचारको ने स्वीकार किया है। कारण और कार्य के सम्बन्ध को देखें तो कारण चाहे जितना महत्त्वपूर्ण रहा हो, किन्तु वह अगर कार्य मे नही ढल पाया तो व्यर्थ रहता है। कार्य की सफलता मे ही कारण की सफलता होती है। यदि आचार सफल है तो ज्ञान और श्रद्धा मिल कर आचार मे परिणत नही होते तो वे स्वत ही असफल सिद्ध हो जाते हैं।

आचार अर्थात् मर्यादा भी

आचार का अर्थ आचरण तो होता ही है, किन्तु मर्यादा भी होता है। वैसे भी आचरण सदा सयमपूर्ण एव नियमबद्ध ही होता है। इस दृष्टि से मर्यादा का भी आचरण मे ही समावेश हो जाता है। फिर भी मर्यादा को लक्ष्मण-रेखा मान लें कि जिसको आचरण-सहिता मे लाघा न जा सके।

आचरण की मर्यादाएँ जीवन को अनुशासनमय बनाती हैं। एक नियम का आप वैसे ही पालन करते रहे और नियम का व्रत ले कर फिर उसका पालन करे—इन दोनो स्थितियो मे भी भारी अन्तर है। पहली स्थिति मे आप नियम का पालन

कर रहे हैं—यह अच्छी बात है, किन्तु आपका मन कमजोर हो जाय और आप उसका पालन छोड दें तो आप पर कोई प्रतिवन्ध नही है। दूसरी स्थिति मे व्रत लेने पर उसकी पावन्दी करना नैतिक कर्त्तव्य हो जाता है और ले कर जब व्रत को तोडते हैं तो मन मे एक ग्लानि पैदा होती है। अत मर्यादाएँ आचरण को सपुष्ट वनाती है तथा जीवन मे अनुशासन को प्रतिष्ठित कर देती हैं।

दायित्व · जीभ का कम, पैर का अधिक

हिमालय की ऊँचाई नाप मे इतनी है या कि इस-इस मार्ग से व इस-इस विधि से उस पर सफल चढाई की जा सकती है—इस सबका विवरण जिह्वा द्वारा कहने मे कोई विशेष समय नही लगेगा, किन्तु कल्पना कीजिए कि यदि पैर हिमालय पर चढने का इरादा करें तो पहले कितनी तैयारी करनी होगी ? कितने साहस से चढाई आरम्भ करनी होगी ? तथा कितनी कठिनाइयो को झेलते हुए चढाई को सफल वनाने की चेष्टा करनी होगी ? यह सब एक दीर्घकालीन महायात्रा का विषय वन जाएगा। जिह्वा को अपेक्षा पैरो का उत्तरदायित्व कई गुना अधिक व्यावहारिक, अधिक कठिन तथा अधिक श्रम एव साहस-साध्य होता है। यह अवश्य है कि पाँवो का काम वहुत विचारविमर्श एव वहुत आत्म-विश्वास के साथ होना चाहिए, किन्तु जब पाँवो का काम शुरू हो जाता है तो वही काम सारी शक्तियो का केन्द्रविन्दु वन जाता है। आचार का महत्व इसी कारण आधारगत होने के कारण विशिष्ट होता है। एक कवि ने कहा है—

पिंजरा तो खुल गया, मगर पाँखें नहीं खुली तो क्या ?
दिया तो जल गया मगर, आँखें नहीं खुली तो क्या ?
करने की बातें तो वहुत की, पर कर्मठता जगी नहीं,
पांव तो उठाये वहुत, उनकी गति नहीं चली तो क्या ?

कहने और करने मे वडा अन्तर है। कोई भी कथन तभी वजनदार वनता है, जव इसके अनुसार करने मे सफलता प्राप्त कर ली जाय।

आप जानते हैं कि आटे से रोटियाँ कैसे वनती हैं ? आपको भूख भी जोरो की लगी हुई है, किन्तु कोरे ज्ञान से तो पेट भरेगा नही। जब श्रम करके रोटियाँ वनायेंगे, तभी पेट भर सकेगा। यदि क्रिया के इस महत्त्व को आप नही समझेंगे तो हर जगह हानि ही उठानी पडेगी। एक शायर का शेर है—

हमको नई रविश के, हलके जकड रहे हैं।
वातें तो वन रही हैं पर घर विगड़ रहे हैं॥

जीवनोदय मर्यादाएँ, प्रतिक्रियाएँ

आचार के अनुपालन के प्रति दृढता एव कठोरता की जैसी मर्यादा जैनदर्शन मे उल्लिखित की गई है, शायद ही वैसी मर्यादाएँ किसी अन्य दर्शन मे हो और हो हो भी तो उनका वैसा अनुपालन दृष्टिगत नही होगा। आचारगत इस दृढता के पीछे एक गम्भीर दृष्टिकोण रहा हुआ है। मनुष्य का मन बडी ऊँची-नीची कुलाचे भरता रहता है। अत यदि उसे बाधने की सुव्यवस्था न की जाय तो बडा अनर्थ हो जाने की आशका बनी रहती है।

किन्ही नियमो का ऐच्छिक अनुपालन यो बडा अच्छा लगता है कि भावना दृढ रहेगी तो अनुपालन होगा ही, फिर किसी प्रतिबन्ध की क्या आवश्यकता है? किन्तु मन की कमजोरियो को ध्यान मे लेते हैं तो यही समझ मे आता है कि भावना का प्रवाह कभी कम ज्यादा भी हो, लेकिन कर्मठता की गति कभी रुके नही, इसके लिए जरूरी है कि स्वैच्छिक प्रतिबन्ध स्वीकार किये जायें। दूसरे, मन की कमजोरी से कभी एक कदम ही फिसले और उस समय नियम का कोई प्रतिबन्ध नही हुआ तो फिर फिसलने की कोई हद नही रहेगी।

जब कोई जलाशय बनाया जाता है तो उसमे पानी को रोके रखने के लिये मजबूत पाल या बाध बनाई जाती है कि कही पानी का वेग उसे तोड न दे और बाध नष्ट न हो जाय। फिर इस बाध या पाल की देख-भाल भी बडी सतर्कता से की जाती है। अगर पाल के बीच मे से कही एक जर्रा भी निकल जाय और बूंद-बूंद पानी भी रिसने लगे, तभी चौक कर उसकी मरम्मत की जाती है। कारण साफ है कि रिसने वाली एक-एक बूंद कल बड़ी धारा बन जायेगी। और परसों बाध की पाल फूट जायगी। इसी रूप मे जीवन को लिया गया है, जिसे सयमपूर्ण आचार की पाल मे बाधा जाता है। वह पाल आचार के प्रत्येक स्तर पर साधक की रक्षा करती है और मन को भी नियन्त्रित बनाये रखती है।

जीवन मे सदाचरणपूर्ण उत्थान लाना है तो आचार की मर्यादाओ का निर्वाह आवश्यक है, क्योकि ये मर्यादाएँ मन की प्रत्येक प्रकार की अवस्था मे एक ओर मन को ही भटकने नही देंगी तो दूसरी ओर सयम एव नियम के अनुपालन मे शिथिलता को नही आने देंगी। इसी प्रकार आचार की प्रक्रियाएँ भी जीवन के उत्थान मे उतनी ही महत्त्वपूर्ण मानी गई हैं।

आचार की सीढियां

भगवान् महावीर ने आचार रूपी पाल की बड़ी मजबूत चुनाई की है। कोई आचार-भ्रष्ट भले ही हो जाय, किन्तु अपने को आचार की मर्यादाओ मे चलता हुआ मान कर या कह कर आचार की लीक से हट नही सकेगा।

मुख्यतया आचार के दो सोपान बताये गये हैं—(१) सम्यक्त्वी व व्रती से ले कर श्रावक धर्म का अनुपालन एव (२) साधुधर्म का अनुपालन। आत्मा मिथ्यात्व को छोडे और सम्यक्त्व को ग्रहण करे—यह प्राथमिक रूप से आवश्यक है। आचार का प्रारम्भ होता है—उसके द्वारा छोटा बडा कोई न कोई व्रत ग्रहण करने के साथ कि उसने कुछ न कुछ करने का समारम्भ कर दिया है। व्रत ग्रहण करने की दृष्टि मे गृहस्थ-धर्म मे रहते हुए श्रावक के बारह व्रतो के पालन तक अपनी व्रत-निष्ठा का दायरा बढाया जा सकता है। यथाशक्ति बारहो व्रतो का या उनमे से अमुक व्रतो का पालन प्रारम्भ किया जा सकता है और धीरे-धीरे सभी अणुव्रतो के दृढ पालन तक आगे बढा जा सकता है।

श्रावक के बारह व्रत इस प्रकार होते है—

१ अहिंसा-व्रत—त्रसजीवो की हिंसा का त्याग दो करण तीन योग से।

२. सत्यव्रत—स्थूल झूठ का त्याग।

३. अचौर्यव्रत—स्थूल चोरी का त्याग।

४. ब्रह्मचर्यव्रत—परदारविवर्जन एव स्वदारसन्तोप का व्रत।

५. परिग्रह-परिमाण-व्रत—परिग्रह की मर्यादा।

६. दिशापरिमाण-व्रत—छहो दिशाओ मे गमनागमन की मर्यादा।

७. उपभोग-परिभोग-परिमाण-व्रत—उपभोग्य एव परिभोग्य वस्तुओ की मर्यादा तथा पन्द्रह कर्मादानो का त्याग।

८ अनर्थदण्ड-विरमण-व्रत—अनर्थदण्ड का त्याग।

९. सामायिक-व्रत—प्रतिदिन शुद्ध सामायिको का व्रत।

१० देशावकाशिक-व्रत—देशावकाशिक पौपध करने का व्रत।

११ पौपधोपवास-व्रत—प्रतिपूर्ण पौपध का व्रत।

१२ अतिथि-सविभाग-व्रत—चौदह प्रकार की वस्तुओ मे से अतिथि का निर्दोष दान देने का व्रत।

श्रावक ससार मे बैठ कर चूँकि गृहस्थी का सचालन करता है, उसके व्रतो मे स्थूल पाप का त्याग कराया जाता है तथा साधुधर्म के अभ्यासरूप सामायिक-पौपध आदि का व्रत ग्रहण कराया जाता है, क्योकि श्रावक से ऊपर का स्तर साधु का होता है। श्रावक यदि अपने इन बारह व्रतो का सम्यक् प्रकार से पालन करता रहे तो उसके व्यापार-व्यवसाय मे अनीति प्रवेश नही करेगी। तभी उसका पारिवारिक एव सामाजिक

जीवन भी सन्तुलित बना रहेगा। व्रतों एव त्याग का प्रभाव यदि उसके आचार मे बढता रहा तो उसके जीवन मे ऊपर के सोपान पर चढने की क्षमता का भी प्रभावोत्पादक विकास हो सकेगा। रत्नत्रय (ज्ञान-दर्शन-चारित्र) की उच्च साधना का श्रावक-धर्म पहला और पृष्ठभूमि का सोपान है तो साधुधर्म अन्तिम एव लक्ष्य तक पहुँचाने वाला सोपान। कारण, साधु ही उपाध्याय होता है तो साधु ही आचार्यपद प्राप्त करता है। नवकार मन्त्र के पहले दोनो पदो पर भी साधु-धर्म मे से ही पहुंचा जाता है। पहले अरिहन्त और फिर सिद्ध पद पर पहुँच कर आत्मा परमात्मा बन जाती है।

साधुधर्म खाडे की धार

भगवान् महावीर ने आचाराग-सूत्र मे साधु (अनगार) धर्म का प्रतिपादन किया है तो दशवैकालिक सूत्र मे भी साधु (निर्ग्रन्थ) धर्म के आचार का ही विधान किया गया है। उन्होने साधुधर्म के लिये विवेक को महत्त्वपूर्ण बताया है। दशवैकालिक सूत्र (अध्ययन ४ गाथा ८) मे विवेक के विषय मे कहा गया है—

जय चरे जयं चिट्ठं, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासन्तो, पावकम्मं न बंधई॥

साधु सदा यतनापूर्वक-विवेकपूर्वक चले, बैठे, अंग सचालन करे व सोये एव यतनापूर्वक ही भोजन करे तथा बोले। विवेक का सदा ध्यान रखने वाले ऐसे साधक के पापकर्मो का बन्ध नही होता है।

श्रावक के व्रत जहा अणु (छोटे) व्रत कहलाते है, वहाँ साधु के व्रत महाव्रत कहलाते हैं। ये महाव्रत पाँच निर्धारित किये हुए हैं—

१. अहिंसा-महाव्रत—सम्पूर्ण प्रकार की जीवहिंसा का त्याग तीन करण तीन योग से।

२ सत्य-महाव्रत—झूठ का सर्वथा प्रकार से त्याग।

३ अचौर्य महाव्रत—चोरी का सर्वथा प्रकार से त्याग।

४. ब्रह्मचर्य-महाव्रत—मैथुनसेवन का सर्वथा प्रकार से त्याग।

५ अपरिग्रह-महाव्रत—परिग्रह का सर्वथा प्रकार से त्याग।

(नोट—तीन करण तीन योग का अर्थ है कि वैसा पापकार्य करे नही, करावे नहीं और करते हुए का अनुमोदन करे नही, मन से, वचन से और काया से।)

साधु-धर्म का आचार एक प्रकार से पूर्णतया ससार एव सासारिक प्रवृत्तियों का त्याग है, इसीलिये इसे निवृत्तिमार्ग कहा गया है। सासारिक प्रवृत्तियो से निवृत्ति ले कर आत्म-साधना करना तथा सद्गुणो को प्रोत्साहित एव प्रसारित करने के लक्ष्य मे उपदेश देना—यह साधु-धर्म का आचार है। साधुधर्म का जितनी निष्ठा से, शुद्धता से एव दृढता से पालन किया जायगा, उतने ही वेग से मोक्ष-लक्ष्य की ओर आत्मा की गतिशीलता बन सकेगी।

कथनी नहीं, कृतित्व भी

एक पश्चिमी दार्शनिक स्विनाक ने लिखा है कि आचार या चारित्र के बिना ज्ञान शीशे की आख की तरह है, सिर्फ दूसरो को दिखलाने के लिये तथा एकदम उपयोग-रहित। आप भी इस कथन को हृदय मे उतारें। इसका अभिप्राय यह है कि आप और हम भी आचार का कथन करके ही न रह जाय, बल्कि निर्दिष्ट आचार को जीवन के प्रत्येक पल मे उतारें तथा उस पर डटे रहें।

आचार के अभाव मे तीर्थंकरो के सान्निध्य मे पहुँच कर भी आत्मा कोरी की कोरी रह जाती है—उसकी रिक्तता का अन्त नही आता है। आज का इन्सान ज्ञान की लम्बी चौटी बातें तो करता है, किन्तु उन बातों को जीवन के आचरण मे स्थान नही देता। जब भी बात चलेगी, वह कह देगा कि यह तो मैं जानता हू। हिंसा बुरी है— यह तो मैं जानता हूँ—कह देगा, किन्तु आचरण मे हिंसा का त्याग करने की चेष्टा नही करता। प्रत्येक बात जान कर उसे आचरण मे नहीं उतारें तो वह उपहासास्पद भी बनता है तथा निन्दनीय भी। इसी प्रसग का एक दृष्टान्त सुनिये—

एक गाँव मे एक सेठ-सेठानी रहते थे। एक रात उनकी हवेली मे चोर घुस आया। आहट से सेठानी जाग गई। उसने तुरन्त सेठ को जगाया और बोली—"घर में चोर घुस आया है।" "सेठजी ने कहा—'मैं जानता हूँ।' और वे सोये रहे। फिर सेठानी ने कहा— "चोर ने तिजोरी तोड दी है और गहने व रुपये निकाल रहा है।" तब भी सेठजी सोये-सोये ही बोले—"मैं जानता हूँ।" सेठानी ने कहा "चोर गठरी बाँध कर बाहर जा रहा है।" तब भी सेठजी ने वही जवाब दिया। तो आप ही बताइये कि ऐसी जानकारी किस काम की? निष्क्रिय ज्ञान का भी भला कोई महत्त्व होता है! ज्ञान वही—जो आचरण के चरण मे उतर कर पुरुषार्थमय आलोक का स्वरूप धारण करे।

दोहरा चरित्र लाछन-पात्र

ज्ञान—कहने का अलग और आचरण-करने का अलग—कभी शोभास्पद नहीं बन सकता। जो कहे, वह करके दिखावें, तब—दुनिया शाबासी देती है।

दोहरा चरित्र तो व्यक्ति को अन्ततोगत्वा लाछित ही करता है। एक कवि ने कहा है—

दरवाजे आने के और हैं—जाने के और हैं
ऊपर की टीमटाम, बाकी सब राम नाम
अजी, आप देखते क्या हैं
हाथी के दाँत खाने के और हैं, दिखाने के और हैं।

इस दृष्टि से आपसे यही अनुरोध करूंगा कि आप आचार का कथन करके ही न रहें, बल्कि उस आचार को अपने जीवन के प्रत्येक पल मे उतारने का सक्रिय प्रयास करें। वास्तविकता की तह मे जाएँ तो यही दिखाई देगा कि कहने वाले तो बहुत मिलते हैं, परन्तु करने वाले विरले ही मिलते हैं। आचरण के क्षेत्र मे दृढतापूर्वक चलने वालो की भारी कमी है। इस काव्यधारा से भी प्रेरणा लीजिये—

कहने वाले यहाँ बहुत मिले, करने वालो का टोटा है
हर ओर देखिये उपदेशो की कैसी झड़ियाँ लगती हैं
हर बात-बात मे पुरखाओ की साक्षी यहाँ निकलती है
गीता रामायण सूत्र ग्रथ, हर ओर पढ़ाये जाते हैं
मन्दिर मस्जिद स्थानक मे कई बार रटाये जाते हैं
पर परिणाम जो देखोगे तो पोलमपोल पलोटा है।
कहने वाले यहाँ बहुत मिले, करने वालों का टोटा है॥
हर ओर नये आन्दोलन, जन्म यहाँ पर पाते हैं
कुछ दिन मानव का पीछा कर वे स्वयं यहाँ मर जाते हैं
आदर्श यहाँ पर चटनी है बतौर जायका लेने की
है आदत दिन मे एक आध भाषण की चुस्की लेने की
नहीं पचता इनको अधिक कहें क्या, इनका कोठा छोटा है।
कहने वाले यहाँ बहुत मिले, करने वालों का टोटा है॥

इस मेवाड़ी कहावत की तरह अपना आचरण नही बनना चाहिये—इसका ध्यान रहे। कहावत है—

सुणता सुणतां फूट्या कान।
पण नहीं आयो हिवड़े ज्ञान॥

लगातार प्रवचन सुनते रहे—ज्ञान भी तत्त्वो व व्रतो का कर लें, किन्तु वह ज्ञान हृदय मे नही उतरे-आचरण मे नहीं आये तो उस ज्ञान का जीवन-विकास की दृष्टि से क्या और कितना महत्त्व माना जायगा ?

दरिद्र कैसे, क्यो ?

स्वामी विवेकानन्द एक बार जब विदेश मे भ्रमण कर रहे थे तो एक विदेशी ने उनसे पूछा—स्वामीजी, भारत मे सूत्र, पिटक, गीता, रामायण, वेद आदि अपूर्व धर्म-शास्त्रो के होते हुए भी वहाँ दरिद्रता क्यो है ? ज्ञान के इतने खजाने जहाँ निकले हो, उस देश मे भला दीनता-हीनता कैसे बनी रही ?

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"बन्धु, किसी के पास बडी अच्छी बन्दूक हो—बारूद भी हो, मगर यदि उस बन्दूक को चलाने की कला उसके पास न हो तो क्या वह बन्दूक किसी काम आयेगी ?

इस उत्तर का स्पष्ट सकेत यह था कि देश की दीनता-हीनता का रहस्य देश-वासियो की आचरणहीनता मे छिपा हुआ है। ज्ञान की दृष्टि से भारत के पास इतनी सम्पन्नता होते हुए भी आचार की दरिद्रता है और इस कारण चहुँमुखी दरिद्रता है।

कहा गया, वह ज्ञान ?

क्या हमारे देशवासी और हम इस सकेत को समझने की चेष्टा करेंगे ? आध्यात्मिक एव धार्मिक क्षेत्र की चर्चा बाद मे करूँगा, पहले आपको यही बताऊँगा कि भौतिक ज्ञान मे भी आचरणहीनता के कारण भारत कितना पिछड गया है ? यहाँ पहले कला-कौशल का कितना उत्कृष्ट स्तर था—ढाके की मलमल तो ससार-प्रसिद्ध रही है—वह कला-कौशल देश से क्यो लुप्त हो गया ? आयुर्वेद मे ऐसे-ऐसे रसायन व जडीबूटियो का ज्ञान था, जिससे लोहा छुआने से सोना बन जाता, मरता हुआ भी जी उठता, अर्थात् असाध्य रोग भी क्षणो मे समाप्त हो जाते। पचासो शक्तिशाली मन्त्रो के बल पर कई कठिन कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते थे या नई-नई रचनाएँ प्रस्तुत कर दी जाती थी। आज वह सब ज्ञान कहाँ चला गया ? अभ्यास या आचरण के अभाव मे स्वय ज्ञान भी टिकता नही है। ज्ञान और आचरण के पग क्रम से उठते रहें तो कार्य भी सफल होता है तथा ज्ञान भी विस्मृति के गर्त मे नही डूबता है।

विभूतियो का देश

आध्यात्मिक एव धार्मिक क्षेत्र की चर्चा तो उससे भी अधिक दुःखद है। अपने ज्ञान गाम्भीर्य के कारण ही जो देश विश्व-गुरु कहलाया, वही भारत आचरण से दूर हट कर न केवल दासता की जजीरो मे बधा, बल्कि ज्ञान

को उन गहराइयो को खो बैठा। इस मान्यता मे कोई विवाद नही है कि भारतीय दर्शन विश्व का गूढतम दर्शन है तथा भारतीय सस्कृति एवं सभ्यता प्राचीनतम है। भारत और उसके बाद ग्रीक सभ्यता ने सारे ससार को ज्ञानदान दिया। यही नही, आध्यात्मिक क्षेत्र मे भारत की महान् विभूतियो ने सयम साधना, तपस्या एव त्याग की दिशा मे स्वय जो आदर्श सस्थापित किया, उस आदर्श को ही क्या हम भूल नही गये है? प्राचीन काल मे कितना तेजस्वी जीवन था? वे आध्यात्मिक क्षेत्र मे अपनी आत्मशक्तियो के विकास के साथ जितने सम्पन्न थे उतने ही अपनी सासारिक ऋद्धि-सिद्धियो मे भी समृद्ध थे। आज देशवासी आध्यात्मिकता तो क्या, नैतिकता से भी कई अशो मे दूर हो गये है तो सासारिक उपलब्धियो मे भी वे दरिद्र हो रहे है—गरीबी ने जैसे सारे जन जीवन को जकड रखा है।

इस सारी दुर्दशा से यदि उबरना चाहते है तो आपको आचरण के महत्त्व को पुनरुज्जीवित करना होगा। आचरण ही वह आग होती है, जिसमे ज्ञान के सोने को तपाया जाता है। शरीर आग मे तपता है और सम्यक् ज्ञान, दर्शन एव चारित्र का तेज आत्मा मे फूटता है। आत्मा का तेज सभी क्षेत्रो की दरिद्रता को नष्ट कर देता है।

ऊँचाइयाँ स्वय झुक जाएँगी

आचरण की प्रभावकारी महत्ता को इससे अधिक किन स्पष्ट शब्दो मे प्रकट करू कि आचरण की दृढता के साथ आपको हिमालय पर नही चढना पडेगा, बल्कि हिमालय की ऊँचाइयाँ स्वय आपके सामने झुक जाएँगी, ताकि आप उसके शिखर पर आरूढ दिखाई दें। कहने का तात्पर्य यह है कि सम्यग्ज्ञान एव सम्यग्दर्शन के साथ जब आप सम्यक्चारित्र की आराधना मे निमग्न बनेंगे एव आचरण की उच्चतम श्रेणियो मे विचरण करेंगे तो मोक्ष ही आपके द्वार पर चला आयगा—फिर अन्य उपलब्धियो की तो बात ही क्या?

जो कुछ ज्ञान आपने साधु-सगति एव प्रवचन-श्रवण के माध्यम से सम्पादित किया है, उस पर मननपूर्ण दृष्टि डालें और उस पर आचरण का श्रीगणेश कर दें। मैं सोचता हूँ, आप सभी श्रावक के बारहो व्रतो का पालन नही करते होगे। श्रावक-धर्म तो आपका कर्त्तव्य है। आज से ही सकल्प लीजिये कि एक-एक व्रत के पालन मे क्रमश आगे बढते हुए जल्दी से जल्दी बारह व्रतो की मर्यादाओ से तो अपने जीवन को बाँध लेंगे।

जीवन क्षणभगुर है और साधना का पथ लम्बा है। अपने ज्ञान को माँजिये, श्रद्धा को गाढी बनाइये तथा उस ज्ञान और उस श्रद्धा के साथ कठिन आचरण आरम्भ कर दीजिये—आपकी गति लक्ष्य की ओर ही होगी। □

□ □

मिलावट चाहे धर्म-क्षेत्र मे हो, चाहे व्यावसायिक क्षेत्र मे सर्वत्र खतरनाक है। मिलावट के कारण इन्सान इस देवोपम धरती पर दानव बन गया है। लोग परलोक को बनाने की बात सोचते हैं, किन्तु जब तक इस धरती को स्वर्ग नही बनाया जायगा, तब तक परलोक मे कोई स्वर्ग नही मिलेगा। इस तथ्य को उजागर करते हुए शुद्ध जीवन और स्वर्गोपम मर्त्यलोक बनाने की प्रेरणा के लिए पढिये सुन्दर विवेचनयुक्त प्रस्तुत प्रवचन.... □

११

मिलावट

□ □
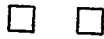
निश्चित लक्ष्य

जीवन के उत्कर्ष की एक पद्धति है। वह कोई अन्धाधुन्ध विकास नही है, उसका एक क्रम है, एक निश्चित लक्ष्य है। जिन महात्माओ ने स्वरूप-बोध के साक्षात्कार द्वारा इसका विकास किया है, उन्होने भव-भ्रमण के कारणो का क्षय किया है। हम उन्ही महात्माओ की जीवनकथाओ को आज सुन रहे है। इन महान् आत्माओ के जीवन का समीचीन प्रस्तुतीकरण और फिर उनका निजी जीवन मे व्यवहार बहुत महत्व रखता है। जैन-दर्शन वीतराग-दर्शन है। वह सर्वप्रथम जीवन-निर्माण की बात करता है। उसका स्पष्ट प्रतिपादन है कि जब तक हम इस लोक को निर्मल नही बनाते, तब तक परलोक मगलमय और निष्कलक नही हो सकता। जब तक आगम-सिन्धु मे हम पूरी तरह निमज्जित नही होते, अपने चारो ओर के वातावरण को स्वच्छ और वरेण्य नही बनाते, तब तक अपने लक्ष्य तक नही पहुँच सकते।

सूत्रपात स्वयं से

अच्छा वातावरण बनाने का मतलब क्या है, क्या है इसका अभिप्राय ? मैं कहूँगा, इसका स्पष्ट आशय व्यक्ति के जीवन का सस्कार है, उसकी चित्तवृत्तियो का परिष्कार है। इस तरह यह व्यक्ति के माध्यम से एक पूरे युग का सस्कार है। एक

जमाने की तब्दीली है । मैं मानता हूँ कि यदि एक इन्सान के जीवन में कोई शुभ परिवर्तन घटित होता है तो उससे समूचे ससार के मगलमय बनने की अगणित सभावनाएँ जन्म लेती है । इसलिए मगल का आरम्भ, आनन्द का सूत्रपात स्वय मे होना चाहिए, किसी विकृति का प्रतीकार निज के प्रयत्न से होना चाहिए ।

वीतराग-दर्शन

कुछ लोग हैं जो जैन-दर्शन पर आरोप लगाते है कि वह परलोक की बात करता है । उसका ध्यान जीवन की या समाज की वर्तमान स्थितियो या समस्याओ पर नही है । वह उनके निराकरण मे कोई दिलचस्पी नही रखता, किन्तु यह तथ्य सही नहीं है । वीतराग-दर्शन कभी इस तरह की औंधी बात नही कर सकता । वह निश्छलता, निष्कपटता और आर्जव का पथ है । उसने स्पष्ट घोषणा की है कि जब तक लोक नही सुधरेगा, परलोक नहीं सुधरेगा । परलोक इस लोक का ही प्रतिबिम्ब होगा, अर्थात् जब तक हम प्रस्तुत ससार को पवित्र और मगलमय नहीं बना लेंगे, एक साधनापूर्ण जीवन जीने का सकल्प नही कर लेंगे, तो यह मान कर चलिए कि परलोक मगलमय होगा, इसकी कल्पना भी नहीं कर सकेंगे ।

पलायन कायरता

यह तो हुआ जैन-दर्शन का प्रतिपाद्य, किन्तु वर्तमान मे हम जिस तरह का जीवन जी रहे है उसकी अनदेखी भी नही की जा सकती । आज हम वर्तमान की विकृतियो और बुराइयो के प्रति आँख मूद कर चलना चाहते हैं, उनसे भागना चाहते हैं । याद रखिये, कोई पलायनवादी सुखी नही हो सकता । पलायन कायरता है, सघर्ष ही सही मार्ग है इसलिए बुराइयो को आँख मूँद कर पनपने का अवसर मत दीजिये, उनसे जूझिये और पराजित कीजिये , इससे अतीत उज्ज्वल बनेगा और भावी मगलमय होगा । छुपे हुए दुश्मन निष्क्रिय होंगे और कर्मो की निर्जरा होगी ।

धरती ही स्वर्ग

आज पर्युषण का चौथा दिन है । इसका सदेश है कि हम स्वयं को समझें, अपनी स्वाभाविक शक्तियो को पहिचानें, परखें, जीवन की दुर्बलताओ का प्रतीकार करे । इससे जडमूल से क्रान्ति होगी और आपके जीवन मे आया परिवर्तन समूचे राष्ट्र के लिए एक मंगलमय आधार बनेगा । जब मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के सामने

यह प्रश्न उठा, तब उन्होंने भी व्यक्ति के शुद्धीकरण की पहल की। साकेत मे मैथिलीशरण गुप्त ने इस बात को बडे सरल शब्दो मे कहा है—

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया।
इस धरती को ही स्वर्ग बनाने आया॥

अर्थात्—राम कहने लगे कि मैं इस धरती पर स्वर्ग का कोई सन्देश ले कर अवतरित नही हुआ हूँ, अपितु इस धरती को ही स्वर्ग की शक्ल देने के सकल्प से यहाँ आया हूँ। आज हम यथार्थ से टूट कर कल्पना और स्वप्न से जुड गये है। स्वर्ग की कहानियाँ सुनने मे हमे रस आता है। स्वर्ग कैसा है, वहाँ कितना सुख है, देवता किस तरह चुहल करते है, उनके जीवन की विलास-कथा कितनी सुहावनी है, इन बातो मे ही हमारी रुचि अधिक है। किन्तु यह शेखचिल्ली की कल्पना है। यथार्थ पर हमे आना चाहिए, जैन-दर्शन यथार्थवादी दर्शन है। वह तथ्यो को अगीकार करके चलने वाला दर्शन है। उसमे व्यर्थ की उधेडबुन के लिए कोई स्थान नही है, इसलिए यदि हम अपने इर्द-गिर्द की जाँच-पडताल कर वहाँ की विकृतियो को दूर करते हैं, आत्मपरिष्कार करते है, तो स्वर्ग की ही रचना करते हैं, किन्तु आज हमारा वातावरण अन्तर्विरोधो से भरा हुआ है। कभी हमारे यहाँ नैतिकता के गीतो से आकाश गूजा करता था, किन्तु आज हम नैतिक दृष्टि से बहुत गिर चुके है। हमारी आध्यात्मिकता एक कपोल-कल्पना रह गयी है। हमने उसे दूषित कर दिया है।

रोटी शुद्ध, पकवान अशुद्ध

एक कहानी है। गुरुनानक के दर्शनो के लिए एक जागीरदार पहुँचा। उसने नानक के चरणों मे छप्पन पकवान अर्पित किये और प्रार्थना की कि गुरुदेव उन्हे स्वीकार करे। गुरुनानक पहुचे हुए सत थे। वे समौन सब कुछ देखते रहे। एक ओर जागीरदार के पकवानो का थाल सजा था, दूसरी ओर एक गरीब किसान सूखी रोटियाँ लिए निश्छल निवेदन की मुद्रा मे खडा था। उसका यही सर्वस्व था। सूखी रोटी ही उसका पकवान था। उसने श्रद्धापूर्वक, बिना किसी औपचारिकता के गुरुदेव को अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। गुरुनानक उसकी निश्छल भक्ति, निष्काम समर्पण के सम्मुख स्तब्ध रह गये। उन्होने जागीरदार के पकवान एक तरफ किये और बडे स्वाद से किसान की रूखी-सूखी रोटी खाने लगे। सब कुछ भाग्य की बात है। मेवाड की एक कहावत है—

भाग्य बिना नहीं पाइये, भली वस्तु का योग।
जब दाखा पाकन लगे, तब होय काग गलरोग॥

अर्थात—भाग्य के बिना कुछ नही मिलता। देखें न, जब दाखें पकने लगती हैं तो कौए के कण्ठ मे रोग हो जाता है। जागीरदार सोचने लगा—"गुरुदेव के भाग्य मे पकवान नही हैं" किन्तु जब गुरुदेव ने रहस्य खोल कर समझाया, तब उसकी भ्रान्ति दूर हुई।" वे बोले—"अरे भक्त! तुम्हारे इन पकवानो में बहुत गहरी दुर्गन्ध भरी हुई है। उनके इस कथन से जब जागीरदार को सन्तोष नही हुआ तब गुरुनानक ने मेवा-मिष्टान्न उठाये और वे उन्हे एक के बाद एक टूक-टूक करने लगे और कहने लगे—"देखो तुम्हारे मिष्टान्न मे खून की धाराएँ हैं, रोटी मे नहीं हैं। वह शुद्ध है, उसमे शोषण नहीं है, उसमे श्रम है, आलस्य नही है, उसमे पवित्रता है, पाप नहीं है।" जागीरदार दग रह गया। उसकी समझ मे बात आने लगी। हो सकता है, इस कथा में अतिशयोक्ति हो, किन्तु सचाई भी है। कहानियां, विशेषत भारतीय कहानिया कोरी कल्पनाएँ नहीं होती हैं, उनके पीछे कोई न कोई जीवन-दर्शन या सीख होती है। स्पष्टत गुरुनानक के कथन मे शोषक और शोषित के रिश्तो का बहुत अच्छा विश्लेषण हुआ है। उसमे भीतर से अपवित्र, किन्तु बाहर मे पवित्रता का आडम्बर करने वाले की धज्जियां बिखेरी गयी हैं, और एक भक्तिविह्वल साधनहीन व्यक्ति के मन की निर्मलताओ को उजागर किया गया है।

नैतिकता का मुखौटा

इस दृष्टि से आज का यह समाज बड़ी अजीबोगरीब लगता है। चारो ओर लूटखसोट चल रही है। सबने नैतिकता के प्रति अपनी आखें मूंद ली हैं। एक कवि ने इस स्थिति का चित्रण करते हुए राजस्थानी में लिखा है—

> "भरा बाजार लूट मचाई, सेठ पैठ गँवाई रे
> धान बेचता रुप्या उड़ावे, लाज न आई रे
> हां रे हवेल्या बनवा दो, सेठाण्या ने सोना सूँ लदवा दो
> आज तो अन्याय चाले, पापी मौजा माणे हो
> चौड़े धाडे रिश्वत खावे, शंक न आवे हो
> हां सांचा रोवे रे, ये जुलमखोर तो सुख सूँ सोवे रे।"

असल बात यह है कि आज इन्सान नैतिकता का मुखौटा पहिने नंगा नाच कर रहा है। वह जमाने को दोष देता है, स्वयं को नही टटोलता है, अपने कुकृत्यो पर उसका ध्यान नहीं है, किन्तु ऊँची-ऊँची बातें करता है। पाचवें आरे की बात

कह कर वह अपने कुकर्मों पर पर्दा डाल रहा है। मैं पूछता हूँ, यह कलियुग, यह पाँचवा आरा कहाँ से आया है? सच पूछें तो हमारी अनैतिकता के कारण हमारे भीतर पाचवा आरा या कलियुग आ गया है—

> "इन्सान ही कमाता है, इन्सान ही खाता है,
> इन्सान ही इन्सान के खून से नहाता है।
> लोगों ने शैतान को यूँ ही बदनाम किया
> उसका तो नम्बर ही नहीं आता है।

धरती का ध्यान

आज कितनी अनैतिकताएँ है हमारे इर्द-गिर्द? है कोई हिसाब? हर क्षेत्र मे स्वार्थान्धता के कारण नैतिकता का गला घोटा जा रहा है। स्वर्ग-मोक्ष मात्र मनोरजक कहानियाँ बन गयी हैं, इसलिए बहुत ऊँची-ऊँची उडाने भरने के बजाय हमे अपनी धरती पर ही ध्यान देना चाहिये। अपने चतुर्दिक वातावरण को ही निर्मल और सुखद बनाना चाहिये।

सबमे मिलावट

एक बार मैं अखबार की सुखियो से गुजर रहा था। दवाइयो की कोई कम्पनी थी। दिल्ली के आसपास जब सरकार ने छापा डाला, तब एक दुकान से ७५ हजार नकली कैप्सूल निकले। दवा के स्थान पर उसमे हल्दी थी। अब हम सोचें कि क्या कोई मरीज इस नकली कैप्सूल से ठीक हो सकता था? आज दवाइयो मे मिलावट है। यह हमारी नैतिकता का सबसे जघन्यरूप है। इससे अधिक निकृष्ट और क्या हो सकता है? यह मनुष्य के वेश मे दानवीयता का नग्न ताण्डव है? मिलावट की हद हो गयी है। मजन-अजन सबमे मिलावट है। यदि आज हम इस मिलावट का त्याग कर दें तो हमारा पर्युषण सफल हो सकता है। हमारे इस सांस्कृतिक पतन से मुझे गहरी पीडा होती है, क्योकि आज के मनुष्य ने क्या नही किया है? उसने जहर को भी खालिस नही रहने दिया है। वहाँ भी उसने मिलावट की है। एक किस्सा है। एक आदमी ने आत्महत्या का विचार किया। यह कोई अच्छा विचार नही था। दुनिया से जूझना जरूरी है, पलायन किसी समस्या का समाधान नही है, किन्तु कई बार ऐसा असमजस आ खडा होता है कि आदमी खुदकशी की ओर भागता है। वह आदमी उसी ओर चला। उसने जहर पी लिया

और ससार से विदा होने का इन्तजार करने लगा। वह सो गया, कभी न जागने के लिए, किन्तु पूरा दिन बीत गया, जहर का कोई असर ही नहीं हुआ। जहर मे मिलावट थी। यह है हमारी नैतिकता, आदमी ने जीवन का कोई क्षेत्र मिलावट से खाली नहीं रखा। हर चीज मे मिलावट है। अनाज मे, मसालो मे, तेल मे। इसीलिए सुना जाता है पूरी पगत जो भोजन करने बैठी थी, बीमार पड़ गयी, इतने लोगो को लकवा मार गया, इतनो को उलटियाँ हुई, इतने खुदा के प्यारे हो गये, इत्यादि। यह सब उदाहरण हमारी अनैतिकता और बदनीयती के है। मेवाडी का एक मुक्तक है—

'देखा हाँ आज मिनख-मिनख की शकल सूं ही डरै है
देखा हाँ आज मिनख-मिनख ने लूट ने घर भरे है
बात सोलह आना खरी है कि आज रा मिनख मे मिनखवारो ही कोनी
आज रा नैतिकता रा गला घोटवा वाला मिनख को
हालत देखने मारी तो अकल ही काम करे कोनी
कि आज का मिनख यूं कांही करे है।"

अर्थात् अपनी बुद्धि काम नही करती यह जानने में कि आज का इन्सान क्या कर रहा है? वह कदम-कदम पर काटे बिछा रहा है, ज्वालाएँ धधका रहा है, बेईमानिया कर रहा है। एक ओर हम तरक्की की तजवीजें कर रहे हैं, नये-नये प्रस्ताव कर रहे है, सम्मेलन और अधिवेशन कर रहे हैं किन्तु दूसरी ओर—

"योजनाएँ तरक्की की यहाँ बनतीं, पर हल नहीं है
वजह यह साफ जाहिर है, विचारो मे मिलावट है
जमाना है मिलावट का कि चीजो में मिलावट है
रहा कुछ भी नही खाली कि चीजो मे मिलावट है।

विचारो मे भी मिलावट

योजनाएँ है, समाज के उत्थान और अभ्युदय के लिए प्रस्ताव हैं, किन्तु प्रश्न यह है कि ये सब सफल क्यो नही होती। एक कवि ने साफ कहा है—'वजह साफ जाहिर है कि विचारो मे मिलावट है।" आज विचार भी साफ-सुथरे नही हैं। उनमे भी मिलावट आ गयी है। भीतर कुछ, बाहर कुछ है। राम, कृष्ण, महावीर

किसी ने कभी मानवता के खिलाफ काम करने का उपदेश नही दिया, उन्होंने रागद्वेष का विरोध किया, परस्पर शत्रुताओं का विरोध किया, स्नेह और विश्वास, मैत्री और सौहार्द का प्रतिपादन किया, किन्तु हम है कि उनकी उस अखण्डता को सुरक्षित नही रख सके। हम किसी के विचार तक ठीक से सुनने को तैयार नही हैं, क्योंकि हमारे दिमाग में भेद-विभेद बने हुए हैं। वहाँ कोई दिगम्बर है, कोई श्वेताम्बर है, कोई मूर्तिपूजक है, कोई स्थानकवासी है और कोई तेरापन्थी है। पता नही कौन-कौन पन्थ यहाँ आ खड़े हुए हैं। कितनी मिलावट है, कितनी परेशानी है और किस कदर रास्ते का भटकाव है, दिशाविभ्रम है?

विषचक्र से बाहर

सत्य एक है। वह न हिन्दू होता है, न मुसलमान, न जैन होता है वह, न जैनेतर। वह सत्य होता है, इतना काफी है। यदि हम गहराई मे जाएँ और बाहरी फर्क छोड कर भीतर पैठें तो वहाँ कोई भेद ही नही है। आत्मा की शाश्वत अवस्था में कौन-सा भेद है, कौन-सी मिलावट है? जब से सकीर्णता खडी हुई है, कई विग्रह खडे हो गये हैं, कई अच्छे साथी बिछुड गये है, कई रचनात्मक सकल्प टूट गये हैं। इन्हें जोड़ना होगा और मिलावट के विषचक्र से बाहर हमे कदम रखने होगे।

बाहर भेद, भीतर अभेद

एक कथा है। एक बार अकबर बादशाह ने बीरबल के सामने हिन्दूधर्म मे दीक्षित होने का प्रस्ताव रखा। उसने कहा—"बीरबल, मैं हिन्दूधर्म और सस्कृति को स्वीकार करना चाहता हूँ, उसे आत्मसात् करना चाहता हूँ।" बीरबल यो बडा निश्छल व्यक्ति था, किन्तु अकबर के प्रस्ताव पर उसके मन मे मिलावट आ गयी। वह सोचने लगा—"बादशाह अकबर मुसलमान है, मैं हिन्दू हूँ। क्या कोई मुसलमान हिन्दूधर्म को अगीकार कर सकता है? बीरबल नटखट था, चुहलबाज था। उसने तुरन्त कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु एक दिन वह यमुना के तट पर एक गधे को साबुन से मल-मल कर नहलाने लगा। सयोग से अकबर बादशाह भी वहाँ आ निकले। देखते ही अकबर तैश मे बोले—'बीरबल, यह क्या करते हो? गधे को साबुन से नहलाने से क्या लाभ होगा? बीरबल ने विनोद मे कहा—"महाराज! आज तय कर लिया है, इसे जमुना के जल मे साबुन से मल-मल कर नहलाऊँगा और घोडा बना कर रहूँगा।" "कहीं गधा भी घोडा बन सकता है?" अकबर ने कहा। बीरबल ने अपना पुराना सूत्र पकडते हुए कहा—"जब गधा घोडा नही बन सकता, तब

कोई दूसरा धर्मावलम्बी हिन्दू कैसे बन सकता है ?" यह विचारो की मिलावट का उदाहरण है। बीरबल ने उपहास अच्छा किया, किन्तु बात कुत्सित कही। भारतीय संस्कृति उदार है, धर्म उसका एक अवयव है। अत धर्म भी उदार है। उसके द्वार सबके लिए उन्मुक्त हैं। आत्मसाधना और आराधना मे कोई पूर्वग्रह या पक्षपात के लिए गुंजाइश नही है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, पारसी ये सब बाहरी भेद हैं। भीतर कोई भेद नही है। स्याद्वाद विचारो की मिलावट को दूर करने का उत्कृष्ट साधन है। यह ओठ पर रखे उस दीपक की तरह है जो अन्दर भी उजाला देता है और बाहर भी। □

12

ध्यान : दो त्याज्य, दो ग्राह्य

□ □

बडे-बडे उच्च साधक कठोर और सकटपूर्ण परिस्थितियो मे भी अपने साधना-पथ से विचलित नही हुए। बडे से बडे भय भी उन्हे डरा न सके, मौत भी उन्हे डिगा न सकी, इसके पीछे कौन-से कारण थे ? जैनदर्शन की भाषा मे वे दो, शुभध्यान ही कारण थे—धर्मध्यान और शुक्लध्यान। इन दोनो ध्यानो का अवलम्बन ही साधना मे दृढता और अविचलता लाता है। परन्तु साधारण मानव जरा-सा कष्ट, आफत या सकट आते ही तुरन्त आर्त और रौद्र ध्यान का शिकार हो जाता है। अत धर्म और शुक्ल ध्यान कैसे आएँ ? उनके पाने का आसान तरीका क्या है ? इन सब तथ्यो पर मार्गदर्शन पाने के लिए पढिए मुनिश्री का युक्तियो और विश्लेषण से परिपूर्ण प्रवचन . ...

१२

ध्यान : दो त्याज्य, दो ग्राह्य

□ □

जैनसाधना मे ध्यान

अभी-अभी आप लोगो के सामने अन्तकृद्दशाग-सूत्र के माध्यम से राजकुमार गजसुकुमाल के जीवन-प्रसग प्रस्तुत किये गये है। गजसुकुमाल की साधना दुर्द्धर और महान् थी। उसके कण-कण मे जैनदर्शन की गहराइया समायी हुई थी। वे सम्यक्त्व के ज्वलन्त उदाहरण थे। जैन-साधना मे ध्यानो का गहन विश्लेषण हुआ है। इस साधना मे जिन चार ध्यानो की चर्चा हुई है उनमे से दो हेय और दो आदेय है। प्रारम्भ के दो ध्यानो के नाम से आप सब परिचित ही हैं। वे हैं—आर्त और रौद्र। दोनो छोडने योग्य है, त्याज्य है। धर्म और शुक्ल ध्यान ही ऐसे है, जिन्हे ग्रहण किया जाना चाहिये। ये उपकारक हैं, अभिनन्दनीय हैं। इन्ही से राजकुमार गजसुकुमाल का सम्बन्ध है।

गजसुकुमाल एक निर्मल ज्योति

राजकुमार गजसुकुमाल का समग्र जीवन मर्मस्पर्शी प्रसगों से पूर्ण है। जो राजकुमार कल तक खेल रहा था, भिन्न-भिन्न क्रीडाएँ कर रहा था। समय आया और उसका अन्तर जागा। उसका समूचा जीवन पलक मारते ही बदल गया। उसने भगवान् नेमिनाथ के चरणो मे स्वय को अर्पित कर दिया और प्रव्रजित हो कर अखण्ड आध्यात्मिक साधना मे लीन हो गया। उसने हिमालय से भी गहन अविचल मुद्रा धारण कर ली। इसी समय एक निमित्त मिलता है। सोमिल ब्राह्मण का जन्म जन्मान्तर से पलता आया वैर उत्तेजित होता है। वैर कभी छूटता नही, कषायो की, कर्मो की परम्परा बिना भोगे कभी टूट नही पाती। सोमिल ब्राह्मण मे प्रतिशोध करवट

लेती है और वह ध्यान में अविचल खडे गजसुकुमाल मुनि के मस्तक पर मिट्टी की पाल बांधता है, और बडी क्रूरता से उसमे श्मशान के धधकते अंगारे डाल देता है। एक रोमहर्षक घटना उपस्थित होती है। यह एक ऐसा मर्मान्तिक प्रसंग है कि कोई भी कठोरतम, निर्दय व्यक्ति भी दहल सकता है, किन्तु गजसुकुमाल धर्मध्यान मे अविचल निमग्न रहे और एक अकम्प लौ की तरह दुनिया को अपनी साधना का आलोक देते रहे। क्षण-भर भी उनका मन नहीं डिगा। उन्होंने अपनी अटूट साधना मे आर्त और रौद्र ध्यानो का विसर्जन कर दिया। एक निर्मल ज्योति उनके मुखमण्डल पर फैल गयी और वीतरागता की इस जीवन्त मूर्ति को देख कर दिगदिगन्त हर्षविह्वल हो उठे। आचार्य श्रीजयमलजी महाराज ने गजसुकुमालमुनि की इस ध्यानावस्था के लिए दो स्मरणीय पंक्तियां लिखी हैं—

मुनि नजर न खडी, मेटी मन की झाल।
सब कर्म खपाए मोक्ष गया तत्काल॥

अर्थात्—गजसुकुमालमुनि की एक नजर भी खण्डित नहीं हुई। वे अपनी साधना मे अखण्ड बने रहे। उन्होंने भव-भ्रमण के हेतु आर्त-रौद्रध्यानों को ठुकरा दिया। उनकी आराधना अद्वितीय थी। उनमे धर्म और शुक्लध्यान की ज्योति प्रज्ज्वलित थी। क्षमा और सहिष्णुता ने उनकी उत्कृष्ट साधना को अलंकृत किया था। उनकी उस क्षण की शोभा पर एक कवि ने लिखा है—

"क्षमा शोभती उस भुजंग को जिसके पास गरल है।"

अर्थात् क्षमा उसी शूरवीर को विभूषित करती है, जिसके पास विष जैसा सशक्त पुरुषार्थ है, किन्तु जो उसका कभी प्रयोग नहीं करता। गजसुकुमालमुनि मे अध्यात्म की उत्कृष्ट शूरता थी, परम पुरुषार्थ था, किन्तु वे उसका उपयोग आत्मोत्थान मे कर रहे थे। पुरुषार्थ का सम्यक् प्रयोग आत्मा की स्वाभाविक शक्तियो के अनावरण मे ही होना चाहिए। गजसुकुमाल इसके सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं।

वह ध्यान, वह साधना

गजसुकुमालमुनि का जीवन महान् था। वह साधना और तपश्चर्या का जीवन था, क्षमा और सहिष्णुता का जीवन था, आर्जव और अहिंसा का जीवन था। उनके जीवन के कई पहलू हो सकते हैं, किन्तु सबमे शक्तिशाली और प्रेरक पक्ष है—ध्यान। वे ध्यान की उज्ज्वलताओ के परम प्रतीक हैं।

मै अविदग्ध हूँ, अखण्ड हूँ

ध्यान के चार भेद हुए हैं—आर्त, रौद्र, धर्म, और शुक्ल। इन पर हम अपनी जीवयात्रा के सदर्भ मे विचार करेंगे। हम चारो ओर जीवन के सभी क्षेत्रो मे लगातार वढ रहे हैं, किन्तु हमारी इस प्रगति का आध्यात्मिक पक्ष निर्मल नही है। हम चारो ओर से आर्त और रौद्रध्यान से घिरे हुए हैं। सब ओर हाहाकार और क्रन्दन है, हिंसा और वैर का नग्न ताण्डव है। इस जहरीले वातावरण मे चीखने-चिल्लाने का कोई महत्व नही है। पलायन का भी कोई महत्व नही है। महत्व है—आर्त और रौद्र की विषम स्थितियो से जूझने का। ये दोनो भव-भ्रमण के कारण है। हमे सयम और संतुलन से इन्हे अपने वश मे करना होगा। मिथिलापति नमि का नाम आपने सुना होगा। इन्द्र ने उनका इम्तहान लिया। उसने सम्राट् नमि को विचलित करने के हजार-हजार उपाय किये, कहा—"तुम्हारी मिथिला जल रही है, वैभव जल रहा है, सपदा भस्म हुई जा रही है, कुटुम्बीजन जल रहे हैं" किन्तु नमि धर्म और शुक्ल ध्यानो मे इतने गहरे जा चुके थे कि उन्हे इन्द्र के बोल सुनाई ही नही दिये। वे कहने लगे—"इन्द्र, तुम कौन-सी बातें कर रहे हो? कहाँ, कौन-सी मिथिला जल रही है? यदि मिथिला जलती है तो उसे जलने दीजिये। उसके जलने से मेरा कुछ नही जलता है? मैं अविदग्ध हूँ, सपूर्ण हूँ, अक्षत और अखण्ड हूँ, मेरा कही कुछ खण्डित नही है?" ' मिथिलेश यहाँ आत्मा की अतल गहराइयो मे से बोल रहे हैं। पर्वराज पर्युषण हमे उन्ही गहराइयो मे उतरने और जीने का मगल सदेश देता है। कहाँ मिथिला के राजा नमि और कहाँ हम?

सूरज मार्ग नहीं बदलता

हम अपने भीतर धर्म और शुक्ल ध्यानो की ज्योतियो को पहिचान नही पाते हैं। जरा-सा सघर्ष, या तूफान आ जाता है, तो हम विचलित हो जाते हैं। हमारी दृढताएँ टूट जाती हैं, हम विकल हो उठते है। इस संदर्भ मे एक कवि प्रकृति की ओर ध्यान खीचते हुए कहता है—

> काले बादल घिर आये तो क्या सूरज भी पथ बदलेगा?
> स्यारो का हो झुंड सामने, क्या केशरी वच निकलेगा?
> सौ-सौ सूरज गर्मी फेंकें, क्या सागर खाली हो जाए?
> प्रबल आंधियो से डर-डर के ऊँचे पर्वत भी हिल जाए?
> ऐसा कभी हुआ, नही होगा, तो फिर मानव ही क्यो हारे?
> बोल मनुज! क्यो विवश बना है, क्यो आसू टपकाये खारे?

अर्थात् हजारों-हजार सूरज गर्मी उगलते हैं, किन्तु क्या सागर रीतते हैं, खाली होते हैं। सूरज रास्ता नहीं बदलता, शेर रास्ता नहीं बदलता, सागर रास्ता नहीं बदलते, सब अपने स्वभाव में रहते हैं, अपने व्यक्तित्व के अनुरूप चलते हैं, फिर हम क्यों वैसा नहीं कर पाते ? हमारा ध्यान अपनी स्वाभाविकता पर क्यों नहीं जाता ? हम तनिक-से अवरोधों से काप उठते हैं, जरा से सकटों से विचलित हो उठते हैं, रोने लगते हैं, दैव-दैव पुकार उठते हैं। इस कायरता से जीवन का कभी निर्माण नहीं होगा। हमें अपने वास्तविक पुरुषार्थ की खोज करनी होगी, उसे अपने भीतर तलाशना होगा, यदि एक बार हम उसे उपलब्ध कर पाये तो हमे ससार की कोई ताकत, कोई विपदा, कोई सकट विचलित नहीं कर सकेगा। किसी विचारक ने लिखा है—

तुमको रोते हुए देख कर हमको बहुत गम होता है,
क्या रोने के लिए ही हमारा जन्म होता है ?
मायूस रहने से कोई गम दूर नहीं होता
हम जितना हँसेंगे, दर्द उतना ही कम होता है॥

सकटों में मुस्कराओ

मायूसी या विपन्नता में कोई काम सफल नहीं हो सकता, जिन्दगी के दुख और उसकी विपदाएँ—विषमताएँ भी शोक-सतप्त होने से दूर नहीं हो सकती, असली हल है—सकटों में मुस्कराना, हँसते-हँसते विपदाओं को झेलना, विपत्तियों को शुभाशीष मानना। अर्थात् हम जितने प्रसन्न रहेंगे, व्यथाएँ उतनी ही कम होंगी, किन्तु आज स्थिति कुछ और ही है। हमारे भीतर होलियाँ धधक रही हैं और बाहर हम दीवालियों का दिखावा कर रहे हैं, तभी मैं प्राय कहा करता हूँ—

"काम थोड़ा, शोर ज्यादा हो रहा है,
होठ हँसते, मन बेचारा रो रहा है।
जिन्दगी में नकल इतनी आ गई है—
कि असलियत को आदमी खुद रो रहा है॥"

सम्यक्त्व-बोध जरूरी

आज वस्तु-स्थिति से हम बहुत दूर निकल आये हैं। आर्त और रौद्र में हम इतने डूब गये हैं कि हमें सम्यक्त्व का कोई भान ही नहीं रहा है। असल में हमारे

जीवन मे न कोई तूफान है, न कोई सघर्ष । कभी आपने राम के जीवन को पढा-सुना है ? रामायण को देखें, वहाँ कितने सघर्ष हैं । राज्याभिषेक होने को था और राम को अविलम्ब वन की ओर चल देना पडा । वे रोये नही, हँसते रहे और वन की कटीली-ककरीली राहे उनके लिए गलीचा बन गयी । आज का इन्सान राम की जगह होता, तो सिंहासन छोडने मे उसे तकलीफ होती, सत्ता छोडते समय उसके मन मे काँटा चुभता । वह गालियाँ बकता, चीखता-चिल्लाता, खिन्न होता, विपन्न होता, किन्तु राम अपनी विपन्नताओ मे भी सपन्न बने रहे, सकटो मे भी मुस्कराते रहे । कृष्ण को देखिये, उनके जीवन मे भी कष्ट है, किन्तु आँसू कही नही है, जहाँ है वहाँ मुस्कराहट है । हरिश्चन्द्र का जीवन ले । सीता का जीवन लें । इनके जीवन के आगे श्रद्धा से मेरा मन झुक जाता है । महासती सीता के जीवन मे कितने सघर्ष आए ? किन्तु वे विचलित नही हुई । इसीलिए अगारे शीतल जल बन गये, सघर्ष सुख बन गये । सकट शुभाशीष सिद्ध हुए । वे जीवन के मैदान मे कभी रोई नही । उन्होने आर्त्त और रौद्रध्यान से व्यथित हो कर धर्म और शुक्लध्यानो को विस्मृत नही किया था । विवाह हुए अधिक समय नही हुआ था । वे अयोध्या पहुँची, पहुँची ही थी कि उन्हें सदेश मिला "राम वनवास जा रहे हैं । वे भी हसती-मुस्कराती तैयार हो गईं । सहेलियो और समृद्धियो को तिलाजलि दे कर वे काटो और नुकीले ककरो की राह चलती रही । पचवटी मे तो उनके कष्टो का कोई अन्त ही न रहा । रावण ने कपट किया अपहरण किया । स्वर्णमृग विषघट साबित हुआ, किन्तु वे विचलित नही हुईं । लका से उनका लौटना हुआ । अयोध्या आईं, किन्तु लोकमानस ने उनका साथ नही दिया और वे फिर संकट मे पड गयी । राम का उन्हें आदेश मिला, वन लौटना होगा । राम विवश थे । लोकशक्ति और लोकसस्कार के प्रति उनका दायित्व था । सीता ने इस महाविपदा को भी हँसते हुए झेला । उनके मुख पर कही कोई शिकन नही आयी । वे वन की ओर प्रस्थान कर गयी । सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति सीता का नाम लेते ही हम रोमाचित हो उठते हैं । किन्तु उनका सारा जीवन अगारो पर मुस्काते बीता है । सीता याने अगारो को जल की शीतल फुहार की तरह झेलनेवाली भारतीय ललना ! इसीलिए एक कवि ने लिखा है--

'राम गया वन मे एक वार, पण सीता गयी वन दो बार ।
विधाता थारी कलम रुकी क्यो नी ऐ .. . .
सीताजी दुखडो भोगीयो, ऐसो कोई नहीं भोग्यो जग रे
माही .. विधाता थारी कलम रुकी क्यों नहीं रे ... ..

सीता का दुख नोधते-नोधते कवि की कलम परेशान हो गयी और वह कहने लगा--'विधाता ! तेरी कलम परेशान नही हुई ? कितने अन्तहीन थे सकट उस सीता

के, जिसने इन्हे मुस्करा कर झेला था। कवि परेशान हो गया। उसे लगा कि विधाता परेशान क्यो नही हुआ ? किन्तु सन्नारी सीता कभी परेशान नही हुई। वह तूफानो से जूझती रही, उन पर अपनी विजय-वैजयन्ती फहराती रही। इसलिए मैं आप सबका ध्यान एक मूलमन्त्र की ओर खीचना चाहता हूँ कि जो आदमी जीवन की मुस्कराहट और उसके असली आनन्द को झुठला कर आर्त्त और रौद्र-ध्यान मे लगता है, उसे समस्या का कोई समाधान नही मिल सकता। ससार मे जो भी, जब भी और जहाँ भी मिला है, यह हँस कर झेलनेवाले को। रो कर मजबूरी मे सहने वाले ने आज तक कुछ पाया नही।

चुनौतियो के बीच अविचल रहे

होता यह है कि मूढ व्यक्ति स्वय को अमर मान कर आर्तध्यान मे फसा रहता है और जीवन की मौलिकताओ को व्यर्थ कर देता है। इसे स्पष्ट करने के लिए कई उदाहरण हैं। मेवाड के महाराणा प्रताप का नाम आपने सुना है। महाराणा शूरवीर थे, ओजस्वी थे, कर्तव्यनिष्ठ थे और मनस्वियो के भी मनस्वी थे उनका व्यक्तित्व अप्रतिम था। किन्तु जब मेवाड की शान खतरे मे पडने लगी, तब उन्होंने सारे वैयक्तिक सुख-साधन छोड कर अपने पारिवारिको के साथ जगल-जगल भटकना स्वीकार किया, किन्तु बादशाह अकबर की दासता को स्वीकार नही किया। उनके जीवन मे अनेक कष्ट थे। नाना सकट एव कई सघर्ष थे, किन्तु वे मुस्कराते रहे। ऐसे शूरवीर और पराक्रमी सम्राट् का धीरज भी एक बार टूट गया था। आप पूछ सकते हैं, वह कौन-सा दुर्भाग्यपूर्ण क्षण था ? महाराणा एक जगल मे दूसरे जगल भटक रहे थे। उनके साथ उनका नन्हा-सा राजकुमार था। नाम था अमरकुमार। अमर पास बैठा था, उसकी माता भी, परिवार के और-और सदस्य भी। वह घास की रोटी खाने की तैयारी कर रहा था, किन्तु एक वनबिलाव उस रोटी पर झपट पडा और उसे छीन ले गया। भूखा-प्यासा बालक रोने लगा। उसका क्रन्दन असह्य था। फौलाद से कही अधिक मजबूत महाराणा प्रताप का हृदय दहल उठा। मेवाड की आन-शान पर रेशे-रेशे न्यौछावर मेवाड का वह महाराणा इस एक मर्मान्तिक घटना से कराह उठा। आर्त और रौद्रध्यान मे वह सब कुछ भुला बैठा और मन ही मन सोचने लगा—

'अरे ! घास की रोटी भी जब वन-बिलावडो ले भाग्यो—
नानो सो अमर्‌यो चीख पड्‌यो, राणारो सोयो दुख जाग्यो।
हूँ लड्‌यो घणो, हूँ सह्यो घणो मेवाड़ी मान बचावण ने
मैं पाछ नहीं राखी रण मे, बैर्‌या रो खून बहावण ने

जद याद करूं हल्दीघाटी, नैना मे रक्त उतर आवे
सुख-दुख रो साथी चेतकडो, सूती-सी हूक जगा जावे।
पण आज बिलखतो देखूं हूँ, कुंवर ने सूखी रोटी ने
हूँ क्षत्रिय-धरम ने भूलूं हूँ, भूलूं हिन्दवानी चोटी ने॥

प्रसग बहुत बडा है और मन को मथ डालनेवाला है। महाराणा का हृदय विचलित हो गया। सोचने लगे—चेतक नही रहा। इकलौता बेटा रोटी के लिए तरस रहा है। परेशान हो रहा है, क्रन्दन कर रहा है; मैं अब और सहन करने को तैयार नहीं हूँ। अकबर को आज ही पत्र लिखूँगा कि मैं तुम्हारी दासता स्वीकार करने को तैयार हूँ। मेवाड के महाराणा ने पत्र लिख दिया। पत्र अकबर के पास पहुँचा, किन्तु उसे विश्वास नही हुआ। उसकी आँखें बार-बार पत्र पढ रही थी और वह सोच रहा था कि क्या मेवाड का महाराणा इस प्रकार की कोई दासता मान सकता है? किन्तु अन्तत उसे विश्वास हो गया कि पत्र महाराणा का है और उसमे अधीनता स्वीकार की गयी है। अकबर ने पृथ्वीराज चौहान को बुलाया और कहने लगा—"तू बडे गर्व के साथ कहता था कि मेवाड का राणा महान् है। वह कभी झुक नही सकता, लेकिन देख यह है पत्र उसी राणा का, जिसमे उसने मेरी दासता स्वीकार की है। अब मैं सपूर्ण भारत का सम्राट् हूँ। मैंने जगली शेर को पिंजडे मे कैद कर लिया है।" पित्थल ने जब पत्र पढा, तब वह स्तब्ध रह गया सोचने लगा-"ऐसा कौन-सा सघर्ष है महाराणा के सामने कि उससे विचलित हो कर उसने यह पत्र लिख दिया? " अन्त मे पशोपेश मे पडे पृथ्वीराज ने कह ही दिया—"पत्र झूठा है। बनावटी है। मेवाड की पाग हमेशा ऊँची रही है, हमेशा ऊँची रहेगी। अकबर ने उत्तर दिया—"पृथ्वीराज यदि! तुझे विश्वास नहीं है, तो तू पत्र लिख कर पूछ ले कि वास्तविकता क्या है?" यह सुनते ही पित्थल ने एक मर्मस्पर्शी पत्र लिखा, जिसकी कुछ पक्तियाँ ये हैं—

"मैं आज सुनी है नाहरियो श्याला रे सागे सोवेला
मैं आज सुनी है, सूरजडो बादल री ओटा रहवेला
मैं आज सुनी है चातकडो धरती रो पानी लावेला
मैं आज सुनी है हाथीडो कुत्ता री जूणी जीवेला
मैं आज सुनी के छतां खसम अब राड होवेला रजपूती
मैं आज सुनी के म्याना मे तलवार रहेला अब सूती॥

सारा पत्र मार्मिक है। पित्थल की मनोव्यथा वर्ण-वर्ण मे आ बैठी है। उसने लिखा—"मैंने सुना है नाहर सियारो के साथ आ कर सोयेगा, मैंने सुना है कि बादल की ओट मे सूरज आ जाएगा, मैंने सुना है कि चातक धरती का पानी पीएगा, मैंने सुना है कि हाथी कुत्ते का जीवन जीयेगा, मैंने सुना है, रजपूती विधवा होने को है, मैंने आज सुना है कि म्यान मे तलवार सोती रहेगी।" जब महाराणा ने पित्थल का पत्र पढा, तब उसका शौर्य हुंकार उठा, स्वाभिमान जाग उठा, प्राणो का पराक्रम झकृत हो उठा। वे तत्काल पत्र लिखने बैठे—"नाहर कभी सियार के साथ नही खेल सकता, हाथी कभी कुत्ते की तरह जी नही सकता, सूरज कभी बादल की ओट मे छिपा नही रह सकता, मेरे रहते रजपूती कभी विधवा नही हो सकती, म्यान कभी तलवार मे सो नही सकती, वह हमेशा दमकती रहेगी।" पत्र लम्बा है, किन्तु बताता है कि किस तरह स्वधर्म भूल कर हम विचलित हो उठते हैं। धर्म और शुक्ल ध्यान जब महाराणा को आया तो आत्मविस्मृति का अधकार हट गया। स्वधर्म का सूर्य दमकने लगा। आर्त्त और रौद्र बडे अनर्थकारी है। वे आत्मा की स्वाभाविक शक्तियो को ढक लेते हैं। व्यक्ति मिथ्यात्त्व मे दौडने लगता है, किन्तु जब उसे धर्म और शुक्लध्यान की स्थिति मिलती है स्वाभाविकताएँ स्वयमेव उघडने लगती है। आत्म-सूर्य चमकने लगता है। सर्वत्र आनन्द ही आनन्द की, गहरे परमानन्द की अनुभूति होने लगती है, इसलिए चार ध्यानो मे से आर्त्त और रौद्र छोडने योग्य हैं, धर्म और शुक्ल धारण करने योग्य हैं। □

13

साध्य और साधन की शुचिता

□ □

साधक को साध्य और साधन दोनों का सम्यक् ज्ञान होना चाहिए और उसे इन दोनों की पवित्रता पर ध्यान देना चाहिए। तभी पवित्र (शुद्ध) साधनों से साधक अपने साध्य को प्राप्त कर सकेगा, लक्ष्य तक पहुँच सकेगा। साध्य और साधन का उत्कृष्ट शैली में सुन्दर विश्लेषण प्रस्तुत है—मुनिश्री के चिन्तनपूर्ण प्रवचन में ……

१३

साध्य और साधन की शुचिता

□ □

साधन और साध्य की विसगति

जैनागमो मे साध्य-साधन के परस्पर सम्बन्धो पर विस्तार से विचार हुआ है। देखा गया है कि प्राय सभी प्राणी अपनी आकाक्षाओ को पूरा करने के लिए किसी न किसी साधन का उपयोग करते हैं, किन्तु इस तथ्य पर विरले ही विचार कर पाते है कि साधनो की कोई सगति साध्य से है अथवा नही है ? प्राय हमारा ध्यान परिणाम की ओर ही रहता है, माध्यम की ओर नही। माध्यम चाहे जो और जैसा हो, हम परिणाम पर आ जाना चाहते हैं। सारी गलती यही होती है। माध्यम यदि सशक्त और निर्मल नही होता है तो यह असदिग्ध है कि लक्ष्य उतना भी सशक्त और निर्मल नही होता। होता यह है कि हम अपनी उपलब्धि-यात्राओ की जल्दबाजी करते हैं और लक्ष्यभ्रष्ट हो जाते हैं। जैन श्रमणो और आचार्यों ने साधनो की निर्मलता और पवित्रता पर बहुत जोर दिया है।

परिणाम की अपेक्षा साधनों की ओर ध्यान दें

इसलिए सबसे पहली शर्त सफलता की यह है कि अपने लक्ष्य को स्पष्ट करे। बहुधा हम अस्पष्ट लक्ष्य के साथ अस्पष्ट यात्राएँ करते है और जब असफल हो जाते हैं तो भाग्य को कोसते है और विधाता पर दोषारोपण करते हैं। हमारी विफलताएँ ही सबसे बडी पाठशालाएँ हैं, इनकी समीक्षाओ के गर्भ मे ही आने वाली सफलताएँ निहित हैं। अकसर होता यह है

कि हम परिणाम की समीक्षा करते हैं, और साधनो को असमीक्षित छोड देते हैं। होना यो चाहिये कि हम परिणाम की अपेक्षा साधनो की पहले समीक्षा करे, क्योकि यदि हम किसी मजिल तक नही पहुँच पाये हैं तो इसमे मजिल का कोई अपराध नहीं है। क्योकि सम्भव है, हम किसी गलत जीने से चढे हो, या किसी कमजोर सीढी पर ही हमने अपने कदम वढाए हो। गलत और दुर्बल सीढी सही मजिल पर नही पहुँचा सकती। इसीलिए जैनदर्शन मे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की चर्चा की गई है। लक्ष्य को पहिचानने पर आचार्यो ने सबसे अधिक वल दिया है। इसके वाद उनका ध्यान साधनो की पवित्रता और उनके व्यवस्थित सयोजन पर गया है।

लक्ष्य पर ध्यान दें

कहा गया है कि साध्य की स्पष्टता और तदनुसार साधनो की योजना लक्ष्य तक पहुँचने की सम्पूर्ण यात्रा की आधी यात्रा है। इस सन्दर्भ मे मुझे एक किस्सा याद आता है। एक व्यक्ति दौडता-हाँफता रेलवे स्टेशन पर गया। वह वेहद परेशान था। साँस भरी हुई थी, पसीने से लथ-पथ था, हैरानियो से घिरा हुआ था। इस परेशानी के दुश्चक्र को तोड़ते हुए टिकट वावू ने कहा—"महाशय, गाडी अभी रुकेगी, आप स्वस्थ हो जाएं और वतायें, कहाँ का टिकट चाहते है ?" आगन्तुक इतना घवराया हुआ कि उसने वावू की वात को ध्यान से सुना ही नही और कहता गया—"मुझे टिकिट दे दीजिये, ससुराल का टिकिट दे दीजिये, जल्दी दे दीजिये।" वावू हैरान था। उसने फिर पूछा, किन्तु जव कोई उचित उत्तर नही मिला तो उसने जितने पैसे मिले थे, उतनो का किसी गाँव का टिकिट वना दिया। आप यदि इस किस्से पर ध्यान से सोचें तो यह किस्सा अकेले उस आदमी का नही है, हम सवका है। हम सव टिकिट तो माँग रहे हैं, किन्तु अपने लक्ष्य के वारे मे स्पष्ट और असदिग्ध नहीं हैं।

प्रस्थान-विन्दु, गन्तव्य-विन्दु

इसी तरह का एक उदाहरण हम और ले सकते हैं। कोई आदमी घवराया हुआ दौड रहा हो, दौड़ता ही जा रहा हो, और उससे यदि हम पूछें कि "भाई, कहाँ जा रहा है ? कौन है तू ? यह दौडधूप किसलिए है ? और वह यह वताये कि 'वस, दौड रहा हूँ, दौड़ना मेरा काम है, और इतना कह कर पहले से अधिक तेज दौडना शुरु कर देता है तो इसे हम कोई निष्काम साधना नहीं कहेंगे। निष्काम साधना मे कामना मरती है, किन्तु लक्ष्य स्पष्ट रहता है। साधक जानता है कि वह कौन है ?

वह कहाँ है ? और उसे कहाँ जाना है ? किन रास्तो से हो कर जाना है ? वह अपने प्रस्थान-विन्दु और गन्तव्य-विन्दु के वारे मे सम्यग्ज्ञान रखता है। ऐसे साधक ही साधनो का सही उपयोग कर पाते हैं, अन्य चूक जाते हैं और जन्मजन्मान्तर तक माथा धुनते रहते हैं। इसलिए हम चाहिये कि हम अपने साध्य को स्पष्ट और सुनिश्चित करें और अपने साधनो की परीक्षा करें और उस लक्ष्य की ओर भलीभाँति सयोजित करें। जैनधर्म केवल साध्य ही नही, साधनो की भी परीक्षा करता है और इस तरह साधक को एक विशुद्ध, वास्तविक और असदिग्ध धरातल पर पाव रखने की सलाह देता है।

सम्यक् साधन, सम्यक् साधना

साधनो की शुचिता उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी साध्य की शुचिता और उसका स्पष्ट-निर्धारण। कवि के शब्दो मे—

साधन सच्चे वे ही हैं जो,
अन्तर शुद्ध वनाते हैं।
वाकी वाह्याचार भार हैं।
मूरख वृथा निभाते हैं।

अव प्रश्न हो सकता है—सु-साधन क्या है ? अशुचितापूर्ण, भ्रामक या गलत साधन क्या है ? ऐसे कौनसे साधन हैं, जो जीवन की सफलताओ के लिए स्वीकार्य-ग्राह्य हैं ? और ऐसे साधन कौन से हैं, जो जीवन-यात्रा के लिए अग्राह्य अथवा हेय है ? एक जिज्ञासु के मन मे यदि मोक्ष की आकाक्षा जन्म ले और उससे प्रश्न किया जाए कि मोक्ष के साधन क्या हैं ? आचार्य उमास्वाति ने इस सन्दर्भ मे जो सूत्र कहा है, वह जीवन का स्वर्णसूत्र है—"**सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्ग।**" सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ही मोक्षमार्ग हैं। मोक्ष के समीचीन साधन हैं। हम अपनी भाषा मे यो कहेगे इसे—सत्य विश्वास, सत्य विचार और सत्य आचार ही मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग है। मार्ग यहाँ माध्यम का पर्याय है। मार्ग यानी साधन। सम्यक्त्व, जीवन के हर सन्दर्भ मे सम्यक्त्व, ही मोक्ष का मार्ग है। यहाँ सम्यक् शब्द मे शुचिता सन्निहित है और शुचिता मे सम्यक्त्व सम्मिलित है। शुचिता और सम्यक्त्व अलग-अलग नही हैं, परस्पर आश्रित हैं।

अप्पदीपो भव

वस्तुत साधना को सफल बनाने का यही एक सुसगत और उपयुक्त साधन है। साधक स्वय पर विश्वास करे, स्वयं को जाने और स्वय को शुद्ध बनाये। इसके विपरीत जब वह स्वय पर अविश्वास रखता है, स्वय को समझने का कोई प्रयत्न नहीं करता और स्वय को शुद्ध नही बनाता तो अपने लक्ष्य से चूक जाता है। असल मे होना यह चाहिये कि हम भगवान् महावीर की उस उक्ति पर ध्यान दे, जिसमे कहा गया है कि 'तू खुद का दीपक खुद बन' (अप्पदीपो भव)। हम भीतर जागे और सही लक्ष्य-केन्द्रित साधनो का उपयोग करे तो फिर ऐसा कुछ नही रह जाता, जिसे हम प्राप्त न कर सकते हो। साध्य-साधन की शुचिता के सामने कुछ भी असम्भव नही है। □

14

बन्धन-मुक्ति

□ □

स्वतन्त्रता और मुक्ति शब्द हमे परतन्त्रता और वन्धन के वारे मे सोचने को वाध्य करते हैं। वन्धन के वाह्य और आन्तरिक कारणो को जान कर तथा स्वतन्त्रता और परतन्त्रता के वास्तविक स्वरूप को समझ कर उस वन्धन या परतन्त्रता से मुक्त होने के उपाय पर गहराई से सोचना चाहिए। भगवान् महावीर के शब्दो मे वन्धन और मुक्ति सव स्वय मे है, इसलिए वाहर से वन्धन-मुक्ति की आशा छोड कर आत्मानुशासन मे चल कर वाह्य और आन्तरिक वन्धनो को तोडने का स्वय पुरुषार्थ करना चाहिए। तभी वाह्य स्वतन्त्रता और वन्धनमुक्ति के साथ आत्मिक स्वतन्त्रता और वन्धनमुक्ति प्राप्त होगी। वन्धन क्या है? मुक्ति क्या है? स्वतन्त्रता क्या है? इन सव पहलुओ पर पढिए—गम्भीर चिन्तन से ओतप्रोत प्रस्तुत प्रवचन····

१४

बन्धन-मुक्ति

□ □

मूल प्रश्न

आज स्वतन्त्रता-दिवस है, राष्ट्र का मुक्ति-दिन। इस मगलमय दिवस पर हमारा राष्ट्र विदेशियो के पजो से मुक्त हुआ था, और उसने उन्मुक्त गगन के तले शान्ति, सुख, समृद्धि और स्वतन्त्रता की सास ली थी। इस सन्दर्भ मे जब हम 'स्वतन्त्र' या 'मुक्त' विशेषण का उपयोग करते हैं, तब हमारा ध्यान इसके विलोम शब्द पर जाता है। चिन्तन की ज्योति मे जगमगाता मुक्ति का स्वरूप बन्धन के व्यक्तित्व की ओर भी इशारा करता है। इससे यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि कही कोई परतन्त्रता है, बन्धन है, जिसे हम तोड कर आजाद होना चाहते हैं। बन्धन के परिपार्श्व मे मुक्ति की महत्ता का बोध होता है, अन्धकार की पृष्ठभूमि पर आलोक अधिक निखर कर सामने आता है।

एक उपप्रश्न

इस तरह मुक्ति पर विचार बन्धन की स्पष्ट समीक्षा के बिना आधा-अधूरा ही है, इसलिए मुक्ति की बगल मे बन्धन की पूरी पहचान भी आवश्यक है। मुक्ति का प्रश्न उठते ही एक उपप्रश्न सामने आता है, मुक्ति किससे? किसी बन्धन से, किसी जकड से, किसी पराधीनता, या किसी गुलामी से? इस बन्धन पर आचार्यो ने काफी विस्तार से विचार किया है। जो यथार्थ को ढकता है, उसके मौलिक व्यक्तित्व को प्रकट नही होने देता। यह बन्धन द्वैध है, दो प्रकार

का है वाह्य और आन्तरिक। तत्वज्ञो की दृष्टि मे वाह्य बन्धन का विशेप महत्त्व नहीं है। वाह्य बन्धनो से तनिक पुरुपार्थ और वाहरी माधनो के उपयोग मे मुक्त हुआ जा सकता है। यह स्थूल है, दीख पडता है, अत इसे पहचानने और काटने मे कोई कठिनाई नही होती। किन्तु आन्तरिक बन्धन अधिक सूक्ष्म और गहरा होता है। एक तो उसे पहचानना कठिन होता है और कदाचित् समझ मे आ भी गया तो इसे तोडना या उन्मूलित करना दुष्कर कार्य होता है।

बन्धन के दो कारण : राग-द्वेष

आध्यात्मिको ने आन्तरिक बन्धन को ही महत्त्व दिया है। उन्होने इसकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म समीक्षा की है, और इसके लक्षणो पर विशद प्रकाश डाला है। इस सन्दर्भ मे हमारी जानकारी भले ही नगण्य हो, किन्तु आगम मे इसके स्वरूप पर विस्तार से विचार हुआ है। जैनदर्शन मे बन्धन के दो कारण बताये गये हैं राग और द्वेप। इन दोनो को पहचानना और इन्हे छिन्न-भिन्न करना ही सच्चा पुरुपार्थ है, और वास्तविक स्वातन्त्र्य-प्रेम है। बन्ध के ये जो दो कारण कहे गये हैं, राग और द्वेप, ये आत्मा के विभाव हैं, स्वभाव नहीं हैं। स्वभाव मे स्वाधीनता है, वहाँ कोई बन्धन नही है, बन्ध विभाव मे ही सम्भव है, इसलिए बन्धन, फिर वह चाहे देह का हो, विदेह का हो, त्याज्य है।

वैभाविक स्वतन्त्रता

वाह्य बन्धन देह के विकास को रोकते हैं तो आन्तरिक बन्धन आत्मोत्थान के निष्कण्टक मार्ग को काटो मे भरी डगर बनाते हैं। वास्तव मे जीवन का मूल आत्मा है, यदि आत्मातिरिक्त कोई महत्त्वहीन वस्तु है तो उससे लाभ ही क्या है? कहा जा सकता है वाह्य स्वतन्त्रता, जिसे हम वैभाविक स्वतन्त्रता कह सकते हैं, से कोई लाभ नहीं है क्योकि वह एक तरह की परतन्त्रता ही है, किन्तु इसका भी एक लाभ है, स्वतन्त्रता के सस्कार पडने पर हम उसे अन्तर्मुख कर सकते हैं और आत्मा को उसकी वैभाविकता से मुक्त करने का सत्यप्रयास कर सकते हैं।

बन्धन और मुक्ति सब तुझ मे है

वाह्य स्वतन्त्रता की उपलब्धि उतनी कठिन नही है, जितनी भीतरी स्वतन्त्रता की। वाहर की आजादी तो आन्दोलन आदि से प्राप्य है, किन्तु आन्तरिक मुक्ति अर्थात् आत्मस्वातन्त्र्य परमात्म-प्रेम या आत्मपुरुपार्थ के विना सभव नही है।

व्यक्ति जहाँ सद्विवेक, सच्चिन्तन, शुभ-पवित्र प्रक्रियाओ से मुक्त हो जाता है, वहाँ मिथ्यात्व, अविवेक इत्यादि से अधिक प्रगाढ वन्धनो मे जकडता जाता है। सचाई तो यह है कि वन्धन और मुक्ति सब तुममे है, वाहर कही कुछ नही है। आत्मा के मच पर ही वन्ध-मोक्ष घटित होते हैं, अन्यत्र नही।

वन्धन की प्रतीति

हम एक उदाहरण लें। शूरवीर हनुमान जब नागपाश मे वद्ध हुए, तव वन्धन उनके लिए तव तक वन्धन रहे, जव तक वे उन्हे वन्धन मानते रहे। मुक्ति की अनुभूति होते ही उनका पुरुषार्थ अँगडाई लेने लगा और वे अविलम्ब मुक्त हो गये। इसलिए मुक्ति, चाहे वह भौतिक हो, या आत्मिक, वन्धन को पहिचाने वगैर सम्भव नही है। और फिर केवल पहिचानने से ही काम नही चलेगा, वन्धन को जान कर उसे तोडने तथा उसके निर्जरण की आवश्यकता भी होगी। प्रतीति या वोध एव तदुपरान्त उन्हे नष्ट करने का आत्मपुरुषार्थ, वन्धन को काट कर स्वतन्त्र होने की यही सम्यक् प्रक्रिया है।

आत्मानुशासन

जैसा कि मैं आरम्भ मे ही कह चुका हूँ कि आज १५ अगस्त है। देश की स्वतन्त्रता का मगलमय दिन। इसलिए हमारी चर्चा का विषय स्वाधीनता है। इसे यदि हम तनिक विस्तृत करें तो यह स्वाधीनता कई प्रकार की हो सकती है। इससे पहले हमने आध्यात्मिक स्वाधीनता पर विचार किया है। आज देश को आर्थिक और सामाजिक स्वाधीनताओ की भी जरूरत है। ठीक है कि कोटि-कोटि जन राष्ट्रीय ध्वज के नीचे खडे हो कर राष्ट्रगीत गा रहे हैं। यह अनुशासन है। किन्तु क्या केवल अनुशासन मे ही हमारी सारी समस्याओ का समाधान हो सकता है? अनुशासन के वाद की सीढी है आत्मानुशासन। इस सीढी पर अभी हमारे देश ने पैर नही रखा है। क्योकि हम देख रहे हैं कि चारो ओर एक तरह की सामाजिक अराजकता है। कोई किसी को लूट रहा है, कोई किसी के खिलाफ षड्यन्त्र कर रहा है, कोई भ्रष्टाचार कर रहा है, कोई मिलावट कर रहा है। इस तरह चारो ओर धोखाधडी का वातावरण बना हुआ है। इसका समाधान आत्मानुशासन मे है। आत्मानुशासन वाहर से नही आता, यह भीतर से प्रकट होता है।

जो कहो, उसे जिओ

दुर्भाग्यपूर्ण यह है कि आजादी हासिल कर लेने के बाद हमारे राष्ट्रीय और वैयक्तिक चरित्र का जैसा विकास होना चाहिये था, वैसा नही हुआ है। चारित्रिक दृष्टि से हममे स्वार्थ गहरे हुए है, और परस्पर अविश्वास तथा शोषण की स्थितियो मे वृद्धि हुई है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के स्थान पर क्रमश हिंसा झूठ, चोरी, असयम और सचय ने जडें पकड़ ली हैं। यह हमारा चारित्रिक पतन है। भगवान् महावीर की अहिंसा बहुत सूक्ष्म है, किन्तु उसे अमल मे नही लाया जा सकता, ऐसा कहना, स्वय पर अविश्वास करना है। महावीर ने जो भी कहा, वह सब उनके चरित्र मे से आया है। उन्होने अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह इत्यादि को जीया था, उन्होने मात्र उपदेश नही दिया। इसलिए सच्ची स्वाधीनता हमें तब प्राप्त होगी, जब हम चारित्रिक श्रेष्ठताओं को उपलब्ध करेंगे और अपने चारो ओर खडे दूषित वातावरण को निर्मल बनायेंगे। क्या अधिकार है—कुछ लोगो को कि वे गन्दी फिल्मे बनायें, गन्दा साहित्य लिखें और हमारे चारित्रिक उत्थान को पिछडाये हमे इनका खुल कर विरोध करना चाहिये और आत्मानुशासन के बीज हर व्यक्ति मे अकुरित करने चाहिये।

जो आजादी दूसरो को गुलाम बनाती है

ऐसे दिन बहुत कम ही आते है, जब हम अपनी कमियो और दुर्बलताओ का लेखाजोखा करते हो, और उत्थान के नये सकल्प करते हो। आज का दिन आत्मनिरीक्षण का महत्त्वपूर्ण दिन है। हर नागरिक को स्वय मे एक गहरी खोज-यात्रा करनी चाहिये और उन सारी बुराइयो का पता लगाना चाहिए, जो उसकी स्वतन्त्रता को अवरुद्ध किये हुए हैं। उन्हे उखाड फेंकना चाहिये और आत्मस्वातन्त्र्य की दिशा मे तेजी से कदम उठाना चाहिए। आत्मस्वातन्त्र्य ही, याद रखिये, आगे चल कर सपूर्ण राष्ट्र की सच्ची स्वतन्त्रता में रूपान्तरित होता है। यहाँ आत्मस्वातन्त्र्य का अर्थ स्वैराचार नही है, वरन् आत्मानुशासन है, दूसरे को कोई तकलीफ दिये बिना स्वतत्र होने की अद्वितीय प्रक्रिया है। जो आजादी दूसरो को गुलाम बनाती है, वह आजादी न हो कर परतन्त्रता का ही एक रूपान्तर है। इसलिए हमारा ध्यान ऐसी किसी छलिया आजादी की ओर नही है, बल्कि सच्ची और सही आजादी की ओर है। यदि हम इस स्वाधीनता को प्राप्त कर सके तो, विश्वास कीजिए, हमे कभी, कोई, कही भी पराजित नही कर सकेगा, क्योंकि हमारी आजादी स्वय को आजाद करने के लक्ष्य पर अविचल यात्रा करेगी। इसका लक्ष्य दूसरो को परतन्त्र बनाने का होगा ही नहीं। भगवान् महावीर की स्वतत्रता-धारणा इतनी ही मानवीय और पवित्र थी। हमे इसकी गहराई मे जा कर समझने के प्रयत्न करने चाहिए। □

15

अहिंसा की सार्वभौम शक्ति

□ □

कुछ पाश्चात्य दार्शनिक 'मानवजीवन संघर्ष से ही चलता है' इस वात पर विश्वास करते है, लेकिन गहराई से देखा जाए तो अहिंसा से ही मानवजीवन के सभी व्यवहार चलते हैं, स्थायी और सुखद रह सकते हैं। संघर्ष-हिंसा मनुष्य मे युद्ध, वैर-विरोध, राग-द्वेष, कषाय आदि वढाती है। और जहाँ-जहाँ, जिस-जिस क्षेत्र मे अहिंसा को छोड कर हिंसा को अपनाया गया, वहाँ-वहाँ मानवजाति की अशान्ति, दु ख, कष्ट पीड़ा और घुटन वढी है। इसके विपरीत प्राय. प्रत्येक क्षेत्र मे जहाँ अहिंसा के सफल प्रयोग हुए हैं, वहाँ-वहाँ स्थायी सुख-शान्ति वढ़ी है, परस्पर, प्रेम, सेवा, सहानुभूति, मानवता और सद्-भावना के अकुर फूटे हैं। अहिंसा का सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, पारिवारिक आदि विविध क्षेत्रो में कैसे सफलतापूर्वक प्रयोग और व्यवहार किया जा सकता है ? अहिंसा का पालन कव, कौन और कैसे कर सकता है ? विविध भूमिकाओ मे उसकी मर्यादाएँ क्या हैं ? सभी व्रतो और नियमो आदि मे अहिंसा क्यो आवश्यक है ? इन सव प्रश्नो पर मार्मिक विश्लेषणपूर्वक मुनिश्री का सशक्त चिन्तनयुक्त प्रवचन प्रस्तुत है……

१५

अहिंसा की सार्वभौम शक्ति

□ □

अहिंसा भारतीय सस्कृति की आत्मा है। भारत के प्रत्येक मानवीय व्यवहार मे ऋषि-मुनियो ने अहिंसा का पुट दिया है। अहिंसा के बिना भारत का मानव, चाहे वह गृहस्थ हो या साधु एक भी प्रवृत्ति सुखशान्तिपूर्वक नही कर सकता। भारत के हा नही, विश्व के सभी दर्शन और सभी धर्म एकस्वर से अहिंसा की महत्ता और अनिवार्यता मानवजाति के लिए स्वीकार करते है। आप किसी भी धर्मग्रन्थ को उठा कर देख लीजिए, सब मे अहिंसा का स्वर मुखरित होता हुआ मिलेगा।

अहिंसा के बिना कोई भी व्यवहार सुखद नहीं

बहुत-से लोग यह कहा करते है, खासकर पश्चिम के कुछ दार्शनिक, कि मनुष्य का जीवन सघर्ष से ही चल सकता है, सहयोग से नही।" परन्तु यह तो आपका प्रतिदिन का प्रत्यक्ष अनुभव है कि क्या परिवार मे, क्या जाति और समाज मे, क्या धर्मसंघ और राष्ट्र मे सर्वत्र सहयोग से ही काम चलता है। माता अगर बालक को पालन करने के कष्ट से बच कर उसे फेंक देती, या बालक जब-जब उसके सामने रोता, हाथ-पैर मारता या उसके शरीर को अपने मल-मूत्र से गदा कर देता, तब-तब वह उसके साथ सघर्ष करती यानी उसे डांटती-डपटती, मारती-पीटती, उसके साथ लडाई करती तो क्या बालक आगे बढ सकता था ? क्या उसके तन, मन और बुद्धि का विकास हो सकता था ? क्या उस शिशु का जीवन बच सकता था ? कदापि नही। बालक का जीवन बचा है—माता के सहयोग से, माता के वात्सल्ययुक्त व्यवहार से, माता की परम करुणा मे ! और बालक भी मां को पूजनीय दृष्टि से न देखता, उसे

माँ कह कर न पुकारता, उसके द्वारा पालन-पोषण को सद्भाव से ग्रहण न करता, माता के साथ सदा ही झगडा करता, उसके प्यार को भी धिक्कार देता, उसके वात्सल्य-व्यवहार को कठोर वन कर ठुकरा देता तो क्या वालक का जीवन चल सकता था, या माता से उसको पालन-पोषण या रक्षण-सवर्द्धन मिल सकता था ? तात्पर्य यह है कि वालक का जीवन सघर्ष से वचा या सहयोग से ? यह आप स्वय सोच सकते हैं।

सघर्ष हिसा है, सहयोग अहिसा है। हिसा से ससार का जीवन चल नही सकता, अहिसा से ही जीवन और जीवन का प्रत्येक व्यवहार चल सकता है।

यही वात सामाजिक क्षेत्र मे समझ लीजिए। समाज परस्पर सहयोग के आधार पर चलता है, असहयोग या सघर्ष के आधार पर समाज कदापि नही चल सकता।

आपको अपने विकास के लिए विविध पदार्थों का ज्ञान चाहिए, विविध कलाओ और विद्याओ का अनुभव तथा प्रत्यक्ष ज्ञान चाहिए, विना सहयोग के कैसे मिलेगा ? क्या आप वचपन से स्वय ही सव कुछ ज्ञान प्राप्त कर सकते है ? यह माना कि प्रत्येक आत्मा मे अनन्त ज्ञान है, परन्तु वर्तमान मे तो वह सव ज्ञान दवा हुआ है, अप्रकट है। उसे प्रकट करने के लिए कोई न कोई निमित्त चाहिए। निमित्त का सहयोग—प्रेम और अहिसा से ही मिलता है। मानवजाति के पूर्वज या अग्रज महानुभाव या समाज के वडे-वूढे महामान्य लोग अगर हम पर करुणा करके ज्ञान-विज्ञान सुरक्षित न रखते, अथवा विविध अनुभव हमारे लिए सुरक्षित न छोड जाते अथवा हमे वर्तमान मे भी वुजुर्ग महानुभाव ज्ञान-विज्ञान मे हमे शिक्षित और अभ्यस्त न करे तो हम कदापि इतना विकास नही कर सकते थे, न ही वर्तमान मे कर सकते हैं। अहिसा के वल पर ही यह सव विकास हुआ है।

राजनैतिक क्षेत्र मे मानव ने शासनव्यवस्था के नये-नये सुविधाजनक और जनकल्याणकारी शासनतत्र-राजतन्त्र से लोकतत्र तक की जो खोज की है, वह सव मानवजाति के प्रति वात्सल्य से प्रेरित हो कर ही की है। क्या यह कार्य हिसा के द्वारा सम्भव था ? क्या हिसा से जवरन दमन करके, डरा-धमका कर, सघर्ष करके हम उन पूर्वजो से ज्ञान-विज्ञान और कला-विद्या का शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते थे ? कदापि नही। जीवन के सभी व्यवहार अहिसा के आधार पर चलते हैं।

हिसा का आधार व्यवहार्य नहीं

अगर मनुष्य यह नियम ले ले कि मैं तो अहिमा के आधार पर एक भी व्यवहार या कार्य नही चलाऊगा, तो कितने दिन चलेगा उसका वह प्रण ? शायद एक घटे भी नही चल सकेगा ? क्या भूख लगने पर माता या पत्नी से वह लड-झगड कर रोटी प्राप्त करेगा ? क्या अपने मालिक से सघर्ष करके वह नौकरी करेगा या वेतन पायेगा ?

अपने बच्चो, पत्नी तथा अन्य परिवार वालो से झगडा करके क्या वह प्यार पा सकेगा ? क्या अपने शिक्षको के डण्डे मार कर वह विद्या प्राप्त कर पाएगा ? अथवा अन्य जितनी भी प्रवृत्तियां दिनभर मे होगी, क्या वह उन सव प्रवृत्तियो मे हिंसा के वल पर दूसरो से सहयोग पा सकेगा या अहिंसा के वल पर पा सकेगा ? आप कहेंगे कि हम सव कहते हैं कि अहिंसा के वल पर ही सर्वत्र काम होगा। परन्तु कही-कही हिंसा से भी काम होता है, भले ही वह हिंसा किसी प्राणी को जान से मारने की न हो, परन्तु कोई उद्दण्ड व्यक्ति हमे सताये, हम पर अन्याय करे, या हम पर अत्याचार करे, हमारा धन जवरन छीनना चाहे, उस समय उसका सामना हिंसा से ही तो करना होगा ? उस समय अहिंसा क्या काम आएगी ? उस समय हमारा प्यार उसे कैसे जीत सकेगा या अन्याय आदि करने से कैसे रोक सकेगा ?

अहिंसा से क्रूर प्राणी भी वश मे

वस, यही तो समझने की वात है। अहिंसा की शक्ति पर आपको विश्वास नही है। अहिंसा का चमत्कार आपने देखा-सुना नही है, अथवा देखा या सुना है तो भी अभी तक आपके हृदय मे यह विश्वास नही जम पाया है कि ससार के सारे व्यवहार अहिंसा से चल सकते हैं, उद्दण्ड, क्रूर और दानव-तुल्य वने हुए मनुष्य को भी अहिंसा से वश मे किया जा सकता है, उसे वदला जा सकता है, उसे वुरे कार्य करने से रोका जा सकता है। इसीलिए तो अहिंसा के पुजारी, योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतजलि ने कहा—

'अहिंसा-प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः

जहाँ, जिस हृदय या जीवन मे अहिंसा अपने पैर मजवूती से जमा लेती है, अहिंसा का वातावरण प्रतिष्ठित कर दिया जाता है, अहिंसा सर्वांगीण क्षेत्र मे स्थिर हो जाती है, उसके सान्निध्य (निकट) मे परस्पर विरोधी, कट्टर शत्रु या हिंस्र प्राणी भी अपना वैरभाव भूल जाते है, द्वेषभाव छोड देते है।

रोम मे जिन दिनो गुलामी-प्रथा का जोर था, गुलामो से जवरन काम लिया जाता था और एक वार गुलाम वन जाने पर जिन्दगीभर उसका मालिक के अत्याचारी चगुल से छुटकारा पाना कठिन हो जाता था, एक गुलाम जिसका नाम था— 'एड्र्यूज कील', अपने मालिक के अत्याचारो से तंग आ कर किसी तरह भाग छूटा और जगल मे एक सिंह की गुफा मे जा कर छिप गया। उसने मन में ठान लिया कि रोज-रोज के मालिक के त्रास सहने की अपेक्षा तो एक ही वार मे सिंह के आक्रमण से मर जाना वेहतर है। परन्तु उसका आयुष्यवल प्रवल था। इसलिए गुफा मे सिंह न मिला। किन्तु दूसरे ही दिन उसने सिंह के कराहने की आवाज सुनी। पीडा की आवाज और क्रूरता की आवाज मे, तथा दुख के स्वर और क्रूरता के स्वर मे वहुत अन्तर होता

है। गुलाम एण्ड्रयूज कील ने जब सिंह का पीडाभरा स्वर सुना तो उसके मन मे विचार उठा कि मालूम होता है, यह सिंह किसी न किसी पीड़ा से व्यथित है। इसे किसी न किसी की सहायता की जरूरत है, जो इसकी पीड़ा को सुन सके और दूर कर सके। मरना तो है ही, इसीलिए तो मैं यहाँ सिंह की गुफा मे आया था। अगर पास मे जाने से और उसकी पीडा को समझ कर दूर करने से सिंह मुझे झपट कर मार डालेगा, तो मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।' यह सोच कर वह गुलाम सिंह की आवाज, जिधर मे आ रही थी, उधर दौडा। सिंह ने ज्योंही उसे देखा, वह पहिचान गया कि यह मुझे मारने तो नही आ रहा है, यह शिकारी तो नही है। पशु मे भी इतना ज्ञान प्राय होता है कि वह मारने वाले और बचाने वाले की चेष्टाओ एव संकेतो पर से उसे जान जाता है। सिंह के पजो मे तीखे काँटे घुस जाने के कारण वह उसकी पीडा से कराह रहा था। घायल सिंह की पीड़ा को समझते गुलाम को देर न लगी। वह तुरन्त उसके पास पहुँचा और उसके पजे हाथ मे ले कर उसके काँटे निकाले, उसके घावो पर कुछ वनस्पति लगा कर मरहम पट्टी कर दी। सिंह की पीडा कम हो गयी। वह उस गुलाम के प्रति कृतज्ञ हो गया। तीन-चार दिनो बाद जब वह स्वस्थ हो गया तो उस गुलाम के पास आ कर उसके पैर चाट कर प्यार जताने लगा। गुलाम उसके सिर पर हाथ फिराता। इस प्रकार रोजाना वह गुलाम के पास आ कर इसी प्रकार प्रेम प्रदर्शित करने लगा।

उधर गुलाम कील के भाग जाने से उसके मालिक ने उसकी तलाश करने के लिए चारो तरफ आदमी दौडाये। आदमी ढूंढते-ढूंढते गुलाम के पास आ पहुँचे और उसे पकड कर मालिक के पास ले आये। संयोगवश उस सिंह को भी पिंजरे मे पकड कर ले आया गया। सिंह को तीन दिन तक भूखा रखा गया। चौथे दिन उस गुलाम को सिंह के पिंजरे के सामने खडा होने का आदेश दिया गया और तीन दिन के भूखे सिंह को उसके सामने छोड़ा गया। मगर सिंह ने पिंजरे से बाहर निकलते ही अपने उपकारी को पहचान लिया, उसने तीन दिन के भूखे होते हुए भी उस गुलाम पर कोई आक्रमण नही किया। दर्शक लोग दग रह गये। अधिकारियो ने सिंह को बहुत ही उत्तेजित करने का प्रयत्न किया, लेकिन भूखे सिंह ने अपने उपकारी गुलाम को जरा भी हानि नही पहुँचाई।

आखिर एड्रयूज कील को बन्धनमुक्त कर दिया गया और उसके मालिक ने उससे पूछा—"तुम्हारे सब अपराध माफ है, परन्तु यह बताओ कि तीन दिन के भूखे शेर ने तुम्हे क्यो नही मारा ? क्या तुम कोई जादू जानते हो ?"

गुलाम ने हाथ जोडते हुए कहा—"मैंने इस सिंह की घायल अवस्था मे सेवा की है। इसलिए अपना उपकारी जान कर मुझे इसने जरा भी हानि नही पहुँचाई।"

प्रसन्न हो कर उसके मालिक ने उस गुलाम को गुलामी से मुक्त कर दिया।

जव सिंह और सर्प जैसे क्रूर प्राणी भी अहिंसा से वश मे किये जा सकते है, तव क्रूर मनुष्यो को अहिंसा से वश मे करना कौन वडी वात है ? जिसके रोम-रोम मे अहिंसा प्रतिष्ठित हो जाती है, जिसकी रग-रग मे अहिंसा रम जाती है और जिसके सस्कारो मे अहिंसा घुलमिल जाती है, वह व्यक्ति तो इतना निर्भय और प्रभावशाली हो जाता है कि उस पर हिंस्र पशु, पक्षी या मनुष्य आदि कोई भी प्राणी आक्रमण नही करता। उसके सानिध्य मे वैठे हुए सदा के विरोधी पशु या मानव भी अपना वैरभाव भूल जाते हैं। यह अहिंसा का ही चमत्कार था कि भगवान् महावीर एव भगवान वुद्ध के उपदेश के समय सिंह और मृग एक ही जगह शान्तभाव से वैठ जाते थे। मगधसम्राट् विन्दुसार (अशोक के पिता) के जीवन मे ऐसी आँखो देखी घटना का उल्लेख कवियो ने किया है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपने खण्डकाव्य पचवटी मे इसी वात को प्रस्तुत किया है—

"अहा ! आर्य के विपिन-राज्य मे, सुखपूर्वक सव जीते है।
सिंह और मृग एक घाट पर आ कर पानी पीते हैं॥"

यही क्यो ? स्वामी श्रद्धानन्दजी जव योगसाधना करते थे, तव एक सिंह उनके पास चुपचाप आता और उनके पैर चाट कर वापिस लौट जाता। रमणमहर्षि के आश्रम मे रात को अनेक जहरीले साँप निकलते, परन्तु उन्हे कभी किसी भी साँप ने पीडा नही दी। यहाँ तक कि साँप, विच्छू, वन्दर आदि सव उनके सामने नम्र वन जाते थे। तीर्थंकरो की परम अहिंसा के प्रभाव से ही उनकी धर्मसभा (समवसरण) मे सिंह और गाय, साँप और नेवला आदि शाश्वत विरोधी प्राणी भी निर्वैर हो कर वैठ जाते थे।

अहिंसा का मानवजगत् के सभी क्षेत्रो मे पालन सम्भव

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा का प्रभाव सार्वभौम है। मानव-जीवन के सभी क्षेत्रो—सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, सास्कृतिक और आध्यात्मिक आदि मे अहिंसा का पालन आसानी से किया जा सकता है। परिवार मे कभी किसी वात पर सघर्ष खडा हो जाता है, या मनमुटाव वढ जाता है तो क्या आप डण्डो से हर वात मे फैसला करते हैं ? क्या वात-वात मे आप पारिवारिक मसले हल करने के लिए हिंसा पर उतर आते हैं ? नही, वहाँ परस्पर वीचविचाव, समझौता, पचो द्वारा दोनो पक्षो के विवाद का शान्ति से निपटारा, परिवार के वुजुर्गों के नैतिक दवाव से परस्पर सुलह कर लिया जाता है। क्या ये अहिंसा के अग नही है ?

और जातियो मे परस्पर झगडे, कलह या मनोमालिन्य होने पर भी प्राचीन-

काल मे जाति के निष्पक्ष और प्रभावशाली पचो द्वारा दोनो पक्षो को कह-सुनकर तथा जिस पक्ष का जितना दोष या अपराव हो उसे उतनी मात्रा में दण्ड या प्रायश्चित्त दे कर बहुत-से झगड़ो और पेचीदा प्रश्नो का अहिंसक ढग से पारस्परिक समाधान कराया जाता था।

आर्थिक क्षेत्र मे भी लेन-देन के मसलो या विवादो का निष्पक्ष न्याय दे कर समाधान कराया जाता है। सामाजिक क्षेत्र मे भी अनेक क्रूर, लुटेरे, हत्यारे और पापी लोगो को अहिंसा की पावनसुधा ने उपदेश, आध्यात्मिक प्रभाव, वातावरण एवं समझाहट-भरी प्रेरणा के द्वारा बदल दिया है, उनका हृदय-परिवर्तन कर दिया है।

भगवान् महावीर के अनुपम वात्सल्य के रूप मे अहिंसा ही चण्डकौशिक विषधर का हृदय-परिवर्तन करने मे सफल हुई। यह अहिंसा का ही चमत्कार था कि अगुलिमाल जैसे कुख्यात डाकू ने भगवान बुद्ध के सामने आत्म-समर्पण करके सदा के लिए अपनी दुर्वृत्ति छोड दी। यह अहिंसा के ही सार्वभौम पालन का प्रभाव था कि वाल्मीकि लुटेरे से ऋषि बन गया। यह अहिंसा का ही प्रताप था कि दुर्दान्त चिलातीपुत्र चोरी, हत्या और लूटमार छोड़ कर एक शान्त सन्त बन गया। यह अहिंसा की ही विशेषता थी कि आलमगीर पठान महात्मा गाधीजी के क्षमाभाव के सामने नतमस्तक हो कर अपने अपराध के लिए पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना करने लगा। भारतीय स्वतन्त्रता-सग्राम अहिंसा पर ही तो आधारित था, जो बिना किसी प्रकार के शस्त्र-अस्त्र लिये, किसी प्रकार की सशस्त्र फौज लिये बिना महात्मा गांधीजी के नेतृत्व मे ब्रिटिश सरकार से लडा गया और किसी शस्त्रास्त्र या हिंसाकाण्ड के सामने न झुकने वाली कूटनीतिक ब्रिटिश सरकार झुक गई। ब्रिटिश सरकार को बाध्य हो कर भारत छोडना पड़ा और इसे स्वतन्त्रता देनी पड़ी। महात्मा गाधीजी ने तो अपने जीवनकाल मे सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रो के विविध पेचीदा प्रश्नो पर अहिंसक सत्याग्रह करके अहिंसा से ही वे मसले हल किये हैं। मिल-मालिको और मजदूरो मे आये दिन होने वाली तनातनी, सघर्ष और विवाद को बढने से और उसके फलस्वरूप दोनो ओर से लाठी, गोली, गालीगलौज, मारपीट आदि हिंसक साधनो को अपनाने से रोकने के लिये कई बार सफल अहिंसक प्रयोग किये थे। और बाद मे सदा के लिए मिलमालिको और मजदूरो के झगडो के अहिंसक ढग से पारस्परिक समाधान के लिए उन्होंने 'मजूर-महाजन' नाम की सस्था ही स्थापित कर दी। महात्मा गाधीजी ने तो पारिवारिक क्षेत्र मे भी कई समस्याएँ अहिंसक तरीको से सुलझाई हैं। उनके देहावसान के बाद भी सन्त विनोबा तथा जयप्रकाशनारायण, रविशकर महाराज जैसे प्रबुद्ध लोकसेवको ने अहिंसा का विविध क्षेत्रो मे सफल प्रयोग किया है। जिसका जीता-जागता प्रत्यक्ष उदाहरण हमारे सामने है—चम्बल घाटी के लगभग ४२५ दुर्दान्त एव खूंख्वार डाकुओ द्वारा आत्मसमर्पण। व्यावहारिक जगत् मे भी अहिंसा ने अपना चमत्कार

दिखाया है। जो व्यक्ति कठोर और दमनयुक्त व्यवहार से कभी काबू मे नही आ सकता था, वही व्यक्ति अहिंसक व्यक्ति के नम्र, सरल, निष्पक्ष, उदार एव निश्छल व्यवहार से बिलकुल बदल गया, पानी-पानी हो गया। क्या पारिवारिक और क्या सामाजिक सभी क्षेत्रो मे अहिंसा कृतकार्य हुई है, होती है, और होगी। साम्प्रदायिक वाद-विवादो मे भी अहिंसा अनेकान्तवाद एव सापेक्षवाद के रूप मे अवतरित हो कर समाधान एव विरोध शान्ति करने मे सफल हुई है। प्रत्येक धार्मिक विवाद आसानी से अहिंसा से मिटाया जा सकता है। राजनैतिक क्षेत्र मे भी अतिप्राचीन रामयुग से ले कर गाधीयुग तक अहिंसा का अवलम्बन ले कर कई विवाद और सघर्ष मिटाये गये है।

व्यक्तिगत जीवन मे तो हर व्यक्ति अहिंसा का पालन करके उच्चभूमिका पर पहुँच सकता है। वैशेषिक दर्शन के प्रवर्त्तक महर्षि कणाद कृषि मे होने वाली अल्पहिंसा से भी बचने के लिए खेतो मे स्वत उगे हुए और यत्र-तत्र बिखरे हुए अन्नकणो को बीन-बीन कर खाते थे और उसी से अपना निर्वाह करते थे। पौराणिक कथानुसार भरत मे हरिणयोनि मे उत्पन्न हो कर केवल पत्तो को खा कर जीवन टिकाए रखा था। इससे भी आगे बढकर सर्वथा आरम्भ से निवृत्त जैन मुनि मन-वचन-काया से पूर्णरूप से अहिंसा का पालन करने हेतु अचित्त पदार्थ निर्दोष भिक्षावृत्ति द्वारा ग्रहण करते हैं।

परिवार, कुल, जाति, धर्म-सम्प्रदाय, ग्राम, नगर, प्रान्त और राष्ट्र आदि सब मानवजाति के विभिन्न अग हैं। धनिक-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, मालिक-मजदूर, स्वामी-सेवक, राजा-प्रजा आदि अलग-अलग वर्ग इसके उपाग हैं। मानवजाति के इन सभी अगो और उपागो मे अहिंसा का पालन बहुत आसानी से अच्छी तरह किया जा सकता है। यह हम पहले कह चुके हैं कि इन सबके आपसी झगडो, सघर्षो, लडाइयो या लेन-देन के विवादो, अथवा किसी भी क्षेत्र के किसी भी प्रश्न को अहिंसा के द्वारा हल किया जा सकता है। परन्तु आप से मैं पूछूँ कि आपको अहिंसा जैसी उत्तम वस्तु मिल जाने पर भी प्राय आप प्रत्येक क्षेत्र मे हिंसा से काम लेते देखे जाते हैं। वैचारिक अहिंसा के रूप मे आपको अनेकान्त मिला है, फिर भी कई जगह अनेकान्तवाद के तथाकथित पुजारी एकान्तवाद मे पड कर जरा-जरा-सी बात के लिए तू-तू मैं-मैं करने लग जाते हैं। दूसरो के—यहाँ तक कि एक ही धर्म की अपनी सम्प्रदाय से भिन्न दूसरी सम्प्रदाय के जरा-से मतभेद या विचारभेद को आप धैर्य-पूर्वक शान्ति से सुन नही सकते, आप उछल पडते हैं और निन्दा, विकथा और गाली-गलौज पर उतर आते हैं। कई व्यक्तियो का पारा तो इतना गर्म हो जाता है कि वे दूसरे मत के अनुयायियो से झगडा कर बैठते हैं, सिरफुटौव्वल मचाने लगते हैं, और इस प्रकार लड-झगड कर एक-दूसरे का सिर फोड कर, एक-दूसरे पर पाषाण-वर्षा करके या मुकद्दमेबाजी करके राग, द्वेष और कषायो से लिप्त हो कर हिंसा द्वारा उस

समस्या का, मतभेद का समाधान करना चाहते हैं। पर किसी भी विवाद का निपटारा, स्थायी और शुद्ध न्याय के अनुरूप निर्णय हिंसा के द्वारा कदापि नहीं हो सकता। वह जब कभी होगा, अहिंसा के द्वारा ही होगा।

इसी प्रकार कई बार समाज में पदों और अधिकारों के लिए परस्पर प्रेम से समाधान के बदले अपने अहंकार और प्रतिष्ठा का प्रश्न बना कर एक-दूसरे पर छींटाकशी और तानाकशी करके हिंसा का सहारा लिया जाता है। अहिंसा को उस समय ताक में रख दिया जाता है।

कई बार पारिवारिक मसलों को भी प्रेम से हल करने के बजाय लड़-झगड़ कर पारस्परिक स्नेह के आग लगा कर दबाव से और दण्डशक्ति से हिंसा द्वारा हल करने के प्रयत्न किये जाते हैं। ऐसे प्रयत्नों में भावहिंसा तो खुल कर होती है। द्रव्यहिंसा का तो मौका लगे या न लगे, आत्मा का हनन तो हो ही जाता है। ये सब हिंसक प्रयत्न अहिंसा के स्वरूप को न समझने के कारण होते हैं। अहिंसा के देवता भगवान् महावीर के अनुयायी भी जब इस प्रकार बात-बात में हिंसा पर उतारू हो जाते हैं, हर क्षेत्र के मसले हिंसा से हल करने का प्रयत्न करते हैं, तो आश्चर्य होता है। महात्मा गांधीजी परम्परा से जैन नहीं थे, किन्तु उन्होंने एक आदर्श श्रावक से भी बढ़कर अहिंसा का पालन किया था। उन्होंने परिवार, समाज, राजनीति, अर्थनीति, धर्मसम्प्रदाय आदि सभी क्षेत्रों में होने वाली हिंसा को दूर करने के लिए बार-बार अहिंसा का प्रयोग किया था। अहिंसा के द्वारा ही सभी समस्याओं और मसलों को हल किया था, आज उसी अहिंसा की जरूरत है, अहिंसा के विविध प्रयोग अगर सभी क्षेत्रों में और सभी राष्ट्रों में होने लगें तो मानवजाति सुख और शान्ति से जी सकती है। परन्तु ये मान्धाता या ये अधिकारी अथवा अग्रगण्य अहिंसा का प्रयोग होने दे, तब न ? ये अपने अहं, पद-प्रतिष्ठा एवं स्वार्थ के लिए, और अपनी धाक जमाने के लिए हिंसा को ही ज्यादा महत्त्व देते हैं। संयुक्त राष्ट्र-संघ (यू० एन० ओ०) बना तो है—अहिंसा से राष्ट्रों का विवाद या संघर्ष मिटाने और शान्ति स्थापित करने के लिए, परन्तु इसके सर्वेसर्वा पक्षपात, स्वार्थ, पद या सत्ता के मद में आ कर ऐसा होने दें, तब न ? हीरोशिमा और नागासाकी पर जो अणुबम गिराये गये थे, वे इन मान्धाताओं की भयंकर हिंसा की पराकाष्ठा का नमूना है। किसी भी देश को ये उभरने देना नहीं चाहते, और उसे दबाने के लिए इस प्रकार की भयंकर हिंसा का सहारा लेने का प्रयत्न करते हैं, जबकि अहिंसा से, प्रेम से अगर ये दूसरे देशों के साथ व्यवहार करें तो दूसरे देश भी इनके प्रेम के वशवर्ती बन सकते हैं।

अहिंसा सार्वभौम व्रत है

भारतीय चिन्तनधारा की हर लहर में अहिंसा का तत्त्व प्रतिष्ठित है।

भारतवर्ष की वायु मे श्वास लेने वाले व्यक्ति के जीवन मे अहिंसा का प्रभाव प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से प्राय. परिलक्षित होता है। कई लोग कह देते हैं कि अहिंसा तो महात्माओ या साधु-सन्यासियो के पालन की चीज है, हम गृहस्थ उसका पालन कर ही नहीं सकते। परन्तु मैं पहले यह सिद्ध कर चुका हूँ कि अहिंसा सर्वांगी एव सर्वक्षेत्रस्पर्शी होने से हर व्यक्ति उसका पालन कर सकता है। अहिंसा किसी जाति, व्यक्ति, वर्ग, देश या काल से वधी हुई नही है। गरीव से गरीव और अमीर से अमीर तक इसका पालन कर सकता है, चाहे वह नीच कहलाने वाली जाति मे, अनार्य कहलाने वाले देश मे, कलियुग कहलाने वाले युग मे अथवा दु पम कहलाने वाले पचमकाल मे अथवा विरोधी से विरोधी वातावरण एव परिस्थिति मे क्यो न पैदा हुआ हो। पापी और पतित व्यक्ति भी अहिंसा का पालन करके मोक्ष प्राप्त कर सकता है। सभी अवस्थाओ, क्षेत्रो, कालो या परिस्थितियो मे अहिंसा पालन की जा सकने योग्य होने से इसे योगदर्शन मे सार्वभौम महाव्रत कह कर इसका स्पष्टत सार्वभौमत्व घोपित किया है—

"जाति-देश-काल-समयाऽनवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्"

जाति, देश, काल और समय की सीमा मे वधे हुए न होने के कारण अहिंसा आदि सार्मभौम महाव्रत है। अर्थात् अहिंसा आदि किसी जातिविशेष, देशविशेप, अवस्थाविशेप या परिस्थितिविशेप के ही एकाघिकार मे नही है। समस्त मानवजगत् सभी अवस्थाओ मे इसका परिपालन कर सकता है।

सभी व्रतो और नियमो में अहिंसा आवश्यक

जैनधर्म का तो प्राण ही अहिंसा है। यहाँ छोटी से छोटी या वडी-से वडी साधना मे अहिंसा को अनिवार्य माना गया है। ऐसा नही हो सकता कि कोई गृहस्थ सत्यव्रत को तो ग्रहण कर ले, लेकिन अहिंसा को छोड दे। अहिंसा है तो सत्य सत्य है, अन्यथा वह सत्य भी प्राणहीन हो जाएगा। जैसे एक व्यक्ति सत्य का व्रत लिए हुए है। वह जगल मे से जा रहा है। उसके सामने से एक हिरन भागता हुआ गया। कुछ ही देर वाद एक शिकारी आया। उस सत्यव्रती गृहस्थ से वह शिकारी पूछता है कि एक हिरन को तुमने इधर जाते हुए देखा है? अथवा हिरन किधर गया है? वताओ! अव अगर वह सत्यव्रती उस व्यक्ति को पोशाक से या उसके व्यवहार से शिकारी जानते हुए भी सत्य-सत्य कह देता है कि हिरन इस दिशा मे गया है, चले जाओ, तो निश्चय ही हिरन की हत्या वह शिकारी कर देगा। वह मौन रह सकता है, किन्तु अगर मौन रहने से शिकारी समझ जाता है कि इसी दिशा मे गया है, यह कहता नही है तो मौन का कोई अर्थ नही हुआ। और यदि उसके मौन रहने पर वह उसे मारे-पीटे, उसकी जान लेने पर उतारू हो जाय, और इतनी सहन-शक्ति या क्षमता उस सत्यव्रती गृहस्थ मे नही है कि वह इतना सव कुछ सह ले। और वह अगर झूठ

बोलता है, तो उसका सत्यव्रत भग होता है। ऐसी दशा मे वह अहिंसा की भावना को साथ मे रखते हुए ही सत्य को रखेगा, वह उपेक्षाभाव में कुछ कहेगा, जिससे उसका सत्य भी रहे, हिरन की हत्या भी न हो। अर्थात् अहिंसा के साथ सत्य है तो वह सत्य है, अन्यथा नहीं। एक व्यक्ति अन्धा या काना है, लोगो मे उसे अपमानित करने या उसका दिल दुखाने की दृष्टि मे कोई कहे—"अबे अधे! अबे काने!" तो शब्दो की दृष्टि से तो यह वाक्य सत्य है, किन्तु भाव कलुषित होने से, साथ मे अहिंसा न होने से तथ्य भले ही हो, सत्य नहीं है।

इसी प्रकार सेवा, परोपकार, दया आदि के पीछे भावना कुटिल है, किसी की सेवा आदि करके उसका धन हडपने, उसका मकान अपने अधिकार मे करने या उसका धर्मसम्प्रदाय-परिवर्तन कराने की दुर्भावना हो तो वह कार्य अहिंसात्मक न होने से बाहर मे अहिंसा दिखाई देने पर भी वहाँ अहिंसा नहीं है, प्रकारान्तर से हिंसा है।

अगर कोई क्रोध या आवेश मे आ कर किसी नियम, प्रत्याख्यान या व्रत को ग्रहण कर लेता है तो उसके पीछे अहिंसा न होने से वह व्रत निष्फल, दुर्व्रत है, दुर्नियम है, दुष्प्रत्याख्यान है, मोक्षफलदायक नहीं है। इसलिए जितने भी व्रत, नियम आदि है, उन सबके साथ पहले अहिंसा का होना अनिवार्य है।

योगदर्शन के व्यासभाष्य मे इसी बात का समर्थन किया है—

तत्राहिंसा सर्वथा सर्वभूतानामनभिद्रोहः, उत्तरे च यमनियमास्तन्मूलास्तत्सिद्धिपरतयैव तत्प्रतिपादनाय प्रतिपाद्यन्ते।"

सब प्रकार से समस्त प्राणियो के प्रति अनिष्ट चिन्तन या द्रोह न करना अहिंसा है। आगे के जितने भी यम-नियम हैं, उन सबका मूल अहिंसा है। वे अहिंसा की सिद्धि (प्राप्ति) के लिए हैं। अहिंसा के ही प्रतिपादन के लिए उनका विधान किया गया है।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि जैनधर्म या वैदिक धर्म अहिंसा को ही महत्त्व देता है, दूसरे सत्य आदि व्रतो को नहीं। अपने-अपने स्थान पर सभी व्रतों का महत्त्व है। सभी व्रत उपादेय हैं। किन्तु कहना यह है कि अहिंसा समस्त व्रतो नियमो और त्याग-प्रत्याख्यानो की जड है। अहिंसा की विद्यमानता मे ही सत्य टिकेगा, अचौर्य टिकेगा, ब्रह्मचर्य टिकेगा अथवा अपरिग्रह की वृत्ति टिकेगी। अहिंसा इन सभी की आधारभूमि है। आधार के अभाव मे जैसे आधेय टिक नहीं सकता, वैसे ही अहिंसा के आधार के बिना सत्य, अस्तेय आदि टिक नहीं सकते। जीवन के जितने भी बडे-बडे नियम-उपनियम या व्रत-उपव्रत हैं, उन सब मे अहिंसा प्राण के समान हैं तो वे नियमोपनियम या व्रत-उपव्रत सभी जीवित हैं, अन्यथा उनका कोरा कलेवर ही है। इसीलिए जैनधर्म मे अहिंसा को प्राथमिकता दी है। वैसे तो अहिंसा

मे सभी व्रत, नियम, तप, आदि आ जाते है, किन्तु सर्वसाधारण जनता इतनी गहराई से नही समझ सकती, इसलिए पृथक्-पृथक् व्रतो का विधान किया गया है। वस्तुत सभी व्रत, नियम तथा आदि अहिंसा के सवर्द्धन के लिए ह।[1]

अहिंसा की महानदी अगर व्यक्ति के अन्त करण मे प्रवाहित हो रही है, तो उसके वचन और शरीर मे भी उसकी धारा का सचार होगा। इस प्रकार दूसरे व्रत भी अनायास ही पनप उठेंगे। जव व्यक्ति का जीवन अहिंसा, करुणा और दया से परिपूर्ण हो जाता है, तो वह मुंह से जो कुछ भी वोलेगा, वह अमृत से सना वचन होगा। कटु और कठोर वाणी उसके मुंह से निकल भी नही सकती। गाली तो उसकी जीभ पर भी नही आ सकती। वह जव भी वोलेगा, उसकी वाणी घाव पर मरहम का काम करेगी। वह वच्चो से, वूढो से, युवको से, वहनो से, परिवार मे और परिवार मे वाहर भी सवके साथ प्रेम, आदर और मिठास से वोलेगा। अगर झाडू देने वाला मेहतर भी मामने आता है, धोवी और नाई भी मिलता है, तो उनके साथ भी उसकी वाणी माधुर्यरस से परिपूर्ण हो कर वहेगी। क्या मजाल कि उसकी वाणी किसी के हृदय को चोट पहुँचाये, किसी को ताने मार कर उसका हृदय छेद दे, किसी पर झूठा आरोप लगा कर उसे मर्माहत कर दे। जहाँ अहिंसा की सरिता हृदय के कण-कण मे वह रही हो, वहाँ वाणी मे विकार आएगा भी कैसे? वहाँ तो सुधा की बूँदें ही टपकेंगी।

ऐसे व्यक्ति का प्रत्येक कार्य भी करुणा से प्रेरित ही होगा, उसकी प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे सेवाभावना, सहृदयता और आत्मीयता होगी। अपनी ओर से, या अपने शरीर से किसी को कष्ट देना तो दरकिनार रहा, दूसरे की ओर से भी यदि किसी पर कष्ट होता हुआ देखता है तो वह अनुकम्पाप्रवण हो कर उस कष्ट को मिटाने के लिए प्रवृत्त हुए विना नही रह सकता। अहिंसा का साधक अपने हाथ, पैरो, वाणी और इन्द्रियो पर पूरा नियत्रण रखेगा। वह हाथो से कभी किसी पर द्वेषवुद्धि से न तो थप्पड मारेगा, न धक्का देगा, न किसी से छीना-झपटी करेगा, न किसी प्रकार के शस्त्र-अस्त्र का प्रहार करेगा। उसके हाथ सदा दूसरो की भलाई के लिए, सेवा और सहायता के लिए, दान और दया के लिए प्रवृत्त रहेगे। उसके पैर किसी को कुचलने, ठोकर मारने या किसी को सताने या दवाने के लिए अथवा जान से मार डालने के लिए कभी प्रवृत्त नहीं होंगे, वह अपने पैरो पर वहुत ही सयम रखेगा। किसी दीन-दु खी की सेवा मे दौड पडेंगे उसके पैर, किसी वीमार की कराह सुन कर उसके पैर

१ अहिंसा-गहणे पच-महव्वयाणि गहियाणि भवति। संजमो पुण तीसे चेव अहिंसाए उवग्गहे वट्टइ, सपुण्णाय अहिंसाय सजमो वि तस्स वट्टइ।

—दशवैकालिकचूर्णि, अध्ययन १

उसकी सेवा के लिए प्रवृत्त होंगे। उसके पैर तभी पूजनीय होंगे, जब वह पैरो से अहिंसा के कार्य करेगा।

और वाणी भी किसी को आघात पहुँचाने, मर्मान्तक चोट पहुँचाने या किसी की हिंसा की प्रेरणा के लिए कभी प्रवृत्त नही होगी और जैसा कि मैंने पहले बताया कि उसकी वाणी अमृत से मनी होगी, वह दूसरे की अशान्त आत्मा को सान्त्वना देने वाली, दूसरो के घावो पर मरहमपट्टी करने वाली नम्र, मधुर, सरल, सहृदय होगी। वह किसी पर अन्याय, पक्षपात या अनर्थ नही करेगी, और आंख, नाक, कान, जीभ और स्पर्शेन्द्रिय ये पाँचो इन्द्रियाँ भी उच्छृखल हो कर क्रूरता के कार्य नही करेंगी। आँख किसी पर क्रूरदृष्टि डाल कर उसे घायल नहीं करेगी न आँखें विकारी बन कर परस्त्री की ओर ताकेंगी। न ही वे आँखें किसी अस्पृश्य, नीच या पतित कहलाने वाले व्यक्ति को देख कर घृणा करेंगी, न द्वेषवश उन्हें हैरान करेंगी। कान उच्छृखल, घातक एव दूसरो के लिए हिंसाकारक वचन सुनने मे रुचिपूर्वक प्रवृत्त नही होंगे, कदाचित् ऐसे शब्द कान मे पडेंगे तो भी वह सुन कर उनका समर्थन नही करेगा। उन सुने हुए शब्दो को मन के साथ जोड कर हिंसा की परम्परा बढाएगा नहीं।

जीभ भी किसी प्रकार के स्वाद के चक्कर मे पड़ कर उसके लिए किसी प्राणी की हत्या या हिंसाजनित कार्य नही करायेगी। अहिंसा का साधक जिह्वालोलुपी बन कर किसी भी प्राणी का मांस या नशीली चीजो का सेवन नहीं करेगा। क्योंकि नशे मे पागल हो कर मनुष्य दूसरे का अनिष्ट कर बैठता है। वह अपनी रसनेन्द्रिय पर पूरा सयम रखेगा, एक भी कार्य ऐसा नही होने देगा, जो हिंसाजनक हो।

और सुगन्धित पदार्थ के वियोग एव दुर्गन्धित पदार्थ के सयोग मे मनुष्य अपना आपा खो कर दूसरो से लड-भिड लेता है, लेकिन अहिंसक नासिकेन्द्रिय से होने वाली किसी भी प्रकार की तत्सम्बद्ध हिंसा या सघर्ष को, घृणा या द्वेष को अपने मे नही आने देगा। वह सयत और समभावी बन कर नासिकेन्द्रिय का उपयोग करेगा।

इसी प्रकार स्पर्शेन्द्रिय के चक्कर मे पड कर वह किसी प्रतिकूल स्पर्श को पा कर उत्तेजित नही होगा, न उसके निमित्त से किसी के साथ संघर्ष, आक्रमण या लडाई करेगा। वह स्पर्शेन्द्रिय पर भी पूर्णतया सयम रखने का प्रयत्न करेगा।

इसी प्रकार के संयम की और श्रमणशिरोमणि भगवान् महावीर का सकेत अहिंसा के साधको के लिए है—

"हत्थसंजए, पायसंजए वायसंजए संजइंदिए।"

अहिंसा की साधना के लिए अपने हाथो को सयम मे रखो, अपने पैरो को सयत रखो, अपनी वाणी पर काबू रखो और अपनी इन्द्रियो पर सयम (कण्ट्रोल) रखो।'

यह है अहिंसा की त्रिवेणी, मन-वचन-काया की अहिंसा। जो साधक अहिंसा का व्रत लेगा, वह मन से भी अहिंसा का पालन करेगा, मन से सदैव करुणा, सहानुभूति, आत्मीयता, सेवा, दया आदि की भावनाएं करेगा। वचन से भी अहिंसा का पालन करेगा और काया मे भी। तभी वह अहिंसा का सच्चा साधक होगा।

ऐसा व्यक्ति कदापि अहिंसा का पुजारी नही कहला सकता, जो मन से तो अच्छी भावना, उन्नत विचार करता है, किन्तु वचन से कटु बोलता हो, दूसरो को मर्मस्पर्शी व आघातजनक बात कहता हो, अथवा शरीर से भी हिंसा के कार्य करता हो, यानी हाथ, पैर, आँख, नाक, कान आदि अवयवो से ऐसी चेष्टाएँ करता हो, जिससे दूसरो के प्राणो को हानि पहुँचती हो।

मैं आपसे कह रहा था कि अहिंसा वह नही हो सकती, जिसमे वाणी मे तो मिठास हो, किन्तु मन मे गदे और कुटिल विचार हो, अथवा शरीर की चेष्टाएँ तो नम्र एव मधुर हो, लेकिन मन मे बुरी वासनाएँ या दुर्भावनाएँ हो। अथवा मन मे बुरी भावना हो, लेकिन वाणी और शरीर की हरकतें अच्छी हो।

अहिंसा मन-वचन-काया तीनो के एकत्व और शुभ-वृत्ति-प्रवृत्ति से युक्त होने पर ही हो सकती है।

अहिंसा के अभाव मे

इस प्रकार की अहिंसा—चाहे अणुव्रत के रूप मे हो, चाहे महाव्रत के रूप मे, समस्त मानवो द्वारा सर्वत्र, सभी परिस्थितियो मे, पालन की जा सकती है। वर्तमान सघर्षशील एव भौतिक विज्ञान के दौरदौरे के युग मे अहिंसा की सर्वाधिक आवश्यकता है। इसके बिना सत्रस्त मानवजाति कभी सुख-शान्ति और अमनचैन प्राप्त नही कर सकती। इसीलिए अहिंसा को ससार की माता और भगवती कहा है। एक जैनाचार्य ने बताया कि अहिंसा को माता क्यो कहना चाहिए—

मातेव सर्वभूतानामहिंसा हितकारिणी

'अहिंसा माता के समान समस्त प्राणियो का हित करने वाली है।' जैसे माता कितनी ही कष्ट मे हो, सकट मे हो, सदैव अपनी सन्तान का हित चाहती है, वैसे ही अहिंसा सकट, त्रास और कष्ट मे पडे हुए प्राणी का हित तो चाहती ही है, उस व्यक्ति का भी हित चाहती है, जो सम्पन्न हो, समस्त साधनो से परिपूर्ण हो, अथवा क्रूर, पतित, पापी, हत्यारा अथवा निन्द्यकर्म करने वाला हो। अहिंसा कहती है—अगर तू सुख-शान्ति चाहता है, अपनी आत्मा को उन्नति के पथ पर ले जाना चाहता है, आत्मविकास करना चाहता है, सद्गुणो की वृद्धि करना चाहता है, तो मन-वचन-काया मे मेरा पालन कर। दया और सहानुभूति, करुणा और सेवा, प्रेम और सहयोग, क्षमा और नम्रता, सरलता और शान्ति ये सब अहिंसामाता के ही परिवार के हैं। अहिंसा

माता का बहुत बडा परिवार है। अहिंसा समस्त प्राणियो को सुख-शान्ति देने वाली, उनकी रक्षा करने वाली तथा सेवा करने वाली होने से भी माता है।

अहिंसामाता के पालन से जब-जब ससार विमुख हुआ है, जब भी कोई समाज, जाति या परिवार अथवा राष्ट्र अहिंसा के पालन की उपेक्षा कर देता है, तब-तब उस पर सकट के बादल उमड-घुमड कर आते है, अशान्ति की आग भडकती है। द्वेष, वैर और भय की वृद्धि होती है। जो ससार अहिंसा से स्वर्गोपम बन सकता था, वही ससार हिंसाकाण्डो मे भयंकर नरक बन जाता है। व्यक्तिगत जीवन मे भी आत्मा का विकास रुक जाता है, गुणो की वृद्धि के बदले क्रोध, अभिमान, कपट, द्वेष, घृणा, लोभ आदि विकारो एव दुर्गुणो की वृद्धि होती जाती है। एक कवि ने अहिंसा-माता के अभाव का बहुत ही मार्मिक चित्र खीचा है—

माँ ! तुम बिन जग दुखियारा....

हिंसा का सम्मान बढा है, देश-देश मे न्यारा।
प्रलयकर विध्वंस खडा है, दे दो देवि ! सहारा ॥ माँ तुम० ॥१॥
प्रेममूल इन धर्मों ने भी, भूला मर्म तुम्हारा।
जल मे ही जब आग लगी है, कौन बुझावनहारा ॥ माँ तुम० ॥२॥
जाति-पाति के भेदभाव ने, छीना प्रेम हमारा।
खण्ड-खण्ड कर निर्दयता से, मानवता को मारा ॥ माँ तुम० ॥३॥
दर्शनशास्त्रो के द्वन्द्वो ने, धर्म-विवेक विसारा।
नाम-मोह की मदिरा पी कर, कभी न सत्य विचारा ॥ माँ तुम० ॥४॥
रुढिताप से तपा हुआ है, मानवमण्डल सारा।
करुणाजल बरसाने आओ, बहे सुधार की धारा ॥ माँ तुम० ॥५॥

कितनी हृदयस्पर्शी कविता है ! कवि ने अहिंसामाता को सम्बोधित करते हुए वर्तमान दुखी एवं अशान्त जगत् का चित्र खीचा है, और उसके दुखी होने के कारण बताए है। राष्ट्रो, धर्मो, जातियो, दर्शनो और समाजो के पारस्परिक कषाय, द्वेष, भेदभाव या ऐसे ही अन्य विकारो को जब तक मिटाया नही जाएगा, तब तक अहिंसा माता इनमे नही आएगी और अहिंसा के पदार्पण के बिना इन पर आए हुए सकट, दुख, अशान्ति और कष्ट मिट नही सकते।

अहिंसा का पालन न करने वाले क्रूर व्यक्तियो या प्राणियो का दुर्दशा या उनके जीवन मे आ पडने वाले दुखो या अभावो का आप स्वय प्रत्यक्षीकरण कर सकते है। ऐसे लोग जो हिंसापरायण है, दर-दर भटकते, भूखो मरते, अनेक रोगो से पीडित, कर्ज के बोझ से दबे हुए, मानसिक दृष्टि से अशान्त एव पारिवारिक जीवन से दुखी इस ससार मे प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। और परलोक मे भी हिंसापरायण लोगो को कोई सुगति या सुस्थान नही मिलता। कदाचित् पूर्वपुण्यवश मानवजन्म

मिल भी जाय तो ऐसी जगह ऐसी परिस्थिति और ऐसी कुसंगति मे जन्म होता है, जहाँ उसे विकास का कोई साधन नही मिलता। वह पशु से भी गया वीता जीवन विता कर इस ससार से हाय-हाय करते हुए विदा होता है। इसलिए अहिंसा की सार्वभौम शक्ति को पहिचानिए और उसे अपना कर अपने जीवन को सुखी, शान्तिमय, उन्नत और गुण समृद्ध बनाइए।

अहिंसा की श्रेष्ठता

अहिंसा ससार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। संसार की तमाम बहुमूल्य वस्तुओ से भी अहिंसा अधिक मूल्यवान है, जगत् के तमाम व्रतो, नियमो और त्याग-प्रत्याख्यानो मे अहिंसा अग्रणी है, उसे सभी धर्मों ने प्राथमिकता दी है। कविरत्न उपाध्याय श्री अमर मुनिजी के शब्दो मे देखिए, अहिंसा की श्रेष्ठता-ज्येष्ठता का चित्र—

अहिंसा ही दुनिया मे सबसे प्रवर है।
नही मित्रो! इसमे जरा भी कसर है ॥ध्रुव॥
अहिंसा के आगे झुके विश्व सारा।
अहिंसा मे कैसा विचित्र असर है ॥१॥
असम्भव नही कोई वस्तु बशर को।
सभी कुछ हो सम्भव अहिंसा अगर है ॥२॥
अहिंसा से मिलती है, सुख-शान्ति सच्ची।
अहिंसा ही मुक्ति की सीधी डगर है ॥३॥
अहिंसा से बल आत्मा का बढा दो।
अहिंसक ही दुनिया मे रहता निडर है ॥४॥
'अहिंसा है—भयभीत मन की निशानी'।
जो कहते हैं उनको न कुछ भी खबर है ॥५॥
नही है 'अमर' कोई वस्तु जहाँ मे।
'अमर' यह अहिंसा तो बेशक अमर है ॥५॥

अहिंसा की महिमा और उसके चमत्कारो का इससे बढकर और क्या नमूना होगा कि महात्मा गाँधी ने इसके विविध प्रयोग करके आशातीत सफलता प्राप्त की और जगत् को आश्चर्यमग्न एव चमत्कृत कर दिया। अत अहिंसा की शक्ति पर दृढ विश्वास होना चाहिए, विविध क्षेत्रो मे अहिंसा के प्रयोगो का प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिए, और दैनंदिन जीवन मे अहिंसा का आचरण होना चाहिए। भगवती अहिंसा के विविध अगोपागो का जीवन मे साक्षात्कार होने पर कोई वस्तु ऐसी असम्भव नही, जो अहिंसा से न हो सके। कोई भी ऐसा प्राणी नही, जो अहिंसा से काबू मे न किया जा सके, कोई भी ऐसा कार्य नही, जो अहिंसा के द्वारा सिद्ध न किया जा सके, चाहिए अहिंसा का मन-वचन-काया द्वारा आचरण, विश्वास और ज्ञान।

सभी भूमिकाओ में अहिंसा की मर्यादा

ससार की समस्त मानव-जाति को अहिंसा-पालन की दृष्टि से हम मुख्यतया चार भूमिकाओ मे विभाजित कर सकते है। ये विभाजन भेदभाव वढाने या ऊँच-नीच आदि के रूप मे घृणा फैलाने की दृष्टि से नहीं हैं, ये केवल समझने की दृष्टि से है।

१—महाव्रती साधुवर्ग की अहिंसा
२—व्रतवद्ध लोकसेवक-वर्ग की अहिंसा
३—नीतिमय जनता की अहिंसा
४—राजनैतिक क्षेत्र की अहिंसा

ये अहिंसा की चार भूमिकाएँ हैं। इन चारो ही भूमिकाओ मे अहिंसा का पालन न्यूनाधिक रूप से किया जाता है।

सर्वप्रथम महाव्रती साधुसाध्वीवर्ग की अहिंसा की मर्यादा को समझ लें। मन, वचन, काया से कृत-कारित-अनुमोदन इस प्रकार तीन करण एवं तीन योग से हिंसा से विरत हो कर अहिंसा मे प्रवृत्त होना, उसका प्राणपण से पालन करना, अपने पर आक्रमण होने पर भी प्रत्याक्रमण या हिंसक प्रतीकार न करना उच्चकोटि की अहिंसा है। इसके वाद व्रतवद्ध लोकसेवकवर्ग की अहिंसा का क्रम है। लोकसेवक भी महात्मा गाँधीजी की नीति के अनुसार शस्त्रास्त्र का प्रयोग नही करता, वह प्रतीकार भी सामूहिक अहिंसक ढग से करता है। तीसरी भूमिका है, नीतिमय जनता की अहिंसा की। इसमे उद्योगिनी, विरोधिनी और आरम्भी, तीन हिंसाओ की सर्वथा निवृत्ति नहीं होती, विवेक और यतना होती है। इसी भूमिका वाला व्यक्ति द्वेषवश किसी भी जीव को न उद्योग-धन्धे मे मारेगा, न किसी विरोधी को मारेगा या हानि पहुँचायेगा, और न ही घर आदि के व्यवहारो मे आरम्भसमारम्भ अविवेकपूर्वक करेगा। यानी इस भूमिका वाले के सकल्पी हिंसा (किसी को मारने या नुकसान पहुँचाने के इरादे से मारने) का सर्वथा त्याग होता है।

और चौथी भूमिका वाला न्याय के क्षेत्र मे अपराधी सिद्ध होने पर उसे मृत्युदण्ड भी देता है, अन्य कल्याणकार्य भी करता है, विरोधी द्वारा हमला होने पर वह सशस्त्र युद्ध भी करेगा, लाखों आदमियो को युद्ध मे झोक सकता है। इस भूमिका वाला व्यक्ति अपना राज्य वढाने के लिए या दूसरे द्वारा कोई छेडखानी न होने पर भी अकारण ही स्वार्थवश या द्वेषवश दूसरे देश पर हमला नही करता और न ही किसी देश को गुलाम वना कर उसका आर्थिक शोषण करता है।

इस प्रकार अहिंसा समस्त भूमिकाओ मे पालन की जा सकती है। अपनी-अपनी भूमिका की मर्यादाएँ समझ कर सवको अपनी-अपनी सीमा मे अहिंसा का पालन करना चाहिए। तभी अहिंसा की सार्वभौम शक्ति का प्रत्यक्ष चमत्कार दिखाई दे सकेगा। □

16

गुणग्राही दृष्टि का नाप-तौल

मनुष्य की दृष्टि ही एकमात्र ऐसी है, जिससे उसके जीवन मे गुणो या अवगुणो की सृष्टि होती है। दृष्टि विचारो के अनुरूप बनती है, और फिर वही वाणी का रूप लेती है। इसलिए व्यक्ति के व्यक्तित्व की परख उसके विचार, दृष्टि और वाणी के द्वारा होती है। किन्तु जीवन मे अवगुणो को छोड कर गुणो को ग्रहण करने, जीवन मे उतारने और वृत्ति मे समाने के लिए सम्यग्ज्ञान, विवेक एव अभ्यास आवश्यक है। दुनिया मे गुण और अवगुण दोनो से युक्त व्यक्ति और वातावरण मिलेंगे, किन्तु व्यक्ति को अपनी दृष्टि, रुचि और वृत्ति अवगुणों मे से भी गुणो को ढूंढने की धूलिशोधक की-सी बना लेनी चाहिए।

गुणग्राही दृष्टि क्या है, वह कैसे प्राप्त होती है ? उसकी पहिचान क्या है ? उससे क्या-क्या लाभ हैं, आदि समस्त बातो के नाप-तौल के लिए पढिए मुनिश्री का हृदयस्पर्शी प्रवचन···

१६

गुणग्राही दृष्टि का नाप-तौल

□ □

गुणी-जनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड आये ।
गुण-ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जाये ॥

गुणनिर्धारण की पृष्ठभूमि

व्यक्ति ने जब से आत्म-चिन्तन प्रारम्भ किया, तब से वह न सिर्फ अपने ही जीवन के रहस्यो को खोजने मे प्रवृत्त हुआ, बल्कि उसने अपने समग्र वातावरण को भी गहराई से देखा तथा उसके साथ अपने सम्बन्धो के विकास का मार्ग भी ढूंढा । व्यक्ति-व्यक्ति के सम्पर्क एवं सहवास से समाज का निर्माण हुआ और यह सम्पर्क जितना व्यापक तथा विस्तृत बनता गया, उतना ही वह आत्म-चिन्तन सामाजिक चिन्तन के साथ अभिवृद्ध होने लगा । एक चिन्तक या विचारक अपने मे समाज को तथा समाज मे अपने को प्रतिबिम्बित करके देखने का अभ्यास करने लगा ।

इस दृष्टि ने कुछ मानदण्ड स्थापित किये, जो गुण के नाम से जाने गये । व्यक्ति-व्यक्ति के बीच, व्यक्ति और समाज के बीच तथा व्यक्ति स्वय के निजत्व के बीच अपनी दृष्टि मे कैसे सम्बन्धो को, कैसे व्यवहार को क्या रूप दे ? यही इन गुणो की पृष्ठभूमि समझी गई ।

सद्गुण को सामाजिक सर्वमान्यता

एक ओर आत्मोत्थान की दिशा मे तथा दूसरी ओर पारस्परिक सम्बन्धो मे चिन्तन एव व्यवहार के विकास के साथ जिन मानदण्डो को श्रेष्ठता के कारण स्वीकार

किये गये, उन्हे 'गुण' या 'सद्गुण' की संज्ञा दी गई। जिस चिन्तन या व्यवहार को साध्य की दृष्टि से अनुपयुक्त या पतनकारक माना गया, उसे 'दुर्गुण' के नाम से सम्बोधित किया गया। गुण या दुर्गुण के स्वरूप का चिन्तन या व्यवहार की प्रगाढ़ता के साथ विकास होता गया।

महान् विभूतियाँ ज्यो-ज्यो अवतरित हुई, उन्होंने अपने चिन्तन की उत्कृष्ट श्रेणियो मे गुणो एवं दुर्गुणो के मार्ग का स्पष्टता के साथ अवलोकन किया। अपने स्वयं के जीवन की साधना के अनुभवो से उन्होंने गुणो की पृष्ठभूमि निर्धारित की। जो सद्गुण बताया गया, उसका चिन्तन और व्यवहार सद्गुण बना। जिसने ऐसे सद्गुण को अपने जीवन मे उतारा, उसने आन्तरिक रूप से अपने आप को स्वस्थ अनुभव किया तथा उन सद्गुण के साथ उसने जिसके प्रति व्यवहार किया, उसने भी सुखानुभूति की। एक-एक व्यक्ति का किसी सद्गुण के प्रति जब ऐसा अनुभव विस्तृत होने लगा तो उस सद्गुण को सामाजिक सर्वमान्यता प्राप्त होने लगी।

गुण-विकास की यह शृंखला दीर्घकाल से चलती रही है और आज सामान्य प्राणी भी अपनी आन्तरिक शक्ति से यह अनुभव करता है कि किस विचार या आचरण मे कौन-कौन-से सद्गुण हैं तथा कौन-कौन-से दुर्गुण ? यह कसौटी उसकी स्वयं की अन्तरानुभूति बन गई है। यह अन्तरानुभूति किसी की अल्पविकसित है तो किसी की अधिक विकसित, किन्तु सामाजिक सर्वमान्यता की दृष्टि से यह ज्ञान न्यूनाधिक अंशो मे सब तक फैला हुआ है कि मानवीय सद्गुणों मे किन-किन गुणो को स्थान प्राप्त है तथा जीवन के क्या-क्या दुर्गुण माने गये हैं ?

परख के मापदण्ड : विचार, दृष्टि और वाणी

गुणो की रूपरेखा सबसे पहले विचारों के धरातल पर निर्मित होती है। विचार व्यक्ति के विकास का प्रतीक माना गया है। जैसे जल की सतह पर एक कंकर फैंकने से उसमे लहरें उठने का क्रम बनता है, उसी प्रकार व्यक्ति और संसार के आमने-सामने होते ही हृदय मे स्पन्दन उठता है एवं परिस्थितियो की गम्भीरता अथवा मानसिक जागरूकता के अनुसार यह स्पन्दन गहरा होता जाता है। यही स्पन्दन चिंतन को प्रेरणा देता है तथा चिन्तन विचारो को जन्म देता है।

विचारो की श्रेणी के अनुरूप व्यक्ति की दृष्टि का निर्माण होता है। व्यक्ति चाहे अपने ही भीतर देखता है, अथवा बाहर के संसार को देखता है, सदा उसकी दृष्टि मे उसके विचारो की झलक मिलती है। विचार और दृष्टि दोनों मिला कर व्यक्ति में वाणी को प्रादुर्भूत करते हैं। मनुष्य जैसा सोचता है, उसी की छाया मे वह वैसा देखता है और जैसा देखता है, तदनुरूप ध्वनि मे वह वैसा ही बोलता है। इस सोचने, देखने और बोलने की दृष्टि से ही हम किसी भी आदमी को तोलते हैं—उसकी किस्म को पहचानते हैं।

अभिप्राय यह है कि विचार, दृष्टि एव वाणी के माध्यमो से व्यक्ति के व्यक्तित्व की परख की जाती है एव उसके गुणावगुणो का चित्र अकित किया जाता है। इस प्रकार विचार, दृष्टि और वाणी गुणो तथा अवगुणो के परिचायक है। गुण या अवगुण इनसे पैदा होते हैं—इनसे ही पहचाने जाते हैं तथा इन्ही के सयोग से समाज मे प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा पाते हैं।

गुण सामान्य बोधक शब्द है तो सद् या सु विशेषण गुण की श्रेष्ठता और असद् या दु. विशेषण गुण की निकृष्टता के परिचायक बन जाते है। सद्गुण वे हैं, जिनसे मानवता का विकास हो, समस्त प्राणी-समूह को सुखो की उपलब्धि हो तथा आध्यात्मिकता की उन्नति के साथ आत्मा का सर्वोच्च उत्थान सम्पादित किया जा सके। इसके विपरीत जो गुण मानवता को पीडा पहुँचाते है, प्राणियो को दु खित करते है तथा अपनी आत्मा को विकारो के मैल से कलकित बना कर ससार-सागर मे भटकाते है, वे दुर्गुण माने गये हैं। गुणो का सद्रूप या असद्रूप ही संसार मे उन्नति अथवा अवनति का कारण बनता है।

गुणो को जानने, पहचानने तथा अपनाने का आसान क्रम

एक उक्ति है—

"विरला. जानन्ति गुणान्"

अर्थात्—विरले व्यक्ति ही गुणो को जान सकते हैं। ऐसा क्यो कहा है ? गुणानुभूति जब सामान्य होती है तो फिर उनके ज्ञान को इतना कठिन क्यो बताया गया ? इसका कारण स्पष्ट है। ससार मे सामान्यतया प्राणी अज्ञान एव स्वार्थ के मनोभावो से इतने बुरी तरह से ग्रस्त रहते हैं कि वे साधारणरूप से अपनी अनुभूतियो का विकास नहीं कर पाते, बल्कि बहुधा यथार्थ अनुभूतियाँ भी इन विकारो के नीचे दब कर निष्प्राण-सी होने लगती हैं। इसी वातावरण को लक्ष्य करके कहा गया है कि गुणो को क्रमश. जानना, पहचानना तथा उन्हे अपनाना प्राय. कठिन कार्य है और कठिन कार्यो की सम्पूर्ति सदा विरले व्यक्ति ही कर सकते है।

पहले हम गुणो के जानने को लें। गुणो के जानने के लिये सद्गुण एव दुर्गुण दोनो के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। इसके लिए भावना और दृष्टि भी साफ होनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास के स्तर के अनुसार निरन्तर विचार भी करता है तो अन्य जनो के सम्पर्क मे भी आता है। एव इनके माध्यम से उसे जो अनुभव होता है, वह गुणो को जानने मे ठीक सहायता भी करता है। गुणो के ज्ञान से गुणो की पहचान सरल बनती है और ज्ञान व पहचान के साथ गुण-ग्रहण का भाव प्रबल बन सकता है।

गुणो को जानने, पहिचानने एव अपनाने के क्रम मे ज्ञान, विवेक तथा सक्रियता

की आवश्यकता होती है। जिस प्रकार नव-निर्माण से पूर्व पुराने निर्माण को ध्वस्त करना होता है, उसी प्रकार एक ओर से दुर्गुणो की समाप्ति का प्रयास किया जाय तथा अन्तरात्मा की भूमिका ज्यो-ज्यो पवित्र बनती जाय, त्यो-त्यो दूसरी ओर से सद्गुणो को जीवन मे उतरने का क्रम एव अभ्यास बढाया जाय। यह क्रम जितना परिपुष्ट होता जायेगा, उतना ही व्यक्ति का जीवन सौजन्यता से परिपूर्ण बनेगा, और तब उसका सुप्रभाव भी समाज मे प्रसारित होगा।

सद्गुणो का प्रकाश एवं दुर्गुणों का अन्धकार

जो व्यक्ति गुण के प्रकाश को समझ लेता है, साथ ही अवगुण की काली छाया का भी जिसे भान हो जाता है, वह अवश्य ही अपने उन्नति-पथ को स्पष्ट देख लेता है। गुणावगुण की स्पष्ट पहिचान ज्ञानी व्यक्ति के ज्ञान को सर्वाङ्ग वृद्धि कर देती है, क्योंकि जीवन की यही आधारगत पहिचान होती है।

गुणो का प्रकाश आपको कहाँ दिखाई देगा ? जहाँ ज्ञान होता है, वहाँ गुणो को परखने की बुद्धि होती है तथा जहाँ विवेक जागता है, वहाँ सद्गुणों को ग्रहण करने की मनोवृत्ति बनती है। जिस जीवन मे गुण-ग्रहण का भाव स्थायित्वरूप ले लेता है, वहाँ गुणो का देदीप्यमान प्रकाश अवश्य ही फैल जाता है; चाहे वह जीवन एक व्यक्ति का हो अथवा किसी समूह या समाज का। सद्गुणो के रूप मे हम जिन गुणो को मानते हैं, उनमे प्रधान हैं—सद्भाव, सदाशय, सहानुभूति, सहयोग, सच्चरित्रता, सम्यक्त्व, सहिष्णुता, श्रद्धा, सद्विवेक आदि। ये सभी सद्गुण मानवीय व्यवहार के प्रतीक-स्वरूप है और अन्य प्रकार के सद्गुण—सद्ज्ञान, सयम, तप, ध्यान आदि विशेष रूप से अपनी आत्मा से सम्बन्धित होते हैं। किन्तु ये दोनों प्रकार के सद्गुण परस्पर सम्बन्धित अन्योन्याश्रित एव एक-दूसरे के पूरक होते हैं। जिस जीवन मे ऐसे सद्गुणो का अभाव होता है, वह जीवन उपयोगरहित माना जाता है। अर्थात् जिस जीवन मे इन सद्गुणो से विपरीत स्थिति हो यानी सद्भाव के स्थान पर दुर्भाव हो और इसी तरह प्रत्येक सदगुण के स्थान पर उससे विपरीत दुर्गुण विद्यमान हो, तो वैसा जीवन अतिपापिष्ठ एव कलकी माना जाता है। दुर्गुणयुक्त जीवन अपना ही घोर पतन नही करता, अपितु वह अपनी पापमयी विकृति की छाप सारे समाज पर डालता है तथा चारो ओर कुसगति का गदा वातावरण रचता है।

गुणावगुण की पहिचान जितनी पुष्ट एव स्पष्ट होगी, उतना ही व्यक्ति का व्यवहारिक ज्ञान वृद्धिगत होगा, साथ ही उसके आत्मिक ज्ञान मे भी गम्भीरता आयेगी।

जैसी रुचि, वैसी दृष्टि

ससार मे दोनो प्रकार की स्थितियाँ भी होती है तथा दोनो प्रकार के व्यक्ति

भी। एक का सम्वन्ध गुणो से होता है, तो दूसरे का सम्वन्ध दोषो से। इन नेत्रो के सामने स्थितियो के गुण-दोष भी आते हैं, तो व्यक्तियो के गुण-दोष भी। तथ्यात्मक रूप से गुण और दोष अपनी-अपनी स्थिति मे सर्वत्र मौजूद मिलते है, किन्तु यह देखने वाले के ज्ञान एव सस्कार का विषय है कि उसकी दृष्टि पहले किस पर गिरती है ?

जव आप वाजार मे से हो कर गुजरते है, आपके चारो ओर सभी प्रकार की दूकाने होती है, जिनमे सभी प्रकार के पदार्थ सजे हुए रहते हैं, किन्तु आपकी दृष्टि सवसे पहले उसी पदार्थ पर गिरती है, जो आपकी सवसे अधिक घनिष्ठ रुचि का होता है। उस रुचि वाले पदार्थ को आप सवसे पहले देखते है। उसी प्रकार जिस व्यक्ति का जीवन जितना अधिक सस्कारित होगा, उसकी दृष्टि गुणो पर ही अधिक पडेगी और जो जितना असस्कारित होगा, उसका रुख सवसे पहले दोषो की ओर होगा। एक चिन्तक एव साधक व्यक्ति की भावना एव चेष्टा यही होनी चाहिए कि उसकी दृष्टि केवल गुणो पर ही गिरे तथा वह सक्रिय हो कर गुणो को ग्रहण करने की दिशा मे आगे वढे। 'मेरी भावना' की गीतिका मे इस सम्वन्ध मे क्या ही सुन्दर अभिव्यक्ति है—

गुणीजनो को देख हृदय मे, मेरे प्रेम उमड़ आए।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषो पर जाए॥

गुण जव प्रिय लगता है तो गुणीजन स्वत ही प्रिय हो जाता है। हृदय मे जव गुणीजन को देख कर प्रेम उमडे, तव समझना चाहिए कि वहाँ पर गुण ग्राहकता की सद्वृत्ति का समुचित विकास हो चुका है और कहा भी है—

गुणी गुण वेत्ति, न वेत्ति निर्गुणः।

अर्थात् गुणी ही गुण की पहिचान कर सकता है, गुणी को गुणी ही जान सकता है। गुणहीन भला गुणी या गुण को कैसे जानेगा ?

गुणग्राहकता की दृष्टि हृदय मे आनन्द जगाती है, क्योकि गुणग्राहक दृष्टिपात करने वाला दूसरो के लिए सम्मोहक वन जाता है। ऐसा व्यक्ति जिन पर ऐसी दृष्टि डालता है, उन्हे सच्ची सुखानुभूति होती हैं। इस तरह गुण-दृष्टि अपने चारो ओर एक सुखद एव सम्मोहक सृष्टि का निर्माण करती रहती है।

एक ऐतिहासिक दृष्टान्त, पवित्र गुण-दृष्टि का

एक ऐतिहासिक दृष्टान्त से गुणदृष्टि का पवित्र महात्म्य स्पष्ट हो जाता है। एक वार श्रीकृष्णजी राजपथ पर अपने साथियो के साथ पैदल चले जा रहे थे। अचानक उन्होने देखा कि सभी साथियो ने अपनी नासिकाएँ वस्त्रो से ढक ली, क्योकि सामने से भयकर दुर्गंध फूट रही थी। तभी एक साथी ने पूछा—"क्या आप यह सामने मरा हुआ कुत्ता नही देख रहे है, जिसकी लाश सड रही है ?" कृष्ण ने

निर्लिप्तभाव से कहा—"देख तो रहा हूँ कि उस कुत्ते की दन्तपंक्ति कितनी स्वच्छ एव धवल है ? क्या तुम इस दन्त-पक्ति को नही देख रहे हो ?" सभी साथी यह सुन कर आश्चर्य से श्रीकृष्ण का मुख देखने लगे। तभी एक-दूसरे साथी ने कहा—"भद्रजनो! दृष्टि-दृष्टि मे कितना अन्तर होता है ? हम सबकी दृष्टि पडी—मरे हुए कुत्ते की सडती हुई लाश पर और कृष्ण की दृष्टि पडी—इस लाश की एकमात्र अच्छाई, इसकी चमकती हुई दन्त-पक्ति पर।

ऐसी होती है पवित्र एवं सच्ची गुण दृष्टि, जो सारी बुराइयों को नजर अन्दाज करती हुई केवल अच्छाई पर टिक जाती है। और तब वैसी गुण दृष्टि को अर्जुन की तरह सारा वन नही, सारा वृक्ष नही और सारा पक्षी-शरीर भी नही, सिर्फ उस पक्षी की आँख ही दिखाई देती है।

गुणदृष्टि की सर्वोत्कृष्टता . दोष-दृष्टि का समीकरण

वास्तव मे, जो दृष्टि दोषो पर जाती ही नहीं, केवल गुणो पर ही टिकती है, उस गुणदृष्टि को उत्कृष्टता की उच्च श्रेणियों पर चढती हुई उत्थानगामी दृष्टि ही मानना पडेगा। इस प्रकार की मनःस्थिति में मनुष्य गुण को तो गुणरूप मे देखता ही है, परन्तु दोष मे भी कोई न कोई गुण ढूंढ लेता है तथा उसी गुण को बडा करके देखना शुरू कर देता है, जैसे कि कृष्ण ने सारी बुराई से अपनी दृष्टि को हटा कर उसे सिर्फ दन्त-पक्ति की अच्छाई पर टिका दी। निष्कर्ष यह है कि गुण-दृष्टि बुरे को भी अच्छे रूप मे इस तरह देखती है कि वह बुरा भी अच्छे का सहारा बन जाता है। एक काव्यधारा भी इस सम्बन्ध मे स्पष्ट मार्गदर्शन करती है—

काले काजल से भी नयन का शृंगार किया जाता है।
कटीली झाड़ियो से भी खेत का प्राकार किया जाता है॥
गुणी आदमी बुराई मे से भी भलाई ढूंढ लेते हैं।
सड़ी-गली खाद से भी बाग को गुलजार किया जाता है॥

मान लीजिए, इस विशाल विश्व मे यदि सभी व्यक्ति गुण-दृष्टि को अपना लें तो क्या कही भी किसी प्रकार की बुराई बनी रह सकती है ? ऐसी कल्पना कभी सच्ची बनेगी अथवा नहीं, यह दूसरी बात है, किन्तु भारतीय संस्कृति मे सदा ही इस तत्त्व की प्रेरणा दी गई है कि आप अपनी दृष्टि केवल गुणो की ओर रखिए दोषो को दृष्टि तक मे मत लाइए। दोष मे से भी फूटते हुए गुण को खोज निकालें तथा उसे इतनी प्रमुखता दे दें कि दोष की अहमियत ही कम हो जाय। एक कवि ने कहा है—

अवगुण उर धरिये नहीं, जो हो पेड़ बबूल।
गुण लीजे, कालू कहे, नहीं छाया मे शूल॥

भावना के निर्माण की कितनी श्रेष्ठ-विधि बतलाई गई है कि अवगुण को न नजर मे लाइए, न दिल मे। काँटो वाले बबूल के पेड मे भला कौन किसी गुण को ढूँढेगा, लेकिन कवि कहता है कि तू छाया के ही गुण को ले लें। उसकी भी छाया तो ताप हरण करती है—बबूल मे काँटे हैं, छाया मे तो काँटे नही होते। यह सब मन को मोडने की बात है कि आपके हृदय मे उठने वाला विचार ही गुण की ओर आकर्षित हो। जब ऐसा होगा तो दृष्टि अवश्य ही वैसे ही विचार की अनुगामिनी बनेगी।

गुण-दृष्टि की सर्वोत्कृष्टता पनप जाने पर दोषदृष्टि का समीकरण अपने आप गुण के साँचे मे ढल जाता है। गुण-दृष्टि ही समुन्नत बन कर गुणग्राहकता की प्रमुख रक्तवाहिनी बन जाती है।

गुणदृष्टि से भी आगे गुणग्राही वृत्ति की ओर !

गुण-दृष्टि के परिपक्व होने के बाद गुणग्राही वृत्ति गहरी होती चली जाती है, इतनी गहरी कि फिर कही भी गुण दिखाई दे, उसे अपना लेने की आकाक्षा बन जाती है। यहाँ तक कि शत्रु के जीवन मे भी गुण प्रतीत हो तो उसे भी ग्रहण करने का मन हो जाता है, बल्कि शास्त्रो मे तो यह निर्देश है कि—

शत्रोरपि गुणाः ग्राह्या ।

अर्थात्—शत्रु के जीवन मे भी गुण दिखाई दें तो उन्हे भी ग्रहण कर लेना चाहिये।

एक तरह से सोचें तो गुणग्राही वृत्ति के समक्ष राग और द्वेष की परिधियाँ भी समाप्त हो जाती हैं। गुण के प्रति आकर्षण तथा गुणी के प्रति सम्मान की भावना ही इतना बल पकड लेती है कि व्यक्ति के प्रति राग-द्वेष की मनोवृत्ति शिथिल हो कर नष्ट हो जाती है। एक कवि ने गुणग्राही वृत्ति की सराहना करते हुए स्पष्ट शब्दो मे अपनी काव्य-धारा प्रवाहित की है—

गुणी बन गुण को लेना है, हमे अवगुण से क्या मतलब ?
कुए से नीर पीना है, हमे कचरे से क्या मतलब ?
हम तो ग्राहक हैं चन्दन के, भले ही साँप लिपटे हो,
मुग्ध हैं—पुष्प की सुरभि पर, हमे काँटो से क्या मतलब ?
छाछ खट्टी भले ही हो, हम तो मक्खन के भूखे हैं,
इक्षुरस के पिपासु हैं, हमे छिलको से क्या मतलब ?
न खल से काम है बिलकुल, हमे तो तेल लेना है,
आम खाने के इच्छुक हैं, हमे गुठली से क्या मतलब ?

मणि के हम तो ग्राहक हैं, सांप जहरी भले ही हो।
गोल मोती के गर्जी हैं, सीप बांकी से क्या मतलब ?
रूप कोयल का काला हो, तो भी मिठास ले लेंगे।
काम तकिये की रूई से है, हमे खोली से क्या मतलब ?
मिले गुण जिस कदर जिसमे, हम तो तैयार हैं लेने को।
चाहे जिस ही मजहब का हो, हमे मजहब से क्या मतलब ?
ऐब बिन आज दुनिया मे, नजर कोई नहीं आया।
सभी अन्दर से नंगे हैं, हमे किसी के दोष से क्या मतलब ?

कवि ने एक-एक दृष्टान्त दे कर गुणग्राहकवृत्ति को कितना अधिक स्पष्ट एव परिपुष्ट कर दिया है। साराश यह है कि गुणग्राहीवृत्ति के निर्माण हो जाने के बाद मानस केवल गुण के ही लिये अधिकाधिक लालायित हो जाता है, उसे किसी की बुराई किसी का दोष तक दिखाई तक नही देता। गुण की ही उसे अपेक्षा रहती है।

गुणग्राही व्यक्ति के अन्तस्तल पर ये सत्य उभर कर आ जाते है कि वह केवल गुण पर ही दृष्टि डालता है। गुण चाहे किसी भी स्थल पर मिलें, वह उन्हे लेने मे सकोच नही करता। दोषो पर उसकी दृष्टि जाती ही नही है, और यदि जाती है तो दोषो के पुंज के बीच मे भी वह गुण की झलक खोज निकालता है। ऐसी गुणग्राही वृत्ति को जो आत्मसात् कर लेता है, वह गुणी-पुरुष ससार के लिए आदर्श बन जाता है।

दोषो को देखना ही है, तो अपने ही दोषो को देखो!

ससार मे दो प्रकार के व्यक्ति होते है—एक तो वे, जो सर्वत्र सर्वदा गुणो को ही देखते हैं। ऐसे व्यक्ति विरले होते हैं। दूसरे प्रकार के व्यक्ति सभी जगह मिल जायेंगे, जो हमेशा दूसरो के दोष देखने को आतुर रहते हैं। ऐसे लोगो को दोषदर्शी' या 'छिद्रान्वेषी' कहते हैं। आप भाइयो और बहनों से मैं पूछना चाहता हूँ कि आप अपने अपने हृदय को टटोल कर देखें और जानें कि ऐसी छिद्रान्वेषी वृत्ति तो कही आप लोगों ने नहीं अपना रखी है ?

वस्तुत व्यावहारिक जीवन मे हम देखते हैं तो ज्ञात होता है कि सामान्य-रूप से व्यक्ति की पहली नजर दोष पर ही पडती है। दोषदर्शी लोग दोषो को बढा-चढा कर दिखाते हैं, तो दूसरी ओर गुणो को ढकने की कुचेष्टा भी करते हैं। ईर्ष्या, मत्सर आदि दुर्गुणो के वशीभूत हो कर व्यक्ति दूसरो के दोषो को उभारने और गुणो को छिपाने मे लगा रहता है। यह ऐसी दुष्प्रवृत्ति है, जो मनुष्य को गुणग्राही नही बनने देती-गुणी का दर्जा भी उससे दूर ही रहता है।

अत' ज्ञानीजनो ने कहा है कि दोषो को देखना ही है तो एकमात्र अपने ही दोषो को देखो। दूसरो के गुणो को देखो और अपने दोषो को। अपने दोषो को देखने का नाम ही आत्मालोचना हैं और सच्चे हृदय से की गई आत्मालोचना सदा दोषो का परिमार्जन करती है तथा गुणो के ग्रहण के प्रति सुरुचि वढाती है।

आँख वही, जो केवल गुण पर गिरती है।

साररूप मे यह समझ लीजिए कि सच्ची आँख वही है, जो केवल गुण पर ही गिरती है—दूसरो के दोषो पर कभी नही। अपने ही दोषो पर आँख के गिरने का अर्थ स्वय एक गुण है। अपनी मनोवृत्ति को ऐसे साँचे मे ढालिये कि वह सदा गुणो के प्रति आकर्षित रहे—गुणो को ग्रहण करने के लिए लालायित वने। ऐसी इच्छा रहने पर दृष्टि भी अभ्यस्त हो जायेगी, वह सदा गुणो को ही देखेगी। ऐसी दृष्टि आँख को सुदृष्ट वना देगी।

यह तो अनुभूति का ही विषय है कि एक गुणी-पुरुष का जीवन कितना आनन्दमय होता है ? आनन्द वह नही, जो क्षणिक हो, नश्वर हो, या सुखाभासरूप हो, वलिक गुणी-पुरुप को वैसा आनन्द प्राप्त होता है, जो अन्तर को प्रमुदित करने वाला तथा सतत रूप से प्रवाहित होने वाला होता है। वह आनन्द आत्मा के मूल से फूटता है और आन्तरिक जीवन को प्रफुल्ल वनाए रखता है। गुण-दृष्टि एव गुणग्राही वृत्ति से ऐसे अपूर्व आनन्द का जन्म होता है।

देहान्त तक गुणो की आकाक्षा करो

भगवान् महावीर ने उद्घोष किया है कि जीवन के आरम्भ से ले कर अन्त तक सदा गुणो को ही पाते रहने की आकाक्षा करो—

"कंखे गुणे जाव सरीर भेऊ"।

गुणो के अनन्त सागर मे सदा गोते लगाते रहने से नित्य-नवीन गुण-मुक्ताएँ प्राप्त होती रहेंगी। इस जीवन मे धर्म, सयम एव तप की साधना जितनी कठोरतर होती रहेगी, गुणो के मोती आपको मिलते रहेगे। गुणो को प्राप्त करते रहने की आकाक्षा आपको सतत साधना मे तल्लीन वनाये रखेगी। □

17

सत्य का सुस्थिर प्रकाश

□ □

सत्य जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है, वही भगवान् है, भगवत्स्वरूप को पाने का साधन है। सत्य का साक्षात्कार जिस जीवन मे हो जाता है, वह जीवन निर्भय, निश्चल, निर्द्वन्द्व, निरामय एव शाश्वत सुखमय वन जाता है। किन्तु इस पूर्ण सत्य को पाने के लिए कठोरतम तपस्या, साधना और आराधना अपेक्षित है। वही सत्य की जय का उद्घोष अन्तरतम से कराती है। दूसरी ओर सत्य के अभाव मे वडे से वडे राज्य, वैभव, रूप, धन, जन आदि भौतिक पदार्थों के अधिपति का सर्वस्व एक दिन धूल मे मिल जाता है, असत्य की मोहमय चकाचौंध मे मनुष्य उस परम सत्य के दर्शन नही कर पाता, उसे उसका रूप कठोर लगता है, परन्तु ज्ञानीजनो की दृष्टि मे सत्य का रूप सौम्य, सरल, ज्ञानमय और आनन्दमय है। सत्य के उस अस्थिर महाप्रकाश को पाने के लिए मुनिश्री के इस प्रवचन मे गहरी डुवकी लगाइए····· ·····

१७

सत्य का सुस्थिर प्रकाश

सत्य ही संसार में, सारे सुखों की खान है।
सत्य ही है देवता, अरु सत्य ही भगवान् है ॥

मानव-जीवन मे सत्य को शाश्वतकाल से सर्वोपरि स्थान दिया गया है। सत्य को जीवन का साध्य भी माना है, तथा साधन भी। इसीलिए कहा गया है कि भगवान् को प्राप्त करने का अर्थात् स्वय ही भगवत्स्वरूप को वरण करने का प्रधान साधन सत्य है, साथ ही अन्तिम लक्ष्य प्राप्त किया जाता है, वह भी सत्य ही होता है। प्रभु महावीर ने यही फरमाया है—

तं सच्चं खु भगव।

अर्थात् सत्य ही भगवान् है। जीवन का जो सर्वोच्च सत्य है, वही तो ईश्वरत्त्व है।

सत्य तो महान् है, सत्य ही भगवान् है !

जीवन के अनेक महान् क्षण बीत गये और बीतते चले जा रहे हैं, किन्तु ससारी आत्माओ को सत्य की परख होना एक महान् कार्य माना गया है। एक नही, अनेक जीवन पूरे हो जाते हैं, फिर भी सत्य की पूर्णतया पहिचान नहीं हो पाती है। इसी दृष्टि से एक बार एक जिज्ञासु ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—**भगवान् कहां हैं ?**

आप भी भगवान् को पाना चाहते हैं न ? संसार मे देखा जाता है कि भगवान् को पाने के लिए कोई नीरव गुफाओ मे जा कर ध्यान धरता है तो कोई गगा

की वालू पर लोटता है। कोई हिमालय की वर्फीली धरती पर एक टाँग मे खडा रहता है तो कोई वृक्ष से औंधा लटक कर आतापना लेता है। भगवान् के दर्शन की इच्छा से कई व्यक्ति तरह-तरह के अनुष्ठान करते हैं—कोई आसमान की ऊँचाइयो पर उड कर भगवान् की एक झलक पाना चाहता है तो कोई धरती की असीम गहराइयो तक पहुँच रहा है। अभिप्राय यह है कि भगवान् का साक्षात्कार करने के विविध प्रयोग काम मे लिये जा रहे है। परन्तु भगवान् जहाँ नही हैं, वहाँ मिलेंगे कैसे ? जिन अनुष्ठानो मे भगवान् का लोक-कल्याणकारी स्वरूप प्रकट नही होता, उन अनुष्ठानो मे भगवान् कैसे दर्शन देंगे ?

जिज्ञासु के प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर ने कहा—"वास्तव मे सत्य ही भगवान् है। जो जीवन का सत्य है, वही भगवान् है।" एक भावुक कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

सत्य ही संसार मे, सारे सुखो की खान है।
सत्य ही है देवता और सत्य ही भगवान् है॥

एक अँग्रेज दार्शनिक ने भी इसी महत्त्व को दोहराया है—

God is Truth and Truth is God

सत्य मे ईश्वरत्त्व के आरोपण का मूल तात्पर्य यह है कि यदि जीवन के विचार एव आचार मे पूर्णरूप से सत्य का प्रवेश हो जाय तो फिर जीवन के सही दिशा मे आगे वढ़ने तथा सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त कर लेने मे कोई भी वाधा सफल नहीं हो सकती है। निर्वाधगति सत्याचरण से ही प्राप्त होती है, क्योकि जो चरमलक्ष्य है, वह स्वय सत्यमय है।

जहाँ सत्य की जय है, वहाँ जीवन मे विजय है!

'सत्यमेव जयते'—हमारे राष्ट्रीय चिह्न का प्रतीक वाक्य है कि सत्य ही की जीत होती है। कोई कितना ही सत्य को ढकने की कुचेष्टा करे, उसे दवाए या विकृत वनाए, किन्तु एक दिन सत्य प्रकट हो कर ही रहता है। जाज्वल्यमान सूर्य को घने वादल ढक लें—उसके तेज को एक वार निस्तेज करने मे कामयाव भी हो जाएँ, लेकिन आप जानते हैं कि ऐसा कितनी देर तक चल सकता है ? आखिर सूर्य का तेज पुन प्रकट हो कर सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता ही है।

जहाँ सत्य की जय है, वहाँ जीवन मे विजय है—यह स्वयं एक ध्रुव सत्य है। सत्य के आश्रय के विना न गति-प्रगति होती है और न सुगति।

सत्य क्या है ?—इसे अपनी अनुभूति से सभी जानते हैं, जो कठिनाई होती है, वह इसे पहिचानने मे होती है। सत्य की परख अन्तरात्मा की कसौटी पर ही हो सकती है। अब यह कसौटी जिसके पास जितनी प्रखर होती है, उतनी ही सत्य की पहिचान

सही होती है। 'जो है' यानी सत् की विद्यमानता सत्य है। 'जो है'—यह सही है किन्तु यह 'जो' क्या है, कहाँ है, कैसा है ? इसको पहिचानने के लिए ज्ञान एव आचरण का प्रयोग करना होता है, क्योकि इन्ही की साधना से अन्तरात्मा का अज्ञान दूर होता है एव उसका धरातल सत्यग्राही वनता है।

अन्तरात्मा के सयमपूर्ण निर्देशन मे ही मन का सचालन सुव्यवस्थित होता है, चेतना जागृत होकर कार्यरत होती है तो सभी इन्द्रियाँ अनुशासित वनकर अन्दर की आवाज का अनुसरण करती हैं। अन्तरात्मा का ऐसा सुशासन जव स्थापित होता है, तव ही सत्य की पहिचान होती है—सत्य के प्रभाव की प्रतीति होती है। और ऐसी प्रतीति एक वार जिस आत्मा को हो जाती है, वह आत्मा सत्य की उपासिका वन जाती है। सत्य ही उसका आराध्य, उसका लक्ष्य वन जाता है।

आत्मा की इस प्रकार की समुन्नत अवस्था मे ही यह कहा जा सकता है कि अमुक जीवन मे सत्य समा गया है। ऐसी आत्मा पद-पद पर सत्य की ही अनुगामिनी वन जाता है। सत्य की ऐसी साधना सत्य की जय का उद्घोष वनती है। तव ऐसे उत्कृष्ट जीवन मे विजय सदा और सर्वत्र वरमाला लिये खडी रहती है।

मिथ्या के घटाटोप अंधकार मे सत्य की सुस्थिर प्रकाश रेखा

सत्य से विपरीत स्थिति होती है मिथ्या, असत्य या झूठ। 'जो नहीं है', उसे 'है' मानना और 'जो है', उसे 'नही' मानना—यही मिथ्या का लक्षण होता है। ससारी आत्माएँ जव तक अज्ञान की भ्रमणाओ एव भ्रान्त धारणाओ मे भटकती हैं, जब तक वे मिथ्या के घटाटोप अधकार मे ही भटकती हैं, मिथ्यात्व उनके जीवन का मूल वन जाता है। सत्य के लिए प्रस्थान करके भी ऐसी आत्माएँ पुन-पुन असत्य के वात्याचक्र में फँसती रहती हैं एव अपने शुद्ध स्वरूप को विकृत वनाती रहती हैं। जीवन मे मिथ्या घटाटोप अंधकार है, तो सत्य प्रकाश की सुस्थिर रेखा। जिसने एक वार इस प्रकाश रेखा की पहिचान कर ली, वह फिर प्रकाश को अपने जीवन मे समाता हुआ आगे वढता रहता है और एक दिन स्वय भी सम्पूर्णरूप से प्रकाशमय वन जाता है।

सत्य की महिमा असीम है। शास्त्रो मे कहा गया है—

सत्येन धार्यते पृथ्वी, सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च, सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्॥

ज्ञानीजन जव अर्न्तदृष्टि से देखते हैं तो उनकी दिव्य दृष्टि मे यह सत्य सुस्पष्ट होता है कि सत्य के प्रभाव से ही पृथ्वी टिकी हुई है, सूर्य तपता है और हवा चलती है, यानी सारे जगत् की आधारशिला सत्य की प्रखरता है—सभी कुछ सत्य मे ही प्रतिष्ठित है।

सच और झूठ के अन्तर को समझाते हुए शास्त्रकारों ने कहा है—

नास्ति सत्यात् परोधर्म, नानृतात् पातकं परम् ।

अर्थात्—सत्य से वढकर कोई धर्म नहीं और झूठ से वढकर कोई पाप नही। पाप की पराकाष्ठा है—झूठ और धर्म का कीर्तिमान है सत्य। झूठ का सहारा लेने वालो के जीवन मे कितने-कितने कुकृत्य दिखाई देते है, कितनी-कितनी वेदना एव अप्रतिष्ठा के वे भागी वनते हैं, यह आप अपने व्यावहारिक जीवन मे भी प्रतिदिन देखते हैं। समाज एव राज्य की जितनी दड-व्यवस्थाएँ हैं, वे झूठो के लिए ही तो हैं। झूठ जीवन को पाप के ऐसे दलदल मे फँसा देता है कि वहाँ से उसका उद्धार सत्य के सम्बल के सिवाय सम्भव नही होता। सत्य मे महान् शक्ति होती है।

झूठ की ताकत कितनी ? सत्य की शक्ति कितनी ?

यह खेद का विषय है कि वर्तमान युग मे संसार सत्य की शक्ति को भूलता जा रहा है, क्योंकि उसका सामान्य-जीवन सत्य से दूर होता चला जा रहा है। लोग देखते हैं कि मिथ्यात्व के पुजारी अपने दम्भ और ढोंग से माया और कपट के जाल फैला कर मौज उडाते हैं, परिवार, धन, रूप या वल की ताकत पर इतराते है। उन्हें इस तरह देख कर साधारण व्यक्ति यह सोचने लग जाता है कि ससार मे तो झूठ ही चलता है तथा जो सत्य का पालन करता है, वह दु खी होता है। मिथ्यात्व का ऐसा आवरण झूठ को वढ़ावा देने लगता है। लोग तव सहजभाव से कह देते है कि संसार मे सत्य की क्या जरूरत है ? कितना भी वचो, तव भी जव झूठ के विना कोई काम नही चलता, फिर झूठ का ही पूरा सहारा ले कर क्यो न चलें ?

व्यावहारिक जीवन मे ऐसी धारणाओ से आप लोगो का वास्ता भी जरूर ही पड़ता होगा तथा कई वार आपके भी दिल मे ऐसी धारणा उठती होगी कि झूठ के विना आज धन्धा या रोजगार चलाना मुश्किल हो गया है। कहाँ तो प्राचीनकाल से यह धारणा चली आ रही है कि—

लाख जाए, पर साख न जाए।

और कहा झूठ की इस दुनिया मे इस तरह की कहावतें वन रही है जो सामान्य मानव के मन मे सत्य के प्रति निराशा के भाव जगाने लगती है कि—

ईमान जाए मिट्टी में, पैसा आये मुट्ठी मे।

ऐसे क्रूर असत्य की नीव पर जव जीवन का महल खडा किया जाता है, तव तो जीवन के प्रति दृष्टिकोण ही विकृत वन जाता है। आज का आदमी तव ऐसी वोली वोलने लगता है—

ऐश कर दुनिया मे गाफिल जिन्दगानी फिर कहाँ ?
जिन्दगानी गर मिली भी तो यह नौजवानी फिर कहाँ ?

झूठ के काले अन्धेरे मे यथार्थ जीवन के प्रति निष्ठा ही टूट जाती है। लोग कहने लगते है—

रोटी खानी शक्कर से, दुनिया ठगनी मक्कर से।

किन्तु मैं स्पष्टरूप से कहना चाहता हूँ कि झूठ की ताकत पर इतराने वाले सत्य की शक्ति को पहिचानें। जीवन मे जिस दिन सत्य की रेखा चमकेगी, उस दिन झूठ की ताकत रेत के महल की भाँति चूर-चूर हो जायगी। झूठ के पाँव नही होते, यह आप सब जानते हैं, फिर भी सत्य की शक्ति को पहिचानने के लिए आप आगे न बढ सकें, इसे इस युग की विडम्बना ही समझनी चाहिए।

शक्ति धन-जन-रूप की मिट जाएगी, न रहेगी भूप की।

भौतिक उपलब्धियो को ही सब कुछ मानने वाले लोग कहते हैं कि संसार मे तो जो धन-दौलत की शक्ति है, परिवार व अपने लोगो की शक्ति है, अपने छल-बल की शक्ति है अथवा अपने रूप-वैभव की शक्ति है, वही हकीकत मे शक्ति है तथा ऐसी शक्तियों के बल पर ही जीवन को प्रभावपूर्ण बनाया जा सकता है, दूसरो पर शासन किया जा सकता है तथा ससार का सुख लूटा जा सकता है।

आइये, जरा इस कथन पर भी विचार कर लें। क्या सत्य के अभाव मे ये सारी शक्तियाँ कही उपयोगी भी होती हैं या ये शक्तियाँ भयकरतम विनाश का कारण बनती हैं? वास्तव मे यदि सत्य का अभाव है, तो ऐसी समस्त शक्तियाँ अपूर्ण व अधूरी रहती है तथा आत्मा को विनाश के गर्त मे पटक देती हैं। सामान्य-जन की तो बात ही छोडिये, किन्तु अच्छे-अच्छे राजा-महाराजाओ तथा दिग्गज शासको की भी ऐसी शक्तियाँ मिट गईं और उनका कोई नामलेवा भी नहीं बचा।

इतिहास साक्षी है कि भारतवर्ष मे दो नगरियाँ स्वर्ण-नगरियाँ कहलाती थी—एक थी द्वारिका और दूसरी लंका। इन नगरियो के मुख्य-मुख्य स्थानो पर यह वाक्य लिखा हुआ था कि '**जब तक यहाँ पर सत्य की अर्चना होती रहेगी, तब तक इन नगरियों का कुछ नहीं बिगड़ेगा।** और वास्तव मे सत्य के सद्भाव मे ये नगरियाँ खुशहाल रहीं, किन्तु ज्यो ही सत्य ने वहाँ से पलायन किया, अनीति इनके मध्य मे घुस आई तो ये नगरियाँ जल कर खाक हो गईं।

लोगो को परिवार की शक्ति पर भी बडा अभिमान होता है, किन्तु इसके लिए महाभारत का वह अंश देखिये, जब भरी सभा मे दु शासन ने द्रौपदी की लाज लूटने का दुस्साहस करते हुए उसकी साडी खीची। कितना बडा परिवार था, कौरवो और पाडवो का, किन्तु उनके बीच मे से जब सत्य चला गया तो परिवार की उस शक्ति का अन्तिम परिणाम क्या हुआ? दु शासन एक नारी की साडी खीच रहा था और उसके पाँच-पाँच पति—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव बुत की तरह केवल बैठे-बैठे देख रहे थे। वहाँ परिवार की शक्ति असहाय बन गई, महाभारत की

कथा आप जानते हैं कि वहाँ केवल काम आई तो द्रौपदी की सत्य की शक्ति। साडी वढ़ती गई और द्रौपदी की लाज रह गई। दु शासन देखता ही रह गया कि—

नारी ही की सारी है कि सारी ही की नारी है।
नारी विच सारी है कि सारी विच नारी है॥

इतिहास मे ऐसे भी कई उदाहरण हैं कि जहाँ रूप की शक्ति के घमण्ड का भी सिर सदा नीचा ही हुआ है। मनुष्य रूप की शक्ति पर व्यर्थ गर्व करता है, किन्तु यह गर्व हमेशा छिछला सावित हुआ है। चक्रवर्ती सनत्कुमार को अपने रूप पर कितना गर्व था ? वह भी एक पल मे खडित हो गया। उसकी देह विभिन्न रोगो से ग्रस्त हो गई। जो अपने शरीर के सौन्दर्य पर इठलाता है, चेचक या अन्य कोई रोग उसे विकृत वना जाता है।

अभिप्राय यह है कि जहाँ सत्य है, या ये शक्तियाँ सत्य के साथ हैं तो उनका कोई न कोई उपयोग हो सकता है, वरना सत्य के अभाव मे इन शक्तियो ने सदा ही मनुष्य को धोखा दिया है। इन शक्तियो के मोह मे पडकर मनुष्य ने सदा ही अपनी आत्मा को मलिन वनाई है। सत्य की सदा ही जीत होगी, झूठ की कदापि नहीं—

सत्यमेव जयते, नानृतम्।

सत्य जीवन का साध्य भी है, तो सशक्त साधन भी

जहाँ पूर्ण सत्य की उपलब्धि जीवन का अन्तिम साध्य है, वहाँ सत्य जीवन की उन्नति का सशक्त साधन भी है। सत्य का आश्रय लेने के वाद जीवन-विकास का मार्ग प्रशस्त वनता है। मिथ्यात्व मे पड कर आत्मा अनन्त काल तक ससार मे भटकती रहती है। उसे उन्नति का रास्ता तभी मिलता है, जव वह सम्यक्त्व को ग्रहण करती है। मिथ्यात्व इतना मारक होता है कि आत्मा व्रतो की श्रेष्ठता के अनुसार दसवें गुणस्थान तक पहुँच कर फिर नीचे तक गिर सकती है। इस दृष्टि से आत्म-विकास का मुख्य सोपान ही सत्य का सोपान होता है।

सत्य मन को शुद्ध वनाता है, मानव की विचार-शक्ति को प्रवुद्ध वना कर सही दिशा मे उसे चलाता है। कहा है—

मनः सत्येन शुध्यति।

इसी दृष्टि से सत्य को महान् तपस्या भी वताया गया है—

सत्य चेत्, तपसा च किम् ?

भगवान् महावीर ने तो इस ससार मे सत्य ही को सारभूत माना है—

सच्चं हि लोगम्मि सारभूयं।

उन्होंने साध्यरूप मे सत्य को लोक मे सारभूत वताया है तो इसी सत्य को प्राप्त करने मे अनेकान्तवाद को सत्यमय साधन के रूप मे व्यक्त किया है। अनेकान्त-

वाद वह सिद्धान्त है—जिसके द्वारा सच्चे हृदय से सत्य की शोध की जा सकती है तथा अन्ततोगत्वा पूर्ण सत्य का साक्षात्कार किया जा सकता है ।

यह निश्चितरूप से मानिये कि ससार सत्य के वल पर ही चल रहा है, किन्तु हठवाद या दुराग्रह इस सत्य पर पर्दा डालते रहते हैं । वैसे अधिकाशत सत्याश सर्वत्र मिलेगा और उसे विना हठ के समझने की चेष्टा की जाय तो अश-अश एकत्र करते हुए पूर्ण सत्य की ओर गति हो सकती है । यही सत्य है—ऐसा कहना सत्य को विकृत वनाना है । हठ नहीं होना चाहिए । यह भी सत्य हो सकता है—यह विचार रख कर सत्य की खोज करनी चाहिए । साध्य-सत्य की तरफ साधन-सत्य के द्वारा आगे वढेंगे तो जीवन अवश्य ही अमृतमय वन सकेगा । संस्कृत-भाषा की एक उक्ति है कि—

सत्य पीयूषवत् पिव ।

अर्थात् सत्य का अमृत के समान पान करें । सत्य प्रत्येक दृष्टि से जीवन का अमृत है, किन्तु आवश्यकता इसके ज्ञान एवं पहिचान की है । सत्य के अपार महत्त्व को सच्ची निष्ठा से हृदयगम किया जाय तथा साध्य-साधन के रूप मे जीवन को सत्य का अनुगामी वनाया जाय ।

सत्य को बिगाड़े नहीं, प्राणपण से सदा संवारें ।

वर्तमान समय मे सत्य की वस्तु-स्थिति पर एक कवि ने लिखा है—

सत्य की सुषुमा अलौकिक, आज सारी जल गई है ।
चांदनी उस पूर्णिमा की, आज सारी ढल गई है ।

यह आज की सामान्य अवस्था का दिग्दर्शन है । वर्तमान युग के मानव ने जीवन में सत्य की उपेक्षा कर रखी है । आज जान-बूझ कर सत्य को ठुकराया जाता है—वात-वेवात मे सत्य की उपेक्षा की जाती है । स्वार्थ के आगे सत्य को विगाडा जाता है सो तो ठीक, किन्तु विना मतलव भी सत्य की हसी उडाई जाती है । इस स्थिति का एक कवि ने यह और चित्र खीचा है—

कौन सुने, किससे कहें, सच्चे दिली विचार ।
आज अहो वहरा हुआ, सारा ही संसार ।
सांच कहो हो जायगी, कहते ही तकरार ।
आज हर जगह जुड़ रहा, हाँ हाँ का दरवार ।

आज समाज का शक्तिशाली-वर्ग सत्य को दवाता है तो अशक्तवर्ग विवश हो कर उसकी हाँ मे हाँ मिलता है और सत्य से दूर होता जाता है । सव ओर मिला कर सत्यनिष्ठा के सम्वन्ध मे वडी दु खद-सी स्थिति वनी हुई है—

सांच कांई है पतो ही नी चाले, कपट ही कपट है ।
छल कपट वेईमानी री, झपट ही झपट है ।

सुखा रो वगीचो भी खिले तो, क्यॉन खिले।
चारू मेर असत्यरी, आगरी लपट ही लपट है।

ससार और समाज की आज ऐसी क्यों बन गई है ? सत्य की उपेक्षा और असत्य के प्रसार से। जहाँ देखे, वहाँ झूठ—हर जगह झूठ को वढ़ावा और झूठ को कामयावी का कारण मानना। व्यवहार मे, परिवार मे और सब जगह जाने-अनजाने इस तरह झूठ का फैलाव किया जाता है कि सत्य विकृत होता चला जाता है। माँ-वाप अकसर शिकायत करते है कि हमारा वेटा झूठ वोलना सीख गया है, किन्तु वे भूल जाते है कि वे वेटे के सामने ही नि शक हो कर झूठ वोलते हैं, तो फिर भला वेटा उनके सस्कार क्यो नही ग्रहण करेगा ? स्वय झूठ वोलो और मुँह से सच वोलने का उपदेश दो, ऐसा करने से वालक मे सत्य के सस्कार नही डाले जा सकते।

एक वकील अपने कार्यालय मे वैठे काम कर रहे थे। वाहर कोई मिलने वाला आया, जिससे वे मिलना नही चाहते थे, इसलिये उन्होने अपने छोटे लडके को वुला कर कहा—"मुन्ना ! नीचे जो व्यक्ति खडा है, उसे जाकर कह देना कि वकील साहव भीतर नही है।' चार-पाँच वर्ष का वच्चा ! अभी उसका झूठ से वास्ता नही पडा था, वह नीचे गया और वोला—'पापाजी ने कहा है कि पापाजी भीतर नही है। सरलता और निश्छलता हो तो झूठ किस तरह नगा हो जाता है ! अव वताइये कि अपने वच्चो को झूठ वोलना कौन सिखलाता है ? इस तरह व्यवहार मे कदम-कदम पर झूठ वोलने की प्रक्रिया चलती रहती है, तो फिर वच्चे ऐसे सारे वातावरण से अछूते कैसे रह सकते है ? पीढी दर पीढ़ी इस तरह झूठ का जव फैलाव होता रहता है तो आप ही सोचिये कि ऐसे समाज को सत्यनिष्ठ वनाने का काम कितना कठिन हो जाता है ? सत्य को विकृत होने से वचाना विवेकी पुरुष का पहला कर्त्तव्य होना चाहिये, ताकि फिर सत्य को सँवारने का पुनीत कार्य किया जाय।

जब विश्वकवि को सत्य के लिए रोना पडा था ?

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर एक वार चीन गये थे। चीन वालो ने भारतीय दर्शन एव वाङ्मय का जो अध्ययन किया था, उसके अनुसार उन्होंने विश्वकवि के स्वागत-भाषण मे अत्यन्त हर्पपूर्वक कहा कि विश्वकवि उस महान् देश के निवासी हैं, जहाँ लोग हिंसा नही करते, झूठ नही वोलते, चोरी नही करते, दुराचार नही करते और लोभ-लालच के वश मे नही होते। इस प्रकार वे भारतीयो के चरित्र की भूरि-भूरि सराहना करने लगे तो यकायक कवि रो पडे। चीनी यह देख कर हतप्रभ रह गये। उन्होंने रोने का कारण पूछा तो विश्वकवि ने आँसुओ के प्रवाह के वीच सुवकते हुए कहा कि "कभी था ऐसा भारत, मगर आज वैसा नही है।" भारत मे सत्य की निष्ठा के अभाव का मूल्य विश्वकवि ने अपने आँसुओं से चुकाया।

यह खेद एव आलोचना का विषय है कि आज चारो ओर हमारे राष्ट्र एवं

समाज मे असत्य का वोलवाला है। हर कोई हर किसी को झूठ के सहारे ठगना चाहता है। यहाँ तक कि पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य आदि निकटस्थो का पारस्परिक व्यवहार भी सत्य पर आधारित नही रह गया है। राह चलते वात-वात मे झूठ वोलने मे भी कोई सकोच तक नही करता, वल्कि झूठ से किसी को धोखा दे कर व्यक्ति खुश होता है कि किसी को कैसा वेवकूफ वना दिया। एक वार एक नौकर अपने अधिकारी के पास गया और वोला—मेरी पत्नी वीमार है, कृपया मेरी एक सप्ताह की छुट्टी मजूर कर दीजिये। अधिकारी भी छँटा हुआ था, वोला—"अभी काम ज्यादा है—एक सप्ताह वाद छुट्टी पर चले जाना। नौकर एक सप्ताह वाद वापिस अधिकारी के पास आया और छुट्टी देने का आग्रह करने लगा। अधिकारी ने कहा—'मैंने पता लगा लिया है, तुम्हारी पत्नी स्वस्थ है, अव तुम्हे जाने की जरूरत नही है।' अधिकारी ने सोचा कि 'मैंने नौकर को ठग लिया। उधर नौकर ठहाका लगा कर हँस पडा। अधिकारी चौका कि क्या वात है? नौकर ने कहा—"जनाव। मेरी तो शादी ही नहीं हुई है, आपने किसकी पत्नी के स्वास्थ्य की जांच कराई है?' कहने का मतलव यह है कि आज प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से झूठ मे वाजी मारने की कोशिश करता है। एक मावुक कवि ने सत्य से विमुख होते जा रहे भारत का चित्र खीचा है, अपनी काव्यभाषा मे—

चन्दो ढलतो जावे है, अँधारो वढतो आवे है,
निशाचर घूम मचावे है॥
राम, वीर, गांधी को भारत दवतो जावे है।
पगल्ये-पगल्ये कांटा विछग्या, लपटा गगन तपावे है।
वेईमानी हद तोड़ वढी है, जुल्मी जोर जणावे है।
मिनख ने मिनख मिटावे, कलियुग वढतो आवे है।
झूठ सिर चढतो जावे है॥
कहणी और करणी रो अन्तर, धरती-गगन-सरीखो।
वाता सिंह जसी होवे, पण चलणो स्यार सरीखो।
सांच पे जोर जणावे है, पण छिप-छिप रिश्वत खावे है।
देखने हँसणो आवे है॥

इस निराशाजनक स्थिति से आज देश को ऊपर उठाने की जरूरत है। इस काम के लिये प्रवुद्ध एव विवेकशील पुरुष आगे आएँ तथा शासन भी अपनी नीति इस तरह की निर्धारित करे, जिससे झूठ के प्रति आतक पैदा हो और सत्य के प्रति निष्ठा। जनजीवन का विकास सत्याश्रय के विना कदापि सम्भव नही है। झूठ ने इतनी गहरी जडे जमा ली है, जिन्हे काटने के लिए काफी लगन एव परिश्रम की आवश्यकता है और इस काम मे चारो ओर के सहयोग की अपेक्षा है।

आइये, हम सभी सत्य की जय का सकल्प लें और जीवन मे व्याप्त असत्य को निकाल फेंकें। सत्य की ओर एकनिष्ठ हो कर अग्रसर होंगे, तभी हम सर्वांगीण विकास को साधने मे सफलता प्राप्त कर सकेंगे।

सत्य से अमिट कल्याण, सत्य से अखूट सौन्दर्य !

भारतीय दार्शनिको ने सत्य के सन्दर्भ मे तीन शब्दो का प्रयोग किया है—
सत्य, शिव, सुन्दरम् ।

जहाँ सत्य है, वहाँ शिव अर्थात् कल्याण है एव वही सौन्दर्य है। शरीर का सौन्दर्य तो विकारी और नश्वर होता है। सच्चा सौन्दर्य तो आत्मा का होता है। जब आत्मा सत्यानुगामिनी बन कर लोकोपकार के कार्यों मे प्रवृत्ति करती है तथा उस समय उसके स्वरूप मे जो निखार आता है, वही वास्तविक सौन्दर्य होता है। कल्याण और सौन्दर्य से मण्डित हो कर सत्य सारे ससार का प्रकाशस्तम्भ बन जाता है।

मैं आपसे पूछता हूँ कि आप लोगो को भी अपना कल्याण अभीष्ट है या नहीं ? क्या आप भी अखूट सौन्दर्य की निधि प्राप्त करना चाहते है ? यदि ऐसी आकाक्षा आपके मन मे हैं तो उसमे एकाग्र होकर उसे सत्य के पीछे मोड दीजिये। इस प्रसंग मे मैं आपको कहना चाहूँगा कि आप अपने जीवन को दो भागो मे विभाजित न करें। कई लोगो के मन मे ऐसी दुविधा का भाव पाया जाता है कि धार्मिक स्थान मे आ कर सामायिक या तप आदि क्रिया कर लें और फिर ससार के कामो मे चाहे जितना झूठ चलाएँ तो भी चलेगा। मानो धर्म का स्थान अलग हो और ससार का काम अलग हो। वास्तव मे ऐसा भाव सही नहीं है। सत्य और नीति की आवश्यकता जितनी धर्मस्थान में है, उतनी ही संसार के कामो मे भी है। कोई यहाँ सामायिक करके यह समझ ले कि दुकान पर बैठ कर कुछ भी उल्टा-सीधा करने की छूट मिल गई है तो वह सर्वथा गलत होगा। दिन-रात के चौवीस घण्टो मे प्रतिक्षण सत्य और नीति का विचार रहना चाहिए तथा अधिक से अधिक सजगता होनी चाहिए कि किसी भी प्रलोभन, दवाव या भय के कारण भी सत्य को न छोड़ें।

असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर चलें

हमारे विचार, वचन एव कर्म की प्रत्येक क्षण यही चेष्टा होनी चाहिए कि हम सत्य के अनुपालन मे जागरूक रहें। हमारे मन मे यह प्रार्थना बस जानी चाहिए—"प्रभो ! हमे असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलें, निरन्तर यह अभ्यास और यह प्रयास चलता रहेगा तो निश्चित है कि हमारे जीवन के सभी अगो में धीरे-धीरे सत्य का प्रवेश होने लगेगा। सत्य का प्रकाश यदि एक बार आत्मा मे समा जाता है तो फिर प्राणप्रण से उस प्रकाश से आत्मा को प्रकाशित करने का पराक्रम प्रारम्भ हो ही जाता है। आइये, हम भी असत्य से सत्य की ओर चलें।□

18

मानवजीवन का मूल्यांकन

□ □

मनुष्य का तन, मन, वचन और साधन सभी सर्वश्रेष्ठ माने गये हैं, समस्त प्राणियो से बढकर मानवजीवन और मनुष्यलोक माना गया है। ऐसा क्यो ? मनुष्य जीवन की दुर्लभता पर सभी धर्मशास्त्रो का एक स्वर क्यो ? मनुष्य के शरीर मे ऐसी क्या विशेपता है ? क्या वह दूसरे प्राणियो से वल, वुद्धि, धन, जन और साधन मे आगे है ? नहीं, देव मनुष्यो से भी इन वातो मे आगे है। तव क्या कारण है, मनुष्यजीवन की महत्ता का ? दुर्लभता का ? एक ही कारण है—मनुष्य की गति, योनि या देह के सिवाय और किसी भी गति, योनि या देह से मुक्ति नहीं मिल सकती। मुक्ति की साधना इसी देह से हो सकती है। पर वर्तमान युग का मनुष्य अपनी मानवता को ताक मे रख कर अपने अमूल्य जीवन को किस प्रकार कौडी के भाव लुटा रहा है ? वह कैसे मानवता प्राप्त करके मुक्ति की साधना की ओर अपने को मोड सकता है ? आइए, इन सव तथ्यो को पाने के लिए मुनिश्री के इस प्रवचन को गहराई से हृदयगम करें..........

१८

मानवजीवन का मूल्यांकन

□ □

धर्मशास्त्रो के अनुसार ससार मे सभी प्रकार के जीवो की चौरासी लाख योनियाँ मानी गई हैं और इन सब योनियो को मोटे तौर पर चार गतियो मे विभाजित किया गया है—नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति एव देवगति। इन चारो गतियो मे भी मनुष्यगति को सर्वश्रेष्ठ मानी गई है। यद्यपि सुख-सुविधाओ एव आनन्द-भोग की दृष्टि से देवगति सर्वोपरि होती है, किन्तु आत्मा अपने उत्थान-क्रम मे सर्वोच्च पराक्रम सफलतापूर्वक दिखा सके—वैसे सामर्थ्य की गति एकमात्र मनुष्यगति है। देवगति मे तो भौतिक ऋद्धि भी स्वत प्राप्त होती है, लेकिन मनुष्यगति की यह सर्वोत्कृष्ट योग्यता मानी गई है कि मनुष्य भौतिक ऋद्धि भी प्राय अपने परिश्रम से अर्जित कर सकता है तथा आध्यात्मिक भी सिद्धि अपने ही पराक्रम से उपलब्ध कर सकता है।

मनुष्य जन्म एवं मानव जीवन की सर्वश्रेष्ठता का यही अन्तर्रहस्य है।

जो सर्वश्रेष्ठ होता है, उसकी प्राप्ति भी दुर्लभ होती है

प्रकृति का यह स्वाभाविक नियम है कि जो भी पदार्थ श्रेष्ठ होता है, उसकी प्राप्ति भी बहुत कठिनाई से होती है। श्रेष्ठता और दुर्लभता—ये दोनो विशेषताएँ अधिकांशत. साथ-साथ जुडी मिलेंगी। सोने और लोहे मे क्या अन्तर है? रग के सिवाय सारी बातें समान ही होगी—धातु का वजन, खुरदरापन, कडापन आदि। फिर भी सोना महगा क्यो? लोगो की ममता का केन्द्र क्यो? कारण साफ है, लोहा बहुतायत से मिलता है—आसानी से मिलता है। सोना बहुत कम मिलता है,

वहुत परिश्रम से मिलता है, इसलिए उसकी मांग ज्यादा है। जितनी मांग ज्यादा है, उतना ही सोना अधिक दुर्लभ है।

यह तो एक दृष्टान्त है, किन्तु मनुष्य-जीवन की महत्ता अवर्णनीय होती है। निचली योनियो मे अनन्त-जन्म निकल जाते हैं, उनमे कभी साधना का एक क्रम वनता है तो वह शनै-शनै विकास पाता हुआ आत्मा को मनुष्य गति की ओर अग्रसर वनाता है। एक वार मनुष्यगति मिलने का अर्थ है कि आत्मा को मुक्ति का आधार मिल गया है। पहले स्तर पर पृष्ठभूमि का मिलना और वनना वडा कठिन होता है। क्योकि एक वार पृष्ठभूमि मिल जाय और फिर अन्तर्चेतना सुव्यवस्थित गति से पुरुषार्थरत वन जाय तो सर्वोच्च आत्मोत्थान की मजिल तक पहुँचना असाध्य नही रहता। फिर थोडा-वहुत गिरते-पडते भी मजिल की तरफ गति वनायी रखी जा सकती है।

ऐसा सर्वश्रेष्ठ मनुष्य-जीवन सर्वथा अभिनन्दनीय माना गया है, धन्य कहा गया है। आप अपने सामारिक जीवन मे अनुभव करते होंगे कि जव कोई उपलव्धि आप अपने ही परिश्रम से करें तो उसके उपभोग का आनन्द कितना सुखद होता है। और तो और कभी आप अपने ही हाथ से खाना वनाएँ और फिर उसे खाएँ—तो उसका स्वाद कैसा लगता है? अपने परिश्रम का फल सवसे ज्यादा मीठा होता है, यह सवका सुपरिचित अनुभव माना गया है।

मनुष्यजीवन की सर्वश्रेष्ठता का भी यही रहस्य है कि अपने समस्त पुरुषार्थ को कर्मरत वना कर उसका सर्वोच्च फल प्राप्त कर सकने का यही एकमात्र जीवन है। ऐसी उच्चतम योग्यता प्रकट करने एव उसका परिणाम देखने के लिए दूसरा कोई जीवन नही है। भगवान् महावीर ने स्पष्ट घोषणा की है—

माणुस्सं खु सुदुल्लहं।

अर्थात्—मनुष्यजन्म सर्वथा दुर्लभ है। इसलिए विवेक की सवसे वडी अपेक्षा और सवसे वडी कसौटी भी यह मानी जानी चाहिए कि कौन इस दुर्लभ जीवन का कितना वढकर सदुपयोग करता है और उसे किस प्रकार सर्वश्रेष्ठता के लक्ष्य तक पहुँचाने का कठिन पुरुषार्थ करता है?

दुर्लभत्व का मूल्यांकन . विवेक का दिशावोध

आप अपने सासारिक जीवन मे किसे विवेकशील मानते हैं? घर मे जितना सोना है, उसके तोल के वरावर जो लोहा ले ले, उसे अथवा घर के लोहे के वरावर जो सोना प्राप्त कर ले उसे? आप तत्काल उत्तर देंगे कि जो लोहे को सोने मे वदल दे, वही विवेकी पुरुष समझा जायगा। सोना दुर्लभ होता है, और जो कम मूल्य के पदार्थ के स्थान पर अधिक मूल्य का दुर्लभ पदार्थ सग्रहीत कर सके, वही अधिक विवेकशील माना जायगा और अधिक योग्य भी।

स्वर्ण के दुर्लभत्त्व का मूल्याकन तो आप शीघ्रता से कर लेंगे, किन्तु मूल्यवान से भी मूल्यवान तथा दुर्लभ से भी दुर्लभ पदार्थों से भी अतिमूल्यवान एव अति-दुर्लभ इस मनुष्यजीवन का कभी घड़ीभर बैठ कर गहराई से मूल्याकन करते है आप ? कितना दुर्लभ है यह मनुष्य-जीवन ? न जाने कितने पुण्य-फल के प्रभाव से यह जीवन प्राप्त हुआ है, किन्तु हम इसका मूल्य तक जानने की चेष्टा नही करते, ऐसा करके हम अपने ही साथ कितनी बडी आत्म-प्रवचना कर रहे हैं ?

कमल-पत्र पर पडे हुए ओस के बिन्दु के समान यह छोटा-सा मनुष्य-जीवन न जाने कब समाप्त हो जायगा और इसे निरुपयोगी बनाये रखने के दण्ड-स्वरूप आत्मा को फिर कितनी निचली योनियो मे भटकते रहना पडेगा—इस पर चिन्तन न किया जाय तो कहाँ है विवेक और कहाँ है उसका दिशाबोध ? पृष्ठभूमि के स्तर का भी विवेक न जागे और आत्मोत्थान की सही दिशा ही न दिखाई दे तो, फिर इस दुर्लभत्त्व का क्या मूल्यांकन हो सकेगा ? कल्पना करें कि आपके छोटे बच्चे को कही एक हीरा मिल जाय, आप उसे देख लें और इस विचार से किसी दूसरे काम मे लग जाएँ कि बच्चा खेल लेगा तो उससे ले लेगे । इस बीच बच्चा उसे कही फेंक दे, क्योकि उसके लिए तो हीरे और काँच के टुकडे मे कोई अन्तर ही नही होता है, और आपको पता चले कि बच्चे ने कीमती हीरा फेंक दिया है तथा खोजने पर भी मिला नही है तो बताइये कि उस समय आपके मन की क्या दशा होगी ? एक पत्थर के टुकडे के लिए आपका मन पागल हो सकता है, किन्तु अमूल्य मानव-जीवन के लिए आपके मन मे कुछ भी न हो, यह मन की कैसी पतनावस्था है ? आपको हीरे का मोल तो मालूम है, किन्तु अपने ही मनुष्य-जीवन के मूल्य का कोई भान आपको नही है ?

विवेक के इस दिशाबोध को जगाइये कि आपको मनुष्य-जीवन के दुर्लभत्त्व का मूल्याकन करना आ जाय । यह विवेक यदि एक बार जाग गया तो आप इस अमूल्य जीवन का मूल्याकन भी कर लेंगे और हम साधुओ की तरह इसका सदुपयोग करने के लिए कमर भी कस लेंगे ।

रूप मे इन्सान, पर स्वरूप मे कितने ?

विज्ञान के इस विकास-युग मे मानवता का मानदण्ड कितना नीचे गिरा है ? इसका उल्लेख एक शायर ने इस तरह किया है—

सभी कुछ हो रहा है, इस तरक्की के जमाने मे ।
मगर यह क्या गजब है कि आदमी इन्सान नहीं बनता ॥

मानवता एव इन्सानियत के सन्दर्भ मे वर्तमान की दुरवस्था पर विचार करें, उसमे पूर्व भारत की अतीतकालीन गरिमा पर एक दृष्टिपात अवश्य कर लें, ताकि तुलनात्मक रूप से भी हम जान सकें कि इस क्षेत्र मे हमारा देश कितना और क्यो पिछड गया है ?

यह एक निर्विवाद तथ्य है कि अपने दार्शनिक एव सास्कृतिक उद्भव के साथ अपनी भौतिक समृद्धि मे भी भारत का अतीत अत्यधिक गौरवपूर्ण रहा है। संस्कृति एव सभ्यता की समुन्नति के कारण हमारे देश को विश्वगुरु माना गया तो आर्थिक सम्पन्नता के कारण अर्थ-लोलुप विदेशियो ने इसे सोने की चिड़िया भी कहा। इतना सम्पन्न और समुन्नत हमारा देश क्यो वन पाया ? इसका एकमात्र कारण रहा है—हमारे यहाँ महान् विभूतियो का जन्म, उनके मानवता भरे उपदेश तथा उन उपदेशो के अनुसार सामान्य जन-जीवन मे आचरण। हमारा चरित्र एव कथा-साहित्य इस सत्य का प्रमाण है कि अतीतकालीन समाज मे पारस्परिक व्यवहार कितना मानवता-पूर्ण तथा कितना सौहार्द्र, सहानुभूति एव सहयोग पर आधारित था ? समाज एव वर्ग के भेदो की तव खाइयाँ नही खुदी थी और मनुष्य सवसे पहले अपने को मनुष्य समझता था, अपने सायियो का हमदर्द साथी। इसी मानवीय एव आत्मीय वाता-वरण मे हमारे देश ने अद्भुत विकास किया था।

कोई चालीस-पचास वर्ष पहले के वर्तमान ग्रामीण वातावरण पर भी नजर डालें तो आपको वहाँ अतीतकालीन सौजन्यता की झलक दिखाई देगी। गाँव का सम्मान व्यक्ति वडे से ले कर छोटे से छोटे व्यक्ति की सकट के समय सहानुभूति से सहायता करता था। गाँवो मे तव छोटे-वड़े वर्गों के वीच मनोमालिन्य या द्वेष के भाव नही थे। गाँवो का स्वर्ग कुछ-कुछ भी जो वना हुआ था, उसका मूल आधार मानवीय दृष्टिकोण ही था।

किन्तु विज्ञान के विकास, आर्थिक पद्धति के परिवर्तन तथा स्वार्थ के दुर्दान्त दुष्प्रभाव ने उस मानवीय आत्मीयता की धज्जियाँ उडा दी। मानव अपनी मनुष्यता को नष्ट करने पर तुल गया। मानव देव होता तो नही हुआ, किन्तु वदले हुए इस कुटिल भौतिक वातावरण मे वह अपनी मनुष्यता भी नही वचा सका। आदमी की इन्सानियत गायव हो गई। आदमी केवल आदमी रह गया, वल्कि कई जगह तो वह शैतान वनने लगा।

मानव का वदलता हुआ दानवीय रूप

वैज्ञानिक प्रगति ने विश्व मे समय को छोटा कर दिया और दूरियाँ घटा दी। आवागमन के द्रुतगामी साधनो से दूरस्थ प्रदेशो के निवासियो का पारस्परिक सम्पर्क सहज व घनिष्ठ होने लगा। विस्तृत सम्पर्क से व्यापार-व्यवसाय तो वढा, किन्तु साथ ही स्वार्थ की जटिलताएँ भी वढती गई। व्यवहार का दायरा वढा, किन्तु सहानुभूति व सहयोग का दायरा छोटा होने लगा। पहले मनुष्य छोटे कार्यक्षेत्र मे सवके साथ सौहार्द्रभाव रखता था। उसकी आय भी थोडी थी, तो तृष्णाएँ भी थोडी थी। कार्य-क्षेत्र विस्तृत होने के साथ-साथ धन और भोग की निजी लिप्साएँ वढती गई तथा

सहानुभूति व सहयोग की भावनाएँ घटती गईं। आर्थिक व्यवहार की नई प्रणालियो के कारण व्यवहार मे मानवीयता कम होने लगी तथा तकनीकी विधि मुख्य बन गई। इस प्रकार व्यक्ति का जो सामूहिक रूप था, वह समाप्त-सा हो गया। इसके अतिरिक्त कार्यक्षेत्र के विस्तृत होने का विपरीत परिणाम यह भी हुआ कि व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत सीमाओ मे अधिक सिकुडने लगा। इस बदले हुए वातावरण मे मानवता के मानदण्ड गिरते चले गये और मानव का दानवीय रूप उभर कर ऊपर आता गया। मानवता के इस विकृत रूप का शायरो ने कैसा मार्मिक व्यग प्रस्तुत किया है—

मुल्ला दु खी, रहमान नहीं मिलता है।
पडित चिन्तित, भगवान् नहीं मिलता है।
मैं दुःखी हूँ इन्सानो की इस आबादी में-
बहुत ढूँढ़ने पर भी खरा इन्सान नहीं मिलता है।

एक और मुक्तक है—

इन्सान ही कमाता है, इन्सान ही खाता है।
इन्सान ही इन्सान के लहू से नहाता है।
लोगों ने शैतान को बेकार ही बदनाम किया।
बेचारे शैतान का तो नम्बर ही नहीं आता है।

यह मुक्तक बहुत ही मार्मिक है। आदमी से आदमी क्यो डरता है? क्योंकि इन्सान ही इन्सान के खून से नहाता है। ऐसा क्यो हो रहा है? इसे समझना बहुत आवश्यक है।

आर्थिक प्रणाली मे ज्यो-ज्यो जटिलताएँ बढती गईं, आर्थिक शोषण के रूप भी परोक्षरूप से क्रूर बनते गये। आर्थिक एव औद्योगिक दृष्टि से जो राष्ट्र एव राष्ट्रो मे जो वर्ग या व्यक्ति अधिक उन्नत तथा अधिक सम्पन्न बन जाते हैं, वे पिछडे हुए राष्ट्रो मे या पिछडे हुए वर्गों मे तथा व्यक्तियो मे अपने पाव पसारने लगते है तथा शोषण के नये-नये तरीके ढूँढ कर अपनी पूँजी का सचय बढाते रहते हैं। पूँजी का सचय शोषण के बिना सम्भव नहीं होता। जब राष्ट्र विशाल पूँजी का संचय कर लेता है तो वह पिछडे हुए राष्ट्रो मे अपनी पूँजी का नियोजन करता है। धीरे-धीरे पूँजी की रक्षा के बहाने वहाँ पर अपनी राजनीतिक सत्ता जमाता है और सत्ता के सयोग से वह राष्ट्र वहाँ पर ऐसी लूटमार मचाता है कि वह पिछडा हुआ देश सदियो के लिये गरीब भी बन जाता है। हमारा देश तो स्वय ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण का जीता-जागता शिकार रहा है। राष्ट्रो की ऐसी आर्थिक नीति के कारण ससार दो भागो मे बँट जाता है—एक तो साम्राज्यवादी देश और दूसरे उपनिवेश। आजकल आर्थिक शोषण का क्रम और बारीक हो गया है, अत. इन दो भागो को शासक और शासित नही, बल्कि शोषक और शोपित का नाम दे सकते हैं।

एक ही राष्ट्र मे गलत आर्थिक नीति के कारण वर्गो एव व्यक्तियों मे शोषण की प्रमुखता से राष्ट्रीय सम्पत्ति चन्द से चन्द हाथो मे जमा होती रहती है। अधिक से अधिक हाथ मजदूरो के होते हैं, किन्तु फिर भी वे कई बार वेकार भी रहते है। धनाढ्यो की एक ओर गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ दिखाई देती है तो दूसरी ओर एक-एक कोठरी मे पूरा मजदूर-परिवार खचाखच भरा रह कर जिन्दगियाँ गुजार देता है। आर्थिक विषमता का यह दयनीय चित्र मानवता की जड़ें उखाड़ रहा है तथा अर्थ-सम्पन्नो को दानव के रूप में प्रस्तुत कर रहा है।

मानवता को खोजिये और जगाइये !

एक वार यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू दिन मे लालटेन ले कर शहर की गलियो मे घूमने लगे। जिसने देखा, वही उनकी इस खोज पर आश्चर्य करने लगा। नागरिक एकत्रित हो गये तो कुछ वृद्धजनो ने अरस्तू को रोका और विनम्रता से पूछा—"हे महान् दार्शनिक ! सूर्य के इतने तेज प्रकाश मे भी आप लालटेन ले कर क्या खोज रहे हैं ? सूर्य के रहते, ऐसे दिन के उजाले मे आपको लालटेन की आवश्यकता क्यो महसूस हुई ?" अरस्तू ने वहुत ही शान्ति से उत्तर दिया—"मैं लालटेन लेकर इन्सान को ढूंढ रहा हूँ।"

आज के लिये यह स्थिति कितनी यथार्थता से परिपूर्ण है ? वास्तव मे दिन के उजाले मे लालटेन ले कर खोजें तव भी इस जटिलतम आर्थिक शोषण के युग मे इने-गिने इन्सानो को ढूंढ निकालना भी एक भगीरथ कार्य ही होगा। जिस समाज़ मे आदमी अपनी मतलवखोरी के लिये, पेट और पेटी की अनैतिक पूर्ति के लिये इन्सानियत को दफना देता है, वह आदमी भी कहाँ रहता है—दरिन्दा वन जाता है। ऐसे दरिन्दे और दानव मानवता को रौंदते-कुचलते हुए अपने मतलवो की हविश पूरी करते रहते हैं।

आदमी आदमी से आज डरने लगा है, क्योकि ताकतवर आदमी अपनी दौलत और हुकूमत की ताकत से दरिन्दा वन कर कमजोर आदमियो को कुचलता हुआ चला जा रहा है और उसका नतीजा यह होता है कि एक तवका वहुत अधिक खा कर मदहोश है तो दूसरा गरीव तवका भूख के मारे पागल है। शोषक अन्याय करता है तो शोषित प्रतिकार की शक्ति से लाचार वन कर शोषक से भयभीत रहता है। एक शेर है—

आदमी से आदमी डरने लगा, आदमी वेमौत अव मरने लगा।
दुश्मनो से दोस्ती तो अव दूर है, दोस्तो से दुश्मनी करने लगा।

समाज की इस अनैतिक एव शोषक परिस्थिति का परिणाम स्पष्टत: मानवता के ह्रास के रूप मे ही सामने आया है। जव मानव मे मानवता का ही अभाव होगा

तो वह धर्म के पथ पर कैसे चलेगा ? वह क्योंकर महापुरुषों के आदर्शों को याद करेगा तथा अपने जीवन मे तदनुकूल सुधार करने का प्रयत्न करेगा ? एक भावुक कवि ने इस स्थिति पर अपनी भावना यो व्यक्त की है—

कौन सुनेगा आज यहाँ पर-पीर को ।
भूल चुका है आज मनुज, श्रीराम, कृष्ण महावीर को ॥
कभी जटायु की सेवा मे, राम वाले-वाले जाते थे,
घायल पक्षी को गोदी मे ले, आँसू टपकाते थे ।
आज खड़ा है भाई आगे, भाई ले शमसीर को ॥
कभी सुदामा के चावल खा, नटवर हर्षित होते थे,
दीन-हीन ब्राह्मण के पग को, नयन नीर से धोते थे ।
आज दु.खी को ठुकराते हैं, धिक्कारें तकदीर को ॥
कभी वीर चन्दनवाला से, उडद बाकुले पाते थे,
चडकोशिया के विष के बदले अमृत वरसाते थे ।
आज मनुज वरसाते हैं कटु वाणी के विष तीर को ॥

इसी सन्दर्भ मे एक मुक्तक है—

किसको चिन्ता है, आज मानवता जी रही है या मर रही है ?
विदेशो मे भारत की तस्वीर कैसी उभर रही है ?
विलासपूर्ण कोठियो मे आराम करने वाले नेताओ—
जरा गरीब झोंपड़ियो से पूछो कि उन पर क्या गुजर रही है ?

यह चिन्तनीय चित्र है, आज के विषम भारत का, वर्तमान विषमय विश्व का, जहाँ मानवता असीम पीडा से कराह रही है। प्रबुद्ध जनो को आह्वान है कि मानवता की खोज करें एव जन-जन से मानवता को जगावें । यह कार्य कठिन अवश्य है, किन्तु है स्व-परकल्याण का पुनीत कार्य ।

मानवता को जगानी होगी, महापुरुषो के आदर्श-स्मरण से !

आज के इस घोर अमानवीय वातावरण मे यदि मानवता को जगानी है तो हमे महापुरुषो के आदर्श जीवन-चरित्रो का ही आश्रय लेना होगा । उनके मानवीय आदर्शों का स्मरण करने से ही मानवता का भाव प्रवल एव प्रखर बन सकेगा । ऊपर जो गीत—"कौन सुनेगा आज यहाँ पर पीर को" मैं सुना गया हूँ, उसमे प्रतीक-रूप श्रीराम, श्रीकृष्ण तथा भगवान् महावीर के ये ही आदर्श प्रस्तुत किये गये है । हमारे यहाँ मानवता की मर्यादा, कर्मण्यता एव उच्चता के रूप मे इन तीनो महा-पुरुषो के जीवन चरित्र पूजनीय माने गये हैं और इस दृष्टि से हम इन महापुरुषो के आदर्श-स्मरण मे मानवता को जगाने का बीडा उठाएँ और प्राणपण से जुट जाएँ तो सफलता अवश्य ही हमारे चरण चूमेगी ।

इन तीनो महापुरुषो के जीवन-चरित्रो की एक-एक झाँकी पूर्वोक्त गीत मे दी गई है।

श्रीराम की मानवता उस समय मर्यादाओ से भी महान् वन गई, जब उन्होंने घायल जटायु को अपनी गोद मे उठा लिया और उसकी अश्रुधारा के साथ सेवा करने लगे। मनुष्य क्या-पक्षी के साथ भी उन्होंने आत्मीयता का व्यवहार किया। और आज के आदमी-श्रीराम के कहलाने वाले भक्त—जब भाई-भाई के बीच तलवारें खींच लेते है, और एक दूसरे के खून के प्यासे वन जाते हैं, तब क्यो नही चेतना का स्वर जागता है? और गिरी हुई मानवता को उठाने के लिए वे चरण क्यो नही गतिशील वनते हैं?

जब राम ने जटायु को घायल अवस्था मे देखा था, उस समय सीता के वियोग की घड़ियाँ थी। राम सीता की खोज मे घूम रहे थे, तभी उन्हें आहत जटायु मिला—पख कटे हुए थे, खून वह रहा था, देखते ही राम के हृदय-हिमाद्रि से करुणा की गगा वह निकली। वे एक वार तो सीता को भी भूल गये और पक्षी की सेवा मे समर्पित हो गये। गोस्वामी महाकवि तुलसी के शब्दो मे राम वोलने लगे—

जल भरि नयन कहे रघुराई।
तात! करम ते निज गति पाई॥

आपसे पूछ लूँ कि आप वाजार मे जा रहे हो, आपका दस का नोट गिर जाय और आप उसे ढूँढने लगें। एक अन्य व्यक्ति भी सहानुभूतिवश आपका नोट ढुढवाने लगे और दुर्योग से उसको एक्सीडेंट हो जाय तो वताइये आप पहले उसकी सेवा मे लगेंगे या नोट ही ढूँढते रहेगे? कही ऐसा तो नही वोल पडेंगे कि—

मस्त रहो मस्ती मे, आग लगे वस्ती मे।

वास्तव मे स्वार्थवादिता जब सीमा से आगे वढ जाती है, तव घोर अमानवीयता उत्पन्न हो जाती है। इसलिए श्रीराम को याद करें एक मर्यादापुरुष के रूप मे तथा उनकी मर्यादाएँ अपने जीवन मे उतारें।

कर्मयोगी श्रीकृष्ण और श्रमणशिरोमणि महावीर के मानवता के आदर्श

दूसरा चित्र लीजिए श्रीकृष्ण के सुदामा-प्रेम का। वचपन का मित्र गरीव ब्राह्मण सुदामा सहायता की आशा ले कर त्रिखडपति वासुदेव श्रीकृष्ण के प्रासाद मे पहुँचता है तो द्वारपाल से आगमन का पता लगते ही श्रीकृष्ण स्वयं दौड़े आते हैं और सुदामा से गले लग कर मिलते हैं। यही नही, स्वय सुदामा के कटकाकीर्ण पैरो को धोने के लिए वैठ जाते हैं। कवि की ही भाषा मे उस समय के श्रीकृष्ण के सुदामा-प्रेम को सुनिये—

पानी परात को हाथ छुयो नहिं।
नैनन के जलसों पग धोए॥

यही नही, सुदामा के चावल की दो मुट्ठियाँ खा कर दो लोक का राज्य तो उसे दे ही दिया—यदि रुक्मिणी न रोकती तो वे तो तीसरी मुट्ठी भी खाने वाले थे। बताइये, दीन-हीन मानवता के उद्धार के लिए श्रीकृष्ण ने अपने को राह का भिखारी बनाने का निश्चय कर लिया। त्याग का कितना बडा आदर्श उदाहरण है ?

और वर्तमान मानव की स्थिति भी तोल लीजिये। वैभव के नशे मे आज का मानवताहीन मानव क्या-क्या दुष्कृत्य नही करता ? वह भूल जाता है कि मनुष्यता के नाते मानव-मानव भाई और साथी होता है। श्रीकृष्ण का आप इस तरह स्मरण करेंगे तो अवश्य ही मानवता आपके हृदय मे जागृत होगी।

तीसरा चित्र आपके सामने प्रस्तुत है—भगवान् महावीर की अनन्त करुणामय मानवता का, जिसका प्रवाह क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी—सबको समानरूप से मानवता के सुकोमल भावो से विगलित करता रहा है। सेठानी की क्रूरता से पीडित चन्दनबाला के हाथ से उडद के बाकुले ले कर अपनी अभिग्रहमय तपस्या पूरी करके दु खी मानवता के उद्धार के लिए अपना हाथ आगे बढाया। महान् विषधर चडकौशिक की बांबी पर ध्यानस्थ खडे होकर उसके विष के बदले मे उसको उद्बोधन का अमृत पिला कर उसका उद्धार ही कर दिया। सर्प का जहर उन्होने लिया और बदले मे उसे अमृत दिया।

भगवान् महावीर के शिष्यो ! आप अपने जीवन को देखिये—गहराई से देखिये और ज्ञात कीजिये कि आप अपने प्रत्येक कार्यक्षेत्र मे दूसरे का विष पीते हैं या विष फैलाते हैं ? दूसरो के जहरभरे डक मारते है या कभी किसी के डक की पीडा उसके घाव को चूस कर कम भी करते हैं ? यह तो अपनी आत्मा से ही पूछिये, किन्तु मेरी समझ मे उत्तर अधिक आशाजनक नही मिलेगा। तो हम भगवान् महावीर के शिष्य क्यो कहलाते हैं ? जिन्होंने मनुष्य पर ही नही, सम्पूर्ण प्राणियो पर भी अपनी अनन्त करुणा का अमृत बरसाया, उनके भक्त कहला कर मानव-मानव के साथ सद्भाव एव सहयोग का व्यवहार करने मे भी पिछड जाय, यह कितनी लज्जाजनक स्थिति है ?

आदमी-आदमी से डरे नहीं, आदमी-आदमी से मोहब्बत करे

इन्सानियत की जड है कि आदमी-आदमी से मोहब्बत करे, ऐसी मोहब्बत करे, ऐसी मोहब्बत कि वह उसका भाई और दोस्त है। आदमी आदमी से न तो डरे और न ही आदमी-आदमी को डराने कि हिमाकत करे। चारो ओर से जब ऐसा वातावरण बनाया जाने लगेगा, तभी इन्सानियत की जडें जमने लगेंगी। मानवता के विकास का यही मार्ग है।

गौतमबुद्ध से एक बार एक भक्त ने पूछा—'प्रभो, एक व्यक्ति निरन्तर आपके नाम की माला फेरता है और दूसरा व्यक्ति बिना आपका नाम लिये हर वक्त दु खियो

की सेवा-सुश्रूषा मे लगा रहता है तो आपकी दृष्टि मे कौन बडा भक्त है? बुद्ध ने तुरन्त नि:संकोच उत्तर दिया—'वह मेरा बडा भक्त है जो दु:खियो की सेवा मे लगा रहता है।'

यही सत्य भगवान् महावीर ने भी प्रकट किया था—

जे गिलाण पडियरई, से धन्ने ।

अर्थात् जो दु:खियो की सेवा करता है, वह धन्य है।

जीवन के प्रत्येक पल मे मानवता को जगाने, मानवता को बनाये रखने तथा मानवता की सेवा मे जुटे रहने को सभी महापुरुषो ने एकस्वर से सबसे बडा धर्म बताया है। यदि इस प्रकार मानव प्रेम की एक धारा मे सब लोग अवगाहन करने लगें, तो विश्व मे अनाथ बनी हुई मानवता का परम उद्धार हो जाय।

दुर्लभ मानव-जीवन को मानवता से सजाइये, सँवारिये !!

पुण्ययोग से प्राप्त इस दुर्लभ मानव-जीवन को व्यर्थ न बनाएँ। मानवता के कोमल भावो से इस जीवन को यो सजाइये व सँवारिये कि आत्मा का स्वरूप उज्ज्वलतर बन सके और ईश्वरत्व-सिद्धत्व की दिशा मे वह अग्रसर हो सके। मानव-जीवन की सार्थकता अपने और दूसरो के मानव-मन को जगाने मे है, ताकि सब ओर जागृति की शख-ध्वनि फूट पडे। □

19

शानदार मरण,
शानदार जीवन !

□ □

प्रत्येक प्राणी को मृत्यु आती है, और मृत्यु के वाद नई जिन्दगी भी मिलती है। जन्म और मरण का यह चक्र तव तक चलता रहता है, जव तक वह कर्मों से सर्वथा मुक्त नहीं हो जाय। किन्तु जो मनुष्य मृत्यु को जीवन की सखी मान कर उससे डरता नही, वल्कि उसे अपने जीवन सुधारने, आत्मालोचन और आत्मशुद्धि करने का उत्तम साधन मान लेता है, उसकी मृत्यु भी शानदार होती है, उसकी मृत्यु के क्षण शोक, भय, चिन्ता, प्रमाद एव राग-द्वेष-मोह आदि से वहुत ही दूर होते हैं। और यह भी सत्य है कि जिसकी मृत्यु शानदार होती है, उसका जीवन भी शानदार माना जाता है, क्योकि मृत्यु तो समग्र जीवन का पूर्णविराम है, सारे ही जीवन का लेखा-जोखा या उपसहार मृत्यु के समय आ कर होता है। मृत्यु ही मानवजीवन की उष्मा को नापने का थर्मामीटर है। जीवन और मृत्यु के इन समस्त तथ्यो को भलीभांति जानने-पहिचानने के लिए पढिए मुनिश्री का गम्भीर तथ्यो से ओतप्रोत ओजस्वी प्रवचन…… ·

१६

शानदार मरण,

शानदार जीवन !

□ □

आगाह अपनी मौत का कोई बशर नही।
सामान सौ वरस का, पल की खवर नही ॥

एक वार एक राजा ने विचार किया कि वह मृत्यु को अपने समीप तक आने का कोई अवसर ही नही देगा और इस विचार से उसने एक ऐसे सुदृढ दुर्ग का निर्माण करवाया, जिसमे छोटे से छोटा जीव भी प्रवेश नही कर सकता था। चारो ओर की सुरक्षा की मजबूत व्यवस्था भी वनायी गई। उसके वाद वह राजा उसमे रहने लगा। वह आश्वस्त हो गया कि उसने अपनी मृत्यु को परास्त कर दिया है। वह अपने आप मे अपने जीवन के प्रति सन्तुष्ट हो कर उस दुर्ग मे निश्चिन्तता से रहने लगा।

एक सन्त को वह राजा एक वार सम्मानपूर्वक अपने दुर्ग मे ले आया। दुर्ग की रचना एव वहाँ की कठोर सुरक्षा-व्यवस्था देख कर सन्त को कुछ आश्चर्य हुआ। उन्होंने राजा से पूछा—"आपने अपनी रक्षा की ऐमी कठोर व्यवस्था क्यो की है ? क्या किसी शक्तिशाली राजा के आक्रमण का भय है ?' राजा ने उत्तर दिया—"नही महाराज, मेरे से युद्ध करने का किसी भी राजा मे साहस नही है। मैं सबको अपने अधीन कर चुका हूँ।" सन्त ने कहा—"फिर आपको किसी वात का भय है ?" राजा का मुख लज्जा से आरक्त हो उठा, वे वोले—"महात्मन् ! भय तो क्या है, किन्तु मैं

मृत्यु को अपने तक नही पहुँचने देना चाहता हूँ, अत मृत्यु के लिये ही मैंने ऐसी कठोर सुरक्षा-व्यवस्था की है।"

सन्त यह सुन कर हँस पडे, बोले कुछ नही। राजा मर्माहत-सा हो कर पूछने लगा—"आप मेरी वात पर हँसे क्यो, महाराज ?" सन्त ने कहा—"मैं तुम्हारी वात पर नही, तुम्हारी मूर्खता पर हँसा हूँ, राजन् ! मृत्यु से वढकर निश्चित स्थिति संसार मे अन्य कोई नही होती। जो जन्मा है, उसका मरण निश्चित है। मृत्यु से तुम्हें न यह दुर्ग वचा सकता है, न कठोर सुरक्षा-व्यवस्था। मृत्यु जव आयेगी, तव एक पल की भी रियायत नही मिलेगी।"

राजा हतप्रभ-सा खडा सन्त का मुख निहारता रहा। उसके मुह से वोल तक नही फूटा।

और कुछ अनिश्चित हो सकता है, मृत्यु को एकदम निश्चित मानिये !

मैं आपसे पूछूँ कि क्या आप भी राजा की तरह ही सोचते हैं या सन्त की वात आपके गले उतरती है ? सोचने की वात तो आप जानें, किन्तु आप लोगो के आचरण को देख कर यही अनुमान लगाया जा सकता है कि आप सासारिक तृष्णा मे गले तक डूवे हुए हैं तो मृत्यु के वारे मे सोचते ही कहाँ हैं ? रात-दिन सौ-वरस का सामान जुटाने मे अपनी सारी सुधवुध खो कर लगे हुए हैं, विना यह ख्याल लाये कि हकीकत मे एक पल की भी खवर नही है। यह विडम्वनापूर्ण मन स्थिति है। यदि आप जीवन मे सावधान रहना चाहते हैं तथा सावधानी के साथ जीवन का विकास साधना चाहते हैं तो आपको सन्त की ही वात पर गहराई से सोचना पडेगा। ससार मे और कुछ भी अनिश्चित हो सकता है, किन्तु आप मृत्यु को एकदम निश्चित मानिये। अँग्रेजी मे कहा जाता है—

Nothing is sure, than death.

अर्थात्—मृत्यु से अधिक सुनिश्चित कुछ भी नही है। हम देखते हैं कि कई वार निश्चित से निश्चित घटना भी घटने से रह जाती है और अनिश्चित घटना अकस्मात् घट जाती है। मृत्यु कव आयेगी, इसका ज्ञान तो प्रत्येक को नही होता, किन्तु मृत्यु एक दिन आयेगी अवश्य, इसमे किसी को रत्तीभर भी शका की गुजाइश नही है। जिसने जन्म लिया है, वह एक दिन मरेगा ही, इस तथ्य मे सन्देह को कोई स्थान ही नही है।

भारत के दार्शनिको एव संस्कृतिविदों ने जीवन की अनित्यता एव क्षणभंगुरता के विपय मे वहुत कुछ कहा है। जैनसूत्र की यह उक्ति है—

अणिच्चे जीवलोगम्मि !

अर्थात्—इस ससार मे जीवन अनित्य है—जन्म और मरण का चक्र निरन्तर

चलता ही रहता है। जन्म के बाद मरण एवं फिर नया जन्म यह ससार का क्रम है। यह क्रम तब तक चलता रहेगा, जब तक आत्मा कर्म-बन्धन एव फलभोग के गतिचक्र मे भ्रमण करती रहेगी। आत्मिक शक्तियाँ जब तक दबी रहती हैं, आत्मा कर्मों की शक्ति द्वारा भव-भ्रमण करती है। किन्तु जब आत्मा क्रिया से हट कर कर्त्ता का रूप धारण करने लगती है तथा अपनी आन्तरिक शक्तियो को तेजस्वी बनाती है तब कर्मों की शक्ति का क्षय होने लगता है। कर्म ज्यो-ज्यो क्षय होते हैं, आत्मा का स्वरूप निखरने लगता है। आत्मा जब कर्म-बन्धन से मुक्त हो जाती है, तब वह मृत्यु को भी जीत लेती है, अमर बन जाती है।

मृत्यु से कभी डरें नहीं, उसे सदा अपने सामने रखें !

मृत्यु आयेगी—अवश्य आयेगी और वह किसी क्षण आ सकती है। अत मेरे बताने का अभिप्राय यह नही कि आप मृत्यु से भय खाने लगें। जो निश्चित आने वाली है, उससे भय कैसा ? मैं मृत्यु को जो अपने सामने रखने की बात कह रहा हूँ, उसका तात्पर्य यह है—आप अपनी आँखें बन्द करके सासारिकता मे रच-पच नहीं जाँय, बल्कि सतत सावधान रह कर मृत्यु के आने से पूर्व ही अपने जीवन-विकास की साधना करने मे सतर्क बन जाय। मृत्यु को सदा अपने सामने रखने का अर्थ है—सतत सतर्कता। प्रश्न होता है, जब मनुष्य यह चित्र हरदम देखें कि सामने मृत्यु है, जो किसी भी क्षण इस जीवन को समाप्त कर सकती है, तो मनुष्य आखिर क्या करे ? मृत्यु का विचार करके वह जीवन की अनित्यता एव क्षणभगुरता को समझे तथा जीवन के सुन्दरतम सदुपयोग की बात को सोचे और उस पर अमल करे। जब यह बात हृदयगम हो जाय कि हमारी प्राप्त वस्तु हमसे किसी भी समय छिन सकती है तो मानस यही बनेगा कि अल्पतम समय मे उस वस्तु का अधिकतम सदुपयोग कर लिया जाय।

धर्मशास्त्रो ने भी इसी मन स्थिति का समर्थन किया है—

अनित्यानि शरीराणि, विभवो नैव शाश्वत. ।
नित्य सन्निहितो मृत्युः, कर्तव्यो धर्मसग्रह ॥

यह शरीर अनित्य है—क्षणभगुर है। यह सारा वैभव एव ऐश्वर्य भी शाश्वत नहीं है—नश्वर है। प्रतिदिन मृत्यु सिर पर मडरा रही है। ऐसी अवस्था मे धर्माचरण मे मन लगाना चाहिए। प्रतिपल सजग रहते हुए धर्मसग्रह की प्रवृत्ति होनी चाहिए।

मृत्यु से इसलिए नही डरना है कि मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नही। पुराना वस्त्र छोड कर जैसे आप नया वस्त्र धारण कर लेते हैं, वैसे ही यह आत्मा मृत्यु होने पर पुराने चोले को छोड़ कर नये जन्म मे, नये चोले मे प्रवेश कर

लेती है। और 'मैं' जो है, वह शरीर नही, बल्कि आत्मा है। ऐसी दशा मे 'मैं' तो मरता ही नही है, मरता है, केवल शरीर, जो आत्मा से पृथक् होता है। इस प्रकार मृत्यु अपना तो कुछ छीनती नही है, फिर उससे डरना कैसा ? वह जब भी आए, निरपेक्षभाव से उसको वरण करने की मन की तैयारी होनी चाहिए।

मृत्यु को सदा अपने सामने रखने की मूलभूत उपयोगिता यही है कि इस जीवन मे जो कुछ सत्कार्य करने का अवसर मिला है, उसे तुरन्त सम्पन्न कर ले, अन्यथा मृत्यु उस अवसर को छीन लेगी। इसलिए प्रत्येक क्षण का लाभ बुद्धिमान व्यक्ति को उठा लेना चाहिए। यह अवसर व्यर्थ मे ही हाथ से निकल नही जाना चाहिए। इस सतत जागरूकता के लिए अवसर छीनने वाली मृत्यु को यदि अपने सामने रखेंगे तो उस अवसर के सदुपयोग मे निष्क्रियता नही आ सकेगी। क्रियाशीलता को गतिशील बनाये रखने के लिए निरन्तर मृत्यु का ध्यान आवश्यक है।

मृत्यु सिर पर मॅंडराती है, किन्तु मनुष्य का मन कहाँ मॅंडराता है ?

यह जानते हुए भी कि मृत्यु प्रतिपल सिर पर मॅंडरा रही है और न जाने किस पल मे हमारी इस जीवनलीला को समाप्त कर देगी, मनुष्य का मन कहाँ मॅंडराता है ? वह धर्मसग्रह मे प्रवृत्त न हो कर विषयो के बीहड मे भटकता रहता है।

एक जैनकथा है कि मेहतारज कुमार अपने पूर्वभव मे मुनि थे और उनके एक साथी मुनि भी था—दोनो साथ-साथ धर्मसग्रह के कर्त्तव्य मे प्रवृत्त थे। दोनो मुनियो का नाम ईश्वर और गोविन्द था। ईश्वर ने तो साधु-धर्म का विशुद्ध भाव से पालन किया, किन्तु मेहतारजकुमार के जीव गोविन्द ने साधुधर्म के कठिन कष्टो मे आकुल बन कर सासारिक सुखो की वाछा की। किन्तु दोनो ने एक-दूसरे की आत्मालोचना सुनी और भविष्य मे भी विकृति के समय एक-दूसरे को सावधान करके सयम-पथ पर लाने की परस्पर प्रतिज्ञा की। इस जन्म के बाद ईश्वर का जीव तो सप्तम देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ तथा गोविन्द का जीव मनुष्यजन्म मे मेहतारजकुमार के रूप मे। वैसे मेहतारज का जन्म तो एक मेहतर के घर मे हुआ था किन्तु देव बने हुए पूर्व मित्र ईश्वर का उपयोग लग जाने से उसने दो नवजातो की अदला-बदली कर दी और मेहतारज को एक कोटिपति के घर पहुँचा दिया।

मेहतारजकुमार ने यौवन की देहरी पर अपना पैर रखा ही था कि एक दिन देव उसके सामने प्रकट हुआ तथा सारी भूमिका बाँध कर उसने कहा—

'मेहतारज ! एक-दूसरे को सावधान करने की हमने प्रतिज्ञा ली थी और इसी कारण मैं तुमको सचेत करने आया हूँ कि तुम इन सासारिक सुख-भोगो को त्याग कर सयम-पथ पर आगे बढो, क्योकि मृत्यु कभी भी इस अवसर को समाप्त कर सकती है।

मेहतारज कुमार का मन भी कहाँ माना ? उन्होंने कहा—"हे उपकारी देव, मैं तुम्हारा आभारी हूँ, किन्तु अभी तो मेरा आठ सुकुमारियो से पाणिग्रहण होने वाला है, कुछ ससार के सुख भोग लूँ तो उन्हे त्यागूँ, इसलिए मुझे कुछ समय वाद सचेत करना । देव चला गया और मेहतारज ससार के सुख-भोग मे तल्लीन हो गये । वारह वर्ष वाद देव पुन आया तो मेहतारज की पत्नियो की दयार्द्र विनति सुन कर उसने वारह वर्ष का समय और दे दिया । किन्तु पुष्प-शय्या मे सुन्दर सुकुमार पत्नियो के साथ क्रीडा करते हुए यह दीर्घ-समय भी किंचित् मात्र प्रतीत नही हुआ । फिर जव देव आया और उसने गम्भीर चेतावनी दी तो मेहतारज दीक्षा लेने को तैयार हुए ।

कहने का तात्पर्य यह है कि सासारिक वितृष्णाओ के दल-दल मे फँसकर मनुष्य का मन वहाँ से निकलने को तैयार नही होता । उसे वहा से निकालने के लिए दृढ इच्छा एव कठोर नियन्त्रण की आवश्यकता होती है ।

अमूल्य जीवन का सन्देश : एक पल के लिए भी प्रमाद मत करो !

जीवन का एक-एक पल नपा-तुला होता है, वह घटता-वढता नही है । भगवान् महावीर भी आयुष्य को एक पल के लिए आगे नही वढा पाए । इन्द्र ने उनसे अपना आयुष्य वढ़ाने की प्रार्थना की तो महावीर ने कहा-मृत्यु को मैं तो क्या, अनन्त तीर्थंकर भी टाल नही सकते हैं । जिस पल मृत्यु आयेगी, वह जीवन-लीला को समाप्त कर ही देगी, उसे कोई भी शक्ति रोक नहीं सकती ।' इसी विचार से भगवान् ने इन्द्र से कहा कि—

इन्दा ! न एवं भूय न एव भव्वं, न एव भविस्सई ।

अर्थात्—हे इन्द्र ! ऐसा न हुआ है और न वर्तमान मे होता है, न कभी हो सकेगा । मृत्यु को इस निश्चिन्तता के सन्दर्भ मे ही भगवान् महावीर ने जीवन के एक पल को भी प्रमाद आलस्य मे न खोने का निर्देश दिया । गौतम के पूछने पर उन्होंने कहा—

समय गोयम ! मा पमायए ।

हे गौतम, समय (कालखड का सवसे छोटा अविभाज्य अश) मात्र के लिए भी प्रमाद मत करो । जितने भी पल प्रमाद मे विताये जायेंगे, वे व्यर्थ चले जायेंगे । यदि प्रमाद नही किया जाय तो उन पलो को जीवन-विकास के महत्कार्य मे सुनियोजित करके जीवन को सार्थक किया जा सकेगा ।

जैसे सोना एक कीमती धातु होता है तो उसकी एक-एक रत्ती का हिसाव किया जाता है । इसी प्रकार यह मानवजीवन तो अत्यन्त ही अमूल्य है, इसके एक-एक पल का लेखा-जोखा नही किया तो यह भी वुद्धिहीनता का कार्य होगा । एक कवि ने इसी दृष्टि से कहा है—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल मे प्रलय होइगी, बहुरि करेगो कब ?

जीवन थोडा है और उसके उत्थान का कार्य बहुत अधिक है। अत यह महत्त्वपूर्ण कार्य तभी सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है, जबकि जीवन के एक-एक क्षण का पूर्णतया सदुपयोग किया जाय।

किन्तु मनुष्य का मन जब प्रमाद मे डूब जाता है और वह मृत्यु को भूल जाता है, तब वह समझने लगता है कि ससार के सुख-भोग ही आनन्दकारी है तथा उनका सदा उपभोग करते रहना चाहिये, मानो उसे अखूट जीवन मिला हो, वह बोल उठता है—

आज करे सो काल कर, काल करे सो परसों।
इतनी जल्दी क्या मची, अभी जीयेंगे बरसों॥

हँसी आती है ऐसे बोल सुन कर—जब नादान इन्सान जिन्दगी के बरसो बने रहने की बात करता है, क्योकि वह इस हकीकत को भूल जाता है कि एक पल की भी खबर नही है। इस पल जिन्दगी है तो अगला पल मौत का हो सकता है। एक शायर का शेर है—

आगाह अपनी मौत का, कोई बशर नहीं।
सामान सौ बरस का, पल की खबर नहीं॥

यह नादान इन्सान जब जिन्दगी मे बेखबर हो कर चलता है, यह मानकर कि अभी तक तो बरसो जीना है, भोग-विलास और प्रमाद मे डूब जाता है, तो वे बरस आते नहीं और जब वह यहाँ से कूच करता है तो पापो की गठरी का बोझ ले कर ऐसी दुर्गति मे फस जाता है, जहाँ जीवन-विकास का द्वार अनन्त-अनन्त काल के लिए बन्द हो जाता है। एक पश्चात्ताप रह जाता है कि सर्वोच्च उत्थान के लिए मानव-जीवन के रूप मे जो स्वर्णावसर प्राप्त हुआ था, वह उसने नादानी मे खो दिया। पश्चात्ताप का कुसमय उसी के सामने आता है, जो अवसर रहते हुए अपने विवेक को जागृत नही रख पाता है तथा पुरुषार्थहीन रह कर अमूल्य अवसर को अनजाने मे समाप्त कर देता है।

करना है सो करले अथक गति से, आनन्दों से झोली भर ले स्वस्थ मति से

यह मानव-जीवन नश्वर है, प्राप्त वैभव भी नश्वर है और यह अपनी देह भी नश्वर है। इस सारे नश्वर वातावरण के बीच मे अनश्वर है हमारी आत्मा, अनश्वर रहेगा इस आत्मा का विकास। इसलिए इस दिशा मे जो कुछ करना है, अथक गति से कर लें और अपने मन तथा अपनी बुद्धि को स्वस्थ एव सुस्थिर रखते हुए अनन्त आत्मिक आनन्द से अपनी झोली भर लें। यदि यह अवसर चूक गये तो कौन जाने फिर ऐसा सुअवसर मिलेगा भी या नही। एक भावुक कवि ने कहा है —

क्या विश्वास किया जाए, इन आती-जाती सांसो का ।
कितना मूल्य गिना जाए, नित के रुदन औ परिहासो का ।
जो कुछ करना है जल्दी कर ले, कल की पक्की आस नहीं ।
सांस चल रहा तरल पवन-सा, पलभर का विश्वास नहीं ।

कवि का स्वर अत्यन्त मार्मिक है—मन के अन्तस् को छूने वाला है कि इन सांसो का क्या विश्वास ? गया हुआ समय फिर आता नही और आने वाला समय फिर आयेगा या नही—इनकी कोई गारण्टी नही । इसीलिए कवि ने चेतावनी दी है कि कुछ कर गुजर, वरना यह जिन्दगी तो प्रतिपल गल रही है । कल की आशा रख कर बैठे रहने से कही करने का अवसर ही समाप्त न हो जाय—कल आए ही नही । मृत्यु किस पल मे किस जीवन को दबोच लेगी, इसका कोई ठिकाना नही ।

एक बार एक मित्र अपने बीमार मित्र को देखने के लिए अस्पताल मे गया । बीमार मित्र खाट पर लेटा हुआ था । मित्र को आया देख कर गद्‌गद् हो गया, किन्तु कुछ खिन्न हो कर बोला—"मित्र ! माफ करना, मैं तुम्हारी अगवानी मे खडा होना चाहता था, किन्तु क्या करूँ, मुझसे तो उठा ही नही जाता है ।" किन्तु दूसरे ही दिन जब वह फिर अपने मित्र को देखने अस्पताल पहुँचा तो खाट खाली थी, उसका मित्र परलोकवासी हो चुका था । यह दृश्य देख कर वह बोल उठा—

कल तो कहते थे कि बिस्तर से उठा जाता नहीं ।
और आज दुनिया से ही चले जाने की ताकत आ गई ॥

उस व्यक्ति का मृत्यु का क्षण अत्यन्त ही भयावह होता है, जो जीवनभर भोग और प्रमाद मे पडा रह कर यह सोचता है कि अभी क्या है ? धर्म का आचरण समय आने पर कर ही लेंगे और जब उसकी मृत्यु उसके सामने आ जाती है, तब वह हक्का-बक्का-सा रह जाता है । उस समय सोच ही नही पाता कि अब क्या करूँ ? जीवन के अन्तिम क्षणो मे सारा जीवन चलचित्र की भांति जब स्मृति-पटल पर घूमता है तो उस व्यक्ति के मुंह से सर्द आह निकल जाती है कि वह चाहते हुए भी जीवन मे कोई सत्कार्य नही कर सका तथा उसका सारा जीवन निरर्थक चला गया । अन्तिम क्षणो का वह पश्चात्ताप उसे झकझोर देता है । अत. जीवन को सही तौर पर जीने का दृष्टिकोण हमेशा सामने रखना चाहिए तथा उस दिशा मे क्रियाशीलता भी सजग बनी रहनी चाहिए । विवेक, आस्था और कर्मठता यदि जीवन के साथ जुडे रहें तो उस व्यक्ति को पछताने की जरूरत नही रहती । जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग उसे निष्ठावान बनाये रखेगा ।

जीवन मे भी मौत आती है, और मौत के बाद भी जीवन होता है !

जीवन मे भी मौत आती है और मौत के बाद भी जीवन होता है, इस उक्ति

को सुनकर चौंकिये मत। एक अपेक्षा से यह भी सत्य है। आप जी रहे हैं, आपका जीवन चल रहा है, यानी आपके शरीर की साँसें चल रही है, लेकिन आपकी जिन्दगी मे ऐसी मुर्दानगी छाई हुई हो कि आपका जीवन निस्तेज दिखाई दे, तो भला ऐसा जीवन भी कोई जीवन होता है ? आप लोग ही कहते हैं कि ऐसे जीवन से तो मौत अच्छी। किसी जीवन मे छाई हुई ऐसी हीन निष्क्रियता को ही मैं जिन्दगी रहते ही मौत की उपमा देता हूँ। ऐसे निरर्थक जीवन का ही दूसरा नाम मरण है। शरीर से जीने वाला, किन्तु आत्मा से मरा हुआ व्यक्ति वास्तव मे मरा हुआ ही समझा जाता है।

आपके घरो मे जब कोई नया जीव जन्म लेता है तो आप खुशियाँ क्यो मनाते हैं ? इसीलिए कि एक नये जीवन ने जन्म लिया है—वह बडा होगा और कुछ ऐसा कर गुजरेगा, जिससे आपका, परिवार का, राष्ट्र का और विश्व का नाम रोशन होगा। नये प्राणी के प्रति अनेक आशाएँ बाँधी जाती है और ये आशाएँ उसकी कर्मठता जगाना चाहती हैं। खुशियाँ इसी सन्दर्भ मे मानी जाती हैं कि नई दुनिया मे आया हुआ आदमी कर्मठता के पथ पर चल कर स्व-पर-कल्याण के सत्कार्य मे नियोजित होगा। ऐसे कर्मठ व्यक्ति ही जीवन को प्रकाश की रेखाओ मे सुसज्जित बनाते हैं।

और यह सही है कि प्रकाशमान जीवन जीने वाले अपने यशरूपी शरीर से मृत्यु के बाद भी जन-जन के मन मे जीवित रहते हैं। इसे ही मैं मौत के बाद जीवन की संज्ञा देना चाहता हूँ। वैसे मृत्यु के बाद आत्मा नया जन्म लेती ही है, जब तक कि वह मुक्त न हो जाय। किन्तु यह यशस्वी जीवन तो इसी जीवन का क्रम बन कर सारे ससार की अनुभूति मे आता है। महान् एवं कर्मठ व्यक्तित्व अपनी मृत्यु के बाद भी ससार को जीवन की प्रेरणा देते हैं। उनके क्रियाशील जीवन का स्मरण करके युगो-युगो तक ससारी आत्माएँ अपनी निष्क्रियता को हटाती हैं तथा उनके आदर्श-जीवन की लीक पर चल कर अपने विकास का मार्ग भी प्रशस्त बनाती हैं। मौत के बाद भी जीवन्त जीवनो का ऐसा ही सुप्रभाव होता है।

जीवन-मृत्यु का रहस्य हर पल धर्माचरण की प्रेरणा देता है

विविध दृष्टिकोणो से जीवन एवं मृत्यु के रहस्यों को आप जब गम्भीरतापूर्वक समझने की चेष्टा करेंगे तो यह सत्य आपके मानस-पटल पर स्पष्टतर होता जायगा कि तृष्णा एव प्रमाद की ओर झुके बिना जीवन के प्रत्येक क्षण का सदुपयोग धर्माचरण मे किया जाना चाहिए।

और धर्माचरण क्या होता है ? अपना ही भला हो या अपना ही विकास हो—यह स्वार्थ की भावना धर्माचरण नही है। धर्माचरण स्व-पर-कल्याण का ही दूसरा नाम है। धर्म शब्द से उन कर्त्तव्यो का बोध होता है, जो दूसरो के प्रति होते हैं

और दूसरो के कल्याण के अपने कर्त्तव्यो की सफल पूर्ति तभी सम्भव होती है, जब अपनी आत्मा का घरातल इतना विशुद्ध एव त्यागमय बन जाय कि दूसरो के लिए हमे कैसा भी त्याग बडा न दिखाई दे। इसका तात्पर्य यह है कि पहले स्वय का जीवन ऊँचा उठे और यह जीवन भी तभी ऊँचा उठ सकेगा, जब इस जीवन को दूसरो की सेवा मे समर्पित कर दिया जायगा। ऐसा समर्पित जीवन स्वय भी निखरेगा तथा दूसरो को भी प्रकाशमय बना सकेगा।

अत धर्माचरण का पथ होता है—साधना का पथ। जीवन का प्रत्येक क्षण साधनामय होना चाहिये। साधना ही जीवन एव मृत्यु के रहस्यो को सुलझाने वाली होती है। जिस जीवन मे साधना समा जाती है, वह जीवन अपने जीवन-काल मे भी जीवन्त होता है तो अपनी मृत्यु के बाद भी ससार के लिए जीवन्त बना रहता है। महापुरुष एव महात्मा अपने साधनामय जीवन से अपनी आत्मा का कल्याण भी करते हैं तो सारे लोक के कल्याण का मार्ग भी दिखाते है।

जीवन के दो पहलू होते हैं—व्यक्तिगत एव सामाजिक। किन्तु इन दोनो पहलुओ को सर्वथा पृथक् करके नही देखा जा सकता। व्यक्तिगत जीवन सामाजिक संसर्ग से अछूता नही रह सकता, इसी प्रकार सारा समाज भी व्यक्तिगत जीवन के क्रिया-कलापो से निश्चित तौर पर प्रभावित होता है। जीवन के ये दोनो पहलू निरन्तर परस्पर सम्पर्कगत बने रहते हैं, बल्कि सत्कार्यों का हमारा जो निरूपण है, वह इन दोनो पहलुओ के सन्दर्भ मे ही निर्धारित किया हुआ है। दूसरो को हम सुख पहुँचाते हैं तो हमारे भीतर भी आनन्द जागता है। यह क्या है ? दूसरे के हित मे होने वाला हमारा कार्य वस्तुत उसको भी सुख पहुँचाता है और स्वय को भी सुख पहुँचाता है, यही व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन का सामजस्य है। इस दृष्टि से धर्माचरण जीवन के इन दोनो पहलुओ को विशुद्ध बनाता है— ऊपर उठाता है। व्यक्ति समाज को ऊपर उठाता है तो समाज के स्वस्थ घरातल पर व्यक्ति का विकास भी सहज बन जाता है। प्रतिपल धर्माचरण की लगन को क्रियाशील बनाये रखने का यही मर्म है।

शानदार जीवन जीएँ, शानदार मौत से ही मरें !!

जीवन उसी का सार्थक है, जो शानदार जीवन जीता है और शानदार मौत से मरता है। जब तक जीएँ, बहादुरी से जीएँ और मौत जब आए तो बहादुरी से ही उसका सामना करें। बहादुरी को हर समय बनाये रखें यही शानदार जीवन होता है। बहादुर आदमी जिन्दगी भी जीता है और मौत मे भी जिन्दा रहता है। वह जीवन और मृत्यु के भेद को तोड डालता है एव मृत्यु का सहर्ष वरण करता है।

प्रश्न होता है—शानदार जीवन कैसे जीएँ और शानदार मौत से भी कैसे

□ □

वर्तमान विश्व राजनैतिक वादो और गुटो मे वँटा हुआ है, जिसके कारण आये दिन युद्ध के नगाड़े वजते रहते हैं। कभी मिस्र और इजराइल का संघर्ष संहार की पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है, कभी शक्ति-सम्पन्न राष्ट्रो द्वारा ध्रुवीकरण की प्रक्रिया के सन्दर्भ मे अविकसित राष्ट्रो का आर्थिक शोपण, प्रभुत्व, शस्त्रास्त्रवृद्धि द्वारा शक्ति-सन्तुलन आदि हिंसा के नित नये पैंतरे रचे जाते हैं। इस कारण सभी राष्ट्रो मे तनाव, घुटन, आशका, भय और परस्पर अविश्वास की स्थिति पैदा हो गयी है। इन सवका अन्त लाने तथा विश्व मे शान्ति लाने के लिये वैचारिक (अनेकात) और आचारिक अहिंसा ही कारगर सिद्ध हो सकती है। उसी को अपनाने पर विश्व मे उच्च-नीच-भेद, रगभेद, जातिभेद, सवल-निर्वल-भेद आदि समस्त भेदभाव समाप्त हो कर मानव आध्यात्मिक ममता प्राप्त करके सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र आत्मिक राज्य प्राप्त कर सकता है। इसलिये वर्तमान युग मे अहिंसा की सवसे अधिक आवश्यकता क्यो है? इससे सारी समस्याएँ कैसे हल हो सकती हैं और मानव की व्यक्तिगत शान्ति भी विश्वशान्ति से कैसे जुडी हुई है? वह सार्वजनिक शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? इन सव तथ्यों पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन करने के लिए प्रस्तुत प्रवचन पढिए·······

२०

विश्व-समस्याओं के सन्दर्भ में अहिंसा

□ □

इस सत्रास, सपीड़न, सकुल एवं आत्मवेदना से व्यथित युग के लिये मानवता की तलाश जारी है। मानव की सतत प्रवाहशील परम्परा मे जिन नैतिक मूल्यो का अवमूल्यन हो गया है और जिसके कारण मानवीय आचार अत्याचार बन कर आज उग्ररूप धारण कर रहा है, उसकी ओर विश्व का ध्यान आकर्पित करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य हो गया है। क्योंकि चारो ओर समाज पूरी तरह से विघटित हो रहा है, सृजन के मूल्यों मे आस्था नहीं रही है, आपात, विशीर्णन एवं बिखराव लक्षित होने लगा है। परिणामस्वरूप बाहर का विस्तार बहुत हुआ है, मनुष्य की दुनिया छोटी हो गई है, एक-दूसरे के निकट आ गये हैं, किन्तु भीतर ही भीतर से मनुष्य कटता जा रहा है, निरन्तर दूरी बढती जा रही है। मनुष्य-मनुष्य के बीच एक गहरी खाई उत्पन्न हो गई है। अत. परस्पर प्रेम, विश्वास और आस्था उपलब्ध करने के लिये अहिंसा जैसी महाशक्ति की आवश्यकता है। अभी तक का राजनैतिक इतिहास यह बताता है कि मनुष्य सत्य की खोज मे बहुत भटक चुका है। दुनिया मे सुख-शान्ति स्थापित करने के सभी भौतिक प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हो चुके हैं। शक्ति-सतुलन का ही यह बढता हुआ प्रभाव था कि विश्व-युद्ध ने जन्म लिया। विश्वयुद्ध की सम्भावनाओ ने निरन्तर मनुष्य के भीतर भय, आशका और अविश्वास को जन्म दिया, भीतर ही भीतर असन्तोष, द्वेष आतक, शोषण और घुटन को उत्पन्न कर दिया।

सत्रास की स्थिति

वर्तमान युग मे विश्व की प्रमुख समस्या है—असन्तोष व घुटन। विश्व के अधिकतर मनुष्य आज अपनी स्थिति मे असन्तुष्ट है और सतत आत्मपीडन व घुटन से त्रस्त है। जातिया व समाज ही नही, वडे-से-वडे देश भी अपनी सुरक्षा के भय से आतकित हैं। असुरक्षा के भय के कारण वडे-वडे देश सदा अस्त्र-शस्त्रो की प्रतिस्पर्धा मे लगे हुए है। अस्त्र-शस्त्रो की विभीषणता यहाँ तक वढ गई है कि लगता है कि अव विश्व को वहुत वडा परमाणु-युद्ध का खतरा उत्पन्न हो गया है। कुछ समय पूर्व अमेरिका के प्रसिद्ध समाचार-पत्र 'वाशिंगटन पोस्ट' के सम्पादकीय लेख मे यह चेतावनी दी गई थी कि पश्चिम एशिया मे परमाणु-युद्ध के खतरे की आशंका को ध्यान मे रख कर परमाणु-अस्त्रो के उपयोग के विरुद्ध तुरन्त कोई प्रभावकारी कदम उठाया जाना चाहिये। किन्तु वडे-वडे देश सतत शक्तिसम्पन्न वनने के लिये शान्ति के गीत गाते रहे हैं और परमाणु-विस्फोट कर दुनिया को आतकित करते रहे हैं। मिस्र और इजराइल की परमाणु भट्टिया प्राप्त करने तक अमेरिका परमाणु-अस्त्रो के प्रसार के सम्वन्ध मे तथा नियन्त्रण के विषय मे उदासीन रहा। यह एक वहुत वडा खतरा है। जिसका परिणाम यह हुआ कि परमाणु-शक्ति-विहीन राष्ट्र परमाणु-शक्ति-सम्पन्न वनने के लिये निरन्तर प्रयत्नशील हैं। इसके पूर्व कि परमाणु-अस्त्र-प्रसार की रोकथाम के लिये कोई विश्व-व्यापी व्यवस्था लागू हो, सभी देश परमाणु-शक्ति से सम्पन्न हो जाना चाहते हैं, इसका परिणाम क्या होगा ? यह तो भविष्य के गर्भ है, किन्तु इन प्रयत्नो से ससार मे शान्ति स्थापित नही रह सकती। क्योकि मूल प्रश्न यह है कि यदि ससार के सभी देश विश्वयुद्ध नही चाहते तो भीषण मारक परमाणु-अस्त्रो का निर्माण क्यो करते हैं ? आये दिन नई-नई पद्धतियो का विकास और परमाणु-अस्त्रो का विस्तार यह खुली चेतावनी दे रहा है कि पनपने वाली मानवीय सभ्यता का विनाश निकट आ रहा है। क्या आज के मानव को यही इष्ट है ?

अहिंसा क्यो और कैसे ?

प्रसिद्ध समाजशास्त्री तायन्वी ने विश्व की उलझी हुई समस्याओ को लक्षित कर ठीक ही कहा था—"इन परिस्थितियो मे अपने आप को विनाश से वचाने के लिये और ससार की सुरक्षा करने के लिये अहिंसा का प्रयोग आवश्यक है।" "मार्क्स के वर्ग-सघर्ष-सिद्धान्त ने अपने अधिकारो के प्रति जाग्रत कर मनुष्य और समाज के मध्य एक क्रान्तिकारी तथा तनाव की स्थिति उत्पन्न कर दी है, जिससे शोषित व दलित मानवता उभर कर सामने आई है, किन्तु घृणा, नफरत और असहयोग के कारण टूटे हुए मनुष्य के दिलो को जोडने वाला सूत्र खो गया है। विश्व मे राज्यविहीन समाज की कल्पना मे खोये हुए मार्क्स ने जहाँ दिलो के वीच दूरी उत्पन्न कर समाज की इकाई व्यक्ति को कुचल दिया, वही प्रजातन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था ने

समाज को केवल व्यक्तियो का समूह बनाकर अपने-अपने अधिकारो की माग हेतु सतत सघर्ष कर दलित व साधन-विहीन बना दिया है। प्रजातन्त्र मे जहाँ व्यक्ति की स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता बन कर तरह-तरह के चमत्कार उत्पन्न करने लगती है, वही साम्यवाद के आश्रित हो कर अपनी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता को शासन के यहाँ गिरवी रख दिया जाता है। ऐसी विषम स्थितियो मे जैनधर्म की अहिंसा कैसे कारगर हो सकती है? यही मुख्यरूप से विचारणीय है।

अहिंसा निरपेक्ष नहीं

विश्व के सुप्रसिद्ध नाटककार जार्ज बर्नार्ड शॉ का यह कथन अत्यन्त उचित है कि अन्य धर्मों की अहिंसा जहाँ पर समाप्त होती है, वहाँ पर जैनधर्म की अहिंसा प्रारम्भ होती है। क्योकि जैनधर्म की अहिंसा निरपेक्ष नही है। अहिंसा का सूत्र एक ओर अनेकान्त से सयुक्त है, तो दूसरी ओर अपरिग्रह से। अहिंसा कोई नियम या आचार-विधि मात्र नही है। अहिंसा एक सिद्धान्त है, जिसका दार्शनिक और व्यावहारिक पक्ष भी है। अहिंसा का सिद्धान्त अनेकान्त-दर्शन के प्रतिफलित होता है। अनेकान्त न तो कोई सशयवाद है और न समझौता। वस्तु के सत्यांशो को अलग-अलग अशो (डिग्रियो) मे सम्बन्वित कर मापन-क्रिया की पद्धति का नाम अनेकान्त है। अनेकान्त अहिंसा का वैचारिक पक्ष है। बिना चिन्तन के कोई आचरण प्रारम्भ नहीं होता। जैनधर्म का चिन्तन व्यक्तिवादी नही है। व्यक्ति और समाज दोनो को ध्यान मे रख कर दोनो प्रकार की व्याख्याएँ की गई है। व्यक्तिवादी धर्म साधु-सन्तो का है, जो सामाजिक दायित्वो मे ऊपर उठ कर एकान्तिक आत्म-साधना मे निरत रहते हैं। किन्तु उनके अतिरिक्त सभी गृहस्थो के लिये लोक-धर्म या समाजधर्म की व्यवस्था है। जैनधर्म ने शारीरिक हिंसा की अपेक्षा मानसिक हिंसा न करने पर विशेष बल दिया है। ससार मे जहाँ भी शोषण, अत्याचार, शीतयुद्ध और भीतर ही भीतर एक-दूसरे को कैद करने की वृत्ति लक्षित होती है, वहाँ वह सब मानसिक हिंसा का परिणाम है। जब तक मानसिक हिंसा की उग्रता बनी रहेगी, तब तक विश्व मे शान्ति-स्थापना की बात नहीं सोची जा सकती। आपस मे बैठ कर शान्ति-स्थापना के प्रयत्नो की चर्चा भी तभी सफल हो सकती है, जबकि हमारे मन तनावरहित हो। अहिंसा की स्थिति मे किसी प्रकार का तनाव नही होता। इसलिए जनधर्म कहता है कि मानसिक क्षोभ से रहित आत्मा की समता-परिणति का नाम अहिंसा है। यह कोई वाद नही है। फिर भी आप चाहे तो ससार के वादो मे जहाँ समाजवाद एव साम्यवाद वस्तु के विकेन्द्रीकरण, सामाजिक सम्पत्ति के नियन्त्रण एव राष्ट्रीयकरण की पैरवी करते है और समान वितरण मे समाज की भलाई की बात कह कर विराम ले लेते हैं, वही आप कह सकते है कि जैनधर्म उससे आगे आध्यात्मिक साम्यवाद तक ले जाता है। इस आध्यात्मिक साम्यवाद से सर्वतन्त्र सच्ची स्वाधीनता हमे परमात्मा बनने पर उपलब्ध

हो सकती है । विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का कथन स्पष्ट है—"भगवान् महावीर ने भारतवर्ष को उस मुक्ति का सदेश दिया है, जो धर्म की वास्तविकता है, केवल सामाजिक रूढि नही है । मुक्ति धर्म की उस वास्तविकता के आश्रय से उपलब्ध होती है, जो निवृत्तिपरक है तथा सामाजिक पक्ष व रूढियो से परे है एव मनुष्य-मनुष्य के बीच मे कोई दीवार नही मानती है, क्योकि एक तो ससार के सब देश समाजीकरण नही चाहते हैं और यदि किसी प्रकार से समाजीकरण हो भी जाता है, तो केवल इससे ससार मे सुख व शान्ति स्थापित नही हो सकती । काका कालेलकर का कथन उचित है—"यूरोप मे भी जब लोग व्यक्तिवाद और समष्टिवाद, समाजवाद और साम्यवाद की चर्चा करते हैं, तब मन मे विचार आता है कि इन अनेक "वादो" से क्या लाभ होने वाला है ? मनुष्य जब तक अपने स्वभाव और जीवन मे परिवर्तन न करे, तब तक हम कोई भी 'वाद' क्यो न चलायें, अन्त मे वही आ पहुँचेंगे, जहाँ पहले थे । इन सब परिस्थितियो मे अहिंसा की अपनी भूमिका एक अमोघ अस्त्र की भाँति सिद्ध हो सकती है । और इनको देख कर यह लगता है कि हजारो, लाखो वर्षो के इतिहास मे जितनी पहले कभी आवश्यकता नही थी, उससे कही अधिक आवश्यकता आज अहिंसा की है । यदि अहिंसा का प्रयोग नही किया गया तो तृतीय युद्ध की ज्वाला मे विनाशशील होते विश्व को बचाने मे कोई समर्थ नही हो सकेगा । जाने-अनजाने आज सारा ससार विश्वयुद्ध के कगार पर ज्वलनशील ज्वालाओ की ओर उन्मुख होता जा रहा है ।

विश्व की प्रमुख समस्याएँ

यो तो प्रत्येक युग मे विश्व की मानवतावादी शक्तियो के समक्ष अनेक प्रमुख समस्याएँ रही हैं, किन्तु हम उनका सामान्यत वर्गीकरण करे तो तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है । ये तीन वर्ग हैं · (१) स्वाधिकार-प्राप्ति के लिये सघर्ष की समस्या, (२) प्रभुत्व-सम्पन्नता या शक्ति-सन्तुलन तथा विस्तारवादी नीति की समस्या, (३) प्रजातान्त्रिक समानता एव मानवीय असमानता की समस्या । शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र सदा से निर्बल राष्ट्र का शोषण करते आए हैं । किन्तु ये कब तक शोषण करते रहेगे ? यही विश्व की प्रमुख समस्या है । कोई भी अधिक समय तक अपना शोषण होते देख सहिष्णु बन कर नही रह सकता ।-वह उसका प्रतिरोध अवश्य करता है । प्रतिरोध के परिणामस्वरूप कभी-न-कभी सामने वाले का पतन अवश्य होता है । किन्तु अधिकारवादी भावना मे उन्मत्त बडे-से-बडे देश भी अपने अधिकारो को बढाने मे सलग्न देखे जाते हैं और सब ओर अपना नियन्त्रण बनाये रखना चाहते हैं ।

स्पष्टरूप से आज ससार दो खेमो मे बँट गया है । दो बडी शक्तियो के प्रभाव मे सारा विश्व आन्दोलित हो रहा है । इसलिये आज मुख्य प्रश्न अधिकार का न हो कर आत्मरक्षा का है । आत्मरक्षा-हेतु उग्रपथी हिंसक तत्त्वो को समाप्त करने के कानूनी अधिकार का है । विश्व का राजनैतिक इतिहास हमे यह बताता है कि हिंसा

के आधार पर किये गये युद्ध स्थायी शान्ति के जनक नही होते। हिंसा से होने वाले युद्ध का कभी पूर्ण विराम नही आता। युद्ध प्रतियुद्ध को जन्म देता है। युद्ध से दोनो ओर शत्रुता बढती जाती है। हिंसा से कभी हिंसा समाप्त नहीं हो सकती। युद्ध कभी युद्ध को मिटा नहीं सकता। जैसे अग्नि की ज्वाला अग्नि को जन्म देती है, वैसे ही एक युद्ध दूसरे युद्ध को जन्म देता है। यह हिंसा-परम्परा बढती ही जाती है। अतएव रक्तरंजित क्रान्ति कभी शासन को स्थायित्व एव सुदृढता प्रदान नहीं कर सकती। अतएव विकासशील देशो के लिए हिंसा का मार्ग इष्ट नही होता। शान्ति-समर्थक देशो मे पूंजीवाद का चरित्र भी खोखला सिद्ध हो चुका है। अभाव की अर्थव्यवस्था हमें यह बताती है कि पूंजीवाद अब पतनोन्मुखी है। अधिक समय तक एकाधिकार रहने वाला नही है। शोषण करने वाले राष्ट्र अपने चरित्र को कब तक दूषित बनाये रख सकते हैं? उनका पतन निश्चित है। इसलिए जनतन्त्र ही एक ऐसा मार्ग है, जो ससार मे खुशहाली और शान्ति स्थापित कराने मे सहायक हो सकता है, बशर्ते कि उसकी बुनियाद अहिंसा पर आधारित हो। तोड-फोड और विद्रोह से कभी सच्ची क्रान्ति जन्म नहीं लेती। क्रान्ति शासन-शक्ति से भी नही आती। भगवान् महावीर ने अपने जीवन से यही प्रमाणित किया था कि राज्यसिंहासन पर बैठ कर कोई राजा अपने देश मे क्रान्ति नही कर सकता। क्रान्ति के लिये त्याग और तपस्या करनी पडती है। सच्ची क्रान्ति लोकशक्ति से ही उत्पन्न होती है। लोकशक्ति की बुनियादी भूमि-चरित्र पर अवलम्बित होती है। चरित्र का मूल उपादान तत्त्व अहिंसा-वृत्ति है। अहिंसावृत्ति को अपने जीवन मे उतार कर स्व० राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस विशाल देश को स्वतन्त्र कराया। इसमे कोई सन्देह नही है कि सच्ची अहिंसा का पालन शूर-वीर ही कर सकते हैं। बुजदिल और कायर तो अहिंसक बनने का ढोंग रचते हैं। जहाँ अहिंसा है, वहाँ निर्भयता है।

ध्रुवीकरण की प्रक्रिया

इधर गत दशक मे राजनीतिक धुरी मे परिवर्तन आ गया है। अब सभी देश यह भलीभाँति समझ चुके हैं कि परमाणु-अस्त्रो का निर्माण मानवता के विनाश के लिये कदापि उचित नही हो सकता। फिर भी जो देश शक्ति-वृद्धि मे लगे हुए हैं और दूसरे देशो को अस्त्र-शस्त्रो की बिक्री कर रहे हैं, वे महज इसलिये कि उनकी प्रतिष्ठा बनी रहे, किसी प्रकार व्यापार के द्वारा आर्थिक शोषण व प्रभुत्व बना रहे। उधर जब तक शक्ति-सन्तुलन के आधार पर विभिन्न देशो का झुकाव सोवियत सघ या अमेरिका की ओर था, तब तक केवल गुटसापेक्ष हो कर किसी एक खेमे मे सम्मिलित होने और उसकी नीतियो के समर्थन तक की कठिनाई थी। किन्तु जबसे शक्तियो मे बिखराव आ गया है, चीन जैसे राष्ट्र शक्तिसम्पन्न हो उठ खडे हुए है, तब से ध्रुवी-करण की प्रक्रिया मे समूल परिवर्तन आ गया है और अब कई दिशाओ मे शक्तियो

का प्रसार तथा तनाव लक्षित होने लगा है। ये समस्याएँ पहले से और भी जटिल गई हैं। सभी विकसित देश अब यह मानने लगे हैं कि हिंसा उनके लिये नेगेटिव है, वे हिंसा के द्वारा अपना प्रभुत्व स्थायी रूप से स्थापित नहीं कर सकते। अत. दो गुटो का आन्तरिक सघर्ष अब छुटपुट युद्ध की चिनगारियाँ बनकर कई रूपो मे भीतर ही भीतर सुलगता रहता है। इससे भीषणता की स्थिति और भी अधिक बढ गई है। शक्ति के ध्रुवीकरण के अब अनेक केन्द्र हो गये हैं। ससार के किसी भी कोने से किसी भी समय युद्ध की चिनगारी सुलग सकती है। किसी भी देश का युद्ध का माध्यम बनाया जा सकता है। वास्तव मे मूल समस्या ज्यो की त्यों बनी हुई है। केवल साधन व पद्धति-परिवर्तन से कोई अधिक अन्तर नही आया है। यह बात अवश्य है कि बैठकर शान्ति-समझौते की वार्ताएँ होने लगी हैं। भौगोलिक दृष्टि से अब बडे देश क्षेत्र-विस्तार के पक्ष मे नही हैं, किन्तु सामरिक दृष्टि से जो भी महत्त्वपूर्ण स्थान हैं, उन पर अपना बराबर अधिकार बनाये रखने के लिये अथवा कायम करने के लिये प्रयत्नशील हैं। इससे स्पष्ट है कि विस्तारवादी नीति का रूप बदल गया है। सभी ओर से जो हमे परिवर्तन दिखलाई पडता है, वह सब बाहरी है। भीतर मे मूल-परिवर्तन नही हो रहा है। इसलिये युद्ध की सम्भावनाएँ किसी-न-किसी रूप मे कभी भी बलवती हो उठती हैं।

अधिकार के लिये युद्ध

आज अनेक छोटे-छोटे राष्ट्रो के समक्ष अधिकार का प्रश्न भयावह बना हुआ है। कई छोटे राष्ट्र बडे देशो से प्रभावित व उनके अधिकार-क्षेत्र मे हैं और कई साधन-विहीन होने से असहाय हैं, किन्तु मन ही मन उनके भीतर असन्तोष व विद्वेष की आग प्रज्वलित होती रहती है। वास्तव मे यूरोप का मानव इसलिए शक्ति व भयभीत है कि कही विश्वयुद्ध छिड गया तो भोग-विलास के सभी साधन समाप्त हो जायेंगे। मानवता की चिन्ता किसी को नहीं है। यदि सच्चे अर्थों मे मानवता की चिन्ता हो तो फिर अधिकार के लिये जगह-जगह युद्ध न हो। परन्तु इजराइल मिस्र का युद्ध, वियतनाम का लगभग उन्तीस वर्षो तक चलने वाला लम्बा सघर्ष और बड़ी ताकतो का हस्तक्षेप, दियागोगार्शिया मे नौ-सैनिक-अड्डे की स्थापना आदि अधिकारो को ले कर किये गये सघर्ष हैं, जिनमे मानवता को बुरी तरह से तिरस्कृत किया गया है।

आर्थिक शोषण के शिकजे मे

आज भी विश्व आर्थिक विषमता, स्वच्छन्द एव निर्बाध भोगवाद तथा उपनिवेशवादी धरातल पर आधारित पश्चिमीय अर्थव्यवस्थाओ से त्रस्त है। अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र को बढाने मे प्रयत्नशील बडे राष्ट्र भी अर्थव्यवस्था से कम्पित होने लगे है। पश्चिमी देशो को अब यह वास्तविकता मान लेनी चाहिए कि संसार के

सीमित साधनो पर एकाधिकार कर उनका मनचाहा उपयोग करना सदा सम्भव नही है। ससार का भला इसी मे है कि आर्थिक दृष्टि से सभी राष्ट्र सगठित हो तथा ऊँच-नीच की भावना के बिना सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था कायम करें। विकासशील देशो को आगे बढने मे हाथ मिला कर अधिक से अधिक सुविधाएँ और अवसर प्रदान करें। पश्चिमी यूरोप, जिनमे सोवियत सघ, उत्तरी अमेरिका, जापान, कनाडा, आदि भी सम्मिलित हैं, औद्योगिक दृष्टि से सम्पन्न हैं और आर्थिक सगठन की दृष्टि से भी सुदृढ हैं, ये सदा अधिकारपूर्ण सहायता देने के पक्ष मे रहे हैं। यह मानवीय आधार नही है। छोटे राष्ट्रो एव अविकसित राज्यो (रूस, अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका आदि जो आर्थिक दृष्टि से अविकसित है) को सहायता दे कर अपने प्रभाव-क्षेत्र मे रखना चाहते हैं। यही सघर्ष का मूल कारण है। जैन आचार्य इसे हिंसा-वृत्ति कहते है। यदि आर्थिक सहायता मानवीय धरातल पर दी जाये, तो यही अहिंसा बन सकती है।

अहिंसा की प्रकृति

अहिंसा की प्रकृति सर्वोदय व समन्वय की है। पिता अपने बेटे को मारने एव धमकाने पर भी अहिंसक कहा जाता है, क्योकि वह बेटे का विनाश नही चाहता है। बेटे की भलाई के लिए, उसके विकास के लिए पिता सभी प्रकार के प्रयत्न करता है। उसी प्रकार बड़े से बड़े राष्ट्र छोटे देशो की उन्नति के लिए सहयोग दें, उन पर कोई एकाधिकार का नियन्त्रण न रखें, तो ससार की बडी से बडी समस्याएँ हल हो सकती हैं और सद्भावना के वातावरण मे दुनिया खुशहाल हो सकती है। केवल मौखिक या औपचारिक सहानुभूति से काम नहीं चलता। हिंसात्मक प्रतिक्रिया सदा बुरी होती है। छोटे देश भी अपना सिर उठा सकते हैं। वर्षो तक फारस देश की खाडियो में स्थित तेल-भण्डारो पर पश्चिमी यूरोप तथा अमेरिकी कम्पनियो का नियन्त्रण रहा और वे आर्थिक शोषण करती रही। इस बुरी तरह से शोषण किया कि कम से कम मूल्य पर तेल बाहर भेजती रही और कम से कम आय देश को देती रही। परिणाम यह हुआ कि एक दिन वहाँ भी राजनैतिक जागरण हुआ और तेल-भण्डारो का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया। तेल का मूल्य निर्धारण कर कीमतें बढा दी गईं। बडे राष्ट्रों ने धमकियाँ दी। अन्त मे "ओपेक" (आर्गनाइजेशन ऑफ पेट्रोलियम एक्सपोर्ट कम्पनीज) को यह दायित्व सौंप दिया गया। हाल मे ही दस प्रतिशत वृद्धि की घोषणा की गई है।

रगभेद-नीति

विश्व की जहाँ कुछ वैदेशिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धो के कारण उत्पन्न होने वाली प्रमुख समस्याएँ है, वही कुछ पारिवारिक तथा घरेलू समस्याएँ भी हैं। इन समस्याओ से भी विश्व पीडित है। इनमे से एक बहुत बडी अछूतो की समस्या

है। ससार के कई देशो मे यह समस्या है। अफ्रीका में तो नब्बे प्रतिशत यही समस्या है। वहाँ पर श्यामवर्ण वालो की जनसख्या अधिक है। इसलिए इनकी सदा मांग रहती है कि सरकार हमारी होनी चाहिए। श्वेतसरकार रंगभेद की नीति से हटना नही चाहती। जापान की तीस लाख सख्या 'बुराकुमिन' जाति के सम्बन्ध मे तो यहाँ तक कहा जाता है कि इस जाति के सम्बन्ध मे जापान-देश मे बातचीत तक करना वर्जित है। इसे जापान की अस्पृश्यजाति की सज्ञा दी गई है। भारत में उस समस्या के उन्मूलन के लिए सविधान की धारा १७ के अनुसार यह कानून बना हुआ है कि 'छुआछूत अपराध है, इस आधार पर किसी भी मनुष्य को अयोग्य मानना कानूनन अपराध है।'

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले भगवान् महावीर ने संसार को यह आर्ष-मन्त्र तथा सन्देश दिया था कि "न देह की वन्दना होती है और कुल तथा जाति की। पूजा सदा गुणो की होती है। मनुष्य अपने कर्मो से महान् होता है। किसी बडे कुल मे पैदा हो जाने मात्र से कोई बडा नही हो जाता है। बडे घर का बेटा यदि बुरे मार्ग पर चलता है, बुरा आचरण करता है, तो वह नीच ही कहा जाएगा, ऊँच नही कहा जा सकता है।" इसीलिए जैनधर्म ने मनुष्य के ऊपर किसी अलौकिक शक्ति को नही माना। उसने कहा कि मनुष्य स्वयं अपना स्रष्टा और विधाता है। यदि ईश्वर मनुष्य का सर्जक और विधाता हो तो प्राणी का कर्म और पुरुषार्थ क्या रह जाएगा ? भगवान् महावीर ने इस पराधीनता की भावना से दुनिया को उबारा और सच्ची स्वतन्त्रता का सन्देश दिया था। जहाँ मनुष्य के लिए कोई आलम्बन नही रह जाता, यहाँ तक कि इन्द्रियो से अनुभव मे आने वाला सुख भी जहाँ नही होता, ऐसे पूर्ण ज्ञानानन्द निर्विकल्प दशा मे जो अतीन्द्रिय सुख की उपलब्धि होती है, वही सच्चा आनन्द है और वह अहिंसा की पूर्णता मे राग-द्वेष से रहित समता-भाव की स्थिति मे प्राप्त होता है।

अहिंसा : आध्यात्मिक ऊर्जा

दीन-हीन, सस्त-त्रस्त एव म्रियमाण मानवता के लिए अहिंसा आध्यात्मिक ऊर्जा है, ऑक्सिजन प्राप्त कराती है। अहिंसा से ही सहअस्तित्व और अपरिग्रह का जन्म हुआ है। यह कहना पुनरुक्तिमात्र होगा कि आज की परिस्थितियो मे आत्म-पीडन, घुटन और विनाश से मानवता को बचाने के लिए अहिंसा एक अमोघ अस्त्र है। आज के युगधर्मी अहिंसा के व्यापक क्षेत्र तथा महत्त्व को नकार नही सकते हैं, जिसके द्वारा वर्गहीन-समाज की स्थापना की जा सकती है और जो संसार को विश्व-कुटुम्ब के रूप मे देखती है। यह अहिंसा का ही प्रभाव है कि किसीजर की यात्राएँ और मिस्र-इजराइल की समझौता-वार्ताएँ होने लगी हैं, किन्तु अभी अहिंसा की तेजस्विता को उजागर होना है और अखण्ड मानव-जाति मे सही आस्था

और निष्ठा उत्पन्न करनी है कि अहिंसा कायरो का नही, वीरो का धर्म है। अहिंसा के आधार पर जो भी कार्य किये जायेंगे उनमे शोषण और सघर्ष का प्रवेश नही हो सकता। अहिंसा का लक्ष्य है—वर्ग-भेद और जाति-भेद से ऊपर उठ कर वर्गहीन मानव को ही नही, प्राणी-मात्र को सुखी बनाना। यह निश्चित है कि कोई भी बल-प्रयोग या अधिकारो के द्वारा अधिक समय तक मानवीय सम्बन्धो का अभेद्य-दुर्ग स्थापित कर उसमे सुखी नही रह सकता। मनुष्य पर अनुशासन करने के लिए जातीय गुणो तथा अहिंसा, करुणा, परोपकार आदि की आवश्यकता होती है। आज तक केवल कानूनो से शासन नही चले। शासन चलाने के लिए उन असख्य लोगो का दिल जीतना पड़ता है, जो उन कानूनो का पालन करने वाले होते है। अतएव अहिंसा मे वह अदभुत ऊर्जा है, जो आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी प्रकार की समस्याओ को सरलता से सुलझा सकती है और जिससे ससार मे मानवता का सच्चा साम्राज्य स्थापित हो सकता है। ☆

21

समता के विभिन्न रूप

□ □

मसार के समस्त प्राणी सुख-शान्ति चाहते है, किन्तु जव तक वे सुख-शान्ति को भग करने के कारणो को दूर नही कर देते, और ममत्व की पगडडी पर चलने का उपक्रम नहीं करते, तव तक उन्हे स्थायी सुख-शान्ति मिलना असम्भव है। अज्ञान, मोह, आर्तरौद्रध्यान एव सावद्य कार्य, ये सव समता को भग करने के कारण है। द्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव—इन चारो दृष्टियो से समता को भली-भाँति समझ कर समस्त प्राणियो के प्रति सभी अवस्थाओ मे सदा समत्व का आचरण करना ही सुख-शान्ति का वास्तविक राजमार्ग है। इस राजमार्ग पर चलते-चलते व्यक्ति जव परभावों एव काषायिक विकारो से हट कर अपने आत्मस्वरूप मे स्थिर हो जाता है, तव उसकी ममत्व-साधना परिपक्व हो जाती है। समता के इन विभिन्न रूपो को भलीभाँति समझने और समत्व की साधना परिपक्व करने के लिए मुनिश्री का प्रवचन मनोयोगपूर्वक पढिए·······

२१

समता के विभिन्न रूप

□ □

धर्मप्रेमी बन्धुओ, माताओ, बहनो !

आज आपके सामने मैं सुख-शान्ति के मूलमन्त्र के विषय मे कुछ बातें कहूँगा।

आप ही नही, संसार के जितने भी प्राणी है, वे एक या दूसरी तरह से सुख-शान्ति चाहते हैं। परन्तु अज्ञान, ममता, मोह या कषाय के कारण वे सुखशान्ति के लिये प्रयत्न करते हुए भी दुःख, अशान्ति और कष्ट पाते हैं। जिस किसी मनुष्य से पूछ कर देख लो, वह प्रायः यही कहता हुआ मिलेगा कि आज मुझे अमुक दुःख है, आज अमुक चिन्ता है, आज मुझे फला व्यक्ति ने नमस्कार नही किया, आज अमुक ने मेरा तिरस्कार कर दिया, अमुक व्यक्ति ने आज मेरी बात नही मानी, अमुक ने मुझे घाटे मे डाल दिया, अमुक ने धोखेबाजी की। अगर इन सब बातो के कारण मनुष्य के मन मे आर्तध्यान—रौद्रध्यान चलते रहते हैं। और आर्त-रौद्रध्यान का मन मे चलते रहना ही अशान्ति है। कई बार बाहर मे कष्ट कम होता है, परन्तु मन का माना हुआ कष्ट—अपमान, ममत्व आदि से जनित दुःख अधिक होता है।

प्रश्न होता है, किस कारण ये सब कष्ट या दुःख होते हैं? मूल कारण अज्ञान और मोह है। इसीलिये उत्तराध्ययन सूत्र मे भगवान् महावीर ने अभी अन्तिम देशना मे बताया है—

दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो।
मोहो हओ जस्स न होई तण्हा॥
अन्नाण-मोहस्स विवज्जणाए।

अर्थात्—जिसके मोह ममत्व नही होता, उसका दु ख मिट जाता है। जिसके मन मे तृष्णा नही होती, उसका मोह नष्ट हो जाता है। अज्ञान और मोह के दूर करने से ये सब दु ख मिट जाते हैं। अज्ञान और मोह को दूर करने का उपाय है—ममत्व।

जब समत्व आ जाता है······

जब मनुष्य के जीवन मे प्रत्येक शारीरिक, वाचिक, मानसिक प्रवृत्ति मे समत्व आ जाता है, तभी मनुष्य सुख और शान्ति प्राप्त करता है। समत्व मे ऐसा जादू है कि उसके मन मे, वचन मे और काया मे आते ही मनुष्य की अशान्ति समाप्त होने लगती है।

समत्व भंग के कारण

मान लीजिये, एक व्यक्ति स्वस्थ बैठा है। उसी समय उसे तार मिला। "आपका अमुक प्रिय व्यक्ति मर गया।" साधारण आदमी तो तुरन्त ही रोने-पीटने लगेगा, अफसोस करने लगेगा। वह यह नही सोचेगा कि मरना तो एक दिन सबको अवश्यम्भावी है। इसमे मैं क्या कर सकता था और वह भी क्या कर सकता था ? किन्तु स्वार्थ और मोहवश आदमी अपने इष्ट के वियोग में रोता है, शोक करता है विलाप करता है। इसे आर्तध्यान कहते हैं। पर ऐसा आर्तध्यान क्यो होता है ? समत्व न होने के कारण।

अगर समत्व होता तो मनुष्य उस घटना पर मानसिक सन्तुलन न खो कर मरने के कारणो पर विचार करता, रोने-धोने के बजाय समत्व और धैर्य रख कर वस्तुस्वरूप का विचार करता।

इसी प्रकार एक व्यक्ति को खबर मिली कि "तुम्हारा विरोधी मर गया, कि तुरन्त ही उसके मन मे हर्ष की लहर पैदा होगी। वह दस आदमियो के सामने जिक्र करेगा—"अच्छा हुआ, दुष्ट मर गया तो! उसका मर जाना ही ठीक था।" और इस प्रकार उस व्यक्ति के मर जाने पर कई लोग तो खुशी में पेडे बाँटते हैं।

महात्मा गाधीजी का जब स्वर्गवास हुआ तो उनके विरोधियो ने (हालाकि महात्मा गाधीजी ने किसी का बुरा नही किया, किन्तु कुछ लोग अपनी अज्ञानता के कारण और हिन्दू-मुस्लिम समभाव के कारण उन्हे शत्रु मानने लगे थे उन्होंने) खुशी मे पेडे बाँटे। हमने जब सुना तो विचार किया कि ऐसे लोग कितने अज्ञान मे हैं। अनिष्टवियोग भी एक प्रकार का आर्तध्यान है।

इसी प्रकार का मिलता-जुलता एक और आर्तध्यान है—इष्टसयोग। एक व्यक्ति ने एक गरीब पर झूठा मुकद्दमा चलाया। उधर गरीब परेशान था, किन्तु इधर वह मुकद्दमा चलाने वाला भी रात-दिन बेचैन रहता था कि कही मेरी हार न हो जाय। उसने तिकडमबाज होशियार वकील किया। वकील ने भी उसे झूठे बयान

देने का पाठ सिखा दिया। इस तरह वहुत पैसा खर्च करके और तिकडमवाजी करके वह मुकद्दमे मे जीत गया। मुकद्दमे मे विजय होने से उसकी खुशियो का पार न रहा। उसने अपने इष्टजनो को दावत दी। यह भी एक प्रकार का आर्तध्यान हुआ।

इसी प्रकार अनिष्ट का सयोग भी आर्तध्यान ही है। एक व्यक्ति को खवर मिली कि तस्करी के आरोप के कारण तुम्हे सरकार गिरफ्तार करने वाली है।" अव उसका खाना-पीना हराम हो जायेगा। उसे चैन नही पडेगा, कि क्या करूँ और क्या न करूँ ? अव वह उसी वेचैनी के कारण छिपता और इधर-उधर भागता रहेगा उसके मन मे रात-दिन आर्तध्यान वना रहेगा कि हाय ! अव मेरा क्या होगा ? मेरा अपमान होगा, वेइज्जती होगी, जेल की सजा होगी, और न जाने क्या-क्या दण्ड मुझे मिलेगा ! इस आशका से कभी तो व्यक्ति का हृदय वन्द हो जाता है।

परन्तु अगर वह पहले ही तस्तकरी न करता तो उसे वेचैनी न होती। मान लो, उस पर तस्करी का झूठा आरोप है, वह तस्करी नही करता तो उसे अपनी गिरफ्तारी की खवर सुन कर भी घवराना नहीं चाहिये था। अनिष्ट सयोग के समय भी व्यक्ति अपना मानसिक सन्तुलन खो वैठता है।

हाँ, तो ये चारो प्रकार आर्तध्यान के हैं। और आर्तध्यान के समय अगर समता रखी जाय, हर्ष और शोक के प्रसगो मे सम रहा जाय, अपना मानसिक सन्तुलन न खोया जाय, तो व्यक्ति सुख-शान्ति प्राप्त कर सकता है।

अशान्ति का दूसरा प्रकार रौद्रध्यान का है। रौद्रध्यान भी मानसिक सन्तुलन (समत्व) खो देने के कारण होता है। रौद्रध्यान आर्तध्यान से अधिक खतरनाक है। आर्तध्यान तो अपनी आत्मा के लिये ही अहितकर होता है, लेकिन रौद्रध्यान तो अपनी आत्मा के सिवाय तत्सम्वन्धित अनेक व्यक्तियो को हानि और धक्का पहुँचाता है। रौद्रध्यान व्यक्ति के स्वार्थ, लोभ, इच्छा और दुर्वृत्ति की पूर्ति न होने पर उनके भग्न होने पर प्राय होता है। रौद्रध्यान मे व्यक्ति अपने इष्टवियोग अथवा अनिष्टसयोग की परिस्थिति मे दूसरे का वुरा करने की सोचता है। एक व्यक्ति अनाज का व्यापारी है, वह चाहता है कि अनाज मे तेजी आ जाये तो मैं खूव पैसा कमा लूँगा। इसलिए मन ही मन यह चाहता है कि इस वर्ष दुष्काल पड जाये तो अनाज के भाव आसमान मे पहुँच जायेंगे और मैं मालामाल हो जाऊँगा।" यह रौद्रध्यान का एक प्रकार है। इससे व्यक्ति के हृदय मे सक्लेश पैदा होता है। मानसिक शान्ति समाप्त हो जाती है। वह सन्तुलन खो वैठता है। समता-पूर्वक विचार नही करता।

एक चन्दन का व्यापारी था। एक वार चन्दन का वाजार मदा होने से उसके माल की खपत कम हो गई। उसने सोचा—"अगर यहाँ का राजा मर जाय तो मेरा सारा चन्दन विक जाय।" उसके इस दुश्चिन्तन का प्रभाव राजा पर पडा।

राजा वीमार पड गया और दिनो-दिन दुर्बल होता गया। किन्तु राजा को जब इस वात का पता लगा कि चन्दन का व्यापारी मेरे विरुद्ध दुर्भावना कर रहा है, तो उसने व्यापारी को बुलाया। व्यापारी ने सुना तो वहुत ही सन्नाटे में आ गया और राजा से अपने दुर्विचार के लिये क्षमा मांगी। राजा ने कहा—"अगर तुम मुझे ऐसा दुर्विचार करने से पहले कह देते तो मैं तुम्हारा सारा चन्दन खरीद लेता। अच्छा, अब तुम अपना सारा चन्दन तौल कर हमारे भण्डार मे रखवा दो।" व्यापारी वहुत प्रसन्न हुआ और उसी दिन से वह राजा के लिये शुभचिन्तन करने लगा।

यह है—हिंसानुवन्धी रौद्रध्यान। ऐसा रौद्रध्यान, तब होता है, जब व्यक्ति अपने विरोधी या प्रतिस्पर्धी की तरक्की देखता है, उसे उच्च पद पर देखता है तो ईर्ष्या से जल-भुन जाता है, समता के आगे लगा देता है। इसी कारण वह उसकी जड काटने या नीचे गिरने के लिये षडयन्त्र रचता है, मारने की क्रूर भावना करता है। यह तो उस व्यक्ति के आयुष्यवल पर निर्भर है कि वह रौद्रध्यानी उसे मार नहीं सकता।

इसी प्रकार का दूसरा रौद्रध्यान है—मृषानुवन्धी, जो दूसरो की प्रतिष्ठा तरक्की आदि देख कर जल उठता है, अथवा अपने पापकर्मों को छिपाने के लिये झूठ-फरेव करने या असत्याचरण करने की योजना वनाता है, उसी उधेड़वुन मे रहता है। दूसरो को धोखा देने या चकमा देने का प्लान रचता रहता है। इस रौद्रध्यान मे रत रहने वाला भी समता से वहुत दूर चला जाता है। समता उसके हृदय से विदा हो जाती है।

इसी तरह तीसरे रौद्रध्यान का हाल है। इसका नाम है—स्तेयानुवन्धी रौद्रध्यान। यह रौद्रध्यानी तो वडी-वडी चोरी, तस्कर-व्यापार, करचोरी, चोर-वाजारी आदि विविध प्रकार की चोरियाँ करने की योजना वनाता है। ऐसा रौद्रध्यान-परायण व्यक्ति वहुत ही साहसी और अपने प्राणो की वाजी पर खेलने वाला होता है। समता का तो इससे वास्ता ही क्या है। इस रौद्रध्यानी के मन मे ममता-देवी विराजमान हो जाती है। लोभदेव उससे विविध प्रकार के नाच नचाता है। तृष्णा-देवी भी उसे चैन से एक जगह वैठने नही देती। लालसादेवी उसे विविध सुखो के प्रलोभन और सब्जवाग दिखा कर स्तेयानुवन्धी रौद्रध्यान मे प्रवृत्त करती है। आशा-देवी उसे अपना दास वना कर मदारी की तरह रात-दिन अपने भवरजाल मे फँसाए रखती है। तव भला ऐसे व्यक्ति के दिल-दिमाग मे समतादेवी कव आए? कैसे वह समतादेवी की आराधना करके शान्ति का वरदान पाए? यही कारण है कि स्तेना-नुवधी रौद्रध्यानी भी समता से कोसो दूर रहता है।

और इसका चौथा प्रकार तो और भी भयकर है। वह है—सरक्षानुवन्धी रौद्रध्यान। इस रौद्रध्यान के स्वामी मे रात-दिन अपनी, परिवार की, धन-सम्पत्ति

की और जमीन-जायदाद आदि की दूसरो से सुरक्षा की रट लगी रहती है। ऐसा व्यक्ति औरंगजेब बादशाह की तरह हर एक आदमी—यहाँ तक कि अपने घरवालो से भी—माता-पिता, भाई-बहन आदि से भी आशकित रहता है, उसके दिमाग मे वहम का कीडा घुस जाता है, कि मुझे कोई मार न दे, मुझे कोई लूट न ले, मुझसे कोई धोखा न कर ले। इसलिए उसकी दृष्टि मे सभी दुर्गुणी, वेईमान, चोर या हिंसक जचते हैं। वह किसी पर भी विश्वास नही करता। अपनी सुरक्षा के लिए, अपनी पद-प्रतिष्ठा, सत्ता, या गद्दी की रक्षा के लिए वह बाधक लोगो को मारने, दु ख देने या उन्हें अपने मार्ग से हटाने के प्लान रचता है, रात-दिन इसी उधेडबुन मे रहता है कि कैसे मेरी कुर्सी, मेरा पदाधिकार या मेरी सत्ता सुरक्षित रहे। आजकल के राजनीतिज्ञ प्राय. इसी रौद्रध्यान के चक्कर मे फँसे रहते हैं। बगलादेश मे मुजीब को हटाकर अपनी सत्ता जमाने के लिए मुजीब और उसके साथियो को समाप्त कर दिया गया। औरंगजेब ने अपने प्रिय भाइयो को मरवा डाला, पिता को कैद कर लिया। इस प्रकार आज भी सत्ता और पद की रक्षा के लिए बडे-बडे षड्यन्त्र रचे जाते हैं। सरक्षानुबन्धी रौद्रध्यान की कहानियाँ तो किसी से भी छिपी नहीं है। ये घटनाएँ तो चुनावो के अवसर पर या पक्षो की सत्ता-प्रतिस्पर्द्धा मे आए दिन हमारे देश और विदेशो मे होती ही रहती हैं। ऐसी रौद्रध्यान के उपासक के पास क्या समता-सती फटक सकती है। ऐसे रौद्रध्यान का उपासक महत्त्वाकाक्षी होता है। रातदिन अपने पद, अपनी प्रतिष्ठा और सत्ता को बरकरार रखने के लिए मन मे नयी-नयी योजना बनाता रहता है और उसे कार्यान्वित करने की उधेडबुन मे लगा रहता है। ऐसे व्यक्ति को समता-सती की सुध लेने की फुरसत कहाँ ?

यह चारो रौद्रध्यानो का कच्चा चिट्ठा है, जो समता को पास भी नही फटकने देते। तब भला इन चारो रौद्रध्यान के भक्तो को सुख-शान्ति, अमनचैन या आनन्द कैसे हो ? इनकी सुखशान्ति का सरोवर तो सदा सूखा रहता है, उसमे मस्तबहार कैसे आए ?

इसके बाद सुख और शान्ति को दूर भगाने वाले और समता को तिलाजलि देने वाले कारण होते है—सावद्य-कार्य, पापमय कार्य। पापकार्यों से मतलब है—हत्या, चोरी, जीवहिंसा, मासाहार, मद्यपान, जूआ, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन, व्यभिचार असत्य, अनापसनाप सग्रहवृत्ति, परिग्रहलालसा आदि। ये जब भी किसी के जीवन मे आते है, उसकी समता को चौपट कर देते है। उसकी समता चौपट हो जाने पर सुख-शान्ति और अमनचैन तो विदा हो ही जाती है। इन पापकार्यों के फलस्वरूप यहाँ भी उसकी समता भग होने से उसे किसी प्रकार पारिवारिक, सामाजिक, आत्मिक या शारीरिक सुख नही मिलता और मरने के बाद परलोक मे भी उसे

नरकगति या तिर्यंचगति मे अनेक यत्रणाओ और दारुण दु.खो का शिकार होना पडता है। वताइए समता-देवी की विराधना—या समतादेवी की उपेक्षा करने का कितना भयकर दण्ड ऐसे व्यक्ति को भोगना पडता है

इसीलिए जैन सस्कृति के उच्चतम मनीषियो, तीर्थंकरो एव महामुनियो ने समता की साधना को एक व्रत मे स्थान देकर उसे शिक्षाव्रत के रूप मे प्रतिष्ठित किया है। शिक्षाव्रत की तो साधना प्रतिदिन करनी पडती है, या उसका अभ्यास वारवार करना पडता है। सामायिक की साधना के लिए इन महापुरुषो की शर्त यही है—

"त्यक्तार्त्तरौद्रध्यानस्य त्यक्तसावद्यकर्मण:।
मुहूर्त्तं समता या तां विदु. सामायिक व्रतम् ॥"

जो साधक आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को छोड देता है, और सावद्य (सदोष) कार्यो को भी छोड देता है, और मुहूर्त भर समता की साधना मे लगता है, उसका वह व्रत सामायिक कहलाता है।

हाँ, तो निष्कर्ष क्या निकला ? निष्कर्ष यह निकला कि पूर्वोक्त समता के आराधक को आर्तध्यान और रौद्रध्यान से विरत होना पडता है, सावद्य प्रवृत्तियो को छोडने का अभ्यास करना पड़ता है। तभी समता की साधना पक्की हो सकती है और तभी वह समता की आराधना के फलस्वरूप सुखशान्ति की उपलब्धि कर सकता है।

समता के चार प्रकार

समता के आराधक को केवल एक ही पहलू से समता को नहीं पकडना है, अन्यथा उसकी समता एकागी हो जाएगी। समता की सर्वांगीण आराधना के लिए उसके सभी पहलुओ पर विचार करना आवश्यक है। प्रथम पहलू तो हमने पहले वता दिया है—समताप्राप्ति के लिए आर्त-रौद्रध्यान का त्याग एवं पापमय कार्यों का वर्जन आवश्यक है। अव यह समता का दूसरा पहलू है—द्रव्य से, क्षेत्र से, काल से और भाव से समभाव रखना। समता के ये चार प्रकार भी वहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

द्रव्य-समता—सर्वप्रथम द्रव्यसमता पर समता के साधक को ध्यान देना आवश्यक है। द्रव्य से मतलव है, ससार के सजीव निर्जीव, इष्ट-अनिष्ट, अल्पमूल्य-वहुमूल्य, प्रिय-अप्रिय और स्वकीय-परकीय इत्यादि प्रत्येक पदार्थ से। जिस समय व्यक्ति अपनी प्रियवस्तु और जिस पर अपनी आसक्ति या ममता हो, उसे पाता है तो फूल उठता है, वह हर्ष के मारे नाच उठता है। उसकी मनोवृत्ति अभिमान से छलक उठती है। वह अपने को वहुत वडा आदमी मानने लगता है। वह उस प्रिय वस्तु को पाने की वेहद खुशी मे अपनी समता को खो वैठता है। उस वस्तु पर उसे रागभाव हो जाता है कि

और किसी तरफ झाँकता ही नही । इसी प्रकार अप्रिय वस्तु या द्रव्य को पा कर रोष से मन्ना उठता है, उसका दिमाग सतुलित नही रहता, वह द्वेष और घृणा करके उस निर्जीव वस्तु को फेंक देने या तोडने-फोडने का प्रयत्न करता है, सजीव वस्तु हुई तो उसे मारने-पीटने, सताने और अपने मार्ग से हटाने की कोशिश करता है। किसी भी सजीव या निर्जीव, इष्ट या अनिष्ट द्रव्य को पाकर राग करना या द्वेष करना द्रव्य-समता का विनाशक है। द्रव्य-समता आ जाने पर व्यक्ति प्रिय या अप्रिय अथवा इष्ट या अनिष्ट किसी भी द्रव्य के प्राप्त होने पर न तो राग करता है और न द्वेप करता है। न उसके मन मे मोह, आसक्ति या ममत्व पैदा होता है, और न ही उसके मन मे उस द्रव्य के प्रति घृणा, द्वेप, क्रोध, ईर्ष्या, वैरभाव या वेचैनी पैदा होती है। वह उस प्रिय या अप्रिय, मनोज्ञ या अमनोज्ञ वस्तु को प्राप्त कर समता की पगडडी पर चलता है। समता की पगडंडी पर चलने वाला व्यक्ति उस द्रव्य के वस्तुस्वरूप का विचार करता है। वह यह सोचता है कि अगर यह वस्तु या व्यक्ति प्रिय व मनोज्ञ है तो वह मेरी आत्मा का कुछ वना नही सकता और अगर यह अप्रिय या अमनोज्ञ है तो वह मेरी आत्मा का कुछ विगाड नहीं सकता। क्योकि यह परद्रव्य है। स्वद्रव्य तो मेरी अपनी आत्मा ही है। परद्रव्य—फिर वह चाहे सचेतन हो या अचेतन, इष्ट हो या अनिष्ट अपनी आत्मा का कुछ भी भला-बुरा नही कर सकता। कोई अगर मेरी प्रशसा या स्तुति करता है तो उससे मेरी आत्मा का कुछ भी भला नही हो सकता और निन्दा करता है, द्वेषभाव रखता है तो उससे भी मेरी आत्मा का कुछ भी वुरा नही हो सकता। कोई दूसरा (आत्मा के अतिरिक्त) मेरा कुछ भी अच्छा या बुरा नही कर सकता। मेरी आत्मा स्वय ही अपना अच्छा-बुरा, इष्ट या अनिष्ट कर सकती है। इस तत्त्व को हृदय मे उतार लेने पर साधक के जीवन मे द्रव्यसमत्व आ जाएगा। वह निमित्तो को न कोसेगा और न निमित्तो को भला-बुरा कहेगा।

आज मानव स्वय की ओर न देख कर कुछ भी बन या विगड जाने पर निमित्तो पर रोष-तोष करता है। कुछ भी हानि हो गई तो अमुक निमित्त पर झल्ला उठेगा। अमुक ने ऐसा न किया होता तो मेरा काम न विगडता। अमुक ऐसा करता तो ऐसा हो जाता। अमुक ही मेरे कार्य को विगाडने के लिए जिम्मेवार हैं आदि। वर्तमान युग का मानव अगर द्रव्यसमत्व के स्वरूप को भली-भाँति समझ ले तो न तो वह कार्य विगड जाने पर किसी पर रोष करेगा और कार्य सुधर जाने पर तोष। वह अपने उपादान (आत्मा) को टटोलेगा, उसी को दोष देगा या सन्तोष से युक्त होगा।

क्षेत्र-समता—समता का दूसरा प्रकार क्षेत्र-समता है। क्षेत्र से मतलब है—स्थान, भूमि, खेत, जगह या मानव-जीवन के विविध क्षेत्र। क्षेत्र भी इष्ट या अनिष्ट मिलने पर मनुष्य का मन समता से विचलित हो जाता है। बुरा या अमनोज्ञ क्षेत्र

मिलने पर मनुष्य रोप से झल्ला उठता है, अमुक निमित्तो को कोसने लगता है, अनिष्ट स्थान पर समभावपूर्वक जमने के वदले उखड़ने लगता है ।

भगवान बुद्ध के जीवन का एक प्रसग है। एक वार वे किसी नगर मे पहुँचे तो वहाँ के निवासी भगवान बुद्ध को गालियाँ देने लगे, उनके भिक्षुओ को सताने लगे, उन्हें आहारादि नही देते या अनादरपूर्वक देते। यह देख कर भगवान बुद्ध के शिष्य आनन्द भिक्षु तिलमिला उठे। उन्होने भगवान बुद्ध से आकर शिकायत की—"भते ! हमे यहाँ से शीघ्र ही अन्यत्र चल देना चाहिये। यहाँ रहना ठीक नही है।"

भगवान बुद्ध ने पूछा—"क्यो, आनन्द ! क्या वात है ? यहाँ से क्यो चल देना चाहिये ?"

आनन्द—"भते ! यहाँ हमे कोई पूछता नही, लोग गालियाँ देते हैं, भिक्षा भी तिरस्कारपूर्वक देते हैं। यह क्षेत्र अच्छा नही है। यहाँ के लोग खराव हैं।"

भगवान बुद्ध—"अगर दूसरे नगर या कस्वे मे गये, और वहाँ भी ऐसे लोग हुए तो, फिर क्या करेंगे ?"

आनन्द—"फिर वहाँ से भी अन्यत्र चल देना होगा।"

बुद्ध—"मान लो, आगे के क्षेत्र इससे भी ज्यादा खराव मिले, और वहाँ के मनुष्य इनसे भी ज्यादा क्रूर या अज्ञानी मिले, अनार्य मिले या अनाडी मिले तो फिर क्या करेंगे ?"

आनन्द—"भते ! फिर आप ही वताइए कि हम क्या करें ? ऐसी परिस्थिति मे हमारा मन डाँवाडोल हो उठता है। हम कहाँ जाएँ ? आप ही कोई रास्ता वताइए।"

भगवान बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा—"आनन्द ! इस तरह एक क्षेत्र को या एक स्थान को अपमान से घवरा कर छोड देने से तो समस्या का समाधान नही होगा। समस्या का स्थायी समाधान यह है कि जिस क्षेत्र मे रहे, वहाँ के लोगो की ओर न देखे, अपनी ही आत्मा को देखे, अपने ही गुण-दोपो का अवलोकन करे। दूसरो की ओर देखने या क्षेत्र के प्रति अच्छा-बुरा चिन्तन करने से तो हमारा सन्तुलन विगड जाएगा। इसलिए इसी क्षेत्र मे रह कर समभावपूर्वक सहन करते जाओ। तुम्हारी इसी समता का प्रभाव लोगों पर पडेगा और हार-थक कर वे तुम्हारे पास आ जाएँगे। फिर तुम्हे वे स्वत· अपनाएँगे। अत इसी स्थान या क्षेत्र मे रहकर अपनी संयम-यात्रा चलाओ। यह क्षेत्र या क्षेत्रवासी जन तुम्हारी आत्मा का क्या विगाड सकते हैं और क्षेत्र अनुकूल हो या क्षेत्रनिवासी इष्ट हो तो उससे तुम्हारी आत्मा को कौन-सा लाभ होगा ? अत समतारस का पान करो, उसी मे अवगाहन करो।"

क्षेत्र-समता जव व्यक्ति मे आ जाती है तो वह मन मे अपना-पराया, इष्ट-

अनिष्ट, प्रिय-अप्रिय का भेदभाव करके विषमता नहीं लाता और न ही इष्ट-अनिष्ट को पा कर राग-द्वेष का जाल बुनता है। वह समता के पावन-पथ पर मजबूती से पैर जमा कर किसी भी प्रकार के क्षेत्र, स्थान, जमीन या सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रो मे भी अपने सतुलन को नही खोता। भगवद्गीता मे इसी प्रकार के सतुलन और समत्त्व को योग कहा गया है—

समत्वं योग उच्यते

समत्व को योग कहा है। फिर वह योग कर्मयोग हो, ज्ञानयोग हो, चाहे भक्तियोग हो। उसकी प्रतिष्ठा योग मे ही होती है।

काल-समता—समता का तीसरा प्रकार काल-समता है। काल का अर्थ—समय, मृत्यु, अवस्था, सयोग, अवसर, स्थिति तथा आयु आदि है। इन सभी अर्थों मे प्रयुक्त होने वाले काल के अनुकूल-प्रतिकूल, इष्ट या अनिष्ट, अथवा अच्छे या बुरे होने पर समत्व को न खोना काल-समत्व है। काल-समता का आराधक दुख हो या सुख, वियोग हो या सयोग, अनुकूल समय हो या प्रतिकूल, परिस्थिति अच्छी हो या बुरी, मृत्यु आ जाए, चाहे जिन्दगी लम्बी हो जाए, चास ठीक हो या खराब, हर हाल मे मस्त रहता है, हर परिस्थिति मे वह समत्व-पथ पर स्थिर रहता है। 'मेरी भावना' के अनुसार उसके जीवन का मूलमत्र यह होगा—

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखो वर्षों तक जीऊँ या, मृत्यु आज ही आ जावे॥
होकर सुख मे मग्न न फूलें दुख मे कभी न घबरावें।
पर्वत, नदी, श्मशान भयानक, अटवी मे नही भय खावें॥
रहे अडोल अकम्प निरन्तर, यह मन दृढतर बन जावे।
इष्ट-वियोग, अनिष्टयोग मे, सहनशीलता दिखलावे॥

यह है काल-समभाव का तात्पर्य। जीवन मे एक समय ऐसा भी आता है, जब तिजोरी मे चाँदी की छनाछन होती है, और जब अपने दिन फिर जाते है, तब रूखी-सूखी रोटी भी मयस्सर नही होती। पर काल-समभावी साधक इन दोनो परिस्थितियो मे समत्व-पथ से विचलित नहीं होता। लाखो वर्षो का लम्बा जीवन हो, या आज ही मृत्यु आ जाए, समभावी साधक काल के विषय मे निश्चिन्त होता है। चाहे इष्ट का वियोग हो या अनिष्ट का सयोग हो, दोनो ही अवस्थाओ, कालसमभावी व्यक्ति का जीवन समता की सीमा का अतिक्रमण नही करता। इसी प्रकार कालसमभावी पुराने के प्रति मोह या नये के प्रति द्वेष या घृणा नही करता। उसके सामने वस्तु नई हो या पुरानी—वस्तु की उपयोगिता का सवाल है। अगर पुरानी अनुपयोगी है, अहितकर है, तो उसे वह छोड देगा और नई वस्तु अगर उपयोगी और हितकर है तो उसे

अपना लेगा। कालसमभावी व्यक्ति घोर अँधेरी भयंकर रात हो या दिन का उजेला हो, भय नही खाता। वह मन को निर्भय और समत्व मे स्थिर रहता है। इसी समत्व-भावना को द्योतित करते हुए आचार्य अमितगति ने सामायिक-पाठ मे कहा है—

दुःखे सुखे, वैरिणि बन्धुवर्गे,
योगे वियोगे, भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्व-बुद्धे',
समं मनो मेऽस्तु सदाऽपि नाथ ॥

अर्थात्—दुःख हो, सुख हो, वैरी हो, बन्धुवर्ग हो, सयोग हो, वियोग हो, भवन हो या वन हो, हे नाथ! मेरा मन समस्त ममत्त्वबुद्धि से रहित हो कर सदैव सम रहे।

भाव-समता—भावो मे समता-भाव रखना भाव-समता है। विषम प्रसगो, या राग-द्वेप के प्रसगो पर समता-भाव रखना भाव-समत्व है। आचार्य हरिभद्र पचाशक मे लिखते हैं—

समभावो सामाइयं, तण-कंचण-सत्तुमित्त-विसउत्ति।
णिरभिसगं चित्त उचिय-पवित्तिप्पहाणं च ॥

चाहे तिनका हो, चाहे सोना, चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, सर्वत्र अपने मन को राग-द्वेप की आसक्ति से रहित रखना तथा पापरहित उचित धार्मिक प्रवृत्ति करना, सामायिक है, क्योकि समभाव ही तो सामायिक है।

भावसमत्व से युक्त व्यक्ति व्यक्तिगत जीवन मे भी कैसी भी परिस्थिति आने पर राग-द्वेप से युक्त नहीं होता। साम्यभाव से युक्त व्यक्ति किसी भी पापी या घृणित व्यक्ति को देख कर घृणा या द्वेप नही करता, वह उसके साथ आत्मीय-भाव रखता है।

एक आचार्य ने तो राग-द्वेप के मध्यपथ मे रहने को साम्य बताया है—

इतो राग महाम्भोधिरितो द्वेषदवानलः।
यस्तयोर्मध्यगः पन्थास्तत्साम्यमिति गीयते ॥

इधर रागरूपी महासमुद्र गर्जन कर रहा है, उधर द्वेप-रूपी दावानल भडक रहा है। इन दोनो के मध्य मे स्थित जो पथ है, वही भाव-साम्य कहलाता है।

समस्त प्राणियों पर समभाव

समभाव की सीमा यहीं तक समाप्त नही हो जाती, वह सारे विश्व के प्राणियो तक पहुँचती है। अपने परिवार, जाति, समाज या राष्ट्र के व्यक्तियो के साथ ही नही, विश्व की समस्त मानव-जाति के साथ ही नहीं, सभी प्राणिमात्र के

साथ समभाव रखना ही समत्व की पराकाष्ठा है। वर्तमान युग का मानव इतना स्वार्थी और ममत्वयुक्त हो गया है कि वह प्राय अपने परिवार से ऊपर उठ कर नही सोचता। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो परिवार और जाति से ऊपर उठ कर सारे राष्ट्र के हित की बात सोचते हैं। उनमे स्वराष्ट्र-समभाव तक का विकास हो जाता है। किन्तु तीर्थकरो की समता का आदर्श समग्र विश्व की मानवजाति और समग्र सृष्टि की प्राणिजाति तक का है। इसीलिए समस्त उच्च साधक मुनिदीक्षा लेते समय **'करेमि, भते ! सामाइय'** मते ! मैं समता की साधना (सामायिक) स्वीकार करता हूँ।'

यही नही, वे अपने जीवनकाल मे समत्व की साधना के चरम शिखर पर पहुँच जाते है।

तीर्थंकर प्रभु की धर्मसभा मे सदा समभाव का साम्राज्य रहता है। वहाँ कोई शत्रु नही, कोई भी मित्र नही। मानव ही नही, पशुपक्षी भी वहाँ आ कर समभावपूर्वक बैठ जाते है। वहाँ क्रूर से क्रूर प्राणियो मे भी परस्पर द्वेषभाव नही उमडता। उनके सान्निध्य मे सभी लोग अपनी शत्रुता भूल जाते हैं। इसीलिए उनकी धर्मसभा का नाम समवसरण है। जहाँ सभी समभाव से आते है, उसे ही तो समवसरण कहते हैं।

इसीलिए समता की साधना के विषय मे तीर्थंकरो की मान्यता है—

जो समो सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु य।
तस्स सामाइयं होई इइ केवलिभासिय॥

जो साधक त्रस और स्थावर सभी प्राणियो पर समभाव रखता है, उसी की समत्व-साधना सामायिक कहलाती है, ऐसा केवली भगवान ने कहा है।

सचमुच समता की साधना सारे विश्व को छूती है, विश्व के प्राणिमात्र के साथ समभावी साधक का वास्ता पडता है।

आध्यात्मिक समता

आध्यात्मिक समता का सम्बन्ध आत्मा से है। शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि आत्मा की समता को भग कर डालते हैं, वे विक्षेप डालते है। आत्मा अपने स्वभाव मे स्थिर होना चाहती है, किन्तु कर्म, शरीर आदि आकर घपला मचा देते हैं, वे विषमता पैदा कर देते है। साधारण व्यक्ति तो शरीर आदि पर ममत्व करके समता की एक सीढी भी नही चढ पाते। जिसके अन्तर मे शरीरादि के प्रति ममता-मूर्च्छा कम होती है, परभाव मे रमणता की रुचि नही रहती, वही व्यक्ति आत्मा मे स्थिर हो सकता है। और आत्मा मे स्थिर होना ही आध्यात्मिक समता है।

इसके लिए भेद-विज्ञान की प्रक्रिया अपनाई जाती है। शरीर और आत्मा,

कर्म और आत्मा का पृथक्करण करना, इनका विश्लेषणपूर्वक विवेक करना, इन्हे अलग-अलग समझ कर शरीर, कर्म आदि पर जो ममत्व है, उसे छोडना, शरीरादि के प्रति आसक्ति का त्याग करना ही समत्व है, तभी समत्व के शिखर पर साधक पहुँच सकता है।

जब-जब शरीर पर किसी प्रकार का कष्ट आ पड़े, भूख, प्यास, शर्दी, गर्मी, मच्छर आदि विविध परीषह आ कर सताने लगें, उस समय समभावी व्यक्ति अपने धर्म मे च्युत नही होता, वह कष्टसहिष्णु बन कर अपने समभाव पर या अपने आत्म-स्वरूप मे स्थिर हो जाता है, किन्तु अपने गृहीत व्रतो, नियमो या आचार-विचारो को नही छोडता। सामायिक-पाठ मे आध्यात्मिक समता के लिए पहला पाठ बताया गया है—

शरीरत. कर्तुमनन्तशक्ति, विभिन्नमात्मानमपास्तदोषं।
जिनेन्द्र ! कोषादिव खड्गयष्टिं, तव प्रसादेन ममाऽस्तुशक्ति'।

हे जिनेन्द्र ! आपकी स्वभावसिद्ध कृपा से मेरी आत्मा मे ऐसी आध्यात्मिक समता-शक्ति प्रगट हो जाय कि मैं अपनी आत्मा को कार्मणशरीर आदि से उसी प्रकार अलग कर सकूँ, जिस प्रकार म्यान तलवार से अलग की जाती है। क्योंकि वस्तुत. मेरी आत्मा अनन्तशक्ति से सम्पन्न है और सम्पूर्ण दोषो से रहित होने के कारण निर्दोष, वीतराग और अविनाशी है।

इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक समता से सम्पन्न साधक कर्म और आत्मा का विश्लेषण करके उन्हें पृथक्-पृथक् करता है, और आत्मा के अपने असली स्वरूप में स्थिर हो जाता है। एक आचार्य ने इस सम्बन्ध मे स्पष्टीकरण किया है—

'कर्म जीवं च संश्लिष्ट परिज्ञातात्मनिश्चयः।
विभिन्नीकुरुते साधु' सामायिक-शलाकया॥

अर्थात्—कर्म और जीव दोनो परस्पर एक-दूसरे से संश्लिष्ट हैं, चिपके (मिले) हुए हैं, आत्मा का निश्चित ज्ञाता साधक समता-साधना की सलाई से इन दोनों को पृथक्-पृथक् कर लेता है।

आत्मस्वरूप मे स्थिरता ही निश्चय समत्व है

वास्तव मे, आत्म का अपने स्वरूप मे स्थिर होना ही समता है। अपने स्वरूप से भ्रष्ट होकर परभावो मे भटकना ही विषमता है। विषमता को छोड कर जब आत्मा अपने स्वरूप मे स्थिर होती है, तभी उसकी समत्व-भावना परिपक्व हो जाती है। इसीलिए भगवतीसूत्र में इस पर गम्भीर चिन्तन करके कहा गया—

'आया समाइए, आया सामाइयस्स अट्ठे'

आत्मा ही सामायिक है और आत्मा ही सामायिक का अर्थ प्रयोजन है।

वाह्य विपय-भोगो की चचलता से हटकर स्वभाव-आत्मस्वरूप मे स्थिर-लीन होना ही समत्व-साधना है। और कर्मो या कापायिक विकारो से अलग करके अपने शुद्ध स्वरूप को पा लेना ही समत्व साधना (सामायिक) का अर्थ फल है। निष्कर्प यह है कि आत्मस्वरूप मे परिणति हुए विना साधक के त्याग, नियम, व्रत, प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण आदि सव की सव वाह्य वर्म-क्रियाएँ पुण्याश्रवरूप है, मोक्ष-साधक सवर-रूप नही।

इस प्रकार से निश्चय समत्व को प्राप्त करके व्यक्ति समत्व के उच्च शिखर को छू लेता है, तव समत्व मे वह सदा के लिए स्थिर हो जाता है।

आप भी समत्व के इन विभिन्न रूपो को भलीभाँति समझ कर क्रमश समत्व के प्रासाद पर आरूढ होंगे, तभी आप मे आत्मसाधना की परिणति परिपक्व हुई समझी जाएगी। ●

सरल-विनम्र हृदय, प्रतिभा और पुरुषार्थ के पुज

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भंडारी

स्मृति–परिशिष्ट

आपकी इबादत के क्या कहने,
आपकी बन्दगी के क्या कहने ?
जो शमा की मानिन्द थी रोशन,
आपकी जिन्दगी के क्या कहने ?

इन्द्रधनुषी व्यक्तित्व की विरल झाँकी

☆ श्री टी० एन० पार्थसार्थी
योजना एव विकास अधिकारी
फ्लोअर एण्ड फूड लि० इन्दौर

जैनधर्मप्रभाकर युवा कविरत्न पूज्य श्री महेन्द्रमुनि "कमल" का इस वर्ष इन्दौर मे श्रावकसघ द्वारा वर्षावास आयोजित किया गया था। इस चातुर्मास मे उनके द्वारा किये गये प्रेरक उद्वोधनो एव व्याख्यानो से भण्डारी-परिवार अत्यधिक प्रभावित हुआ तथा भण्डारी-परिवार के कुलश्रेष्ठ स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की विदुषी पत्नी श्रीमती भुवन भण्डारी ने मुनिश्री के प्रवचनो के सकलन के साथ ही साथ अपने स्वर्गीय पति श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी के अविस्मरणीय संस्मरणो का सकलन निकालने का दृढ निश्चय किया तथा इस कार्य के लिये श्रीमती भण्डारी को मुनिश्री का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। उन्ही के आशीर्वाद से इस पुस्तक का प्रकाशन सम्भव हो सका है। प्रस्तुत पुस्तक अन्तर्दृष्टि मे जहाँ मुनिश्री के प्रवचन मानव-कल्याण के लिए हितकर होंगे, वही स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह भण्डारी के जीवन के मार्मिक प्रसग भावी पीढी के चरित्र-निर्माण मे सहायक होंगे।

यह सृष्टि जीवन एव मृत्यु इन दो शब्दो का सगम है। यहाँ कई आत्माएँ अवतरित हुईं और काल के कराल मे लीन हो गईं। ऐसी विरली ही आत्माएँ होती हैं, जो सत्कर्मों से काल के आवरण को हटा कर अमर हो पाती है। हम उस आत्मा की जीवन मे कमी अनुभव करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि उसका जीवन हमारी आवश्यकता थी—जिसका आज अभाव है। इस अभाव का जितना अधिक आभास होता है, उतनी ही उस आत्मा की महानता वढती जाती है और उसके स्मरणमात्र से ही सत्कर्मों की प्रेरणा जागृत हो जाती है। उस आत्मा की महिमा का वर्णन करने से वाणी धन्य हो जाती है और लेखनी कृतार्थ। ऐसी ही एक महान् आत्मा स्व० गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की जीवनी को लेख के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ।

वहुमुखी प्रतिभा के धनी श्रीगजेन्द्रसिंहजी साहव भण्डारी की विभिन्न सस्थाओ मे मुझे कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथा आज भी मैं उनके द्वारा

स्थापित मैंसर्स फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड, इन्दौर मे योजना एव विकास अधिकारी के रूप मे कार्य कर रहा हूँ। जहाँ मुझे स्वर्गीय भैयासाहब की विभिन्न सस्थाओं मे कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ वही उनके साथ मेरे पारिवारिक सम्बन्ध भी मधुर रहे। यही कारण है कि मुझे स्वर्गीय भैयासाहब की प्रतिमा को निकट से देखने का सुअवसर मिला।

बाल्य-काल

सन् १६२६ के नवम्बर माह की ६ तारीख के शुभ-दिन जैनरत्न सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी की धर्मपत्नी श्रीमती चम्पाबाई को एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई बालक का नाम गजेन्द्र रखा गया। विरले ही ऐसे होते हैं जो 'यथानाम तथागुण' के नाम से चरितार्थ होते हैं। जैसे ही बालक के चरण घर मे पडे, वैसे ही परिवार मे सुख और वैभव की श्रीवृद्धि होना प्ररम्भ हो गया। उस समय भण्डारी-परिवार रायबहादुर राज्य भूषण सेठ कन्हैयालालजी साहब भण्डारी के मार्ग-दर्शन मे सफलता की ओर अग्रसर हो रहा था।

किसी भी व्यक्ति की प्रगति मे उसके परिवार-जन, सस्कार और शिक्षा-दीक्षा का बहुत बडा योग हुआ करता है। बड़ो के प्रति विनीत भाव, छोटो के प्रति अनुराग, दीनो के प्रति दया और व्यवहार मे स्वाभाविक सरलता आदि गुण जन्म से ही भण्डारी-परिवार के प्रत्येक सदस्य को विरासत के रूप मे मिलते रहे हैं। एतदर्थ श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भी इन सभी गुणो से ओत-प्रोत थे।

शिक्षा-दीक्षा

श्री गजेन्द्रसिंहजी की प्रारम्भिक शिक्षा उस समय के प्रसिद्ध विद्यालय डेली कालेज, इन्दौर नगर मे हुई, जहाँ उस समय देश के राजा-महाराजाओ के बच्चे ही शिक्षा ग्रहण किया करते थे। अपने प्रारम्भिक शिक्षा-काल मे वे अत्यन्त प्रखर बुद्धि के होनहार छात्र थे। मैट्रिक की परीक्षा उच्च श्रेणी मे उत्तीर्ण कर अग्रिम अध्ययन हेतु उन्हे होल्कर साइन्स कालेज मे भर्ती किया गया। तत्पश्चात् २२ दिसम्बर, १६४६ मे उन्हे कैमिकल इन्जिनियरिंग के उच्च अध्ययन हेतु कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, इंग्लैण्ड भेजा गया। वहाँ अपने गुरु श्रीसोमदत्तजी शर्मा के सानिध्य मे सन् १६५० तक विद्यार्जन करने के पश्चात् वे स्वदेश लौट आए।

उनकी प्रखर प्रतिमा को देख कर पूज्य संत कस्तूरचन्दजी महाराज साहब ने उन्हें 'पारस' एव 'चिन्तामणि' इन दो शब्दो से अलकृत किया था। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणो तक ऐसे पारस बनकर रहे कि जिस कार्य को भी उन्होने अपने हाथ मे लिया उसमे सफलता ही अर्जित की और जिस व्यक्ति पर हाथ रखा, उसे इन्सान बना दिया। इन शब्दो का सम्बोधन उनके लिए कितना उपर्युक्त था यह आपको उनके सस्मरणो से विदित होगा।

पारिवारिक जीवन

१५ फरवरी, सन् १९५१ को वे अजमेरनिवासी सेठ अभयकरणजी साहब मेहता की ज्येष्ठ पुत्री भुवनेश्वरी देवी से विवाह-सूत्र मे वधे। अल्पावधि मे ही वैचारिक समानता से इतने घुल-मिल गये कि उनका दाम्पत्य-जीवन आनन्द एव उल्लास के हिलोरे लेने लगा। उन्हे तीन पुत्र-रत्नो की प्राप्ति हुई। जहाँ उन्हे अपनी पत्नी से अगाध स्नेह था, वहीं माता-पिता के प्रति अपार श्रद्धा एव भक्ति भी थी। उनका स्नेह अपने माता-पिता, पत्नी एव बच्चो तक ही सीमित नही था, अपितु उनके हृदय मे परिवार के सभी सदस्यो के प्रति आदर एव सहानुभूति थी। उन्हे अपने परिवार के प्रति इतना स्नेह था, जो इस बात से स्पष्ट है कि एक बार वे विदेश-भ्रमण पर जाने वाले थे और उनकी हार्दिक इच्छा थी कि वे अपनी धर्म-पत्नी को भी अपने साथ इस यात्रा मे ले जायं, किन्तु उन्होंने ऐसा न करते हुए अपने लघु-भ्राता स्वर्गीय महेन्द्रसिंहजी, जो कि उस समय इग्लैण्ड मे डाक्टरी का अध्ययन कर रहे थे, उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रजनी को पूज्य पिताश्री की अनुमति प्राप्त कर इग्लैण्ड भेजा।

आज के इस कलियुगीन एव भौतिकतापूर्ण जीवन मे ऐसे विरले ही व्यक्ति होते हैं जो अपने माता-पिता को असीम आदर तो देते ही है, किन्तु उनके द्वारा प्रदत्त सभी आज्ञाओ को भी शिरोधार्य करते हैं, श्री गजेन्द्रसिंह भैयासाहब भी उन विरले व्यक्तियो मे से एक थे। उनकी कर्त्तव्यपरायणता, माता-पिता के प्रति आदर-भाव न केवल उनके परिवार तक ही सीमित था, किन्तु उसकी अनुभूति से जैन-समाज भी वंचित न रह सका। श्रीमान् भैयासाहब अपनी दिनचर्या माता-पिता के चरण स्पर्श से ही प्रारम्भ करते थे। उनका यह दृढ विश्वास था कि माता-पिता की अनुमति या आशीर्वाद लिए विना प्रारम्भ किया गया कार्य अथवा यात्रा कभी भी सफल नही हो सकती। इसलिए अनजाने मे भी उन्होंने ऐसा कोई कार्य या यात्रा अपने माता-पिता की अनुमति या आशीर्वाद के विना नही किया। भण्डारी-परिवार मे आज भी उनकी इस परिपाटी का अनुसरण होता आ रहा है।

कभी-कभी वृहत् परिवार मे ऐसे प्रसगो का होना भी स्वाभाविक ही है, जहाँ वैचारिक मतभेद उपस्थित हो जाते हैं। ऐसे समय श्रीमान भैयासाहब सदैव अपने से बडो की आज्ञा को परिवार की प्रतिष्ठा एवं गरिमा के अनुरूप शिरोधार्य करते थे, जो भण्डारी-परिवार का अनुशासन के सम्बन्ध मे एक विशिष्ट गुण माना गया है। यही कारण है कि इतना धनाढ्य एव विशाल परिवार होने के वावजूद भी यह एकसूत्र मे वँध कर दिन-प्रतिदिन प्रगति के पथ पर अग्रसर होता रहा है। परिवार के हित मे वे सदैव अपनी आकाक्षाओ की आहुति देते रहे। उनके द्वारा अपनी ही डायरी मे ऐसे मर्मस्पर्शी प्रसग अकित है, जिनसे प्रतीत होता है कि उनकी अन्तिम

(१) इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स }
(२) विस्को यानमार }
(३) देवास फ्लोअर आईल एण्ड डी आइल केक फैक्टरी (सालवेण्ट एक्स-ट्रेक्शन प्लाण्ट)
(४) काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लि०
(५) भण्डारी क्रास फिल्ड्स लि०
(६) सुप्रसिद्ध होटल का निर्माण (सेन्ट्रल होटल)
(७) फ्लोअर एण्ड फूड लि०

श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहव ने अपनी २१ वर्ष की अल्पायु से ही अपने परिवार के कार्यों के साथ ही साथ भण्डारी परिवार के व्यावसायिक प्रतिष्ठानो का काम-काज देखना भी प्रारम्भ कर दिया था और साथ ही साथ नये उद्योगो की स्थापना कर उनकी प्रगति मे लग गये ।

(१) इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स एवं विस्को यानमार

श्रीमान् भैयासाहव ने महारानी रोड पर वहुत ही सुसज्जित एवं आधुनिक मशीन विक्री प्रतिष्ठान की स्थापना की जिसका नाम इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स रखा गया। यह सस्था अपने समय की एकमात्र प्रमुख संस्था थी, जिसके पास कई देश व विदेश की प्रमुख कम्पनियो की एजेन्सियाँ थी । जहाँ यह कृषि से सम्वन्धित सभी आधुनिक उपकरणो का विक्री केन्द्र था वही जापान की सुप्रसिद्ध कम्पनी विस्कोयान मार के सहयोग से एन्जिन के निर्माण का कार्य भी शुभारम्भ किया । ये एन्जिन उस समय अपनी तकनीकी विशेषताओ की वजह से वहुत लोकप्रिय हुए ।

(२) सेण्ट्रल होटल

श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहव एक लम्वे अरसे तक विदेश मे रहे एवं उन्होंने विश्व के कई प्रमुख देशो की यात्रा भी की । अपनी इन यात्राओ के दौरान वे कई आधुनिक होटलो मे रुके और उनके मस्तिष्क मे एक वहुत ही सुन्दर एव सभी सुविधाओ से युक्त होटल के निर्माण की कल्पना जागृत हुई । अत इस कल्पना को साकार रूप प्रदान करने के लिये सन् १९५१ मे शहर के मध्य रामपुरा-वाला विल्डिग मे 'सेण्ट्रल होटल' की स्थापना की । आज जो सुख-सुविधाएँ प्रदेश की अन्य होटल मे उपलव्ध है, वे आज से २५ वर्ष पूर्व भी इस होटल मे थी । श्रीमान भैया साहव के सफल संचालन के कारण जहाँ यह होटल शहर का एकमात्र श्रेष्ठ होटल वना वही यह देश के सुप्रसिद्ध होटलों की श्रेणी मे माना गया और आज भी यह प्रदेश का एक अग्रणीय होटल है ।

(३) देवास फ्लोअर आइल एण्ड डि-आइल केक फैक्टरी (सालवण्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट)—

नये-नये आधुनिक उद्योगो की जानकारी एकत्रित करने हेतु श्रीमान भैया साहब हमेशा देश-विदेशो से पत्र-व्यवहार किया करते थे। विदेशो से हुए पत्र-व्यवहार के माध्यम से उन्होंने साल्वण्ट एक्सट्रेक्सन प्लाण्ट की सम्पूर्ण जानकारी एकत्रित की। सालवण्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट द्वारा खलियो मे बचे हुए तेल को निकाल कर, तेल रहित खली विदेशो मे निर्यात की जा सकती थी जिससे देश विदेशी मुद्रा अर्जित कर सकता था।

उस समय तेल-मिलो से निकलने वाली खली मे ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत तेल रह जाता था जो तेल-मिलो की शक्ति के बाहर था। अत सन् १६५६ मे श्रीमान भैया साहब ने देवास फ्लोअर आईल एण्ड डी-आईल केक फैक्टरी (सालवण्ट एक्सट्रेक्शन प्लाण्ट) की स्थापना की और उसका निर्माण अपने निर्देशन मे बडी ही द्रुत-गति से करवाया। इस फैक्टरी द्वारा निकली हुई खली देवास-केक के नाम से विदेशो के बाजारो मे बहुत लोकप्रिय हुई। जब यह फैक्टरी उत्पादन के क्षेत्र मे अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गई तो श्रीमान भैयासाहब ने इस फैक्टरी का सचालन अपने परिवार के ही अन्य सदस्य को सौंप दिया और वे स्वय अन्य उद्योग की स्थापना के लिये योजना बनाने लगे।

(४) काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड

सन् १६६३ मे श्रीमान गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहब ने इगलैण्ड का प्रवास किया। वहाँ वे विश्व की विख्यात सस्था काउ एण्ड गेट (इंगलैण्ड) लिमिटेड के प्रबन्ध सचालको से मिले। तथा उन्होने इस विश्व विख्यात सस्था का सूक्ष्म अवलोकन किया और वे इस सस्था से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होने इस सस्था को अपने देश मे लाने का दृढ सकल्प किया। वहाँ के उच्च अधिकारियो से विचार-विमर्श कर स्वदेश रवाना होने से पूर्व वे काउ एण्ड गेट (इगलैण्ड) लिमिटेड के चेयरमेन मि० गेट से मिले और उन्हें अपने उच्च अधिकारियो के दल के साथ भारत आने का निमन्त्रण दिया। मि० गेट उनकी व्यवहार-कुशलता से अत्यधिक प्रभावित हुए और उन्होंने भारत आने का निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मि० गेट अपने दल के साथ सन् १६६२ मे ही भारत आये और श्रीमान भैया साहब के अतिथि बनकर रहे। काउ एण्ड गेट (इगलैण्ड) लिमिटेड के प्रतिनिधि मण्डल ने इन्दौर और आसपास के सभी स्थानो को सर्वे किया जहाँ प्रचुर मात्रा मे दूध आसानी से उपलब्ध हो सके। और अन्त मे उन्होंने उज्जैन जिले के मक्सी नामक स्थान का चयन कर सन् १६६३ मे काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड की स्थापना की। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड का अपने देश

मे एक विशिष्ट स्थान हो और इस विशाल डेरी फार्म के माध्यम से शुद्ध एवं ताजा दूध-घी, मक्खन एव क्रीम जन-साधारण तक सुगमता से पहुँच सके। वे अपने उद्देश्य मे सफल भी हुये किन्तु केन्द्रीय सरकार द्वारा कुछ तकनीकी कारणो से बेबीफूड (Baby Food) के निर्माण की अनुमति न मिलने के फलस्वरूप इस डेरी फार्म की प्रगति को रोक देना पड़ा। काउ एण्ड गेट (इगलैण्ड) लिमिटेड के चेयरमेन मि० गेट स्वर्गीय भैया साहब की कार्य-कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने प्रस्थान से पूर्व ये शब्द, **"यद्यपि हमे काउ एण्ड गेट (इण्डिया) लिमिटेड का कार्य केन्द्रीय शासन से अनुमति न मिलने से स्थगित करना पड़ रहा है किन्तु भविष्य मे जब कभी भी केन्द्रीय सरकार से इसकी अनुमति मिल जायेगी तो हम भण्डारी परिवार के माध्यम से ही आपके संस्थान को इस देश मे लावेंगे।"** मिस्टर गेट ने अपने इन शब्दो को आज भी बरकरार रखा है तथा समय-समय पर इस सम्बन्ध मे वे पत्र-व्यवहार करते रहते हैं।

(५) भण्डारी क्रासफिल्ड्स लिमिटेड

जहाँ स्वर्गीय भैया साहब ने एक अति आधुनिक डेरी फार्म के निर्माण की योजना बनायी थी, वही पशुओ को सन्तुलित पशु आहार उपलब्ध हो तथा जिससे पशुधन की उत्पादन क्षमता बढ़े एवं दूध की क्वालिटी भी सुधरे इस सम्बन्ध मे भी आपने गहरी रुचि ली तथा अपने इगलैण्ड प्रवास के समय पशुओं का (Balance Feed) बनाने वाली सुप्रसिद्ध सस्था मे क्रास फिल्ड्स एण्ड कलथ्राप लिमिटेड, लिव्हरपूल के सचालको से मिले और उनके सहयोग से भारत मे ऐसी ही सस्था बनाने की योजना तैयार की और जब उनसे इसकी सहमति मिल गई तो अपने लघुभ्राता श्री राजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के सहयोग से सन् १९६४ मे भण्डारी क्रासफिल्ड्स लिमिटेड की स्थापना की। यह सस्था उस समय प्रदेश की एकमात्र (Catte Food) फैक्टरी थी, जिसके उत्पादन देश तथा विदेशो मे बहुत प्रसिद्ध हुए तथा भण्डारी परिवार का नाम दूर-दूर तक फैल गया। आज भी भण्डारी क्रास फिल्ड्स लिमिटेड का देश मे अपना एक विशिष्ट स्थान है।

(६) फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड

भण्डारी क्रास फिल्ड्स लिमिटेड की फैक्टरी के निर्माण के साथ ही साथ उनके मन मे एक आधुनिक मैदा मिल के निर्माण का विचार भी आया। सर्वप्रथम उन्होंने गेहूँ मे निर्मित पदार्थ जैसे मैदा, रवा-सूजी, आटा एवं चापड के मार्केट रिपोर्ट का सर्वे करवाने का विचार किया तथा अपने मातहत अधिकारियो के साथ वे स्वय भी सर्वे के दौरान विभिन्न मण्डियो मे गये। इसके साथ ही आपने देश की कई प्रमुख मैदा-मिलो का भी निरीक्षण किया। सर्वे के माध्यम से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे की देश मे मैदा मिलें तो कई हैं, किन्तु उत्तम क्वालिटि निर्माण करने वाली मैदा

विदेश यात्रा

मध्यप्रदेश के प्रमुख उद्योगपति, समाजसेवी, धर्मनिष्ठ जैनरत्न सेठ श्री सुगनमलजीसाहब भन्डारी उद्योग-व्यवसाय के आधुनिक सर्वेक्षण के लिए अपने प्रतिभाशाली पुत्ररत्न श्री गजेन्द्रसिंह भन्डारी के साथ विदेश जाते हुए। स्वजन-मित्रो की असीम सद्भावनाए, मंगल कामनाए पुष्पहारो के रूप मे स्वीकार किये विमान तल पर। ई० सन् १९६०।

मिलें इनि-गिनि ही है। अत. यदि श्रेष्ठ उत्पादन करने वाली मैंदा मिल डाली जावे तो नि सदेह वेकरीज एवं होटल वालो को जहाँ उत्तम क्वालिटि का रवा-मैंदा मिलेगा वही गरीव एव मध्यम वर्ग के लोगो को अच्छी क्वालिटि का आटा उचित मूल्य पर उपलव्ध हो जावेगा और उन्हे राहत मिल सकेगी। अत अपने निश्चय को कार्य रूप मे परिणत करने के लिये उन्होंने देश-विदेश से पत्र-व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। पत्र-व्यवहार के माध्यम से उन्हें यह जानकारी मिली कि विश्व मे पोलैण्ड द्वारा निर्मित मैंदा-मिल मशीनरी ही सवसे श्रेष्ठ, स्वचालित एव पूर्ण विकसित हैं। गेहूँ मशीन मे डालने से रवा, आटा, मैंदा आदि के निर्माण तक सभी कार्य स्वचालित रूप से प्रतिपादित होता है। सन् 1965 मे पोलैण्ड की सुविख्यात कम्पनी मैंसर्स पौलिमैंक्स से फ्लोअर मिल को लगने वाली मशीनरी खरीदने हेतु पत्राचार प्रारम्भ किया। और अल्पावधि मे ही सम्पूर्ण मशीनरी खरीदने की कार्यवाही सम्पन्न हो गई। वे स्वय मशीनरी खरीदने एव उसकी कार्य-प्रणाली समझने के लिये पोलैण्ड की यात्रा पर गये। मैंसर्स पोलिमैंक्स के सचालक-गण स्वर्गीय भैयासाहेव की व्यवहार कुशलता से इतने प्रभावित हुए कि फ्लोअर मिल को लगने वाली सभी मशीनरी भारत भेजने के लिये सहमत हो गये। और उन्होने अनुवन्धित अवधि से पूर्व ही फ्लोअर मिल मशीनरी भारत भिजवाना प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही महिनो मे सम्पूर्ण फ्लोअर मिल मशीनरी अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँच गई। फैक्टरी निर्माण का कार्य स्वय भैयासाहव ने अपनी देख-रेख मे द्रुतगति से प्रारम्भ करवाया। वे स्वय प्रात ७ वजे से रात्रि के दस वजे तक निर्माण स्थल पर उपस्थित रहते और अपने मार्ग-दर्शन मे कार्य करवाते। निर्माण के साथ ही साथ यथासमय मशीन इरेक्शन वर्क भी करवाते गये। उनकी लगन और उत्साह देखते ही वनता था। निर्माण का कार्य इतनी द्रुतगति से हुआ कि ४ अक्टूवर १६६७ को प्रदेश की इस आधुनिक स्वचालित मैंदा मील ने अपना उत्पादन प्रारम्भ कर दिया और आज यह मैंदा मील देश की प्रमुख मैंदा मिलो मे मानी जाती है।

उत्पादन प्रारम्भ होते ही माल के विक्रय की जटिल समस्या सामने आई क्योकि मार्केट के लिये उस समय यह उत्पादन नया-नया ही था। आपने अपने स्वय के मार्गदर्शन मे विक्रय की समुचित योजनाएँ वनाई तथा उसी के अनुरूप विक्रय कार्य प्रारम्भ कर दिया और उन्हें इसमे सफलता भी मिली। अपने सभी व्यापारियो से, चाहे वे वडे हो या छोटे, वडी ही आत्मीयता से मिलते थे। उनकी समस्याओ का निराकरण करते और सुझावो का स्वागत। उनकी यह मान्यता थी कि साफ-सुथरी व्यावसायिक पद्धति ही व्यापारी को वांधे रख सकती है और यही कारण है कि आज यह सस्था शहर की अग्रणीय सस्थाओ मे मानी जाती है वे एक कुशाग्र वुद्धि के सचालक थे। व्यावसायिक कार्यो का सफल संचालन हो सके इसलिये उन्होने

कार्यालय के सम्पूर्ण कार्य को पृथक-पृथक विभागो मे विभक्त कर दिया था जैसे—विक्रय विभाग, एकाउण्ट्स विभाग, परचेज विभाग, एव प्रशासकीय विभाग । इसके अतिरिक्त प्लानिंग एण्ड डेव्हलपमैण्ट विभाग की भी स्थापना आपने स्वतन्त्र रूप से की थी । किन्तु इन सभी विभागो मे अभूतपूर्व सामन्जस्य था और सभी विभाग के कर्मचारी टीम वर्क से कम्पनी का कार्य सपादित करते थे ।

इस फैक्टरी का निर्माण ही इस उद्देश्य को सामने रखकर किया गया था कि यहाँ उत्तम और श्रेष्ठ गेहूँ निर्मित पदार्थ वनते रहें । इसी दृष्टिकोण को सामने रखकर पोलैण्ड के प्रमुख तकनीकी विशेषज्ञ मिस्टर जार्जपाल को फैक्टरी के सचालन के लिये वुलवाया ताकि उनकी तकनीकी विशेषताओ का लाभ अन्य मिलर उठा सकें ताकि आने वाले वर्षो मे मिस्टर पाल की अनुपस्थिति मे ये ही मिलर फैक्टरी का सफलतापूर्वक संचालन कर सकें । क्वालिटी कन्ट्रोल के लिये भी वे एक आधुनिक एवं सुसज्जित लेवोरेटरी का निर्माण करवाना चाहते थे । फैक्टरी के अधिक विकास एवं अन्य कई नई-नई योजनाओ की जानकारी एकत्रित करने के लिये स्वर्गीय भैया साहव ने मुझे अमेरिका और अन्य यूरोपिय देशो की यात्रा करने के लिए प्रोत्साहित किया ।

मैं जव उक्त देशो की यात्रा कर वापस आया तो मैंने स्वर्गीय भैयासाहव को कई नये-नये सुझाव दिये । मेरे इस सुझाव को कि हमे अलग से फूड टेक्नालाजी एवं रीसर्च विभाग की स्थापना करना चाहिये उन्होंने तुरन्त स्वीकृति दे दी, क्योकि वे चाहते थे कि इस विभाग के माध्यम से उपभोक्ताओ को वढिया से वढिया खाद्य पदार्थ उपलव्ध हो सके और उन्हे अपने इस कार्य मे सफलता भी मिली ।

इस मील द्वारा किये गये श्रेष्ठ उत्पादनो सुदृढ विक्रय व्यवस्था के फलस्वरूप अल्पावधि मे ही इसका उत्पादन देश के कई प्रमुख शहरो मे द्रुतगति से पहुँच गया और उत्तमता की वजह से दिन-प्रतिदिन लोकप्रिय होता चला गया । स्वर्गीय भैया साहव के सफल सचालन एव मील के श्रेष्ठ उत्पादनो के फलस्वरूप इस मील का नाम देश की अन्य प्रमुख फ्लोअर मिलो के नक्शे पर अग्रणी रूप से उभरकर आया और इसी वजह से स्वर्गीय भैयासाहव को आल इण्डिया रौलर फ्लोअर मिलर्स फेडरेशन के मैनेजिंग वोर्ड के एक सलाहकार के रूप मे मनोनित किया गया, साथ ही साथ आप मध्य प्रदेश रौलर फ्लोअर मिलर्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष भी वनाये गये ।

स्वर्गीय भैयासाहव ने जिस मेहनत एव लगन से इस मील का निर्माण किया था, आज यह मील एक वटवृक्ष की भाँति चहुँमुखि प्रगति कर रहा है । आज इस मील के उत्पादन देश के सभी प्रमुख वाजारो मे अपना विशिष्ट स्थान वनाये हुए है । हमे गर्व है कि मध्यप्रदेश मे आज इस मील के उत्पादनो का विक्रय सवसे अधिक है ।

हमारे वर्तमान प्रबन्ध संचालक श्री जसवीरसिंह जी भण्डारी, जो कि स्वर्गीय भैया साहब के ज्येष्ठ पुत्र है, उन्ही के पद-चिन्हो पर चलकर इस मील का बहुत ही कुशलता पूर्वक सफल संचालन कर रहे हैं एव अपने पिता श्री नाम रोशन कर रहे हैं।

कुशल उद्योगपति, समाज सेवक, निष्ठावान कर्मयोगी, प्रेरक व्यक्तित्व, दूरदर्शी एवं कुशल विनियोजक एवं सहृदय व्यक्तित्व :

अभी तक आप स्वर्गीय भैयासाहब के बचपन से लेकर उनके प्रतिष्ठानो की स्थापना, उनके संचालन आदि के सम्बन्ध मे पढ़ते आ रहे थे। अब मैं उनके जीवन से सम्बन्धित उपरोक्त सभी मुद्दो पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास कर रहा हूँ—

यह सर्व विदित है कि स्वर्गीय भैयासाहब एक कुशल उद्योगपति थे। उन्होने पशुपालन, दुग्ध पदार्थ उत्पादन, बेकरी तथा अन्य कई उद्योगो की स्थापना की तथा उनका सफल संचालन भी किया। उन्होने अपने व्यावसायिक पक्ष के साथ ही ऐसे प्रतिष्ठानो में, जहा खाद्य पदार्थो का निर्माण होता था, इसलिये अभिरुचि ली की ये सभी जनकल्याण के साथ ही साथ दैनिक उपयोग की प्रमुख आवश्यकताओ की भी पूर्ति करते थे। वे अपने सफल संचालन से काफी लोकप्रिय हुए और इसी वजह से बैंक आफ इण्डिया ने उन्हें डायरेक्टर के पद पर मनोनित किया। साथ ही वे आल-इण्डिया मैन्युफेक्चरर्स आर्गेनाइजेशन के मध्यप्रदेश के संस्थापक अध्यक्ष भी बनाये गये। इस संस्था का विशाल भवन जो पोलोग्राउण्ड मे स्थित हैं, स्वर्गीय भैयासाहब की प्रेरणा एव प्रयत्नो का ही फल है।

स्वर्गीय भैयासाहब का दायरा अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठानो तक ही सीमित नही था। प्रतिष्ठानो के संचालन मे यद्यपि वे अत्यधिक व्यस्त रहा करते थे किन्तु इसके बावजूद भी वे सामाजिक एव धार्मिक कार्यों मे बड़ी ही लगन एव निष्ठा से भाग लिया करते थे। निम्नांकित संगठनो से उनका आबद्ध रहना इस बात की पुष्टि करता है :—

(१) १९५६ से रोटरी क्लब के आजीवन सदस्य
(२) राय बहादुर कन्हैयालालजी भण्डारी पारमार्थिक ट्रस्ट के ट्रस्टी
(३) मै० नन्दलाल भण्डारी मील प्रॉवीडेण्ट फण्ड के ट्रस्टी
(४) मध्यप्रदेश क्रिकेट एसोसिएशन के मैनेजिंग कमेटी के सदस्य
(५) यशवंत क्लब इन्दौर के सदस्य।

आपकी ही प्रेरणा से भारतीय ग्रामीण महिला बेकरी यूनिट का राउ (इन्दौर) मे शुभारम्भ हुआ जो आज समाज की मध्यमवर्गीय महिलाओ के कल्याण एव भरण-पोषण का प्रमुख अंग है। शहर के मध्य स्थित नन्दलाल भण्डारी हायर सैकण्डरी विद्यालय के वे प्रमुख सलाहकार थे। समय-समय पर वे विद्यालय जाकर अपने कुशल

निर्देशन एव विचारो से शिक्षको एव विद्यार्थियो का हौसला वढाते रहते थे। नन्दलाल भण्डारी मेटरनिटि हास्पिटल का भी आप समय-समय पर निरीक्षण करते थे। इस अस्पताल को सुसज्जित करने मे भी आपका काफी वडा योगदान रहा।

स्वर्गीय भैयासाहव समाज के एक प्रमुख अग तो थे ही, धर्म के प्रति भी उनकी काफी अभिरुचि थी। वे सभी धर्मो को समान दृष्टि से देखते थे। जिस धर्म मे जो भी अच्छी वात ग्रहण करने को मिलती, वे उसे अवश्य ग्रहण करते थे। जव भी समय मिलता आध्यात्मिक लाभ लेने के लिये गीता भवन, महावीर भवन, सेवा सदन आदि धार्मिक स्थलो पर वे जाते रहते थे। अपने कर्मचारी चाहे वे किसी भी धर्म के क्यो न हो, उनके धार्मिक पर्व पर विशेष रूप से सम्मिलित होते और उन दिन कार्यालय मे अवकाश रखते। स्वर्गीय गजेन्द्रसिहजी भैयासाहव दूर दृष्टि व्यक्तित्व के धनी एव कुशल प्रशासक थे। उनके कार्य की यह विशेपता थी की जो भी व्यवसाय वे प्रारम्भ करते आने वाले २०-२५ वर्षो वाद की आवश्यकता को मद्देनजर रखते हुए उसकी स्थपना करते थे तथा उस समय उसकी क्या स्थिति होगी इस ओर वे विशेष ध्यान देते थे। वे कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति थे। जो भी पेपर या फाईल वे एक वार देख लेते, उसे कभी नहीं भूलते। ८-१० वर्ष पूर्व के सन्दर्भ मानो उनकी जवान पर रहते थे। यदि कोई पेपर मुझे नही मिलता तो वे मुझसे कहते कि आप अमुक फाईल देखें उसमे आपको रिफरन्स मिल जावेगा। वे सदैव मुझसे यही कहते कि प्रत्येक कार्य को अगर सोच-समझ कर एव योजनावद्ध तरीके से करोगे तो कभी कठिनाई महसूस नही होगी। जव भी वे कोई नया प्रोजेक्ट अपने हाथ मे लेते तो सर्वप्रथम उसकी योजना क्रमानुसार कागज पर उतार लेते तथा हर पहलू पर उसका गहन अध्ययन करते ताकि उन्हें आत्मविश्वास हो जाय कि यह योजना सफल होगी। यही कारण है कि उन्होंने जिन-जिन प्रतिष्ठानों की स्थापना की वे सभी प्रतिष्ठान योजनावद्ध रूप से यथासमय साकार हुए।

स्वर्गीय भैयासाहव अनुशासन के प्रवल समर्थक थे। उनके कार्यालय का अनुशासन उच्च श्रेणी का था। उन्हें सफाई अधिक पसन्द थी। अपने कार्यालय व फैक्टरी को वे हमेशा सुव्यवस्थित और साफ रखते थे। प्रत्येक कर्मचारी साफ-सुथरी पोशाक पहन कार्यालय मे आवें, उसकी टेवल सुव्यवस्थित हो, इस ओर भी वे विशेष ध्यान देते थे। कार्यालय के समय, कम्पनी के कार्य के अलावा अन्य कोई भी कार्य करना वे पसन्द नही करते जो कम्पनी के हित मे न हो। कार्य का तुरंत निराकरण (Ouick disposal) उनकी प्रमुख विशेषता थी। विलो के भुगतान मे वे विलम्व नही होने देते थे क्योकि वे नहीं चाहते थे कि कोई भी प्रतिनिधि निरर्थक उनकी कम्पनी के चढकर काटे। अपने ग्राहको के प्रति उन्हें विशेष स्नेह था। उनकी कठिनाईयो का निराकरण वे तुरन्त करते थे और जो भी उनके अच्छे सुझाव होते, उसका भी स्वागत करते थे।

भैयासाहब व्यावसायिक कार्य पर बाहर गाँव जाते और वापसी पर यदि कार द्वारा रतलाम या भोपाल से उनका इन्दौर आने का प्रोग्राम होता तो वे समस्त कार्यालयीन कागजात जो उनकी अनुपस्थिति मे आते, बुला लेते थे और रास्ते मे ही उनका अवलोकन कर लेते ताकि आफिस मे आते ही उनका अविलम्ब निराकरण (डिस्पोजल) किया जा सके। व्यवसाय से सम्बन्धित वे करीब ४००-४५० फाइलें देखते थे। उन्हे देश-विदेश की पत्रिकाएँ, अन्य ज्ञानार्जन सामग्री आदि पढने की भी अत्यधिक अभिरुचि थी। जब कभी भी उन्हे समय मिलता वे इन पत्रिकाओ से ज्ञान अर्जित करते। उनका यह दृष्टिकोण था कि ज्ञान ही सच्ची सम्पत्ति है। उन्होंने सभी विषयो का गहन अध्ययन किया और इसी ज्ञान ने उन्हें नम्रता की प्रतिमूर्ति बना दिया। जो भी उनसे मिलता उनके नम्र व्यवहार से प्रभावित हुए बगैर न रहता। वे ऐसे सभी कागज जो एकतरफा कोरे होते या उनका रफ वर्क मे उपयोग हो सके, अपने पास एकत्रित करके रखते और उनका उपयोग किसी न किसी रूप मे अवश्य करते थे। यद्यपि ये कागज के टुकडे उनके लिये कोई महत्त्व नही रखते थे किन्तु यह उनकी सूक्ष्मता का ही द्योतक है और यही कारण था कि उनके कार्यालय मे अनावश्यक अपव्यय नही हो पाता था।

अगर वे चाहते तो एक प्रतिमावान लक्ष्मी पुत्र की हैसियत से राजनीति मे भी उतर सकते थे किन्तु उन्होने ऐसा न कर अपना अधिक से अधिक समय बौद्धिक एवम् रचनात्मक कार्यो मे ही लगाया। वे अत्यन्त ही विलक्षण एव तीक्ष्ण बुद्धि के व्यक्ति थे। कोई भी कार्यालयीन समस्या हो, वे उसका तत्काल निराकरण कर देते थे। अपने अधीनस्थ कर्मचारियो एव अधिकारियो से वे ऐसी ही अपेक्षाएँ रखते थे। वे चाहते थे कि कार्यालय से सम्बन्धित हर कार्य का उन्हें तत्काल जवाब मिल सके।

आज वह महान् विभूति हमारे बीच नही रही। २४ सितम्बर, १९७१ का वह अशुभ दिन मेरे जैसे अनगिनित लोगो, परिजन, मित्र, स्नेही एव हितैषी आजन्म भुला नही पायेंगे। श्री गजेन्द्रसिंह जी जिन्हें हम श्रद्धा एवम् आदर से 'भैया साहब' कहकर पुकारते थे, हमसे विमुख होकर दिव्य ज्योति मे लीन हो गये। २४ सितम्बर, १९७१ की सुबह जब उनके आकस्मिक निधन का समाचार हमे मिला तो हम हतप्रभ रह गये। हमे विश्वास ही नही हुआ कि वे इतनी जल्दी इस संसार से अपना नाता तोडकर जा सकते हैं। कल तक जिनमे बडे-बड़े कार्य करने का अदम्य उत्साह था, वह एकाएक हमसे कैसे विमुख हो सकते हैं, किन्तु काल के कराल हाथो ने सचमुच ही उन्हें हमसे छीन लिया था और हमे यह मानने के लिये विवश कर दिया कि भैया साहब अब इस दुनिया मे नही रहे।

उन्हें करीब एक सप्ताह पूर्व मामूली-सा हृदयाघात (हार्ट अटैक) हुआ था। तत्काल शहर के प्रमुख चिकित्सको को उनके इलाज के लिये बुलाया गया और इलाज

प्रारम्भ कर दिया गया था। वे अपने कार्य की धुन मे इतने मग्न थे कि उन्होंने अपने स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता नही की। जब भी मैं फोन पर उनसे उनके स्वास्थ्य के बारे मे पूछता तो उनका एक छोटा-सा उत्तर रहता कि मैं बिल्कुल ठीक हूँ। अवसान के एक दिन पूर्व तक वे बराबर अपने काम-काज देखते रहे। २४ सितम्बर, १९७१ की सुबह से ही उनका स्वास्थ्य बिगडता चला गया और भरसक प्रयत्नों के बावजूद भी इस महान् विभूति की आत्मा शून्य मे लीन हो गई।

उनकी शवयात्रा मे सम्मिलित होने के लिये हम सब लोग उनके निवास-स्थान नन्दनवन कोठी पर पहुँचे। मैंने जब भैया साहब की मृत देह को देखा तो मुझे विश्वास ही नही हुआ कि भैया साहब सचमुच मे इस दुनिया से कूच कर गये हैं। उनकी देह ऐसी लग रही थी मानो एक कुशल व्यावसायिक अपने सम्पूर्ण कार्य से निवृत्त होकर, सन्तोष के साथ, चैन की नींद ले रहे हो। किन्तु यथार्थ कुछ और ही था। पलभर मे ही उनके निधन का समाचार द्रुतगति से सारे शहर मे फैल गया। देखते-देखते ही अपार जनसमूह स्वर्गीय भैयासाहब को अपनी अन्तिम श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु उनके निवासस्थान पर एकत्रित हो गया। भण्डारी परिवार के समस्त प्रतिष्ठानो के साथ ही साथ शहर के अन्य कई प्रमुख बाजार भी शोक-निमित्त बन्द कर दिये गये।

उनके पार्थिव शरीर की अर्थी को जैसे ही उनके वृद्ध पिताश्री अपने कमजोर कन्धों पर लेकर बाहर निकले तो एकत्रित जन-समूह की आँखो से अविरल अश्रुओं की धारा बहने लगी। यह कैसी विधि की विडम्बना थी कि एक वृद्ध पिता अपने युवा पुत्र की अर्थी को कन्धा दे रहा था। जब भैयासाहब की शवयात्रा अपने गन्तव्य स्थान की ओर बढी तो एकत्रित जन-समुदाय भी अपनी अन्तिम अश्रुपूरित श्रद्धांजलि अर्पित करने हेतु शवयात्रा के पीछे-पीछे चल पड़ा। उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री जसवीरसिंह जी ने उनकी चिता को अग्नि देकर प्रज्वलित किया। धो-धो करते हुए चिता सुलग पडी और भैया साहब का पार्थिव शरीर अग्नि की गोद मे सदा के लिये समा गया।

कई धार्मिक, सामाजिक एव राजनैतिक कार्यकर्ताओ ने स्वर्गीय भैया साहब के सम्बन्ध मे अपने-अपने विचार प्रकट किये जो उनके अन्तिम सस्कार के बाद एक विराट शोकसभा मे परिणित हो गई थी।

चिता की उठती हुई लपटो से मैंने तथा मेरे जैसे कई व्यक्तियो ने यह शिक्षा ग्रहण की कि इस जीवन का कोई विश्वास नहीं। अत: कर्म ही जीवन है, कर्म ही शाश्वत है। स्वर्गीय भैया साहब कार्य करते-करते ही इस दुनिया से चले गये अत हमे उनके पथ का अनुसरण कर, उनके जो भी अवशेष कार्य रह गये हैं, उनको गति प्रदान करना है ताकि जन-जीवन के कल्याण मे हम व्यक्तिगत रूप से तथा भण्डारी परिवार की ओर से देश और समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सकें। यदि हम
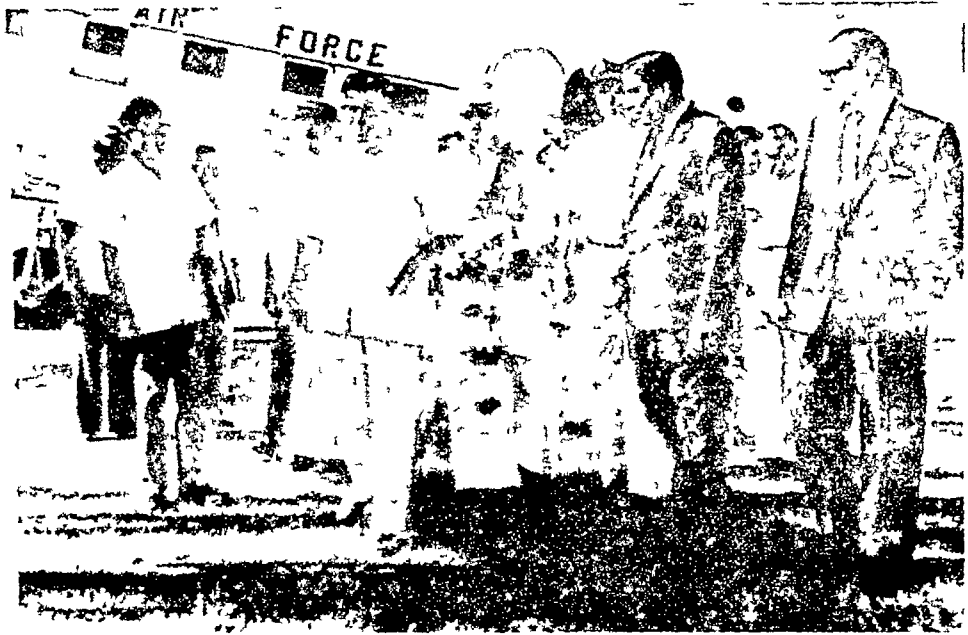
बहुमुखी कर्तृत्व की विविध झांकियां :-

मध्यप्रदेश स्टेट बोर्ड ऑफ ऑल इण्डिया मेन्यूफेक्चरिंग आर्गेनाइजेशन के उद्घाटन समारोह पर आदरणीय सुब्रमण्यम का स्वागत करते हुए श्री गजेन्द्रसिंह जी भन्डारी, [चेयरमैन म०प्र० स्टेट बोर्ड ऑफ ए० आई० एम० ओ० १९६२]
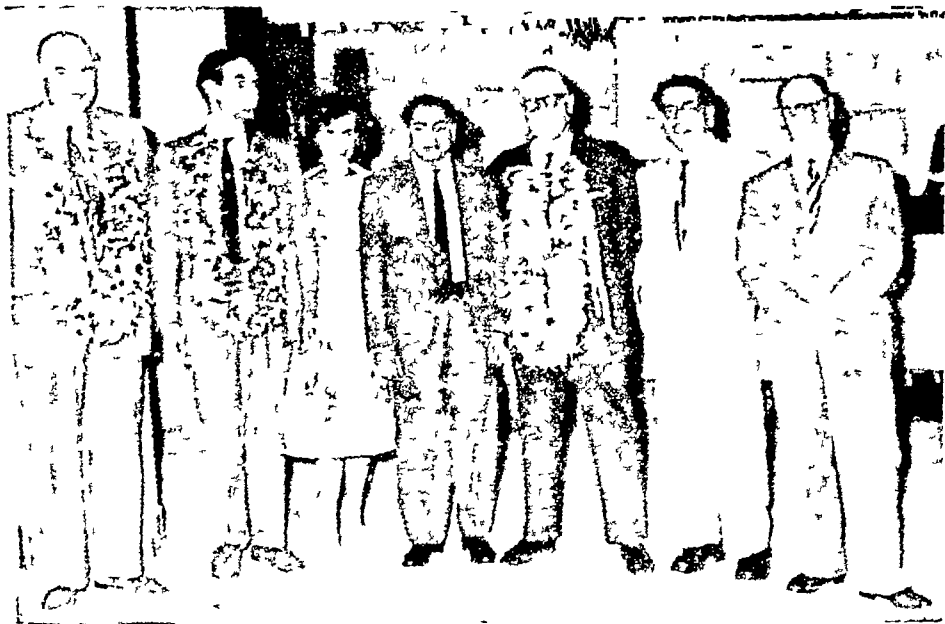
'काउ एण्ड गेट' इण्डिया लि० के कोलोबोरेशन के सम्बन्ध मे आए हुए विदेशी मेहमानो का स्वागत समारोह

मि० राबर्टसन, मि० आइ० एन० वार्टर, मिसेस टेट, श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी ले० कर्नल गेट (मेनेजिंग डायरेक्टर यूनीगेट), मि० शाह (चार्टेड एकाउण्टेंट), मि० टेट

विचार-चर्चा और सहयोग :-

श्री गजेन्द्रसिंह भण्डारी ए० आई० एम० ओ० बम्बई की कार्यकारिणी सस्या के समक्ष अपने अनुभव एव विचार प्रस्तुत करते हुए ।

श्री जगजीवनराम जी की उपस्थिति मे ए आई एम ओ के सदस्यो को सम्बोधित करते हुए श्री शकरदयाल जी शर्मा

दायें से वायें–श्री शकरदयाल जी शर्मा, श्री एस आर नादेडकर, श्री वी. के टोग्या, १८२५ जगजीवनराम जी, श्री टी सी. जेठमलानी, श्री गजेन्द्रसिंह जी भन्डारी

अपने उद्देश्य मे सफल हो सके तो ही यह हमारी स्वर्गीय भैया साहब के प्रति सच्ची श्रद्धाजलि होगी।

स्वप्न साकार कर रहे है

स्व० भैया साहब जिनकी केवल स्मृतियाँ ही शेष है, स्मृति रूप है उनकी तीन प्रतिमूर्तियाँ। उनके सुपुत्र श्री जसवीरसिंह जी, जम्बूकुमार जी एवं श्री सतीशकुमार जी। ज्येष्ठ पुत्र श्री जसवीरसिंह जी ने अपने पिता श्री के कार्यभार को जहाँ आत्मसात किया है, वही श्री जम्बूकुमारजी मे उनके व्यक्तित्व की अमिट छवि व्याप्त है तथा श्री सतीशकुमारजी मे स्व० भैया साहब की सौम्यता परिलक्षित होती है।

तीनो ही पुत्ररत्न अपने पिताश्री के स्वप्नो को साकार करने मे जुटे हुए हैं, एव घरेलू कार्यों के साथ-साथ व्यावसायिक प्रवन्धो को प्रदत्त मार्गदर्शन के आधार पर दिनोदिन उत्तरोत्तर गति प्रदान कर रहे है।

निष्ठुर विधि के विधान का असह्य हृदय-विदारक वज्रपात जो कि तीनो पुत्रो की वाल्यावस्था एवं शैक्षणिक काल मे (अचानक) अकस्मात् असमय मे हुआ। जिसे पूर्णरूपेण चुनौती स्वरूप स्वीकार करने को इन्हे विवश होना पड़ा।

श्री जसवीरसिंह जी ने इस वज्रपात के पश्चात् अपने पिता श्री की पद्धति को अगीकार कर अपनी पैनी दृष्टि से फ्लोअर एण्ड फूड लि० के सभी विभागो के कार्यों का विना हस्तक्षेप अध्ययन करते रहे एव अल्पावधि मे सचालन सम्बन्धी सभी जानकारियाँ प्राप्त करके शनै-शनै स्वतन्त्र कार्य देखना प्रारम्भ किया, फलस्वरूप श्री सेठ सुगनमलजी साहब ने विश्वास व्यक्त करते हुए उन्हें सचालक का पदभार सौपा। अन्तत शीघ्र ही वे कम्पनी के मैनेजिग डायरेक्टर (प्रवन्ध-सचालक) नियुक्त कर दिये गये।

जैसा कि स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह भैया साहब का उद्देश्य था कि अपनी सस्था द्वारा यथाशक्ति अधिक से अधिक उत्पादन क्षमता बढाई जाए उनके पुत्र उनके स्वप्न को साकार करते हुए उच्चतम शिखर पर पहुँचाने का प्रयास करते हुए दिनोदिन प्रगति की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

अपने यशस्वी स्व० पिताश्री के अनुरूप ही श्री जसवीरसिंह जी के प्रगति का प्रशस्त मार्ग भी स्वागतार्थ स्वयमेव खुला हुआ है, फलस्वरूप वे मध्यप्रदेश रौलर फ्लोअर मिलर्स एसोसिएशन के उपाध्यक्ष पद पर मनोनीत किये गये हैं। सौम्य भावुक एव दरियादिल के कर्मनिष्ठ युवा उद्योगपति है एव अपने कर्मचारियो को पारिवारिक सदस्य मानते हुये उनके सुख-दुख मे हर सम्भव सहायता पहुँचाने मे वे कभी नही चूकते।

किसी भी सस्था का विकास कार्य सचालन-विधि पर निर्भर करता है। श्री जसवीरसिंह जी कुशल सचालक है एव इस अल्पवय मे जो कुछ उन्होंने कर दिखाया है एव जिस शैली से वह कार्य कर रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नेपथ्य से अथवा कोई अदृश्य अद्भुत शक्ति स्वर्ग से इन्हें सत्कार्यों की प्रेरणा प्रदान कर रही हो। □

एक सुवासित पुष्प : जो असमय ही मुरझा गया !

जीवन : एक चिन्तन

□ मुनि श्री महेन्द्रकुमारजी 'कमल'

किसी के जीवन के सम्बन्ध मे कुछ लिखने का या कहने से पूर्व यह समझना परम आवश्यक होता है कि जीवन क्या है ?

इस प्रश्न पर कि जीवन क्या है ? विश्व के मूर्धन्य मनीषियो ने गम्भीर चिन्तनपूर्वक विविध परिभाषाओ का निर्माण किया है एव आज भी हो रहा है। जीवन एक है। उसको प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी नजर से अपनी-अपनी दृष्टि से देखने का प्रयास करता है। जब विभिन्न दृष्टियो से देखने का प्रयास किया जाता है, तब वह वस्तु एक होकर भी अनेक हो जाती है। शूरवीर की भाषा मे जीवन एक साहस है, कायर की भाषा मे जीवन एक रोना है, खिलाडी की भाषा मे खेल है, कवि की भाषा मे एक सुन्दर काव्य है, अस्तु।

एक साधक ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—

किं जीवनम् ?

जीवन क्या है ? समाधान किया गया—दोषविवर्जितम् यत् ? जिसमे कोई दोष नही है, वही जीवन है। सत तुकाराम ने कहा—मानवजीवन स्वर्णकलश के समान है। उसमे विलास की सुरा न भरकर सेवा की सुधा भरो। सोचता हूँ, स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी साहब भण्डारी जिनके सम्बन्ध मे अगली पक्तियाँ प्रकट होने जा रही है। वैसे किसी के जीवन की आन्तरिक गहराइयो मे जाना सागर के अन्तराल मे प्रवेश करने के समान है। समुद्र की अतल गहराई की थाह पाना कठिन है, ऐसे ही किसी जीवन को सम्पूर्ण रूप से परख पाना कठिन ही नही, लगभग असभव है। परन्तु यह तो निर्विवाद सत्य है कि स्वर्गीय श्रीयुत भण्डारी जी का जीवन दोष-विवर्जित सौरभ से परिपूर्ण एव आलोकमय था। तभी तो दैहिक दृष्टियाँ विलीन हो जाने के बावजूद भी आज उनके सद्गुण मण्डित सुवासित जीवन की स्मृतियाँ लोकमानस मे तैर रही हैं। नि सन्देह सफल जीवन ही वही होता है।

जिन्दगी केवल न जीने का बहाना
जिन्दगी केवल न सासो का खजाना
जिन्दगी सिन्दूर है पूरब दिशा का
जिन्दगी का काम है सूरज उगाना ॥

जीवन का यह विकास निष्ठा एवं कर्म-साधना का विषय होता है। प्रतिभा की पृष्ठभूमि पर एक व्यक्ति अपनी निष्ठा एव कर्म साधना के वल पर इतना विकास सम्पादित कर लेता है और वह भी अल्पावधि मे ही। जितना विकास कार्य अन्य व्यक्ति पूरे जीवनभर के प्रयासो से भी नही साध सकते, विकासोन्मुख व्यक्तियो के व्यक्तित्व मे ऐमा विशिष्ठ एव सौष्ठव होता है तो वे सहज ही मे अपना, न केवल अपना ही विकास मम्पादित कर लेते है, अपितु अपने प्रशमनीय विकास मे सवको अपनी ओर चुम्बकवत् सहज आकृष्ट भी कर लेते हैं।

ऐसा ही विशिष्ट व्यक्तित्व था स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी भण्डारी का जिन्होंने अपने अल्प जीवन-काल मे ही अपने जीवन को सद्‌गुणो से विकसित किया तथा उस खिले हुए जीवन की सुवाम से सवको आल्हादित वनाया।

जन्म और वाल्यकाल

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी का जन्म दिनाक ९ नवम्वर, १९२९ को इन्दौर के विख्यात भण्डारी कुल मे हुआ। वे धर्मनिष्ठ, सुश्रावक, प्रसिद्ध श्रीमन्त श्री सुगनमल जी भण्डारी के सुपुत्र थे, जो प्रमुख व्यवसायी एव समाजसेवी हैं।

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की प्रसिद्ध उक्ति के अनुरूप वाल्यकाल मे ही गजेन्द्र वावू की विशिष्ट प्रतिभा के लक्षण प्रकट होने लग गये थे। उनकी विलक्षण चचलता ने सवका मन मोह लिया तथा वे सव के गहरे प्यार के प्रतीक वन गये।

प्राथमिक शिक्षा के पश्चात् उनकी सम्पूर्ण शिक्षा-दिक्षा इग्लैण्ड मे ही सम्पन्न हुई। वहाँ से उन्होंने सीनियर कैम्ब्रीज की परीक्षा उत्तीर्ण करने के वाद कैमीकल इन्जीनियरिंग मे प्रवेश लिया। अपनी प्रखर वुद्धि के कारण ही हमेशा उनके परीक्षा परिणाम शानदार रहे तथा वे अपने शिक्षा संस्थान के छात्रो मे भी लोकप्रिय हो गये। पाठ्यक्रम के सिवाय सस्थान की अन्य विविध प्रवृत्तियो मे भी वे सोत्साह भाग लेते थे। इन्जीनियरिंग के शिक्षण-काल मे उन्होंने इगलैण्ड का विस्तृत भ्रमण किया तथा वहाँ की सस्कृति एव सभ्यता का गहराई से परिचय भी प्राप्त किया। कैमीकल इन्जीनियरिंग मे स्नातकीय उपाधि प्राप्त कर वे भारत लौटे।

इन्जिनियरिंग के छात्र होते हुए भी गजेन्द्र वावू भाषा जगत के प्रति पूर्णरूप से आकर्पित थे। अंग्रेजी भापा के उच्च ज्ञान के साथ-साथ हिन्दी भाषा का भी उनको श्रेष्ठ ज्ञान था। वोलने व लिखने मे दोनो ही भापा पर उनका समान रूप से अधिकार था। मराठी भापा का भी उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। सामान्य रूप से उनकी तकनीकी शैली के वावजूद उनकी साहित्यिक प्रवृत्तियो के प्रति गहरी अभिरुचि थी।

अपनी शिक्षा एव अपने अनुभव की दृष्टि से श्री गजेन्द्र बाबू का मस्तिष्क-विकास, अल्पवय मे सन्तोषजनक रीति से प्रभावोत्पादक हो गया था, अत उन्होंने व्यवसाय क्षेत्र मे कदम रखा तो उनके प्रौढ़ विचारो से सभी प्रभावित हुए। कम समय मे ही वे इस विशेष योग्यता के कारण कई औद्योगिक संगठनो के व्यवस्थापक और मार्गदर्शक बन गये।

कुशल व्यवसायी एवं सफल गृहस्थ

स्वर्गीय श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी ने परिपक्व शिक्षा एव अनुभव के बल पर औद्योगिक क्षेत्र मे अपनी विशेष योग्यता की छाप जमा दी। कुशल व्यवसायी के रूप मे उन्होंने इतनी प्रतिष्ठा अर्जित की कि कई सगठनो को उनसे प्रेरणा मिली तथा कई सगठनो से वे सम्बद्ध रहे। औद्योगिक क्षेत्र मे उन्हे काफी सम्मान मिला। व्यवसाय मे कुशलता इस आधारशिला पर आधारित थी कि वे एक सफल सद्‌गृहस्थ थे। वे अपने गृहस्थ धर्म के प्रति सदा सजग रहते थे तथा कभी भी किसी सदस्य को किसी प्रकार से असन्तुष्ट नही होने देते थे। बडो के साथ आदर एव छोटो के साथ स्नेह उनके स्वभाव मे बसा हुआ था। वे हरवक्त इतने सहज बने रहते थे कि कभी किसी सदस्य ने उनकी बात को बुरा नही माना। अपितु उन्होंने जो कुछ भी कहा उसे सहर्ष सम्मानपूर्वक स्वीकार किया। यह उनके स्वभाव की ही विशेषता थी कि उनका सबके साथ एकसा मधुर व्यवहार था। अपने पीछे वे अपनी धर्मपत्नी श्रीमती भुवनेश्वरी देवीजी तथा तीन पुत्र सर्वश्री जसबीर, श्री जम्बू एव श्री सतीश जी को छोड गये है। आज उनमे जिस प्रकार के सजग, सक्रिय, धार्मिक, पवित्र जीवन की झलक देखने को मिलती है वह स्पष्ट श्रीयुत भण्डारीजी के ही सुसंस्कारो का सुफल है। वे एक सद्‌गृहस्थ थे। यह इसी का सुपरिणाम है। अपनी अल्पायु मे उन्होंने कुशल व्यवसायी एव सफल गृहस्थ होने के जो आदर्श प्रदर्शित किये, स्पष्ट है कि उनकी आज भी हर कोई मुक्त कण्ठ से सराहना करता है। शायर की भाषा मे—

तुम्हें कहते हैं मुर्दा कौन, तुम जिन्दों के जिन्दा हो।
तुम्हारी नेकियां बाकी, तुम्हारी खूबियां बाकी॥

"सादा जीवन उच्च विचार" उनका मोटो था

वे एक धनाढ्य एव सम्पन्न परिवार मे पैदा हुए थे। अंग्रेजी कहावत के अनुसार वे अपने मुह मे चान्दी के चम्मच के साथ जन्मे थे। उनकी शिक्षा-दिक्षा भी मुख्य रूप से विदेशो मे हुई फिर भी उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वे सादा जीवन उच्च विचार के अनुपालक थे। यह मोटो उनके विचार एव व्यवहार का आदर्श था। जिसका उन्होने सम्पूर्ण जीवनपर्यन्त निष्ठापूर्वक निर्वाह किया।

समृद्धि के शिखर पर बैठकर भी उनमे आश्चर्यजनक सादगी थी। यह

सादगी न केवल उनके रहन-सहन मे ही थी, अपितु उनके विचारो मे भी सर्वतोभावेन उसका स्वरूप स्पष्टत. परिलक्षित होता था। नम्रता एव उच्चता तो जैसे उनके जीवन के कण-कण मे कूट-कूटकर परिव्याप्त थी। छोटे से छोटा व्यक्ति ही क्यो नही सामने आया हो, उनका व्यवहार उसके प्रति भी सदा नम्र दिखाई दिया। धन का मद उन्हे छू भी नही पाया था और यही कारण था कि धनी होने के बावजूद भी उन्हे अभिमान नाम-मात्र को भी नही था। जैसी उनकी मन की सादगी थी, वैसी ही उनके व्यवहार की भी सादगी थी। उनके विचार सरल थे तो रहन-सहन, खान-पान भी सादा था। बडप्पन की भी यह तारीफ होती है कि धन-बल व्यक्ति के जीवन मे अभिमान न आने दे और दुराचरण की तरफ कदम न बढाने दें। स्वर्गीय श्रीयुत भण्डारी जी ऐसे बडप्पन के जीवन्त प्रमाण थे। जीवन के सभी क्षेत्रो मे उनकी सात्विक वृत्ति सर्वत्र परिलक्षित होती थी। विचार मे सात्विक वाणी मे सात्विक तो कर्म मे सात्विक, घर मे सात्विक तो बाहर सात्विक सात्विकता एव शुद्धता उनके जीवन के प्रधान गुण बन गये थे। इसी सात्विकता के परिणामस्वरूप वे सदा निर्भीक दिखाई देते थे। किसी गलती को गलती बताने मे वे सकोच नही करते थे। तो किसी सत्य विचार को स्पष्टता के साथ लाने मे भी नही चूकते थे। उनके पास अपने सयम का, चरित्र का, मर्यादा का ऐसा बल था, ऐसी तेजस्वी शक्ति थी कि उनके आचरण मे निर्भीकता समा गई थी। जीवन जब सादा और सात्विक हो तथा विचार उच्च हो, तब निर्भीक वृत्तियाँ स्वत ही पनप जाती है। क्योकि वैसा व्यक्ति बुराई के साथ कभी भी समझौता नही कर सकता है, उसके आचरण की उज्वलता उसे अपराजित बनाये रखती है। स्वर्गीय भण्डारीजी की निर्भीकता का रहस्य भी वस्तुत उनकी सात्विक वृत्ति की गूढता मे छुपा हुआ था।

नियमित एवं पुरुषार्थी जीवन

स्वर्गीय श्रीयुत भण्डारीजी ने एकान्त रूप से नियति एव भाग्य पर विश्वास करके कभी भी निष्क्रिय बैठना नही सीखा। उनका विचार था कि व्यक्ति अपने पुरुषार्थ को सदा जागृत एव कार्यरत रखे तथा इस विचार को उन्होने अपने स्वयं के जीवन मे कार्यान्वित किया एव अपने जीवन को सतत् रूप से पुरुषार्थी बनाए रखा, चाहे गृहस्थी का कार्य हो अथवा व्यवसाय का, काम से जी चुराना तो उन्होंने सीखा ही नही था। पुरुषार्थ से उनका ऐसा लगाव था कि वे काम और परिश्रम मे आनन्द की अनुभूति करते थे। उनकी सर्वत्र सफलता का रहस्य यही था कि वे कठिन पुरुषार्थी थे।

जैन सूत्रो मे एक उक्ति आई है कि 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा।' अर्थात् जो कर्म मे शूर होते हैं वे धर्म में भी शौर्य दिखाते है। उनका जीवन केवल सासारिक कार्यो मे ही पुरुषार्थी नहीं था, अपितु वे धार्मिक क्षेत्र मे भी अपना शौर्य प्रकट करने

मे कभी पीछे नही रहते थे। पुरुषार्थ के प्रति धार्मिक क्रियाओं मे भी उनका उतना ही प्रेम था। वे प्रतिदिन नियमित धार्मिक-क्रिया तथा स्वाध्याय करते थे एव कुछ न कुछ समय धार्मिकता के विकास हेतु अवश्य ही व्यतीत करते थे। उनके जीवन की नियमवद्धता एव पुरुपार्थी वृत्ति कर्म मे धर्म तक के सारे स्रोतों मे फैली हुई थी। इस प्रकार वे विचारो मे सुलझे हुए और सधे हुए थे तो वाणी से अत्यन्त मृदुभापी एव आचरण से नियमवद्ध नम्र एव पुरुषार्थी थे। उनके जीवन के क्रिया-कलापों की पहली विशेपता यह थी कि वे सत्यनिष्ठ थे। सत्य को उन्होंने अपने जीवन मे सर्वत्र स्थान दिया। उनका सारा जीवन-स्रोत गुण सम्पन्न था कि उनका व्यक्तित्व विशेपताओं से परिपूर्ण रहा तथा जो भी उनके निकट सम्पर्क मे आया उसको प्रभावित करता रहा।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ धार्मिक दृष्टि

अपनी शिक्षा की पृष्ठभूमि से स्वर्गीय श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी के विचार एव उनका आचार वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जुडा हुआ था, तो पारिवारिक सस्कारो ने उन्हे धार्मिक दृष्टि प्रदान की थी। विज्ञान एव धर्म का इस प्रकार उनके जीवन मे अनूठा तालमेल था। वे विज्ञान की भौतिकता के भी पक्षधर नहीं थे तो धर्मों की अन्धश्रद्धा को भी उन्होंने कभी उचित नही समझा। वे चाहते थे कि धर्म एव विज्ञान का परस्पर सामन्जस्य निरन्तर वढता रहना चाहिये ताकि भावना और विचार के दोनो पहलू, अपने-अपने मे परिपुष्ट वने रहे।

वे इन्जिनीयर थे, एक वैज्ञानिक थे, किसी भी सिद्धान्त या तत्त्व को अपनी वैचारिकता की कसौटी पर कसे विना, उसके अन्धानुगामी नही वने थे। वे प्रत्येक तत्त्व को निष्ठापूर्वक समझने की चेष्टा करते थे तथा उस पर मौलिक चिन्तन भी रखते थे। वैज्ञानिक सदा सर्वदा सार को ग्रहण करता है और वे भी तत्व की जड तक पहुँचकर उसके अन्तरहस्य को पकडने का प्रयास किया करते थे।

वैज्ञानिक कोण के साथ उनकी धार्मिक दृष्टि भी स्पष्ट एव पुष्ट थी। धार्मिक दृष्टि उन्हे उनके जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे वरावर मानवीय भावों से ओत-प्रोत वनाये रखती थी। तथा यही कारण था कि उनके व्यक्तित्व मे विशिष्ट गुण समाये हुए थे एव वे अपने व्यवहार मे इतने सरल, इतने विनम्र तथा इतने मृदु थे।

विज्ञान मनुष्य को विचारशील वनाता है तो धर्म—भावनाशील। मस्तिष्क की शक्तियो के साथ जव हृदय की शक्तियाँ जुडती हैं तो उस व्यक्ति के जीवन मे विवेक सतत् जागृत रहता है। दार्शनिकों ने विवेक को अत्यधिक महत्त्व दिया है कि उठने, वैठने, चलने, सोने से लेकर ज्ञानदर्शन एव चरित्र की आराधना करने तक की प्रत्येक क्रिया मे मनुष्य विवेक का साथ कही नही छोडे। स्वर्गीय भण्डारीजी विवेक को नही भूले, वल्कि उनका विवेक वैज्ञानिकता से तराशा हुआ तथा धार्मिकता से सँवारा

हुआ रहता था। ऐसे स्वस्थ विवेक के धरातल पर उनका छोटा-सा जीवन नरगिस के फूल की तरह अपनी सम्पूर्ण क्रान्ति से जगमगा उठा।

पुष्प मुरझा गया, सुवास व्याप्त है

खेद है कि अपनी भौतिक देह के साथ देहिक दृष्ट्या आज नररत्न श्रीयुत गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी सत्र के बीच मे नही हैं। एक सुवासित पुष्प असमय ही मुरझा गया किन्तु मैं कहना चाहूँगा कि उस खिले हुए पुष्प की सुवास आज भी चारो ओर व्याप्त है। उनके जीवन का एक गुण उनके व्यक्तित्व की एक-एक विशेपता तथा उनकी पावन स्मृति का एक-एक चिन्ह यह वताना चाहता है कि वे आज भी उसी प्रकार जीवित हैं और गहराई से यदि विचार किया जाय तो यह ठीक भी है कि

हम जिन्हे कहते हैं फानी, वे फना होते नही।
मरने वाले असल मे हमसे जुदा होते नही॥

स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिहजी के सम्पर्क मे जो भी आया, वह उनके गुणो पर मुग्ध हुए विना नही रह सका। वह आज भी उनके गुणमय जीवन को श्रद्धापूर्वक याद करता है। तथा उनके साथ वीते अपने क्षणो को सराहता है। गुणी व्यक्ति के जीवन के लिये कहा गया है कि जव वह जन्म लेता है तो वह स्वत रोता है और उनके सारे परिजन प्रसन्नतावश हँसते हैं परन्तु उसके गुणी जीवन का यह सुप्रभाव होता है कि जव वह मृत्यु को प्राप्त होता है तो वह स्वय तटस्थ भाव से हँसता हुआ चला जाता है। और सारे परिजन व दुनिया वाले उसके सद्गुणो को याद कर-करके उसकी स्मृति मे रोते हैं। स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के छोटे से किन्तु सुवासित जीवन का दिनाक २४ सितम्वर, १६७१ को अन्त हुआ, न केवल पारिवारिक सदस्यो पर, न केवल इन्दौर वालो पर अपितु दूर-दूर तक स्थित सदस्यो पर कैसा वज्र प्रहार हुआ, कल्पना से परे है। नि सन्देह आज उनकी जवरदस्त अपेक्षा थी। उनका अभाव हृदय को पीडित, व्यथित एव उद्वेलित करता है पर इस स्तर तक आकर सवको विवश हो मौन होना ही पडता है **कालस्य कुटिला गति·** ।

काल की गति वडी ही दुष्टि एव क्रूर होती है। वे आज हमारे वीच नही हैं पर उनके लिये एक वात मैं कहना चाहूँगा —

तू चुप है लेकिन सदियो तक वुझेगी सदा ये साज तेरी।
दुनिया को अन्धेरी रातो मे, ढाढस देगी आवाज तेरी॥

अन्त मे उनकी आत्मशान्ति की अगणित मगलकामनाओ के साथ हम पुन. उस सुवासित पुष्प की स्मृति मे श्रद्धावन्त होते है जो असमय मे ही मुरझा गया।

□

| अपनों की नजर में |

☐ श्रीमती भुवन भण्डारी
[धर्मपत्नी स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी]

तुम चले
विश्वास नही होता
मनको
तुम मौन हुए
मानो जीवन की स्वर लहरी ही
रूठ गई
है मूक वेदना शोकाकुल
संतप्त हृदय
घनघोर व्यथा
है हमे सात्वना देने को
तेरे जीवन की अमर कथा।
युग-युग गूंजेगी तेरी
अमृत-स्वर लहरी
वसुधा पर
अम्वर में होगी, धरती की
उषाएँ, सध्याएँ, दोपहरी।

आज
नियति के हाथो से
अरमान हमारे छले गए
लगता है
मन्जिल पाते ही
क्षणभर मे
ओझल हुई दिशा,
दिनमान अभी जागा ही था
छा गई अचानक और निशा।
निस्तेज हो गई किरण प्रखर
विश्वास नही होता मन को
वीच भवर मे पडते ही
पतवार हाथ से छूट गई
इस वसुधा के शृ गार 'सरस'
तुमको अर्पित
शत शत वन्दन!

☆

वे ऐसे थे........ .....

[स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भंडारी के अन्तरंग जीवन की खुली झाँकी उन्हीं की आदर्श पत्नी श्रीमती भुवन भंडारी की मार्मिक लेखनी से]

जीवनी आमतौर पर अपने नायक की अच्छाइयो की ओर दृष्टिपात करती है उसके साथ एकाकार हो जाती है इसलिए दृष्टिकोण पक्षपात पूर्ण हो जाता है फिर भी लिखने वाले के लिए यह आवश्यक होता है कि अपने नायक की जीवनी का मूल्याकन करके अच्छे और बुरे पृष्ठो को परखे और आने वाली पीढी को सूचना एव मार्गदर्शन के लिए जीवन के आलोकित पृष्ठो की पृष्ठभूमि को पुष्ट करके प्रस्तुत करे।

व्यक्ति अपनी मृत्यु के उपरान्त केवल अपने अच्छे व बुरे कामो के रूप मे अपने व्यक्तित्व की स्मृति छोड जाता है। वह एक ज्योतिर्वर महान व्यक्तित्व, जो आज हमारे पास से भौतिक रूप से भले ही न रहे हो परन्तु विचार रूप से उनके समुज्ज्वल सद्गुण आज भी हमारे मानस मे, आत्मा मे स्थित है और अतीत के इन्हीं पदचिह्नो से मानव समाज उसका मूल्याकन करता है, एव जिसके माध्यम से उनके व जीवन के कार्यकलापो से परिचय प्राप्त होता है। उनकी आत्मा काल के आवरण को पार करके अमर हो गई है पर उन्होंने अपने छोटे से जीवन-काल मे जो कुछ भी सद्कार्य किये वह ऐसे क्षितिज हैं जो आने वाली पीढी को लम्बे समय तक मार्ग-दर्शन करेंगे।

जगत का नियम है, राजा हो या रक इस ससार से एक दिन सभी को विदा लेनी है और जब मनुष्य इस लोक से विदा ले लेता है तो कुछ समय बाद उन विगत आत्माओ के बारे मे लोग अक्सर भूल जाया करते हैं। किन्तु कोई मनुष्य अपने कार्य व्यवहार का आधार मानवीयता को बनाता है और वह जन-जन के हृदय को इस प्रकार स्पर्श कर लेता है कि उसमे सदा के लिए स्थिर हो जाता है।

जीवन के दो पृष्ठ हैं दुख और सुख। अतीत के लम्बे-चौडे प्रांगण मे इन उभय पक्षो की विषमता भी सामने आती है किन्तु मानवता ने उनको एक ऐसी पुनीत भाव-धारा मे अवगाहन करने की शक्ति दी थी कि उसके द्वारा' अपने मे अच्छाइयो को आत्मस्थ किया व बुराइयो के कल्मष को सदैव दूर रखा।

उनके जीवन को शब्दो के परिधान से सुसज्जित करना मेरे सामर्थ्य से बाहर का विषय है। आज जब इनके विषय मे जो कुछ छोटा-सा लिखने का मैंने दुर्गम प्रयास किया है तो चलचित्र की भाँति एक-एक करके अनेक विगत जीवन के मधुर सस्मरण स्मृति-पट पर उभरने लगे हैं जीवन की तुलना यदि नाटक के उन कुशल पात्रो से की जाय तो शायद ज्यादा उपयुक्त होगी। एक कुशल पात्र जिस प्रकार नाटक के हर पक्ष

को अपने कुशल अभिनय द्वारा अभिव्यक्त करता है वही स्थिति आज हमारी है। जब विगत जीवन के उन मधुर क्षणों की ओर दृष्टिपात करती हूँ तो वे सभी स्मृतियाँ और अनुभूतियाँ शब्दो के माध्यम से एक साथ उद्‌बुद्ध होना चाहती है—स्मृतियाँ एवं अनुभूतियाँ अनेक हैं और शब्द कोश के शब्द ससीम हैं। जिनका जीवन व्यापक एव विराट रहा उनकी परिचय प्रशस्ति को शब्द शृ खला की कडियो मे आबद्ध करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान होगा।

उनका व्यक्तित्व था त्याग की महान गरिमा से ओत-प्रोत, मानस करुणा एव प्रज्ञा से समन्वित अपराजित साहस एव धैर्य गाम्भीर्य की साक्षात प्रतिमूर्ति, कार्य शक्ति के सुन्दर सयोजक, कलापूर्ण वक्तृत्त्व के धनी सरल हृदय, प्रकृति से उदारतम हृदय विनम्र आचार-विचार, ऊँचे-नीचे और छोटे-बड़ो के प्रति समान भावना।

भौतिक दृष्टि से देखा जाय तो सामान्यत मनुष्य अर्थ और काम के बीच डोलता रहता है, अर्थ उसके लिए साधन और काम साध्य है। मनुष्य कभी अर्थ भूमि पर रहता है और कभी काम भूमि पर। अर्थ साधना व काम-साधना के बीच जीवन बँट जाता है और जो व्यक्ति दोनो मे सामजस्य स्थापित कर लेता है उसी को जगत, समाज सफल पुरुष मान लेता है। इनका जीवन भी कुछ ऐसा विरला जीवन था जो इन दोनो साधनाओ का पूर्णरूप से परिपालन करने पर भी बहुत ऊँचा था।

बचपन

इनका विकास जिस सस्कृति मे हुआ था उसमे व्यक्तित्व विभक्त होने के स्थान पर समन्वित था। एक बहुत ही जाने-माने सयुक्त परिवार के सदस्य थे। इनके जीवन मे मेरे और तेरे की भावना तो थी ही नही, सदैव वह किसी भी चीज को मेरी न कह कर हमेशा हमारी या अपनी कहा करते थे, चाहे घर मे चाहे आफिस मे। पारिवारिक सदस्यो के प्रति उत्सर्ग हो जाना कोई महत्त्वपूर्ण मूल्य रखता था और कभी उस उत्सर्ग के प्रति खेद भी नहीं होता था। कितनी ही बार व्यापारिक क्षेत्र मे यह प्रसग आए कभी पूछ भी लेती तो यही कहते इस घर में सभी का समान अधिकार है क्या फरक पड़ा अगर मेरी जगह उस कुर्सी पर कोई मेरा ही भाई आकर बैठ गया, अपन और नयी फैक्टरी लगा लेंगे, मुझमे क्षमता चाहिए मुझे तो तुमसे यह सुनना है कि एक जगह हम नयी फैक्टरी और कम्पनी शुरू करें। अगर इनको ममत्त्व था तो अपने पारिवारिक सदस्यो से अन्यथा धन-वैभव सब इनके सामने नगण्य से थे—वैभव भी बहुत भोगा, दान भी खूब दिया लेकिन दूसरे कान को भी खबर नहीं पडी, किसी भी गरीब को असहाय अवस्था में देख ही नहीं सकते। पैसे से, कपड़े से, अन्न से, जिस भी क्षेत्र मे सेवाएँ वांछनीय थीं करते थे, यहाँ तक कि अपनी, बच्चों की व मेरी अलमारी से बिना बताए कपड़े निकाल कर चुपचाप दे देते थे। जब किसी कर्मचारी को कपडा या चीज वापरते देखते तो मालूम पड़ता कि चीज गुमी नहीं,

वरना यथास्थान पर पहुँची है। दिल मे करुणा का निर्झर अविरल रूप से सदैव वहता था।

२६ साल की अवस्था से ही इनका विदेशो मे भ्रमण चालू हुआ। आखिरी विश्व यात्रा १६७० की रही। इस वीच करीव १० वार विदेश जाकर आये। १६४६ से १६५० तक विद्या उपार्जन के लिए लन्दन मे ही रहे—वह जमाना था ऐसा जव अमोद-प्रमोद, भोग-विलास, ऐश्वर्य एव लक्ष्मी का वोलवाला था। चाहते तो सुरा एव सुन्दरियो के स्वप्नलोक मे ही विचरण करते रहते। सारी सुख-सुविधाएँ चरणो की दासी थी। अर्थ और काम के क्षेत्र मे सव कुछ प्राप्त कर सकते थे—किन्तु मानवता ने उनके गम्भीर चिन्तन से उपलब्ध जीवन मे उनको इन सव आसक्तियो से वहुत ऊपर रखा इसका कारण यही था कि मन मे शुद्ध मानवीय विचारो का ज्योतिपुज था और गम्भीर अन्तर-चिन्तन था। उसी चिन्तन एव जाज्वल्यमान दृष्टि के आलोक मे जीवन के सही मार्ग का अनुसरण किया। वह उन करुणानिधियो मे से एक थे जिनका हृदय, जिनकी भावना पीडितो के रुदन को भी सुनती थी तथा सुखलिप्सु और विलासियो की कामनाएँ पूर्ण करने के लिए निर्दयता के साथ कुचली हुई आत्माओ को वडी नजदीकी से देखती थी। अपने मे सयम एवं तप की अद्वितीय चमक थी उन्होंने अपने जीवन मे ऐसे अनेको दृश्य देखे थे देश एवं विदेशो मे, जवकि श्वेत पत्थरो पर सुगन्ध फैलाता हुआ रग-विरगे व वस्त्र लपेटे अत्यन्त सुन्दर अप्सरा की रुन-झुन की आवाज, रग-विरगे सुगन्वित जल के फव्वारो के माध्यम से सौन्दर्य विखर पडता था, सुख झलकता था और उत्साह की वाढ-सी लग जाती थी, किन्तु उस मादकता का नर्तन इन पर अपना कोई प्रभाव इसलिए नही छोड सका कि अन्तर हृदय मे मानवता की ज्योति एव करुणा का स्रोत अवाध एव अविरल रूप से प्रवाहित होता रहता था। एक तटस्थ दर्शक की भाँति जीवन की सभी अच्छाइयो को भोगते रहे। जीवन के कार्यो मे कही भी किंचित् मात्र शिथिलता नही आने दी। मैं वडी ही आश्चर्य विभोर होकर पूछा करती थी इन सवको देखकर भी आप इन सवसे परे कैसे हैं? वस एक यही छोटा-सा उत्तर होता था पिता श्री की प्रेरणा ने जीवन के सही मार्ग पर आरूढ होने का मूक सन्देश दिया :—

Character is the Governing Element of Life and above all Genious

"चरित्र जीवन मे शासन करने वाला तत्त्व है और वह सभी प्रतिभाओ से उच्च है" धन्य है उन पिता श्री एव गुरु श्री सोम जी शर्मा को, जिन्होंने जीवन के उस रहस्य को समझाया कि पश्चिम का जो भी कुछ अच्छा प्रगतिशील है उसे अवश्य ग्रहण करो। पश्चिमी जीवन के यह वहुत निकट रहे, उनकी अच्छाइयो और वुराइयो को हर क्षेत्र मे जाकर देखा, उनके विलास पूर्ण जीवन को भी इन्होंने एक मूक दर्शक की भाँति वडी ही नजदीकी से देखा, फिर भी उस विलासपूर्ण जीवन की चकाचौंध

इन पर अपना असर न दिखा सकी क्योकि इनका अन्तर एक ऐसे आलोक से प्रकाश-मान था जो पूर्ण सन्तोष व अपने आपके अस्तित्व को समझने से प्राप्त होता है और जिसका अभ्यास अपने अन्तर मानस के ज्ञान को जागृत करने मे होता है। यहाँ भी हमारा मिलने-जुलने वालो का परिवार बहुत ही बडा था। अत्यधिक आधुनिक सभ्यता के पुजारियो के सम्पर्क मे रोज ही आते थे और अत्यधिक रूढिवादियो के सम्पर्क मे भी, पर कभी भी हमे उन दोनो मे सामन्जस्य स्थापित करने मे दिक्कत महसूस नही हुई।

समाज के ही क्षेत्र मे हम लोग जाते थे चाहे क्लब की पार्टी है मिलिट्री के समारोह। मह़ु मे हमारा जाना-आना काफी रहता था क्योकि वहाँ के उच्चतम अफसरो से इनकी बहुत ही अच्छी मित्रता थी जो कि आपको पीछे के पृष्ठ पत्रों से मालूम पड ही रहा होगा—जैसा कि सुना जाता था कि मिलिट्री वालो का जीवन बडा ही गतिशील रहता है, वैसा ही उनका पारिवारिक जीवन भी, परन्तु हमे तो उन सबसे भिन्न लगा उनका जीवन बडा ही शिष्टाचार से ओत-प्रोत, मानवीय गुणो के रक्षक, त्याग की असीम भावना सदैव मौत को अपने सिर पर समझते हुए कि जीवन भगुर है, जो भी अच्छा कार्य करना है इसी समय कर लेना है। जीवन मे समय के मूल्य की पहचान इन्होने अपने जीवन मे वहीं से आत्मसात् की। समय बहुत ही कम है जल्दी-जल्दी अपने मुस्तैदी कदमो को बढाओ, जीवन क्षणभगुर है घूमती हुई आत्मा के लिए यह जीवन अस्थाई स्थान है विवेक, विचार एव विनम्रता तीनो-ही गुणो का सामन्जस्य इनके जीवन की धारा मे अविरल रूप से प्रवाहित होता रहा। हर चीज का बडी ही गहराई एव दोनो पहलुओं से विचार करते। किसी भी वस्तु का एक पहलू सुनकर अपने विचार प्रकट नही करते थे। सदैव कहा करते थे व्यक्ति वस्तु के एक पहलू को सुनकर, समझ कर अपनी धारणा बना लेता है वह सदैव अन्धेरे मे भटक जाता है। वस्तु के सही स्वरूप को वह पहचान नही सकता परन्तु जब वह दोनो पहलुओ को आत्मसात करता है तब सही स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

मनुष्य को कभी भी अपनी भूल स्वीकार करने मे संकोच नही होना चाहिए, मानव की सबसे बडी कमजोरी है, जब वह यह मान लेता है कि मैं सबसे अधिक बुद्धिमान, ज्ञान, सम्पन्न एवं शौर्य का पुज हूँ और अपनी गल्तियो पर झूठा आवरण चढने देता है। इनको झूठ से बहुत चिढ थी, जो अपनी कमियो को सुधारने का प्रयत्न करता है वही ज्ञानी है। अपने स्वरूप को जानना ज्ञान है। जो अपने मानस को भली-भाँति जानता है वह सबको जानता है। स्व का जानने वाला पर का ज्ञाता न हो ऐसा हो नही सकता। ज्ञान का उपयोग यही है कि अपने और जन-जन के जीवन को आलोक से भर दे। वही दीपक-दीपक कहलाने का अधिकारी है जो अपने स्पर्श करने वाले बुझे हुये दीपक को ज्योतिर्मय बना दे। इनमे गुणी के गुणो का आत्मसात

करने की रहस्यमयी शक्ति थी और यही मुख्य कारण रहा है शायद कि हम अपना इतना आधुनिक जीवन व्यतीत करते हुये भी कही भी अधोपतन की ओर नही गये। जिन्होने हमे बहुत नजदीकी से देखा था सभी विस्मय पूर्ण दृष्टि से देखते थे, इतने आधुनिक विचारो मे विचरण करने वाले रहने वाले, परन्तु आधुनिकता से अती दूर कैसे रहते हैं ? किसी भी प्रकार का व्यसन इनके जीवन मे नही था। अपने जीवन मे उन्हीं आधुनिक विचारो को आत्मसात् किया जिनमे अच्छाई थी, मान-मर्यादा को जिससे ठेस न लगे और उन कार्यो को करने से मन को कम से कम ग्लानि पैदा न हो। हर सप्ताह करीब-करीब पार्टी होती थी चाहे घर पर हो या मित्रो के यहाँ हो, हर पार्टी का मुख्य आकर्षण ये रहते थे। बहुत ही विनोदशील व्यक्तित्व सदैव फूलो की मुस्कान मुखमडल पर रहती। स्वभाव की सरलता, विनम्रता एव वाक्पटुता और खास जो आकर्षण का विषय था कि पार्टी मे सुरा सेवन। से कोसो दूर रहना। कभी जीवन मे आस्वादन करने का भी प्रयास नही किया। बिना सुरा के तो आधुनिक सभ्यता की पार्टी फीकी व गौण लगती है, सदैव इन पर शर्ते लगती थी कि भण्डारी साहब को एक बूंद भी पिला दे तो उसे हम जानें पर शर्त लगाने वाले को हारना ही पडा। इतना भव्य था इनका आत्मबल। अच्छाइयो और बुराइयो मे रहते भी उन सबसे ऊपर उठकर रहे सदैव जीवन से वैमनस्य वैषम्य को हटाने का सन्देश दिया और सत-सत प्रयास भी किया। इनके जीवन का क्षेत्र ऐसा नहीं रहा जहाँ पर वह कर्त्तव्यविमूढ हुये हो, सभी को खुश रखने की कला इनमे गजब की थी, चाहे पिता हो, पत्नी, बच्चे हों—या पारिवारिक सदस्य हो इनसे कभी भी किसी का मनोमालिन्य मनमुटाव नही हुआ होगा। जिस प्रकार हीरा अपने समस्त पहलुओ से प्रकाश फैलाता हैं उसी प्रकार के इनके जीवन के पहलु थे कौन से पक्ष को ज्यादा उभारना है या उभरा था शब्दो मे व्यक्त करना बहुत ही कठिन है।

पुत्र थे तो पिता भक्त—कभी भी जाने-अनजाने अपने पिता श्री का मन नही दुखाया होगा। चाहे अपनी खुशियो को उनके आदेशो के लिए उत्सर्ग करना पडा हो, पर वह भी हसते हुये कभी भी मन मे उत्सर्ग के पश्चात् कलुषित या वैमनस्य की भावना नही आई और न मेरे मन भी आने दी। जीवन मे कभी भी ना नही सुना। जिस परिस्थिति को देखा कि हाँ नही होगी तो वह कभी पूछा ही नही। मेरी शादी के पश्चात् ये ७-८ बार विदेश-भ्रमण करके आये पर बाबू जी को नही पसन्द था या पारिवारिक कुछ उलझनें होगी पता नही, पर मुझे एक बार भी इनके साथ जाने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। जीवन मे अगर कोई बहुत बडा गम इनके साथ गया है तो बस यह कि मैं तुम्हें विदेश नही ले जा सका। इतना ज्यादा इनको इस बात का अफसोस था। पर मैं भी हमेशा हँस कर टाल देती थी क्या फरक पडता है अभी नहीं अगली बार चलेंगे, जितनी बार गये

ये मेरे ही अनुनय आग्रह से गये होंगे, यदि कभी मैंने मेरे जीवन मे इनका आत्मवल कमजोर पड़ते देखा था तो वस विदेश भ्रमण के समय वहुत ही भारी मन से विदा होते थे और महीना का कहते तो २० दिन मे घर पर। सदैव यही कहा करते थे कि मुझे समझ नहीं आता तुम किस चीज की वनी हो, कभी तो कहो मुझे भी साथ चलना है, पर मुझे इनके सभी कार्यो पर इतना आत्म-विश्वास था कि कभी भी मेरे मन मे आया ही नही कि मुझे ये क्यो नही ले जा रहे हैं ? आज तो जीवन को सभी खुशी की अनुभूतियाँ समाप्त हो चुकी हैं, फिर भी कभी भूले-भटके भी मन मे नही आता है कि मेरे जीवन मे विदेश भ्रमण की तो वहुत वडी कमी रही, कभी भी नही और सिर ज्यादा गर्व से उठ जाता है कि कितने आदर्श विचारो के धनी थे, कितने पितृभक्त थे, दुख की जगह मुझे वडी ही आत्म-सतोष की अनुभूति होती है, सवसे आश्चर्य की चीज मुझे कभी पहले थी और अभी भी यह अनुभूति ही मन मे नही आई कलुषता ही नहीं आई कि मैं क्यो नही इनके साथ गई। कभी भी मैंने इनको भारी मन या भारी नयनो से विदा नही दी सदैव इनको हँसते हुए विदा दी।

१९६० मे जव यह विदेश गये थे मेरे औपरेशन को कुल ५ दिन हुये थे। औपरेशन की वजह से जाने का कार्यक्रम केन्सल हो गया। अव मेरी तवियत तीसरे या चौथे दिन जरा ठीक हुई मैंने यही पूछा था कि आपके जाने का क्या हुआ ? सूटकेस सामान सव तैयार है या नही इतने विस्मय से देखने लगे आज भी वह शक्ल मुझे याद है।

किसी भी हालत मे जाने को तैयार नही हुये। साथ मे पूज्य वाईजी जाने वाले थे। मुझे इतना बुरा लगा जव इन्होंने कहा कि वाईजी ने अभी जाना स्थगित कर दिया है तुम ठीक हो जाओगी फिर जावेगी। आखिर मेरे अनुनय-विनय को स्वीकार करके इन्होंने वाईजी से जाकर कहा। वावूजी भी आश्चर्यचकित रह गये और आखिर ता० ६ जुलाई को इनको सहर्ष कोठी आकर अस्पताल से विदा किया जव तक तो मेरे टाँके भी नही खुले थे। यह छोटा-सा उदाहरण देने का आशय यही है कि यह मेरी शक्ति नही थी यह इनकी प्रेरणा थी या यो कह दीजिये कि इन्होने अपने द्वारा मुझमे इतना मनोवल कूट-कूट कर भर दिया था कि परिस्थितियो से हारना या ठहर जाना नहीं सिखाया था। पढने वाले पाठक भी शायद आश्चर्य करेंगे, पर यह काल्पनिक कथा नहीं है यह जीवन के सच्चे उदाहरण है। मेरे जीवन मे तो कितने ही हजारो ऐसे प्रसग आये हैं जिनको लिखकर व्यक्त करना लेखनी की शक्ति से वाहर है। कहने का या लिखने का सिर्फ अर्थ यही है कि दूसरे के विचारो को अपने अनुकूल वनाने की क्षमता कितनी थी अगर इस जगह दूसरी दृष्टि से सोचिये तो यह लगता है कि पत्नी विस्तर मे पड़ी है और चल दिये घूमने-फिरने, पर मेरे मन मे तो

कभी यह भाव न उत्पन्न हुआ न होने वाला है, मुझे तो इन्ही सब बातो पर इनके त्याग, इनके उत्कर्ष पर आज भी गर्व है जीवन मे वैमनस्यता तो किसी से भी नही रही सदैव जीवन से वैमनस्य वैषम्य को दूर हटाने का सन्देश दिया एव स्वयं के जीवन मे शत-प्रतिशत उसको उतारा। शत्रु को भी मित्र करके माना। आने वाला आगन्तुक चाहे कितनी ही विपरीत अवस्था व विचारधारा से आया है। परन्तु इनके स्नेह पूरित सम्बोधन, कला पूर्ण व्यक्तित्व एव सद्व्यवहार से आने वाला व्यक्ति सुखद अनुभूतियाँ ही लेकर जाता, पता नही क्या आकर्षण था इनके नेत्रो में, मूक सन्देश मे। खुशी, दुख, गुस्सा सभी के मूक सन्देश नेत्रो से ही मिलते थे, कभी बोलकर कुछ कहा हो याद नही आता। सदैव कहा करते थे किसी भी बात के दोनो पहलू देखोगे तो दुश्मनी हो ही नही सकती। यदि गलती एव भूल स्वीकार करने का सामर्थ्य है और नि सकोच भाव से अपनी भूल स्वीकार कर ली तो शत्रुता आ ही नही सकती। मनुष्य की सबसे बडी कमजोरी ही उसका यह सोचना कि वह जो कह रहा है वही सत्य है, वह सबसे अधिक बुद्धिमान है एव ज्ञान-सम्पन्न शक्ति पुंज है। सच्चा ज्ञानी वही है जो अपनी गल्ती को आत्मसात करके चिन्तन करे और आगे से उस कमजोरी को हृदय की शक्तियो के साथ सुधार करने का प्रयास करे। सौभाग्यशाली वही व्यक्ति है जो अपनी भूलो को स्वीकार कर कर्त्तव्य पथ पर अविरल अग्रसर होते रहते है और आत्म-विश्वास की ज्योति प्रज्ज्वलित होती रहती है।

बच्चो को भी स्कूल मे पत्रो द्वारा यही सन्देश मिलता था। तीनो बच्चे जसबीर, जम्बू, सतीश, अभी तक तो अपने पापा जी के पद-चिन्हो पर चलने का अविरल प्रयास कर रहे है हालाकि पथ कटको से भरा हुआ है नही, पूर्ण आच्छादित है पर फिर भी इनकी आत्म ज्योति के बल पर हम चारो ही उस पथ की ओर निरन्तर अबाध गति से बढते रहे जहाँ पर निराशाएँ पग-पग पर हैं, फिर भी विश्वास को टूटने नहीं दे रहे है। कविवर मैथलीशरण की भाषा मे—

ससार की समर स्थली मे धीरता धारण करो।
चलते हुए निज इष्ट पथ मे सकटो से मत डरो।
जीते हुए भी मृतकसम रह कर न केवल दिन भरो।
वर वीर बनकर आप अपनी विघ्न बाधाएँ हरो।

जीवन के विस्फोट के मुहाने पर अवसाद के उन क्षणो मे मुस्कराने का प्रयत्न किया।

जीवन जागरण है, सुषुप्ति नही, उत्थान है, पतन नही, पृथ्वी के तमसाछन्न अन्धकारमय पथ से गुजर कर भी उस दिव्य ज्योति से साक्षात्कार करना चाहते है।

वैसे दैहिक दृष्टि या सांसारिक दृष्टि से वे हमारे पास नही हैं, लेकिन आत्मा से यह सदैव अति निकट रहे और सदैव रहेगे। उन्ही की जाज्वल्यमान आत्म-ज्योति हमारा हर क्षण मार्गदर्शन कर रही है यह अनुभूति है, अनुभव करने वाला ही इसका रसास्वादन कर सकता है और जिनको आत्मा की इस असीम शक्ति मे विश्वास है, मेरे लिये तो इनको जीवन की व्याख्या करना अति दुष्कर है परन्तु चन्द्रमा से भी निर्मल शान्तता प्रदान करने वाला जिसका मानस हो, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी गम्भीर शालीन एव सागर से भी अधिक जिसके मनस्थल मे लहराता हो ऐसे महान पति के चरण कमलो मे—

जिसकी प्रभा के सामने रवि तेज भी फीका पडा।
अध्यात्म विद्या का यहाँ आलोक फैला था वडा।
मानस कमल सबके यहाँ दिन-रात रहते थे खिले।
मानो सभी गजेन्द्र की ज्योति छटा मे थे मिले।
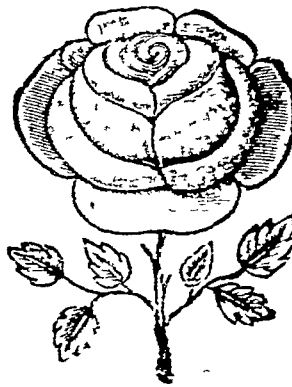
वह अधखिला गुलाब.......

☐ श्रीमती रजनी एम० भण्डारी
नन्दनवन, १ महात्मा गाधी मार्ग,
इन्दौर

२४ सितम्बर का वह कैसा अशुभ दिन था, नन्दनवन के लिए।

उस दिन पूज्य जेठसाहब ने हँसते-हँसते अन्तिम विदा ली थी। नन्दनवन के उद्यान का वह अधखिला गुलाब पूरी सुगन्ध फैलाने के पूर्व ही डाली से टूट गया।

आज भी वह दृश्य आखो के सामने घूमता हुआ नजर आता है। सुबह पूज्य जेठसाहब बडे ही प्रसन्नचित्त थे। एकाएक घबराहट होने लगी। उसी समय डाक्टर को भी बुलवाया गया लेकिन घबराहट बढ ही रही थी। उस वक्त सब कोई किसी डाक्टर को बुलाने भागे, कोई हकीम को बुलाने भागे, किसी को सुध नही थी, कोई सोच भी नही सकते थे, यह क्या हो रहा है। अन्त के पाँच मिनिट तक जीवन और मृत्यु के बीच का जो सग्राम हो रहा था, उस वक्त दो मिनिट के लिये मैं सामने थी। डाक्टर अपने इलाज पूर्ण रूप से कर रहे थे लेकिन काल भी इतना कठोर बन गया था कि उसने किसी को वक्त ही नही दिया। अचानक एक सैकण्ड के लिये मन मे विचार आया कि जेठसाहब के मुह मे गगाजल और तुलसी किसी को कह करके दे दू लेकिन विचार से ही मैं बुरी तरह से काप उठी और जैसे ही सामने देखती हूँ डाक्टर पूज्य जेठसाहब के मुह को चादर से ढांक रहे थे और एकक्षण मे दुनिया कहा से कहा पहुँच चुकी थी। वह आत्मा अनन्त मे विलीन हो चुकी थी और करीब ५० आदमी सामने खडे थे जिनमे एक में भी यह शक्ति नहीं थी जो नैसर्गिक पीड़ा को बदल दे। इन्सान की यहा सबसे बडी हार है। जो इन्सान भौतिक सुखो से इतना गर्वित हो उठता है कि उसको उस वक्त तो भगवान का भी डर नही रहता और भगवान नाम किसको कहते हैं, इतना सोचने का समय भी उसके पास नही होता है। उसको अपने सुख-सम्पत्ति, भोग-विलास से फुर्सत ही कहा कि वह भगवान का नाम स्मरण करें और जब अन्त आता है तो उसकी स्थिति जैसी दयनीय बनती है कि तरस आ जाये।

लेकिन यह व्यक्तित्व उससे एकदम भिन्न था। सुख-सम्पत्ति, ऐश्वर्य सब कुछ सामने होते हुये भी उनमे कभी उलझे नही बल्कि उन सबको अपने वश मे रखा था। उनके मन मे गरीब और पीडितो के लिये हमेशा दर्द रहता था और किस प्रकार से सम्पन्नता और शान्ति दे सके इन्ही विचारो मे खोये रहते थे।

घर के हर व्यक्ति के लिये उनके मन मे एक-सा सच्चा प्रेम था जो कि आज के युग मे एक दुर्लभ-सी वस्तु हो गया है। सच्चा प्रेम आज के कलियुग मे नष्ट-सा हो गया है। मैं समझती हूँ कि जिनको भी ऐसा आज के युग में थोडा-सा भी प्रेम मिलता है वह सचमुच भाग्यवान होते हैं।

मेरे विचार मे जीवन मे महान वही होता है जो दूसरो की मुस्कान के लिए अपने आंसू पी ले। पूज्य जेठसाहब भी ऐसे ही व्यक्ति थे।

जिस फैक्टरी के लिये जेठसाहब के मन मे क्या-क्या इच्छाएँ नहीं थीं। एक-एक इच्छा पूर्ण करने के लिये बड़े बाबू चि० जसवीरजी जिनकी की उम्र अभी शौक-मौज की है, लेकिन उन सबको तिलाजली देकर दिन-रात उसी विचार में खोये रहते हैं। पापाजी की एक-एक इच्छा पूर्ण करनी है। उनकी कृपा से आज फैक्टरी भी उत्कर्ष की सीमा पर है लेकिन फिर भी उनके मन मे एक कसक उठती है, यह सब देखने के लिये पापाजी नहीं है। उनका एक-एक पल शायद इसी में व्यतीत होता है कि अपने पूज्य दादाजी, दादीजी, मम्मीजी और सब छोटे भाइयो को हर तरह से सम्पन्न और हसते देखू। इसके लिए पसीने की एक एक बूंद की कुर्बानी देनी होगी यह वे जानते हैं।

मैं अपने जेठसाहब के सबसे छोटे भाई की बहू हूँ, लेकिन वे हमेशा मुझे अपनी बेटी-सा ही मानते थे। हालाकि उनको खुद को बेटी नहीं है लेकिन बेटी का पूर्ण प्यार उनमें देखने को मिलता था। घर की सब लड़किया बहुत प्यारी थी। पूज्य जेठसाहब के साथ यही विशेषता रही की इतने आधुनिक विचार होते हुए भी अपने घर की मर्यादा कभी भंग नही होने दी। अपने कुल की मर्यादा का उन्हें पल-पल ध्यान रहता था। जब मैं लन्दन अपने पति के पास जा रही थी और जब मैं पांव पडने पूज्य जेठसाहब के पास गई तब उन्होंने मुझे आशीर्वाद देते हुए ये निर्देश दिये कि तुम ऐसे देश मे जा रही हो जो यहां के वातावरण से बिल्कुल भिन्न है। वहा के आचार-विचार, रहन-सहन मे जो अच्छा लगे वह ग्रहण करना। अपने कुल की मर्यादा का सदैव खयाल रखना। उन्होंने जो उपकार करे उस उपकारी का स्मरण करके और कदम-कदम पर उन आदेशो का अनुसरण ही उनके आदर्शों का अपनाना एवं उनकी आत्मा को चिरशान्ति पहुँचाना है।

अभी जेठसाहब का वियोग तो भूले ही नही थे कि अचानक ४ अप्रैल, १९७५ को दुर्दैवी घटना वापस घटी। पता नहीं हमारे परिवार की प्रभु कैसी-कैसी परीक्षा लेने पर तुला है। इस घर के सबसे छोटे पुत्र, मेरे पति श्री महेन्द्रसिंह जी भण्डारी का अचानक लंदन मे हार्टफेल हो गया। इस कुल का वह नन्हा सा दीपक अपनी ज्योतिर्मय छटा फैलाने के पहले ही काल के सघन अन्धकार मे विलीन हो गया। विधि

की कैसी विडम्बना है, जिनके विना हम एक पल भी रहने की सोच नही सकते उनके आखरी दर्शन से भी हमे वचित रहना पडा ।

सुख और दु ख तो अव हमारे जीवन के सहचर हैं । एक की अनुपस्थिति मे दूसरे के अस्तित्व का अनुभव नहीं किया जा सकता । अतएव सुख की अनुभूति के लिए दु ख से परिचय होना आवश्यक है और यह प्रतीती किसी हद तक अव सत्य लगती है । जव हम वर्तमान जीवन की ओर दृष्टिपात करते हैं तो ऐसा लगता है कि काली सघन घटाओ के वीच जो विद्युत प्रकाश का महत्व होता है वही हमारे जीवन मे अतीत के सुख का महत्व है । इस अतीत की उस खोयी हुई मानसिक शाति की कल्पना से ही मन रोमाचित हो उठता है । गुरु सानिध्य एव प्रभु-स्मरण ही एक ऐसा शस्त्र है उसमे लीन होकर ही अपने अपार दु ख के सागर से तैर सकते हैं और उस अनन्त अक्षय शान्ती के वैभव को पा सकते हैं । जो इन भौतिक सासारिक वैभवो से करोडो गुना अधिक आत्मशान्ती प्रदान करता है । सुख-दु ख की सीढियो पर उतरना-चढना सरल काम नही है । कही टूटे-फूटे पत्थर हैं तो कही इतने चिकने की पाँव फिसलने को होते हैं । यदि सद्गुरु की शक्ति ऐसे समय पर मिल जाये तो उस शक्ति के आधार पर इन सवको पार करके हम अपने गतव्य शिखर की ओर पहुँच सकते हैं ।

मैं मेरे आराध्य से यही प्रार्थना करती हूँ कि जहाँ कही भी इन दोनो भाइयो की आत्मा हो, वहाँ उनको सुख-समृद्धि और चिरशान्ती मिले और वह आत्मायें अपने शुभकर्मो के द्वारा इस ससार के जन्म-मरण के चक्र से अपने आपको मुक्त करके आत्मा से परमात्मा वने । श्रद्धा के सुमन उन दोनो के पवित्र चरणो मे मेरी ओर से एव हमारे वच्चो की ओर से चाहती हूँ और हम इन सद्गुणो को ग्रहण करके संसार के मोह-माया के महल की सीढिया पार कर सकें और दु.खियों का दु ख दूर कर सकें ।

हे भगवान ! मुझे दुनिया की सेवा का वरदान दो
दु खियो का दु ख मिटा सकूँ
ऐसी शक्ति महान दो
उन्हे हँसी की छाँह दूँ
विना सहारे भटक रहे जो
उन्हे सुख की वाँह दूँ
हे भगवान मुझे अपनी
दया, दृष्टि और शक्ति दो
सदा वुराई से लडपाऊँ
मुझमे तुम वह शक्ति दो !

पिताजी के सपने, मम्मी की शक्ति

☐ **श्री जम्बू भण्डारी**

(द्वितीय पुत्र स्व० श्री गजेन्द्रसिंह भण्डारी)

भारत का अतीत यदि वीर योद्धाओ की यशोगाथा से गुंजित रहा है तो वही पर वीर सन्नारियो की वीरता, धर्म-परायणता एवं उज्ज्वल आचरणो से गौरवान्वित है। भारतीय नारी का आदर्श हमे विश्व के किसी भी दूसरे साहित्य मे उपलब्ध नहीं हो सकता। भारतीय नारी का त्याग एव सेवा उसे बहुत ऊँचे आसन पर लाकर खड़ी कर देती है। भारतीय इतिहास जो अद्‌भुत एवं अनुपम है भारत की सन्नारियो के नाम भी इतिहास के स्वर्णपृष्ठो पर अंकित है उसे उपेक्षा के गर्त मे फेंका नही जा सकता घर की प्रतिष्ठा और समाज का सन्मान नारी के उत्कर्ष पर अवलंबित है तब ही शास्त्रकारो ने कहा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

भारतीय नारी के कितने ही ज्वलत उदाहरण हैं जिसने अपनी कुल-परम्परा के सम्मान के लिए कितने महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। वैसे आज के समाज मे भी नारी को कितने ही अधिकारो से वचित रखने का प्रयत्न यत्र-तत्र परिलक्षित होता है परन्तु नारी के मन मे एक अद्‌भुत दृढ़ सकल्प शक्ति है जो उसे पीछे लौटने की प्रेरणा नही देती, यह मैं आपको अपने अनुभव से कह रहा हूँ क्योकि जब 'अन्तर्दृष्टि' पुस्तक की योजना बनी, हमारी पूज्य माताजी को कितनी ही समस्याओ के सामने करने पडे यह उनके मन का दृढ निश्चय अपने पर अटल विश्वास एवं पूज्य पापाजी के प्रति असीम श्रद्धा का ही प्रतिफल है कि सब समस्याएँ अपने आप सरल बनती चली गई कहीं भी उन्हे मार्ग अवरुद्ध नही मिला। सभी के जीवन मे कभी-कभी कठोर परीक्षा के क्षण आते हैं जिनमे व्यक्ति की अपनी परीक्षा होती है और शायद ये ही वे कुछ क्षण होते हैं जिनमे व्यक्ति का वास्तविक रूप निखरता है व्यक्ति की आन्तरिक निष्ठा का मूल्यांकन होता है और अपने आराध्य के प्रति अवस्था की गहराई का पता चलता है।

पूज्य ममी ने जिस अडिग आस्था और निष्ठा का परिचय इस पुस्तक के समय दिया वह एक बहुत अमूल्य निधी है। एक पत्नी के जीवन मे पति के असमय के वियोग से बढ़कर और दूसरा कौन-सा दुख होगा और फिर उन्हीं सुखद अतीत क्षणो की स्मृतिस्वरूप बटोरना और पुस्तक के रूप में व्यक्त करना कितना दुष्कर कार्य है हम तो सोचने से ही रोमाचित हो जाते हैं परन्तु ममी ने तो यह कार्य पूज्य
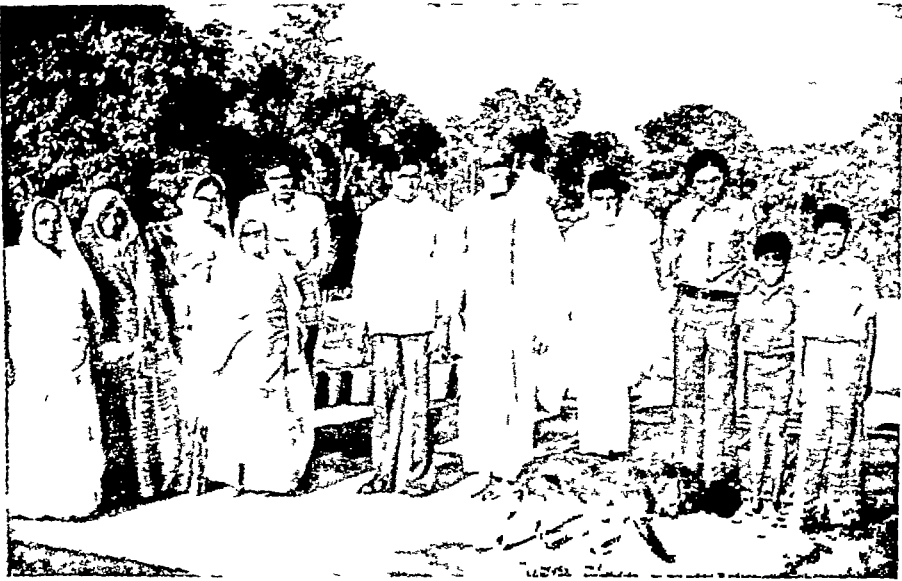
(१) श्रीमती स्व० मोतीलालजी सा० भण्डारी (२) श्रीमती सुन्दरबाई (मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी की मातुश्री) (३) श्रीमती भुवनेश्वरी भण्डारी (४) श्रीमती सेठ सुगनमलजी साहब भण्डारी (५) श्री जसवीरसिंहजी सा० भण्डारी (६) श्री जम्बू कुमार जी भण्डारी (७) पू० मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी 'कमल" (९) श्री सतीशकुमारजी भण्डारी (१०) श्री आशीष भण्डारी (सुपुत्र श्रीराजेन्द्रसिंह जी सा० भण्डारी) (११) श्री पवन भण्डारी (सुपुत्र स्व० श्री महेन्द्रसिंहजी भण्डारी)

जैनरत्न सेठ सुगनमलजी सा० भण्डारी
मुनिश्री से आशीर्वचन प्राप्त करते हुए।

विविध झांकियां :
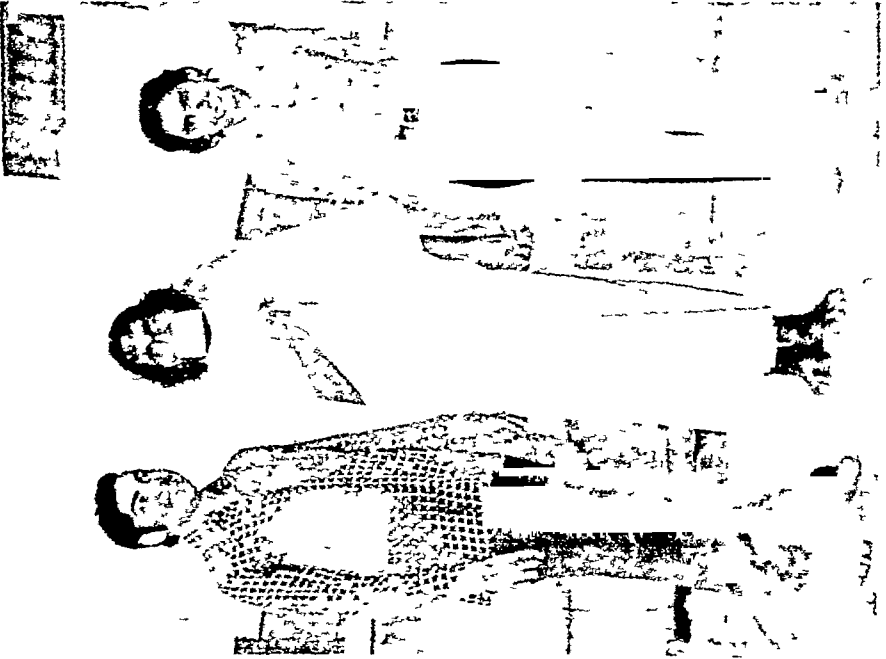
मुनिश्री के साथ स्व० गजेन्द्रसिंहजी के द्वितीय पुत्र श्री जम्बू-कुमार जी एव तृतीय पुत्र श्री सतीशकुमारजी भण्डारी

श्रीमती कृष्णावहन अग्रवाल, श्रीमती पद्मिनी शुक्ल (म० प्र० के मुख्य मन्त्री श्री शुक्ल की धर्मपत्नी) श्रीमती भुवन भण्डारी (चेयरमेन बेकरी प्रोजेक्ट) बेकरी प्रोजेक्ट के अन्तर्गत निर्मित ब्रेड का अवलोकन करते हुए।

महाराज के सानिध्य मे रहकर पूर्ण किया है एक ओर टेप पर से प्रवचन उतारने का कठिन कार्य जिसमे की ७-८ घन्टे रोज लगते और दूसरी ओर महाराज साहब का यह आदेश कि भण्डारी साहब की स्मृति स्वरूप सस्मरण आना बहुत जरूरी है, शुरू-शुरू मे जब सम्मरण की बात चली तो हम सभी एव ममी बहुत ही अधीर हो गये परन्तु जब हम लोगो की यह अवस्था देखी तो यह कार्य ममी ने अपने पर ले लिया और कहा कि तुम जरा भी विचलित मत हो मैं सब ठीक से करवा लूंगी। जब जीवन के उस वीभत्स सत्य को स्वीकार करना पडा है तो यह भी करूँगी। पता नही इतनी शक्ति उनमे कहाँ से आ गई जिस माँ की आँख मे पापा जी के नाम के साथ अश्रुधारा प्रवाहित होती थी वह आज दिन भर उस नाम के साथ बडी ही दृढ निष्ठा के साथ व्यस्त है। लगता है तब ही भारत मे नारी को शक्ति के रूप मे भी पूजा जाता है नारी सचमुच मे शक्ती वाहिनी है हम भी ऐसी शक्ति पुज अपनी माँ के बहुत कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमारे प्रतिक्षण वन्दनीय, अज्ञानतिमिर के नाशक हमारे जीवन के प्रकाश स्तम्भ, पापा जी की स्मृति इस पुस्तक के रूप मे लाकर चिरस्थायी कर दी। ममी का दृढ सकल्प, अविरल अथक प्रयास एव पूज्य महाराज साहब की प्रेरणा ने पापाजी की स्मृति स्वरूप इस पुस्तक को आप सबो के कर-कमलो मे प्रस्तुत की और पापाजी की पावन-स्मृति उन अनोखे प्रवचनो के सकलन के साथ सदैव-सदैव के लिए जैन जगत मे चिरस्थायी रूप मे स्थापित हो गई।

कठोर परीक्षा के क्षण

हमारे जीवन मे तो यह एक और परीक्षा का क्षण था। मैं बम्बई मे पढता था और अपनी कालेज की परीक्षा मे व्यस्त था। मेरा छोटा अनुज सतीश देहरादून मे अपनी सीनियर कैम्ब्रीज की तैयारी मे सलग्न था पर प्रभु ने तो हमारी परीक्षा कुछ और ही ले ली जिस परीक्षा की स्वप्न मे भी कल्पना नही थी। पापा जी के स्वास्थ्य की तो हमें कभी भी चिन्ता नही रहती थी, ममी का अवश्य सदा कुछ न कुछ चलता रहता था। जैसे ही मुझे बम्बई मे मेरी भुआ का फोन आया कि इन्दौर चलना है तुम तैयार रहना। गज्जु की (पापाजी को सभी प्यार से गज्जू कहा करते थे) तबियत खराब है। मेरे मस्तिक मे तो एकदम शून्यता छा गई २२ सितम्बर को तो मेरी पापा जी से फोन पर बात हुई और वे बडे ही सहज एव प्यार भरे शब्दो मे कह रहे थे। "जमसा" हम नही आ रहे है बम्बई ममी ने मना कर दिया कि अभी नही जाने देंगे। मेरा आगे का कलकत्ता टिकट कैंसल करवा देना—और अचानक यह क्या खबर मिली ? सहसा मन मे अनेको विचारो का ताता-सा लग गया। मन मे कुविचारो ने जजाल बुन डाला था समय काटे नही कट रहा था कब इन्दौर आवे और कब पापाजी के हँसते हुये कमल जैसे मुख के दर्शन हो, पर न मालूम क्यो दिमाग मे तूफान, दिल मे परेशानी, और शरीर मे शून्यता तीनो ने मिलकर मेरी चेतना पर आक्रमण कर

दिया । मैं अपनी समग्र चेतना को समेट कर संभालना चाह रहा था, परन्तु मन मे अशुभ की एक काली छाया मेरे सामने बार-बार आ रही थी । जैसे-तैसे इन्दौर स्टेशन पर पहुंचे कोठी से न कोई लेने आया न मोटर ही आई बडा ही आश्चर्य हुआ । मैं यह सब देख कर परेशान-सा हो गया और अशुभ की कामना करके मैं अपने आप को रोक न सका । भुआ के पास स्टेशन पर ही मैं तो बिखर-सा गया और कोठी आने पर पापाजी की मेरे बड़े भाई जसवीर पूज्य बाबूजी काका साहब सभी की हालत अवर्णनीय है । प्रभु किसे भी ऐसा सकटमय समय न दिखाए । ममी को देखकर तो मैं अवाक रह गया । मैं जब आया तो मेरे आने का सुनकर ही बेहोश हो गई । उनकी दिमाग की अवस्था भी ठीक नही थी बहकी-बहकी बाते करती थी उनकी चेतना लुप्त-सी हो चुकी थी । प्रभु ने हमारी कैसी परीक्षा ली है ।

कैसा कुसमय हमारे व हमारे परिवार के लिए आया, लेकिन इस समय मैंने, मेरे पू० दादा सा० एव बडे भाई जसवीर ने अपना सतुलन नहीं खोया । माँ की भी चेतना धीरे-धीरे लौटने लगी । माँ को पुन स्वस्थ देखकर हमारे मन भी जरा संभलने लगे, पापाजी की आत्मा की दिव्य-लोक से निरन्तर प्रेरणाएँ आती रही उन्ही की आत्म प्रेरणा से ही कहिए कि हम सभी कठिन परीक्षा मे बैठ गये । हम लोग कहाँ तक उत्तीर्ण हुए वह तो समय ही बताएगा । परन्तु इतना बडे भाई जसदा एव पू० मा० के विषय मे जरूर आत्म-विश्वास नही अपितु बडे ही गर्व के साथ सर ऊँचा करके कह सकता हूँ कि प्रकृति की उन दोनो वस्तुओ को भी हृदय मे सहेज लिया तो गुरु की आकस्मिक परीक्षा मे भी बुद्धि बाहुल्य एव चातुर्य से उत्तीर्ण हो गये ।

महान् एव भव्य आत्माएँ कभी मरती नहीं, न कभी नष्ट होतीं, यह बिलकुल सत्य है, अपितु अमर हो जाती हैं । पापाजी भौतिक रूप से अवश्य हमारे पास नही परन्तु उनकी आत्मा का वह भव्य स्वरूप जो उनके जीवन-काल मे हमे दृष्टिगोचर नहीं हुआ था वह स्वरूप हमारे सामने क्षण-प्रतिक्षण उनकी आत्मा से निर्देशित है । हम भौतिक एव शारीरिक रूप से अवश्य अलग हो गये हैं, परन्तु पापाजी के स्वर्गवासी होने के बाद हमारे परिवार पर उनकी दिव्य आत्मा आज भी हमे अपने कर्तव्य-पथ पर बढने का सम्बल दे रही है । □

स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भंडारी

के स्मृति स्वरूप

प्रकाश्यमान स्मारिका हेतु

संदेश
एवं
प्रेरक-संस्मरण

संदेश

भारत के उपराष्ट्रपति के सचिव
नई दिल्ली—११००११

पत्र सख्या उ० रा० स० १३४६/७६

महोदय,

आपका पत्र उपराष्ट्रपति जी के नाम प्राप्त हुआ, धन्यवाद ।

उपराष्ट्रपति जी को यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप स्वर्गीय गजेन्द्रसिंह भडारी की स्मृति में "अन्तर्दृष्टि" नामक पुस्तक प्रकाशित करने जा रहे हैं । उपराष्ट्रपति जी आपके इस प्रयास की सफलता के लिए अपनी शुभकामनाये भेजते हैं ।

भवदीय,
(वि० फडके)

संदेश

श्री माननीय कृपि एव सिचाई मत्री   सत्य मेव जयते

श्री जगजीवनराम जी

भारत सरकार, नई दिल्ली

दि० २१ सितम्वर, १९७६

प्रिय महोदय,

स्व० श्री गजेन्द्रसिह भंडारी की पावन स्मृति मे जैनधर्म की एक पावन पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है, यह आपके पत्र दिनांक १७-९-७६ से माननीय कृपि एवं सिचाई मंत्री, श्री जगजीवनराम जी को ज्ञात हुआ।

माननीय मंत्री जी की शुभकामना है कि पुस्तक अपने लक्ष्य में सफल हो।

भवदीय

(धर्मचन्द्र गोयल)

संदेश

☐ **श्री विजयसमुद्रसूरि जी महाराज :**

कवि मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" ने इन्दौर मे वर्षावास मे स्थिर होकर परम परमेश्वर परमात्मा महावीर स्वामी के शुभ सन्देशो के प्रवचन के माध्यम से साधारण जनता तक पहुँचाने का प्रयास किया है, वह श्लाघ्य है ही। विशेष श्लाघ्यतर यह है कि उन प्रवचनों का नाम आपने "अन्तर्दृष्टि" रखा है।

चरण-करणानुयोग के व्याख्यान श्रुतकेवलियो ने समय-समय पर अन्तरलीन साधक के तप, प्रज्ञा और यश का उतरोत्तर अहर्निश आदर किया है वैसे मैं भी इस 'अतर्दृष्टि' का आदर करता हूँ और साथ मे मुनि श्री को धन्यवाद। व्यवहार भाष्य मे लिखा है कि—

> सव्वजगुज्जोयकर नाण, नाणेण नज्जइ चरण
>
> —११७/२१६

ज्ञान संसार के सकल रहस्यो को प्रकाशित करने वाला एक तेजोमय परम आत्मधर्म है। क्योकि ज्ञान से ही आचरण का यथोचित वोध होता है। आप भी ज्ञानाराधक ज्ञानियो की सेवा कर साहित्य ससार मे श्रेयोमार्ग का निर्माण कर रहे हैं। अत धर्मलाभ की पात्रता तो है ही।

—विजयसमुद्रसूरि

●

संदेश

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी साहेब भंडारी की शुभस्मृति मे उदियमान कवि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रभावशाली प्रवचनो का सकलन "अन्तर दृष्टि" पुस्तक प्रकाशित करने का निर्णय हो गया यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। मुनि जी का मधुर कठ, गायन की कला के साथ वक्तव्य कला का भी सुन्दर ढग है जो श्रोताओ के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गया है। अल्पायु मे ही मुनिजी ने अपने पुरुषार्थ द्वारा काफी सफलता अर्जित की है। उनकी रचनाओ से, और विशेषकर "अन्तर्दृष्टि" से पाठको को नैतिक एवं धार्मिक मार्ग-दर्शन मिले, यही शुभकामना है।"

—आचार्य आनन्द ऋषि

●

महेन्द्र मुनिजी, 'कमल' अच्छे प्रवक्ता हैं। स्व० श्री-गजेन्द्रसिह साहेब भडारी जी की स्मृति मे इन्दौर संघ उनके प्रवचनो को प्रकाशित करके स्थायी रूप दे रहा है, और जन-जन के लिए एक उपयोगी कार्य कर रहा है, इसके लिए धन्यवाद एव शुभ-कामना व्यक्त करता हूँ।

जैन भवन
लोहामन्डी आगरा
२१-६-७६

—विजय मुनि

●

संदेश

□ **मालवकेशरी प्रसिद्धवक्ता**
श्री सौभाग्यमल जी महाराज साहब
रतलाम

दिवगत युवाहृदयी श्री गजेन्द्रसिह जी भण्डारी जीवन की जीवन्त ज्योति थे। जिनकी चेतना का प्रकाश पारिवारिक सीमा मे आबद्ध नही था, वरन् निष्पक्षीय रूप से समाज एवं नगर को आलोकित करने मे सक्षम था।

आध्यात्मिक विकास की धार्मिक प्रणालियाँ उन्हे पसन्द थी। आज के गुमराह वर्ग को वे उससे जुडने के लिए वार-वार प्रेरित करते रहते थे।

जीवन को सही अर्थो मे जोडने की कला उन्हे आती थी। साधु-संतो के वे वडे प्रेमी थे। सत्सग मे उनकी भरी-पूरी रुचि थी। उसमे वे सहज रूपेण ही तल्लीन हो जाते थे। मानो वे ध्यान-योग की आनन्दानुभूति कर रहे हो।

ऐसे धर्मज्ञ युवा मानस की पुण्य स्मृति मे प्रस्तुत पुस्तक का प्रशसनीय प्रकाशन मुमुक्षुजनो के लिए उपलब्ध किया जा रहा है। यही उनकी सच्ची श्रद्धाजली है।

☆

संदेश

☐ मालवरत्न, ज्योतिर्विद, गुरुदेवश्री कस्तूरचन्द जी म० सा० द्वारा प्रदत्त स्मृति-वचन

दिवगत श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी समाज एवं परिवार के होनहार तथा प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। मिलनसार स्वभाव के कारण वे जहाँ भी होते सारा वातावरण उनके लिए प्रफुल्लित रहता। साथ ही उनके हर काम मे समाई हुई करुणा एवं कोमलता भी देखते ही वनती थी।

अपार धार्मिक श्रद्धा एव सत-सत्संग उनके धर्म रुचि शील-मानस की ही परिचायक है। युवा हृदय मे धर्मप्रेम होना श्रेयस्कर देन है। वे अपने कर्तव्यो के परिपालन मे समुचित रूप से जागरूक रहते थे। किसी भी सेवा कार्य के प्रति उनमे प्रमाद नही रहा। वे वास्तव मे धर्मप्रिय आत्मा की श्रेणी के थे।

गुरुभक्ति की आदर्शता पर आप प्रतिक्षण न्यौछावर होने वालो मे से थे। मानवीय गुणो को विकास दिशा की ओर किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है यह कलात्मक विशेपता आपकी अपनी ही थी। सेवा भावना भी आप मे वनी रहती थी। वास्तव मे आपका चमकता हुआ व्यक्तित्व था।

जिनकी स्मृति सहज ही हो जाती है। सर्व प्रिय आत्मा का यह स्वाभाविक लक्षण है। उनका जीवन उनके नाम-गुण से साम्यता रखता था। साथ ही वे थे भी वैसे ही।

दीपमालिका
दिनांक २२-१०-७६
नीमचौक, रतलाम

संदेश

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी साहेब भडारी की स्मृति मे युवा लेखक, कवि एव मधुरवक्ता श्री महेन्द्र मुनिजी, 'कमल' के प्रवचनो की पुस्तक "अन्तर दृष्टि" प्रकाशित कर रहे हैं, परम प्रसन्नता, साहित्य जीवन का सच्चा साथी मित्र, एव दिशा-दर्शक है। प्रस्तुत पुस्तक जन-जन के मन मे विवेक की ज्योति जागृत करे, यही मगल कामना है।

जैन भवन
लोहामन्डी, आगरा

—**मुनि समदर्शी**

●

मुनि श्री संतवाल जी
महावीर नगर अन्तरराष्ट्रीय केन्द्र
मु० पो० चिचणी, जिला ठाणा

मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी "कमल" ने इन्दौर के अपने वर्षावास मे भिन्न-भिन्न विषयो पर दिये हुए प्रवचनो का सकलन "अन्तर दृष्टि" रूप मे गजेन्द्रसिंह जी भंडारी के स्मृति रूप मे निकल रहे हैं उस पुस्तक (सकलन) के लिए मेरी शुभकामनाएँ भेज रहा हूँ।

●

तार : साहू जैन,
कलकत्ता-१

श्री शान्तिप्रसाद जैन

आप स्व० श्री गजेन्द्र सिंह जी साहेब भडारी की स्मृति मे मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी द्वारा दिए गए प्रवचनो का संकलन निकाल रहे हैं जानकर वडी प्रसन्नता हुई। यह आप पावन कार्य कर रहे हैं इसके लिए आपको अपनी वधाई भेजता हूँ।

शुभ कामनाओ सहित,

आपका
शान्तिप्रसाद जैन

●

संदेश

रामसरनचन्द मित्तल

वित्त मन्त्री,
विभाग, हरियाणा
चण्डीगढ़

मुझे यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि कवि मुनिश्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के सम्प्रति इन्दौर वर्षा कालीन-वास मे विविध विषयो पर होने वाले प्रभावशाली प्रवचनो का संकलन स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिह जी साहव भण्डारी की पावन स्मृति में "अन्तर्दृष्टि" के रूप मे प्रकाशित किया जा रहा है।

मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रवचनो के संकलन का कार्य एक महत्त्वपूर्ण निर्णय है। उनके प्रवचनो का संकलन प्रकाशित करना जहाँ श्रीयुत् गजेन्द्र सिंह जी की सच्ची श्रद्धाजलि है, वहाँ इससे समाज का भी भारी हित होगा। उनके प्रवचनो के प्रकाशित रूप मे एक ऐसी मिसाल जगेगी, जिससे समाज मे मानव-प्रेम और शाति की नई रोशनी फैलेगी।

मैं अन्तर्दृष्टि के उक्त संकलन की सफलता की कामना करता हूँ और आशा करता हूँ कि इससे समाज का हर वर्ग लाभ उठायेगा।

मगल-कामनाओ सहित।

—रामसरनचन्द मित्तल

संदेश

प्रवचन और उसका प्रकाशन अध्यात्म-उन्नति के लिए युगीन आवश्यकता की पूर्ति करना है, जन-मानस को धर्म की दिशा देने मे सक्षम है।

स्व० श्रीयुत् गजेन्द्रसिह जी भण्डारी की स्मृति स्वरूप 'अन्तर्दृष्टि' पुस्तक का प्रकाशन स्तुत्य प्रयास होगा।

सद्भावना के साथ।

—रतन मुनि

●

आज साहित्य का प्रकाशन कम नही हो रहा है। इसके विपरीत साहित्य प्रकाशन की वाढ आ रही है। किन्तु आम जतना के लिए सुगमता से सरल सुरुचि पूर्ण साहित्य की कमी है।

विशालकाय ग्रन्थो का अध्ययन परीक्षाओ तक अथवा कुछ सीमित लोगो तक रह गया है। दौड़-धूपमय वीसवी शताव्दी मे सरल साहित्य, जो जीवन को सही दृष्टि प्रदान कर सके उस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता है। मुझे आशा है कि महेन्द्र मुनिजी के प्रवचनो का सकलन अतर्दृष्टि के रूप मे स्व० श्रीयुत् गजेन्द्रसिह जी भण्डारी की पावन स्मृति सरल साहित्य की कमी को कम करेगा। और जीवन-निर्माण मे महत्वपूर्ण योग देगा।

—साध्वी सुमतिकुँअर
राजगीरि

●

संदेश

प्रभु महावीर वाणी अनन्त ज्ञान का अखण्ड स्रोत है। ढाई हजार वर्षो से निरतर इसका उपयोग होता रहा है। इससे वह क्षीण नही किन्तु अधिक समृद्ध होता गया है। प्रतिभा-सम्पन्न कलाकारो के द्वारा वह दिव्य खजाना जन-साधारण के लिए सरलता से उपयोग मे लाने योग्य हो जाता है। महेन्द्र मुनिजी के प्रवचनो का संकलन इसी दिशा का प्रयास है। आज के इस विषमता भरे युग मे यह सकलन लाभ पूर्ण होगा।

—साध्वी चन्दना दर्शनाचार्य
राजगीरि

●

दिनाक : २३-६-१६७६

स्वर्गीय श्रीयुत्—गजेन्द्रसिहजी साहब भडारी की पवित्र स्मृति मे "अन्तर्दृष्टि" के रूप मे पूज्य कवि मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी, "कमल" के इन्दौर वर्षावास मे दिये गये ज्ञानवर्धक व प्रेरणात्मक प्रवचनो का सकलन "अतन्दृष्टि," अन्य क्षेत्र के धर्म-प्रेमी भाइयो को पूज्य कवि श्री जी के पवित्र विचारो से प्रेरणा देंगे एव जीवन व समाज सुधार की तरफ रुचि बढाने मे मदद करेगा। ऐसा पूर्ण विश्वास है। ऐसे संकलन कम ही प्रकाशित होते हैं। मैं इस सुअवसर पर प्रकाशक को मेरी हार्दिक शुभ-कामनायें भेजता हूँ व इस प्रयास के लिए बधाई भी।

—नरेन्द्र कुमार छाजेड़

●

संदेश

मनुष्य के रूप मे जन्म ले के अनेक प्राणियो को मानव जीवन, धन्य वनाता है। किन्तु कतिपय असाधारण पुरुष, मानव जीवन को धन्य वना देते हैं। दिवगत गजेन्द्रसिह भण्डारी भी उन्ही पुण्यात्माओ मे से थे।

उनके मन मे धर्म का जीवन आलोक था। नेत्रो मे करुणा, हाथो मे सतत कौशल, वुद्धि मे सतुलन और हृदय मे प्रेमश्रोत सदा वहा करता था।

धर्म श्रावको मे से एक ऐसे व्यक्ति का अस्तित्व समाज के लिए गौरव का रूप रहा होगा। जो गृहस्थ मे रहते हुए असग, उलझनभरी समस्याओ मे निर्द्वन्द्व, वासना के विखरे वातावरण मे लक्ष्यवद्ध और पिता के लिए विनयमूर्ति, पत्नी के लिए प्रेरणा स्रोत, पुत्रो के लिए आदर्श पिता समाज के लिए सहायक तथा भविष्य के लिए जो आशादीप वनकर चमका होगा। उसे आज हम शब्दो मे कैसे व्यक्त करें। फिर भी भगवान् महावीर की श्रावक परम्परा मे ऐसे वीर पुत्र सदा स्मरणीय रहेंगे। मुझे प्रसन्नता है कि भण्डारी परिवार द्वारा उनके उद्यान के इस अमर सुवास से भरे पुष्प की स्मृति को वनाये रखने के लिए युग के उदीयमान वक्ता, कवि, इतिहासकार महेन्द्र मुनि 'कमल' के ओजस्वी भाषणो का सकलन प्रकाशित किया जा रहा है।

आज हमारे वीच गजेन्द्रसिह नही है, पार्थिव रूप से, किन्तु उनकी धर्मशीला पत्नी के आदर्श-जीवन से तथा उनके पुत्र धर्मपरायण जसवीर भण्डारी आदि तीनो भाई उनके पथ-चिन्हो पर चलकर समाज व राष्ट्र की सेवा मे लगे हुए हैं।

"अन्तर्दृष्टि" का प्रकाशन जनता के कल्याण के निमित्त वने यही कामना है।

शुभकामनाओ के साथ

मुनि सुशील

५-१०-७६

संदेश

स्वर्गीय श्रीयुत् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की स्मृति मे श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल के महत्त्वपूर्ण प्रवचन—"अन्तर्दृष्टि" के माध्यम से उनकी लोक-कल्याणी वाग्धारा का प्रस्तुतीकरण "सत्य, शिव, सुन्दरम्" के रूप में जीवनोपयोगी उपलब्धि होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

—मुनि शान्तिस्वरूप
मेरठ

●

डॉ० वशिष्ठनारायण सिन्हा
दर्शन विभाग
काशी विद्यापीठ
वाराणसी–२

यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि पूज्य मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रेरणास्रोत प्रवचनो का प्रकाशन "अन्तर्दृष्टि" के रूप में स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी साहब भडारी की पुण्य-स्मृति मे होने जा रहा है। इससे धर्म-दर्शन साहित्य की समृद्धि होगी। इस कार्य के सफल समापन के लिए मेरी सभी शुभकामनाएँ आपके साथ हैं।

●

श्रद्धांजलियाँ

इन्दौर के रत्न

थे सचमुच इन्दौर के वे सच्चे श्रृंगार
श्रीयुत वधु गजेन्द्र जी, त्याग चुके ससार
त्याग चुके ससार, धर्म में जीवन वीता,
सब कुछ होते हुए, धर्म विन जीवन रीता,
शुभ कर्मो से ही तो सिद्धी मिला करती है,
यश जीवित रहता, केवल काया मरती है,
कहे 'कमल' मानव जीवन का कर्म यही है
वह क्या जीवन है, जिसमे सत्कर्म नही है ॥

× × ×

मिला जिन्हे सम्पन्न कुल, अन्तरदृष्टि प्रवुद्ध
युवक हृदय गजेन्द्र थे, उनका मन था शुद्ध
उनका मन था शुद्ध, धन्य मानवता-सेवी
विदुषी भुवनेश्वरी धर्मपत्नि है देवी
पुत्र त्रय जसवीरजी, जम्बू और सतीश
धर्मनिष्ठ श्री सुगनमलजी हैं उनके ईश,
कहे 'कमल' इन्दौर आपका ऋणी रहेगा
'सतकर्मो की जय हो,' जग यह सदा कहेगा ॥

—मुनि महेन्द्र कुमार 'कमल'

●

ओ भुवनेश्वरी के ईश्वर !

समृद्धि के आंगन के आलोक !
तुम्हें क्या सूझी थी ?
तुम्ही बताओ किस अपराध मे
ज्योत तुम्हारी बूझी थी ॥१॥

तुम, प्रिय पुत्र, पत्नि का जीवन
अधुरा, अधुरा, छोड़ गए।
भरे-पूरे परिवार से नाता।
बिन बतलाए तोड़ गए ॥२॥

गए जहाँ हो, वही सुखी हो
यही भावना अतर की।
आत्मा उन्नत होती रहे बस
भुवनेश्वरी के ईश्वर की ॥३॥

—साध्वी प्रीति सुधा

□

(१)
निकल रहे हैं आपके
भाषण विविध प्रकार
'मुनि महेन्द्रजी' कीजिये
साधुवाद स्वीकार।

(२)
'चन्दन' की यह कामना
बनकर के आदित्य
निश-दिन रचते जाईये
नया - नया साहित्य

(३)
श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी
भंडारी की याद।
इस पुस्तक से पायेंगे
पाठक जन साल्हाद।

—श्री चन्दन मुनि (पंजाबी)

दिव्य ज्योति को बुझा गया है असमय में ही काल-कराल

□ रमेश जोशी

अश्रुधार वहती नयनो से, सुन परिजन का करुण विलाप
यह निश्चित है असमय मे ही, विधि से छले गये हैं आप
मन-मानस मे खिले हुए हा ! कुसुमित-कमल सरीखे फूल
किसका वस चलता है जग मे जव विधि हो जाता प्रतिकूल
धकधक करती हुई चिता पर क्षण-क्षण नर्तन करता काल
कौन नियति को जीत सका है, हे नश्वर जग के प्रतिपाल !
दिव्य ज्योति को····

झुके नही जो रुके नही जो कभी न डिग पाया विश्वास
प्रगति-पथ का अनुयायी था जिनका एक एक उच्छ्वास
करुणा द्रवित हुई नयनो मे, तेज पुन्ज वे थे साकार
था सर्वस्व समर्पित जीवन, सवके लिए झलकता प्यार
मुक्तिदूत वन कर आये थे जिनका रहा समुन्नत भाल
दिव्यालोक दिखा कर जग को विध्वसित करता भूचाल
दिव्य ज्योति को····

पतितो की पतवार सभाली, किया दलित-जन का उत्थान
समता के थे प्रवल समर्थक, रखते मानवता का ध्यान
विश्व-भ्रमण कर प्राप्त किया जो ज्ञान, किया उसका उपयोग
मिला जिन्हे देवत्व, न उनको लुभा सके हैं केवल भोग
सुर दुर्लभ इस नर जीवन मे जीता है नर कितने साल ?
अमृत पिला कर इस जीवन मे विष क्यो घोला करता व्याल ?
दिव्य ज्योति को····

जव तक सूर्यचन्द्र है जग मे तव तक अमर तुम्हारा नाम
कल की आशा किये विना ही सतत किये कर्म निष्काम
क्रूर-विधाता तोड चुका है "नन्दनवन" का कोमल फूल
क्षमा कीजिए हमको स्वामिन् ! हमसे यहाँ हुई जो भूल
श्रद्धावनत-समर्पित करते हैं श्रद्धान्जलि का यह थाल
ग्रहण कीजिए, यह नश्वर तन हम जैसो का है जजाल
दिव्य ज्योति को····

ए मौत ! बुरा हो तेरा

□ मोतीलाल सुराणा

साक्षी है इतिहास
हजारो-करोडों वर्षों की उम्रवाली
बूढी मौत को
आज भी
कम उमर के लाडलो को
आदत है पहले ले जाने की
इतराते थे हम जिन गजेन्द्रसिहजी पर
कुछ कर गुजरने की साध थी जिनके मन मे
बहुत कुछ आशाएँ थी जिनसे हमे
मौत के बर्फीले हाथो ने
दबोच लिया उन्हें
बेबस थे सब
देखते रह गए हम टुकुर-टुकुर
सुबह के बाद दोपहर
और दोपहर के बाद सन्ध्या
पर प्रकृति का इस बार
बदल गया नियम
सवेरे के बाद
हो गई शाम,
आकाश की ऊँचाई को
छूने वाली वह इमारत
ढह गई
एक ही क्षण मे
हम सब मौन हैं
क्या कहें इस समय
एक ही आवाज निकलती है मुंह से
ए मौत ! बुरा हो तेरा !

जीवन सचमुच है नियति का दास

□ पद्म शास्त्री, मांडलगढ

काल के हैं सभी क्रूर विधान
कर स्वयं वह जीव का निर्माण।
मनुज घट में डाल करके स्नेह
स्वय हर लेता सभी के प्राण ॥१॥

श्रेष्ठिवर थे धन्य सिंह-गजेन्द्र
मानवी-सद्वृत्तियो के भक्त।
क्रान्तदर्शी, कर्मयोगी - वीर
भोग पाकर भी न थे आसक्त ॥२॥

स्नेह से परिपूर्ण उनका चित्त
दीन जन पर द्रवित होता शान्त।
लोचनो से बरसता पीयूष
चन्द्रमा की कौमुदी सा कान्त ॥३॥

किया करते थे अहर्निश
स्वयं जीवन भर रहे गतिमान।
तीक्ष्ण प्रतिभा के धनी थे, सत्य
श्रेष्ठिवर का बहुमुखी था ज्ञान ॥४॥

सूर्य सम था प्रखर जिनका तेज
विघ्न उनसे भागते थे दूर।
खौलता ही रहा उनका रक्त
स्वय सचमुच नवयुवक थे शूर ॥५॥

दिग्दिगन्तो तक लगी थी दृष्टि
सिन्धु से उनमे भरे गुणरत्न।
नीतिवेत्ता, सजग और निर्भीक
गुण-ग्रहण के कर रहे थे यत्न ॥६॥

योग्य उनके हैं सभी सत्पुत्र
वधू-भुवनेश्वरी गुण की खान।
जनक भी तो वृद्ध हैं सन्तप्त
रख रही है सभी का वे ध्यान ॥७॥

रह गई स्मृति शेष केवल आज
चित्रमय उसके सभी हैं कार्य।
गये क्यो वे शीघ्र स्वर्ग सिधार
हो गया था उन्हे क्या अनिवार्य ? ॥८॥

मिली होगी काल को अब तृप्ति
हुआ होगा क्रोध उसका शान्त।
परिजनो के क्यो किये हा हन्त !
अश्रुओ से सिक्त लोचन प्रान्त ॥९॥

मेट सकता कौन विधि का लेख
हन्त ! शोकाकुल हुआ परिवार।
मिले उनकी आत्मा को शान्ति
सत्य ही यह विश्व है नि:सार ॥१०॥
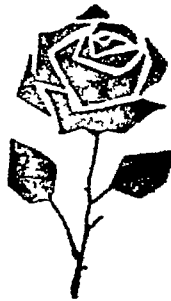
CEREAL TECHNOLOGISTS
1435, Clay Street 0 No. Kansas City Mo.
64116, P O Box 7498
September 3, 1976

DOTY
LABORATORIES
INCORPORATED
Telephone 816-471-8580
James M Doty—Director

Mr T N. Parthasarathy
Flour & Food Ltd ,
27 M G Road,
INDORE—452001 M P India

Dear Sir,

It is a pleasure to express my appreciation for having had the opportunity of an all too brief acquaintance with the sterling character of Shri G S Bhandari

I spent time with him in India and also here in the United States His innovative thinking in all areas of business was both stimulating and refreshing His hospitality was so sincere that to be with him was always a most complete joy

Mrs Doty and I attended a dinner party in his beautiful home in Indore This was an experience we will never forget It was truly delightful.

I also had the pleasure of driving him from Kansas State University to Arkansas City, Kansas Although the drive was of several hours, it seemed only a few minutes because of his new and original concepts of ways cereal grains might be processed more advantageously

It was a privilege just to have known Shri G S Bhandari

Yours truly,
DOTY LABORATORIES, INC ,
Sd J M Doty
(James M Doty)

DIXIE-PORTLAND FLOUR MILLS, INC.

P O. Box 3423, Newphis, Tennessee 38103
Phone · Area Code 901-525-7382

Mr. T N Parthasarathy, September 1, 1976
Planning & Development Officer,
Flour & Food, Inc
27, M G Road,
INDORE 452001 M P INDIA

Dear Mr Parthasarathy,

The President of our company, Mr John T Stout, has referred to me for reply your letter of 20th August.

When the late Shri G S Bhandari visited our office, we were very much impressed with his warm personality and human insight.

Besides visiting our office, he also visited two of our mills to observe first hand our experiments with air classification used in the extraction of wheat protein

His idea was to install a similar process in his milling operations with the object of using this protein to obtain a higher Protein Flour.

Moreover, he also envisioned the packaging and marketing of this protein as a dietary supplement

Even though Shri G. S Bhandari's visit in this country was rather short, he made many friends and left a memorable impression everywhere he went

We were, of course, shocked by his sudden death, and are sure his loss has been deeply felt by his many friends and relatives

Sincerely Yours,
DIXIE PORTLAND FLOUR MILLS, INC
Sd Alfred A Leon
Alfred A Leon
Export Manager

FLOUR MILLING
Capacity 30000 Cwt

GRAIN STORAGE
4—500 000—Bushels

S S GADRE, B.A LL B
INDORE

For the Memories of Late Sri G. S. Bhandari

I have had the fortune to serve under the Late Shriman G S. Bhandari, for about 2 years and a half

During this period, there were various occasions to see the various aspects of his nobleness, insight into the working of the Office and frankness

He had the knack of taking work from persons by his sweet tongue and he judged himself the quantum of work with his subordinates As an example, I may state that on a particular day, he desired about 100 letters to be issued with samples of products to the parties and he told me at about 2 p m to do it. I expressed my inability to do it in such a short time, when he said that he would assist me in the work and he actually sat infront of me and I had only to fill the Despatch Register and note the letters He himself filled up the letters in the envelops with the samples and gave to the peon to paste them and affix stamps on them

He was not rigid in seeing that his staff was there through out the Office hours He was sympathetic to them He had instructed me to inform the Secretary if I wanted to go out for a short time

When I had joined the duty here he had told me that as I was then recently retired from Government Service as a Gazetted Officer the job here would not suit me as he had experience in the past of such people leaving the Job in two months

It was also his speciality to judge every one's ability and integrity within a short time On one occasion, I could not attend the Office in time, as the train by which I was coming to Indore, was late When I was not here in time, he enquired from Mr Kutumbale, Stenographer, whether any intimation had been received from me and when he replied in the negative, Shriman Bhandari Saheb immediately observed that there must have been some reason for my delay in attending the Office and that had I wanted to avail of leave the application whould have been received in time I attended Office at 12 noon and intimated to him about the delay but he merely read the slip and destroyed it

One more thing about him was that he used to go to everyone's table when he had time, and watch the person working and also search his drawers etc

Whenever, he went through the Signature pad, which used to be sent to him daily, he had great insight in finding out mistakes and whenever he found mistakes he took the person concerned to task.

Whenever, he had to sit in Office after Office hours he immediately informed all the Staff to leave the Office at the appointed hour. This is a clear proof of his noble heart

In order to have a check on the Factory Staff, he used to visit factory at any hour of the day.

Another example of his special knack of getting work done by sweet tongue It so happened one day, that the Stenographer was either not present or had left the Office, and he had some urgent work of typing in the evening, it was about 6 O'clock in the evening and he was standing in verandah, where he called me and said that could I type out a small letter as it was of an urgent type ? He could have as well ordered me to do the same, but he realised that it was not my regular work and so he spoke in that fashion

In important matters, he used to dictate letters immediately to the Stenographer, even if they were to be issued by the Secretary, as this quickened the pace of disposal He used to have clear ideas of every problem and so could dictate swiftly.

When I was appointed, he had told me that I was to work as I/c of despatch and it was my duty to see that no letter passed through me with any mistake Once a foreign letter was to be despatched and I thought that there was some mistake in it He was then leaving for the factory and I went to him and pointed out the mistake He agreed to my viewpoint but observed that it should go as it was for the simple reason that Americans may not be able to detect it. This shows his broad mindedness in accepting a lacuna in his own dictation Such type of nobleness is hardly to be found in the Directors of Companies Ordinarily, such behaviour of the subordinate would have been taken ill by others

I was I/c of noting the leave to the Staff. In respect of peons, his having realisation that they have had to work overtime and were ill-paid, he had given special instructions that before noting any peon's leave, his instructions should be obtained in the matter and if he found that on that account any peon was likely to put to loss, that leave should not be counted

Before concluding, I would like to mention that he also respected religion of his subordinates I was contemplating to observe a weekly fast for four months and naturally needed some special timings on those days and he was kind enough to readily grant the facility. Furthermore, on completion of the fast, I brought the 'PRASAD' for him and he gladly accepted it with thanks. This proves that he respected his subordinates' religious sentiments and feelings

Sd. S. S. Gadre
15/10/76

N D AGARWAL
1005 Sector 8
Chandigarh

My acquaintance with the Late Shri G S Bhandari dates back to the late fifties when as an Article of R D Joshi & Company, Chartered Accountants, Indore I was deputed for auditing Bhandari Group of Companies/concerns I had a very few occasions to come in contact with the Late Shri Bhandari as my audit work involved my association mostly with the people in the Accounts Department But I admire the acute sense of memory which the Late Shri Bhandari possessed and the great humane attitude he played towards the people even if he did not know them very closely. I give here an instance

Sometime, during the summer of the year 1970, the Late Shri Bhandari was enjoying the pleasure trip to Kulu on his car with his family As the bad luck had it, his car gave way in Kulu putting him in fix as he could not get the parts required to put the car again on wheels. Finding no other alternative, he travelled as a commoner from Kulu to Chandigarh by bus and reached the Premier Motor Garage to seek their help for putting their standard car in Kulu in order Fortunately, I also happened to be present there with the problems of my own car. Surprisingly the Late Shri Bhandari caught my identity at a glance and we were soon lost in conversation reminiscent of my day in his company as an auditor He enquired of my and my family's welfares and all about the time I had spent since then. Thrilled as I was, I invited him and his family members to my residence and his response was spontaneous and heartening It was a very happy event for me and my family to serve the Late Shri Bhandari and his family members on that day His unassuming personality and simplicity of thoughts won the hearts of all of us and when they parted on a taxi, arranged by me for his onward journey to Dehradun, it was a time mixed with feelings of joy as well as sadness for us

—N D Agarwal

S C GONDAL, M COM

I was at that time a student of M Com. (Final). One evening I saw an advertisement for a post of Stenographer in M/s Industrial Traders. Next morning I went to that office and met Shri G. S Bhandari. He was ready to employ me and offerred a salary of Rs. 200/- p m, with permission to continue my studies The first pleasant surprise was that when I signed the salary register at the month end, it showed Rs. 225/- against my name Thinking that it was through oversight, I brouht this to the notice of the Accountant, who told me that 'Bhaiya Saheb' (Shri GSB was called like that) has been pleased with my work and has ordered that I should be paid at Rs 225/- p m This incident had a great psychological impact on me and thereafter, I never felt as though I was serving in a private concern

Shri GSB's behaviour with the younger staff reminded me of the behaviour of elders in any family Gradually he had developed so much of confidence in me that besides typing and correspondence work, he entrusted me with cash handling and confidential matters

He had great respect for his elders Once a team of members of Cow & Gate (England) came to Indore They were lodged in the Nandanwan Kothi itself Bhaiya Saheb desired that I should come to the Kothi with typewriter etc, to take notes After the morning session of discussions was over, he was seen keeping things in order and removing rough papers etc

He said it was time for Shriman Suganmalji Bhaiya Saheb to come and every thing should be neat and tidy before his arrival

He had very abmitious industrial plans Many a times I had the occasion to travel with him in car to Bhopal Once he had an appointment with the then Chief Minister Shri D P Mishra in connection with submission of proposals for the Milk Products Factory at Indore I remember how thoroughly he was busy reading books and magazines to acquaint himself with every detail of the industry Not only that he visited several such factories to acquire basic knowledge about them and then only decided to establish such

a factory and prepared proposals for submission to the Chief Minister.

Similarly, once I had the opportunity to travel to Delhi, where Shri GSB had already reached by plane to settle terms of collaboration with a British firm Shri GSB was so cordial and helping that one afternoon he handed over the key of his suite in the Ashoka Hotel to me saying that I may relax till they come back from the Cricket Test match. He never treated his staff members as subordinates

When I was selected for a job in the Indore University, I approached Bhaiya Saheb with a little hesitation to give him this news To my utter surprise, I noted that he was not only happy to know this, but encouraged me and said 'I will not come in your way of better prospects, this is a good opportunity and you should not hesitate to take up the job.' He further said 'If you have any problem there, you are welcome to join us again ' Words are insufficient to express my sense of regards for him

Once when we met in a marriage reception party, looking to my tie, which was very much similar in colour and print with the one he had put on, he remarked, "we are the two young looking persons with go-go ties." This was only a few months before his sad demise and who knew then that the Almighty had already counted his days

Jayendra K. Majumdar
B.A , LL B. (Advocate)

K 220 Adinath Co-op
Housing Society Ltd.
Poona-Satara Road,
Poona 411009

Dated 14/10/76

Gajendra Singh—Friendship Personified

Whenever I make efforts to bring together the happy reminiscences of the wonderful hours, days and years spent in the company of my best friend late Shri Gajendra Singhji, I always have a feeling that I am talking to him, listending to him most polite and courteous throught-provoking talk His ever smiling face, even after lapse of half a decade, is visibly moving before my eyes making me experience truth perception and bringing within me the awareness of his revealing nature He was not only excellent as a friend, but he was ever willing being to give patient hearing to everyone who approached with their problems It is always a matter of pride to have had a friend like him and I cannot but resist my temptation to say that,

> "Thought, Friendship and World together rise and together set
> Still by Thought and Friendship the World is lit
> In existence Real, Thought, Friendship and World are formed and lost "

We were very close to each other during the period when I was posted as Manager of Bank of India, Indore and I am yet to come across a personality who is very much humane, polite, courteous, humble and considerate. He was the life blood of Bank's activity at Indore and I can never forget the assistance received from him for developing the Bank's business. He was a member of Bank's Local Committee at Indore and his advise, services and recommendations enabled me to make the institution most popular one in the State of Madhya Pradesh I succeeded because of him and the entire credit for any good work done is his

He was above the dangers of conflicts of greed for wealth and power and he lead a pure, spiritual life so that he could cope up with the innumerable problems maturely. He was a

श्री मजूमदार, चीफ एजेंट बैंक ऑफ इण्डिया इन्दौर, के साथ श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी कमेटी मेम्बरशिप से रिटायर्ड होते समय विदाई समारोह पर गुलदस्ता भेंट कर रहे है।
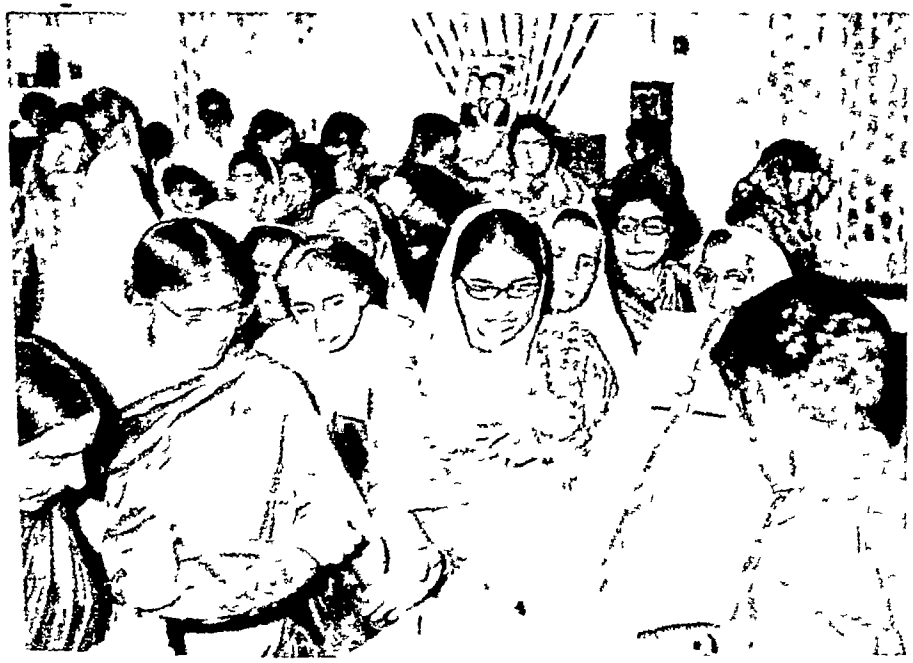
आदरणीय श्री भगवतराव मण्डलोई (तत्कालीन मुख्यमन्त्री म०प्र०) को दिए गए भोज के अवसर पर लिया गया चित्र। श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी आदरणीय मण्डलोई जी तथा अन्य उद्योगपति एव राज नेता।

फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड स्टाफ के साथ

एम के सागराजका, श्रीमान गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी, श्री टी एन पार्थसार्थी, श्री जार्ज पोल
(हेड मील) (मेनेजिंग डायरेक्टर) (फैक्टरी मेनेजर) (प्रमुख तकनीशियन पोनिण्ट)

मिसेज पोल एव श्रीमती भुवन भण्डारी मिसेस पोल को विदाई देते समय।

true seeker who inwardly felt the call of Truth. He discovered that when the true wisdom of Reality is attained, the veil of ignorance will disappear and he will be establishing for others the right way of living amidst chaos and confusion I have never seen him getting upset over any affair, whether it is trivial or alarmingly harmful.

My memory lane is thickly over-crowded with the thoughts of moments spent in his company, but, the pen is faltering at every word and my heart is bleeding just for one thought creeping into the mind that 'I have lost my best friend and I shall never meet him again' In him, I had a friend who would have been a polestart to meand a lighthouse to many. But, the fateful realities of life, like a dome of many splendoured glasses has stained the radiance of eternity by prowling upon his physical existence and bringing untimely premature death to him

I shall always miss him and will feel the void created by his death and this is a gap which will ever remain unfilled. I shall never again have a friend who was "GUNATIT" and I pay my humble tributes to late Shri Gajendra Singhji by quoting a verse from Shrimad Bhagwat Gita

समदु खसुख स्वस्थ समलोष्टाश्मकाचन. ।
तुल्य प्रियाप्रियो धीरस्तुल्य निन्दात्मसस्तुति ॥
मानापमानयोस्तुल्य-स्तुल्यो मित्रारिपक्षयो ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीत. स उच्यते ॥

—अध्याय १४, श्लोक २४-२५

□

Mr. M.K. Panduranga Setty

Mr. Bhandari had a pleasing and charming personality. He was always eager to make friends and learn about the happenings in the other part of the country. He was always interested in starting new industries and new enterprises. He was a most dynamic person.

His interest in the Flour Milling industry was so great and was very keen to employ the best of personnel to produce quality products He was also very much interested in Research and Development Many a times, he expressed his desire to associate himself with the Research and Development activities of the flour milling industry

Sd/M K. Panduranga Setty

●

'Memoirs' of late Shri G. S. Bhandari

From

Mr P S Kalani

My first close contact with Shri Gajendra Singh Bhandari was around 1962, when we discussed regarding the formation of M P. State Board of The All India Manufacturers' Organization and he requested me to become the Hon. Secretary of the State Board. He was the founder President of The M. P. State Board of All India Manufacturers' Organization, which was inaugurated on 31-3-1962 From then on, I was in close contact with him in connection with the organizational matters, which developed into a personal friendship

It was because of his dynamic personality, persuasive power, genuine interest in the Industrial development of the State that in short period, M. P State Board of The All India Manufacturers' Organization came to be one of the leading Organizations, representing the interest of the Industry However in spite of all the persuasions from his friends and admirers, he stepped down from the Office of the President of State Board of All India Manufacturers' Organization after one year.

He had a charming personality and the most polite way of expression, even if, he disagreed on certain matter He had great persuasive power to involve people into any project and to get the best out of them

He had a wide circle of friends, admirers, which includes persons from large and small industry, business, profession, bankers and advocates

MADAN RAJ SINGHVI
Advocate
Pitaliyon Ka Rasta
Johri Bazar,
JAIPUR-3

On Sixth Death Anniversary of Shri G. S. Bhandari my heart is sad with the reminisciences of the personality who was endowed with unique quality of Head and Heart. The cruel hand of Death snatched him from amongst us when he was in the prime of his youth and on height of popularity amongst his friends, admirers, followers, relatives and collegues around him. His administrative capacity for Industrial & Technological Development with Congenial company and pleasent personality will ever be remembered with vivid Memories. His association with the Bhandari Mills and Flour and Food Ltd , Indore has left an indelible mark of his capabilities which he could not show in full due to untimely death

His absence wlll be felt very much at this time when the Mother India is in great need of progressive Industrialists for the Industrialisation of India.

—M. R. Singhvi
Advocate

☆

A Study of Shri Gajendra Singhji's many-sided personality

By—Dr. H V. Mehta

Many times you know someone for years and that remains only as an acquaintance or at most a formal friendship, whereas with someone else you may just meet that person for a few moments and something clicks your mind immediately absorbs the image of that person and you have formed an instant association that is valid for a life time

With Shri Gajendrasinghji it was love at first sight for me We met at a party at the house of a common friend and I was immediately attracted to his magnetic personality Since the day, it had been a continuous saga of deep friendship and emotional attachment

Shri Gajendrasinghji has been a man of great vision and foresight full of dynamism and enthusiasm But the greatest was his feeling of humanism which made him so much loved and respected by all those in whose contact he came He left an indeliable impression on everyone as a thorough gentleman always ready to come forward to help any deserving cause This has been my personal experience Whenever I approached him and requested him to help a good cause, without the slightest hesitation and greatest expediency he extended all the help that he could master He lived an ideal life which can be aptly described in the words of Swami Vevekanand .

"My ideal indeed can be put into a few words and that is to preach into mankind their divinity and how to make it manifest in every movement of Life "

In every movement in the life of Shri Gajendrasingji, goodness and divinity were fully manifest

Although born with a silver-spoon in his mouth, highly educated abroad, and accepted as a bright star in the industrial firmament of Madhya Pradesh, Shri Gajendrasinghji was extremely simple and straight forward in nature and easily approachable to all He firmly believed that "In character, in manners, in style, in all things, the supreme execellence is simplicity."

I came to Indore in early 1965. We were outsiders to this place When in 1969, time came to decide whether to leave Indore for good or live here, it was in no small measure due to Shri Gajendrasinghji that my family members unanimously decided to settle down in Indore. This one fact only reveals the magnetism in his personality to attract everyone to him and retain and maintain that emotional attachment for all time to come which may be full of ups and downs in the life of those who were attached to him.

Being so closely attached to him, my feelings when I first got the news of his most untimely and sorrowful death could be imagined particularly when I was physically separated from him by thousands of miles My feelings at the time and for all time to come are aptly described by the following lines of the famours English Poet William Wordsworth .

> "To most grievious loss—That thought's return
> Was the worst pang that sorrow ever bore
> Save one, one-only, when I stood forlorn,
> Knowing my heart's best treasure was no more,
> That neither present time, nor years unborn
> Could to my sight that heavenly face restore"

☆

Shri Gajendrasingh Bhandari—as I knew him

By—Shri T. C Jethmalani
Chairman, M P State Board, AIMO, Indore

I came to know Shri Gajendrasinghji Bhandari in 1964 when after leaving Government Service I decided to start my own Industry. At that time Shri Bhandari had already earned for himself a place of great love and admiration in the hearts of the Industrial Community of Indore and Madhya Pradesh Coming as he was from the illustrious family of Bhandaries of Indore he had not only imbibed in himself all the sweet qualities that go to make a successful businessman but he had developed a much matured head over his young shoulders It was a pleasure and eduction to discuss with him any matters whether they be of business, cultural or social As an Industrialist he had great foresight and a much advanced outlook which helped in he establishment in Madhya Pradesh of the M P State Board of the All India Manufacturers' Organisation He was our founder Chairman in the year 1962 when the State Board was established He continued his association with this Organization till he was suddenly removed amongst us in the year 1971. In whatever capacity he worked he applied to the Job wholeheartedly and absolutely unreservedly His sweet reasonableness combined with sharp intelligence and the capacity to take a overhaul perspective view of things made him a very successful and pleasant Committee man and a natural leader I had the privilege of associating myself with him a number of times in such discussions and I still cherish the memories of those pleasant times. It is the uncanny way of God which many times defies normal logic that removes such sweet and dynamic personalities from amongst us at such a young age and it has been a great loss to Indore and to Madhya Pradesh How deeply we feel his absence many times when difficult situation face us His approach to all such situations was so calm and composed that in his presence no problem appeared to be unsurmountable

The first thought that came to my mind on being elected as the Chairman of the M P State Board of AIMO was whether I would be able to do Justice to the post which was once occupied by Shri Bhandari with such distinction I felt a bit difficult as to whether I was competent to be in line with such a fine man But what gave me courage was the sweet memory of my association with Shri Bhandari and the education we had received from him. His motto was "Approach every issue boldly with your cards clear Have an open mind to appreciate the other point of view and a solution to the problem would not be difficult." If we follow this, we would be giving due respects to the cherished memories of Shri G S Bhandari.

☆

BRIGADIER KALE SAHEB
19, General Road
MHOW

With a mixed feeling of pleasure and sorrow that I write these few lines in Memory of Late Shri Gajendrasinghji Bhandari of the famous Bhandari House of Indore.

My pleasure is in being asked to write my memories of my association with Shri Gajendrasinghji, and the sorrow consists in the fact that I still to this day have not got over the shock I experienced at the sudden and uncertainly and very untimely death of the very capable Industrialist of Indore

A young entreprenuer in the line of business which increases our national production, I have a vivid memory of our first meeting with Shri Gajendrasinghji It was at the Rotary Club of Indore A few years ago I was asked to give a talk to the Rotary Club at Indore on the defence of India and the Indian cities I remember after my talk was over Shri Gajendrasinghji was amongst a very few of the audience who remained behind to ask me some very pertinent questions which they told they wanted to ask quietly and separately He not only asked me those questions but while discussing those questions I got a glimpse of the person that Shri Gajendrasinghji was, he with those excellent manners which he always carried with him came all the way to my Car to see me off

After this first meeting, during his life time we met about 4 or 5 times and at each time we felt we grew closure to each other He was extremely genial by his temperament He had a vision He was a very practical man who by his ability to run his own industry so very efficiently that he combined the unusual features which we don't come across in the young generation of entrepreneurs

As a result of our meeting, I found him as a citizen not only a noble citizen but a very patriotic one at that He followed the theme of my talk right through the rest of the lift such we shared by occasional meetings between us and I am very proud to say that even to this day his equally capable 3 of his sons starting with elder Jasbir, Jamboo and Satish who are all growing up in the footsteps of their capable father and carrying on the torch of his vision of his patriotism and his capability into the industries which they are also running equally efficiently The reason for our growing association was the common subject of the welfare of the Ex-

serviceman. I, in that lecture had emphasized the need for the awareness of the Indian citizen towards his duty to the soldier of our nation and the need for each citizen to contribute his own mind in looking after the Ex-servicemen. After our first meeting Shri Gajendrasinghji left standing instructions with administrative staff that whenever any vacancy arose in his establishment his administrative staff would make a reference to me if there was a suitable Ex-serviceman in need of such service, the place was always made available to such Ex-servicemen by the industries of the Bhandari I am again proud to say that what was laid down is still being continued and I am grateful to the house of Bhandaries for this awareness as well as prompt action with which they absorb Ex-servicemen into any of the suitable job growing in their concern

I found Shri Gajendrasinghji of very even temperament always well meaning, very generous in out-look and forgiving in his behaviour. Even after he saw the fault he refrained from pointing it out but condoning it only after making the person realising that he had made a mistake This special quality of Gajendrasinghji won him large number of friends, large number of admirers It was that quality of forgiveness of faults and the generosity with which to look at such fault was the key to his greatness

The other meetings were equally pleasant Whenever you met him you always saw a green and a smile of welcome on his face and when you parted with him irrespective of the nature and the discussions he always smiled He had a large number of friends even before me in this cantonement of Mhow and I found that each one of them had always a good word to say about Shri Gajendrasinghji I remember amongst the admirers, General Onkarsinghji Kalkat who was then senior most Officer in the Station In this very connection, I also remember that to carry on welfare of ex-servicemen he had called me and my wife for a dinner at his residence in Nandanvan and who did I find there in the dinner, other young industrialists and entrepreneures in Indore, the commercial capital of M P and many acquaintances which I carry today amongst the young generation of entrepreneures were in this dinner invitation at Nandanvan by Gajendrasinghji and he made me talk Somehow, he steered the conversation in such a manner that those who had issued my talk, he made me emphasized those very points and he thus helped me and my cause in enlarging the awareness and the opportunities for ex-servicemen to be associated as employees in

various industries in Indore. I could never forget the good turn for my causes which Shri Gajendrasinghji arranged.

It is indeed a great loss that we lost him and lost him so very suddenly When we heard of his sudden passing away, we rushed to his house. I could not possibly bring myself to convince that he had left us His gracious lady wife Bhuwanji, as she is familiarly called in their family was over-crowded with great and unbearable grief We could not bear to look at her but time is a great healer Bhuwanji realising where her responsibility lies, Bhuwanji inspired by the great innate qualities of Gajendrasinghji has unfailingly carried out the duties which destiny has imposed on her and has made the younger generation of Gajendrasinghji, the Trimurty—the Trio of his sons and is today shaping them into the chips of the old stock into the shoes of their late beloved father, and it is indeed a great pleasure to see, Jasbir at this age of his is today well settled in the saddle with the responsibilities which Gajendrasinghji left on his shoulders

I wish them all great luck and like to finish these few lines with a prayer to God to bless Gajiendrasinghji's soul wherever it may be and to place his family, Bhuwanji and the 2 capable sons I pray to God that they grow from strength to strength and carry on the great work of Late Shri Gajendrasinghji Bhandari.

☆

RANJIT VITHALDAS

Central India Flour Mills,
BHOPAL
26th October, 1976

Even though I personally came to know him only in the year 1970 and had the good fortune of his association for hardly a year and half, I have always felt as if I had known Gajendrasinghji for many years. The reason, according to me, of my missing him so much today even though I had known him for such a short time, is that he had unique amiable nature and humane personality, which generated lot of warmth and feeling of sincere friendship amongst people who came in contact with him To me, he was an embodiment of polite dignity and a person full of sincerity. It was my pleasure to have associated with him and known him and through him the Bhandari family. I always cherish sweet memories of my association with late Gajendrasinghji.

—RANJIT VITHALDAS

□

R A HUNT
Regional Director
Wheat Associate, U. S A
903, Far East Shopping Centre Building
Orchard Road, Singapore-9

I agree that your plan to compile a book on the 'Memoirs' regarding the life of the late Shriman G S Bhandari is an excellent idea

I knew Mr Bhandari well, and appreciated his wonderful qualities regarding both his life and his work

I first knew him as a flour miller in India where many of the flour millers were simply grinding wheat and producing a product called flour Mr Bhandari all times strived to the utmost to produce the best quality product he could from the raw materials available At the time when many millers had dispensed with their own trained but well paid millers Mr Bhandari retained his expatriate millers to make possible the production of good products

I visited the flour mill on several occasions, and always found it a model of cleanliness and operating effeciency. I shall never forget one visit I made to Indore with Mr. Jim Doty, the world famous Cereal Chemist Mr. Bhandari showed us Wheat Germ he had been extracting Mr. Doty congratulated Mr Bhandari on the Wheat Germ and stated it was an excellent quality that was being produced by the finest mill in any place in the world

On that visit, Mr. Bhandari took us to the fabulously beautiful Jain temple in Indore Its gleaming glass interior, coupled with its religious significance made a wonderful rememberance that shall always remain with us and I am sure with Mr Doty

When I got more acquainted with Mr Bhandari I realised that he was a man of wonderful qualities, including a deep sense of honesty, high moral values and respect for his fellow men regardless of what they might be, or what might have been their background. These qualities alone provided the fondest remembrances of Mr. Bhandari

When your "Memoir" book is completed, I would really like to have a copy Mr. Bhandari was my friend, and when I was told of his untimely passing, I felt a deep loss

Sincerly yours,
Sd/ R. A Hunt

O

Gajendrasinghji : A true Rotarian & A Perfect Humanitarian

By—Rtn Dr. Ramesh Agarwal
Past District Governor
R I. District 306

Late Rtn Gajendrasinghji was a true Rotarian of this Great humanitarian movement Rotary. He has practised perfectly well in life the principles of Rotary "Service Above Self" and "He profits most who serves Best". I had always found him ready to serve the others without any discrimination The Rotary "Four Way Test" is a test-stone the "Paras-Patthar" testing on which every Rotarian's action becomes a humanitarian's action Gajendrasinghji was a Rotarian who was using this "Paras Patthar" as a test-stone in his life He may miss a Rotary meeting on account of his heavy professional duties, but he was not missing the action on principles of Rotary "Serve the Society alongwith your own profession or vocation" His profession or vocation was a source of service to poors I wished God would have gifted him with a longer-life so that his personality would have bloomed in perfection and would have been an example for others to follow

May the noble SOUL REST IN ETERNAL PEACE.

Sd/-Ramesh Agarwal

□
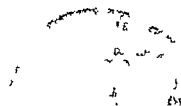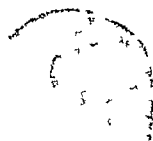
Maj. Gen. O. S. Kalkat
P V S M (Retd)
Punjab Public Service Com

No. OSK/DP-8
3 November, 76

I vividly recollect my happy association with Mr Bhandari during my successive tenures at Mhow particularly my stay as Commandant at the Mhow Military station from August 1968 to May 21 I came in contact with Mr. Bhandari very frequently There was hardly a week during my two and half years stay when we did not meet on some occasion or the other Most of the meetings were held in connection with noble work for social uplift and betterment of the poor and the weaker section of the Society in which Mr Bhandari took a leading part

He was a great organiser and an excellent leader in the field of business administration and management He was always meticulous and prompt in his dealings He had great charm & talent The main characteristic of his work was his keen desire to look after the lower range of society. In the meetings of Rotary, Lions and other Welfare Societies, he made it a point to make sure that the poor and the downtrodden were look-after well A case in point is his invaluable help to me in organising a Cooperative Society for the Class IV civilians employed in Infantery School Mhow. Nearly about a thousand people were involved and due to his help and encouragement we got the Society going This Society freed these people from the clutches of the money-lenders of Mhow and helped them to get their necessities of life on controlled and reasonable rates

Apart from all this, he was a leading social figure He was very popular among all the officers and their families and also civilians I remember vividly the grand time we had together on many social gatherings He was frank, charming and sincere It is a tragedy that the cruel hand of fate snatched him from our midst at an early age I can never forget him How can any one do so Such men are rarely born He did a lot for society and my constant prayer is that his family should have the strength and courage to carry on the good work and noble ventures which he started.

With warm regards

☆

Nath Raj Singhvi,
B A., LL B , Advocate

Phone No 46
Merta City
(Rajasthan)

I came in contact with Shri Gajendrasinghji Bhandari for a period of about 20 years Initially we met and worked together in some social functions I could know his organising capacity even at a very young age Till then I did not know much about his ability in Industrial matters, though I had heard much about it He had pleasant manners and was calm and quite and would be least disturbed even if one gave an occasion for it. He was so particular about maintaining relations that he came down to Merta to meet us even at his personal inconvenience On his visit to this place he extracted a promise from me that I should visit his place with members of my family He was so affectionate that I had to take my family to meet him at Indore

At Indore I had an opportunity to have a look at the Industry which he had started on his own initiative and which was being run very efficiently under his able guidance and supervision I discussed with him regarding his future plans in developing his works and I became sure that he would make and open some new Vistas in the technology He had great insight and was original.

This is my experience that persons who are engrossed in big or even ediocre Industry become machine like and lack personal affection and human touch but Mr Bhandari, it seems was an exception to it During my stay at Indore he looked to every small convenience of mine as well as of members of my family personally

It is a true saying that God also loves those to whom people love and they die young I am sure that if the Almighty had spared a few more years to him he would have shone like a meteor in the Industrial feermament

□

SHANTILAL DHAKAD

Kanchan Vihar
7/1, New Palasia
INDORE-1

"He whom the God Loves Dies Young"

The above saying flashed across many minds when dear Shri Gajendrasinghji suddenly crossed over to his heavenly abode He was more affactionately known as 'Gajju'

Possessing an ever smiling face and noble heart, I always foud him, facing problems with deftness and courage His methodical working with broader vision had always inspired his collegues and friends around him He nourished an urge to become an enterprising entreprenuer

Apart from a close relationship he was more nearer to me as a friend Many a times I had the opportunity to discuss with him on varied subjects and invariably he showed deep knowledge and keen insight about them He always evinced good interest in social service and particularly expressed glowing desire to promote real good education for children.

The qualities of a great man are generosity in planning, humanity in execution and moderation in success. He almost had all these qualities in him He believed in the saying of Sir C V Raman, "Be ambitious and let there be no limits to your ambition It is better to live gloriously and die gloriously than live a life of inactivity."

Active and ambitious through-out, as he was, he left us at the peak of his career when he was most needed

We can now only remember his good deeds and the sweet aroma of his warm friendship and recall the words of Longfellow—

"Lives of great man all remind us,
We can make our lives sublime,
And departing, leave behind us,
Footprints on the sands of time"

☆

Dr V. K TONGIA

Rituraj Industries
INDORE

I have been asked to write my memories of my association with Sri Gajendrasinghji Only I know, by this request how much I was sentimentally perturbed, as to write for a person who was a close friend, philosopher and guide is not so easy as said, and I took quite a few days to prepare for such a venture I will call it a venture, because to select a few memorable events from an association, every day of which is now a memory is not a easy thing My close association with Shri Gajendrasinghji Bhandari started in 1961 and continued till the last day. I dare not list the various memorable events but would like to record what I achieved and gained by my decade long association with Shri Gajendrasinghji and his family

I and my family had the privilege of travelling extensively with Shri Gajendrasinghji and his family during this period I can say that most of my social and pleasure travelling was with Shri Gajendrasinghji and sometime it extended to even for weeks This gave us an opportunity to understand each other better and better, and I am proud to say that some habits and qualities I picked up from him, I am practising them to my benefit even today

The most important God-gift and self practiced quality in Shri Gajendrasinghji according to me was his nack to pick up a right person for a right job, at a right time I have yet to come across a friend who has mastered this ability to perfection Very often we used to discuss about this part, whether he was to pick and choose a man in business, a friend or an acquaintance and every time we discussed I became wiser I recall an instance when we had gone to Bombay sometime in 1962 for a meeting of A. I M. O. We were staying in Shri Gajendrasinghji's flat at 'C' Road One evening a friend of mine, rather a collegue in Ph D called on me He had just got his Doctorate We were all talking in evening and my friend went back after about an hour We were then looking for a person to look after the recently organised M P State Board of A I M O. of which Shri Gajendrasinghji was the founder President Even during the above meeting I did not get any idea about what Shri Gajendrasinghji had in his mind but he

could get all the particulars he wanted to make up his mind in a very casual manner. Next morning he talked me if we could take him in M P. State Board of A.I.M O I was overwhelmed with his idea but was doubtful if my friend will accept it Even after any association with him for 6 years but Shri Gajendrasinghji catagorically said that I should talk him and he will accept On the next opportunity of meeting with him I talked him, and to my surprise he instantly accepted the offer. His selection at that time was so useful that only we people in A I M O know, how correct was his decision The similar instance again occured in 1971 and at that time also Shri Gajendrasinghji was correct. Now having set down to write, I am recollecting many such instances and to incorporate them will become a volume and I am asked to write a not only

Another quality which I observed in him sometime to my annoyance with him, was his habit to give the credit of work done jointly with him to the other person We used to think and plan many things together and if I happen to implement those ideas under his guidance, he always used to force the credit on me, and as I said above, sometimes it was quite annoying to me and I used to say him that this is your bad habit of always giving the credit of success to me and if sometimes the idea was not to klick properly then he used to take the blame on himself by saying that I overlooked this aspect which I should not have done This habit has been so spread by him to Mrs Gajendrasingh that its conspicuousness can be observed in her way of life also I could not judge during my long association of 10 years that who inplanted in whom, whether Shri Gajendrasinghji or Bhabhi Saheb this habit, and unfortunately now I will never be able to know. I again recall an instance in this respect During 1963-67 I was either Hon Secretary of V P of M P State Board of A I M O. and did not want to continue to hold any office in 1968 as it was taking lot of time which I could ill afford. He prevailed upon me to continue for a year more as President of the M P State Board of A. I M. O and he offered that he will devote his time for doing the work I must admit that he meant what he said and he carried it through in word and spirit through not my tenure of that office, not to mention that the credit of the

good work done that year was forced upon me and only I know that the person responsible for that was Shri Gajendrasinghji

If we place these qualities togeather, we find that the person who will emegre will be really successful businessman, a large hearted friend and a respected loveable guide Shri Gajendra-singhji personified the above persons by virtue of his God given, inherited, and self perfected qualities I am also obser-ving, though from a distance that Jasbeer, Jambu and Satish are also following the same path, the repute of which was perhaps given to them by their father by inheritance and enlarged by the circumstances created by him during their young days I am looking ahead for a day when I will see each one of them a step ahead, of their father, which will give me such an innate pleasure which would never be written or expressed
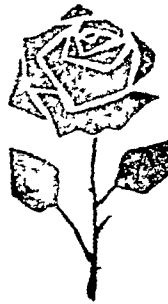
S. N KOHLI
B A , LL B
ADVOCATE

Phone 7887 / 4300
15/1, South Tukoganj
INDORE-1

To write about Gajendrasinghji is not an easy task It would be obvious to those who had the privilege of knowing him. This is because he was a many splendoured presonality and therefore wouldnot fit into usual kind of classification in which we place different human beings

I met him for the first time in Bombay through a mutual friend who along with Gajendrasinghji had gone to Bombay in 1962 to arrange the first AIMO Conference in Madhya Pradesh This meeting lead to a close friendship During this period we spent together great deal of time which will remain part of my most pleasant memories I can't forget 24th September, 1971 On that evening I was go to Bombay. Two days earlier Gajendrasinghji had telephoned me I enquired about his health and was told that he is now absolutely alright He suggested that since we have not met for quite sometime we must meet He said that he has resumed going to office. Therefore we fixed up that we will have tea together in his office during tea break of our court two days later on 24th September 1971 In my wildest dreams I could not have imagined that it would be the last talk which I will have with him. On 24th September 71, when I went to his office I was confronted instead of his ever smiling face by a peculiar silence I knew that there was something wrong and my worst fears were confirmed Though it is now about five years since then his memory has not been dimmed. Associated with his memory are scores of delightful incidents which form part of my most precious memories

His achievments at a very young age were outstanding As an industrialist his approach was most progressive. He was always complaining as to why Indore has not been able to reach the industrial height which other cities have reached With him we lost a very great hope for the further industrialisation of this city.

What else I can mention but say that like me there would be many people who would be missing him and missing him greatly Is it not the greatest thing a person can leave behind? How can—forget therefore that fetal day of 24th September, 71.

Dr. CHIMANLAL NAGRATH

Trustee
Nagrath Charitable Trust
INDORE

Gajendra Bhandari, as I knew him, was a man of various parts, though we had been meeting at private parties and social functions, but our friendship with him really began in January, 69 when he came to Pushpkunj Hospital with his charming wife Bhuwan and other Milan Club Ladies

From then on we became close family friends and I was charmed with his many faceted personality He was always alive, vibrant and pulsating with life—giving his full attention to whatever he did whether it was something in his own office or a political discussion or a social function or a family affair

The parties that he gave were a pleasure to attend as he looked after the comfort and taste of each and every one of his guests personally with meticulous attention to detail, from seating arrangements to the planning of the menu So also was he a very popular guest with my wife and we always enjoyed asking him over as he made you feel that he enjoyed being with you and relished every dish that was being served—believe me that is a great art indeed

We often met as a family unit when he would come over with his wife and children to our place or we did the same at his place and I had a chance to note what a close knit, united and loving family they were

I never heard him even criticise either his wife or any of his boys He always treated them all with love, respect and understanding, which they fully reciprocated He even studied teen-age fashions carefully and encouraged his boys to dress according to the latest in vogue, even if it seemed crazy to adults His reasoning was that if boys are allowed to be crazy boys while they are teen-agers they will grow up to be responsible adults and how he was right—for all his boys were good students while their father was alive and are now good business men—the older two are already efficiently handling the Firm, he had started and the youngest is soon to join them

It seems God almighty needed him more. Such a loving and devoted couple as Bhuwan and Gajendra were separated at such young age and devoted father was removed from his boys when they needed him more. How proud he must be the boys have overnight turned into young men of eminence, such a comfort to their dear mother and grand parents
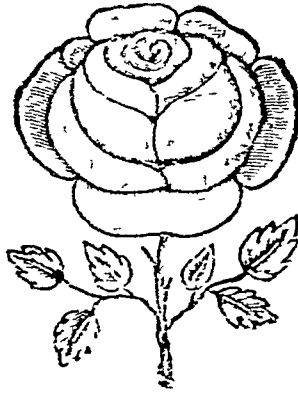
□ **श्री शादीलाल जी जैन** — वरार हाउस, वम्वई
(भू० पू० शैरिफ वम्वई)
भू० पू० अध्यक्ष भारत जैन महामडल वम्वई

पूज्य कवि मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी "कमल" एक युवा साधक एव ओजस्वी कवि हैं। उनकी वाणी मे ओज, चिन्तन मे गाम्भीर्य और भाषा-शैली मे अनूठा प्रवाह है। वर्षावास इन्दौर मे उनके द्वारा किये गये प्रवचनो का सकलन नि सन्देह जन-जन के लिए उपयोगी होगा।

स्वर्गीय श्रीयुत गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी मेरे निकट परिचित मित्रो मे से एक थे। वे अपने परिवार के लिए तो स्तम्भ थे ही किन्तु मित्रो के लिए भी आदर्श थे। आल इण्डिया मैन्युफैक्चर्स एसोसियेशन मे हम साथ-साथ थे। उनकी पावन-स्मृति को अक्षुण्ण वनाये रखने के लिए यह सकलन सही कार्य है।

मैं अन्तर्दृष्टि के प्रवचनकार पूज्य मुनिश्री 'कमलजी' को साधुवाद देता हूँ और मेरे स्वर्गीय मित्र श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी को श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

●

□ **श्रीमान् फकीरचन्द जी सा० मेहता**
इन्दौर (म० प्र०)

भण्डारी परिवार की अनेक आशाओ के जो केन्द्र रहे उनके वारे मे लिखने मे यह कलम रुक-रुक जाती है। जिनका सौम्य व्यक्तित्त्व व हँसमुख चेहरा जव भी याद आता है उनकी स्मृतियाँ ताजी हो जाती हैं। ऐसे श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी का जीवन अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त रहा है। उनके मित्रो का वहुत वडा समुदाय था साथ ही वे वडे आतिथ्य प्रेमी थे। चाहे वडा उद्योगपति हो, वैंकर हो, मित्रगण हो या सम्वन्धी वे स्वय खडे रहकर मेजवानी करते थे।

औद्योगिक क्षेत्र के कई सस्थानो के छोटी उम्र मे ही वे पदाधिकारी रहे। अखिल भारतीय निर्माता सघ की मध्य प्रदेश शाखा की स्थापना मे अग्रणी रहे। भण्डारी मिल्स के डायरेक्टर्स मे वे मेरे साथ रहे। अपनी जिम्मेदारी को वे खूव समझते थे। वे एक अच्छे मित्र और निपुण सलाहकार थे।

इस वर्ष महावीरभवन इन्दौर मे युवा कविरत्न श्री महेन्द्र मुनि जी के प्रवचनों ने जैन समाज को सम्मोहित किया हैं। उनके कवि हृदय की भाषा को लिपि करने का मुख्य श्रेय श्रीमती भुवन वहन भण्डारी को है। इस प्रकाशन से भावी पीढी को प्रेरक सत्साहित्य प्राप्त हो और उसके साथ श्री गजेन्द्रसिंह जी की स्मृतियाँ जुड जावें। यह प्रकाशन देश-विदेश मे उनके मित्रो तक पहुँचे ताकि उनमे जैन आस्थाएँ स्थापित हो। यह मेरी कामना है।

●

☆ ☆

संस्मरणों के आइने में

☆ ☆

[सकलन श्री टी० पार्थसार्थी]

उदार-हृदय

मेरे तेरे की सकुचित भावना के पास जैसे वे कभी गुजरे भी नही थे। एक बार कोई आवश्यक रचनात्मक कार्य सम्पन्न कर मैंने उनसे कहा, साहेब, आपका काम हो गया है ? यह सुनते ही वे तुरन्त बोले आपका काम हो गया है, ऐमा न बोलो। अपितु यो कहो कि हमारा काम हो गया है। भविष्य से कभी भी तुम, तेरे-मेरे की बातें मत करना। आज भी जब-जब मुझे उनके द्वारा कही गई उक्त बात की स्मृति होती है, तो मन उनके प्रति आदरपूर्वक सोचने लगता है कि वस्तुत वे कितने उदार हृदय थे।

ठीक ही कहा है, यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसी तुच्छ बाते छोटे मन वाले ही किया करते हैं। उदार हृदय वालो के लिए तो सारा संसार ही कुटुम्ब है।

अय निज: परोवेति, गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानाम् तु, वसुधैव कुटुम्बकम्।

देखो युवा शक्ति का कितना दुरुपयोग हो रहा है

विश्व का नव-निर्माण, धर्म साहित्य और कला के नये क्षितिज का उद्घाटन प्राय युवा शक्ति के हाथो से ही सम्पन्न हुआ है। युवा रक्त ने ही विश्व मे नये कीर्तिमान स्थापित किये है। आज आवश्यकता है, पुन युवाशक्ति युगानुकूल नवीन मूल्यो का अकन करे।

एक बार वे अपनी केबिन की खिड़की से बाहर देख रहे थे। तभी स्कूल एव कालेज के लडके कुछ शरारतें करते हुए, नारे लगाते हुए, उधर से निकले। उन्हे देख कर अत्यन्त पीडा के स्वरों मे उन्होंने कहा, देखो, युवा शक्ति का कितना दुरुपयोग हो रहा है। अगर ये अपनी शक्ति का उपयोग सम्यक् रूप से, रचनात्मक पवित्र प्रवृत्तियो के सचालन के निमित्त करे तो, आज देश की तसवीर बदली जा सकती है।

नौजवानो ! यह समय सोने का नही है
नौजवानों ! यह समय रोने का नही है।
जमाने की निगाहें तुम्हारे पर लगी हुई हैं,
क्या काम वह है, जो तुमसे होने का नही है ।।

पितृ-भक्ति

प्रातः काल उठिये रघुनाथा।
मात-पिता गुरु नाम ही माथा ।।

रामायण की इस चौपाई के अनुरूप वे अपने सम्माननीय पूज्य पिता श्रीयुत सुगनमल जी साहब भण्डारी का असीम आस्थापूर्वक सम्मान करते थे। वे अपने माता-पिता द्वारा प्रदत्त किसी भी प्रकार का कोई भी आदेश कभी टालते नही थे। एक बार जब वे विदेश भ्रमण के लिए जा रहे थे, उनकी इच्छा थी कि वे, अपनी धर्म-पत्नि श्रीमती भुवनेश्वरी जी को भी अपने साथ ले जा सकें और इस दृष्टि से उन्होंने उनके पासपोर्ट आदि भी बनवा लिए। पर पूज्य पिता श्री की आज्ञा नही मिलने के कारण उन्होंने सहर्ष अपनी इच्छाओ को गौण कर विदेश अकेले ही गए। यह बात उनकी पितृ-भक्ति की परम परिचायक है।

विवेक व विनम्रता की जीवंत मूर्ति

एक राजस्थानी कहावत है,

एक जोवन दुजो धन पल्ले।
साहेब करे तो सीधो चल्ले ।।

यौवन प्रायः अन्धा होता है। यौवन की मादकता एवं वैभव का सयोग पाकर कोई विरले ही क्षमा, शांति, विनय आदि सद्गुणो में स्थित रहते हैं। पर उन्हें तो अभिमान ने जैसे कभी छूआ भी नहीं था। मैंने अनेक बार देखा, उनके मन में न केवल अपने आदरणीय श्रद्धेय पुरुषो एव साथियो के लिए अपितु उनसे छोटी आयु वालो के प्रति भी अत्यन्त सम्मान एवं विनय की उत्कृष्ट भावना थी। वे प्राय कहा करते थे कि नम्रता मे हमेशा फायदा है। भगवान् महावीर का यह उपयोगी सन्देश उनके जीवन के कण-कण मे रम गया था—विनय जीवन का मूल है।

□ एम० एस० वरणगावकर
एम० ए०, एल० एल० बी० साहित्यरत्न
सौ० माधवी वरणगावकर
एम० ए० (इन्जीनियरिंग)
एम० ए० (फिजिक्स) बी० एड०

फोन . ३९०१९
६८, नारायनबाग
इन्दौर

यद्यपि स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी साहब इस संसार रूपी यज्ञ मे अपने जीवन की समिधा देकर, अपनी अनगिनित जीवनानुभूति और सवेदनाओ के सस्मरण समर्पित कर विलीन हो गये किन्तु जब तक ससार-चक्र चल रहा है, लोग उनकी स्मृतियो को आजीवन भुला नही पायेंगे। ऐसे ही कुछ सस्मरण मैं श्रद्धाजली स्वरूप समर्पित कर रहा हूँ।

१० नवम्बर, १९७० का वह शुभ-दिन मैं अपने जीवन मे कभी भी भुला नही पाऊँगा जिस दिन सर्व प्रथम मैं स्वर्गीय सेठ श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी के समक्ष फायनल इन्टरव्यू के लिए उपस्थित हुआ था। इन्टरव्यू लेने के बजाय, वे सिर्फ इतना ही बोले कि आज से आप कम्पनी की सेवा मे रख लिये जाते हैं किन्तु मुझे आश्वासन दीजिए कि आप इस कम्पनी की सेवा से कभी भी पृथक् नही होंगे। जाइये, और लगन से काम कीजिए।

उनके इस सम्बोधन मे कितना अनोखापन और आत्मीयता थी, जैसे मानो वे मुझे जन्म-जन्मान्तर से जानते हो।

आज जब भी मेरा मन विचलित हो जाता है तो उनका आत्मीयता-भरा सम्बोधन और तेजोद्दीप्त चेहरा मेरे अन्तर मन मे उठे अविवेकपूर्ण विचारो का सर्व-नाश कर, मेरी मन स्थिति को पुन पूर्वस्थिति के दायरे की परिधि मे सीमित कर देता है और मेरा मस्तिष्क श्रद्धास्वरूप झुक जाता है।

श्री गजेन्द्रसिंह भैयासाहब स्नेह की प्रतिमूर्ति थे। उन दिनो फूड कारपोरेशन आफ इण्डिया से बालाहार बनाने का हमारा नया-नया ही कान्ट्रेक्ट हुआ था और उन्होंने इस कार्य हेतु मुझे अधिकृत कर सारी जिम्मेदारी सौंप दी। भारी मात्रा मे बालाहार इन्ग्रेडियन्ट्स का स्टाक हम जुना मिल (श्री रायबहादुर कन्हैयालाल भडारी मिल) मे रख रहे थे। एक दिन संध्या ६-७ बजे लगभग जबकि हम कार्य मे अत्यधिक व्यस्त थे, श्री गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहब स्वय कार ड्राईव्ह करते हुए गोडाउन आ पहुँचे। वे लगभग १५-२० मिनिट तक गोडाउन में रहे और प्रत्येक मजदूर के पास जा-जाकर यह समझाईश देते रहे कि किस तरह स्टैक्स लगाये जाय और उनमे कितना डिस्टस हो। यद्यपि इन्चार्ज होने के नाते वे मुझे इन बातो से अवगत कर निर्देश दे सकते थे किन्तु निःसदेह उनका यह कृत्य इस बात का द्योतक है कि वे एक करोडपति सेठ होते

हुए भी उनके हृदय मे मजदूरो के प्रति अपार स्नेह और पीडा थी । सादगी और सरलता से भरा उनका विराट् व्यक्तित्व, निर्मल स्वभाव, हमेशा मुस्कराता तेजोदीप्त चेहरा सवको अपनी तरफ आकृष्ट कर लेता था और इसी कारण जो भी उनके सानिध्य मे आया सदैव के लिए उनका होकर रह गया ।

श्री गजेन्द्रसिह भैयासाहव प्रेरणा के श्रोत थे । उनकी अपने माता-पिता एव वडो के प्रति अपार श्रद्धा थी । किसी कार्यवश मुझे सध्या के समय कोठी पर वुलाया था । मैं निर्धारित समय पर कोठी जा पहुँचा । भैयासाहव फैक्टरी गये हुए थे । उनके पिताश्री जैनरत्न श्री सुगनमल जी भण्डारी साहव जिन्हे हम आदर से मालिक साहव कह कर सम्वोधित करते है, कुर्सी पर विराजमान थे । उन्होने मुझे वैठने के लिए कहा । मुश्किल से १५-२० मिनिट ही हुए होगे कि श्रीमान् भैयासाहव की कार कोठी मे प्रवेश करती हुई पोर्च में आकर खडी हो गई । कार से उतरते ही वे सीधे मालिक साहव के पास आये और उनके श्रीचरणो में शीश झुकाकर प्रणाम किया । इस कलियुग मे भी पुत्र का पिता के प्रति इतना आदर-भाव देखकर मेरे नेत्रो मे आनन्दाश्रु आ गये । चौकीदार से पूछने पर पता चला कि यह परम्परा तो वर्षों से इस कोठी के वुजुर्गों को विरासत मे मिली है । इस प्रसग ने मेरे हृदय को झकझोर दिया और उनकी यह प्रेरणा मेरे जीवन मे अव आदर्श वन गई है ।

आज श्री गजेन्द्रसिंह जी भैयासाहव शरीर रूप से भले ही हमारे वीच मे नही हैं किन्तु उनके आदर्श हमे जीवन-पथ पर सदैव उन्नति के उच्च-शिखर पर अग्रसर करते रहेगे ।

हमारी श्रद्धेय वाई साहव श्रीमती भुवनकुमारी जी भण्डारी जो उनकी स्मृति मे परमपूज्य मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी "कमल" के प्रवचनो से प्रेरणा लेकर "अन्तर-दृष्टि" नामक पुस्तक का प्रकाशन कर रही हैं । उनका यह प्रयास मानव-जाति के कल्याण और प्रेरणा का श्रोत वने यही मेरी मगल कामना है ।

—म० स० वरणगावकर
प्रशासकीय अधिकारी
फ्लोअर एण्ड फूड लि०

★

'गजाधिपति गजेन्द्र'

☐ एस० सी० नाहर
मैनेजर, महादेव शाहरा एण्ड सन्स, इन्दौर

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी जोकि देवास फ्लोअर आइल एण्ड डी आइल्ड केक फैक्टरी, देवास के तत्कालीन सचालक थे उनके निर्देशन मे सन् १९६० से चार वर्ष तक कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था।

वह सौम्य मूर्ति, जो कि आज हमारे बीच शारीरिक रूप से विद्यमान न सही, किन्तु उनकी स्मृतियाँ चिरस्मरणीय बन गयी हैं। उनका वह कार्यकाल निस्सन्देह अपने आप मे इस बात का साक्षी है कि उनके निर्देशन मे उपरोक्त फैक्टरी का निर्माण-कार्य इस प्रकार द्रुतगति से हुआ कि फैक्टरी न केवल प्रदेश मे किन्तु विदेशो मे भी अपनी अमिट छाप बना गयी। उक्त कारखाने के निर्माण कार्य से लेकर उसके द्वारा निर्मित "डी-आइल्ड केक" देवास केक के नाम से विदेशो को निर्यात की गयी और अपनी विशिष्ट किस्म से विदेश मे अपना उत्कृष्ट स्थान बनाया। उत्पत्ति मे लेकर उत्थान तक, आदरणीय स्वर्गीय गजेन्द्र भैयासाहब का उक्त फैक्टरी पर विशेष योगदान रहा। वे तकनीक दृष्टिकोण से कारखाने का निर्माण-कार्य स्वय की देखरेख मे कराते रहे। फैक्टरी का निर्माण कार्य पूरा होने पर विशेष रुचि लेते हुए उसके कुशल सचालन के लिए, योग्य एव अनुभवी वैज्ञानिक, इजीनियर एवं अन्य पदाधिकारी नियुक्त किये। निस्सन्देह वे मानव-हीरो एवं जवाहरातो के पारखी थे। इसी तारतम्य मे वे श्री मराठे एव श्री ए० जी० खानोलकर जैसे श्रेष्ठ इजीनियर, प्रोडक्शन मैनेजर का चयन कर सके जिनके सद्प्रयत्नो से उक्त कारखाने ने काफी प्रगति की। देश के कोने-कोने से वे कैमिस्ट, आपरेटर्स एव अन्य तकनीशीयन को आकर्षित करके ला सके। इसी दौरान उन्होंने विदेश भ्रमण भी किया। यहाँ यह लिखना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि भडारी परिवार मे ऐसी सूझबूझ, दूरदर्शिता, अनुशासनप्रियता गम्भीरता, सौम्यता, सहृदयता एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी बनने का सौभाग्य उन्हे ही मिला था।

उपरोक्त फैक्टरी के पश्चात्, उन्होंने कई सस्थानो जैसे भण्डारी क्रासफिल्डस प्रा० लि०, फ्लोअर एण्ड फूड लि० इत्यादि सस्थानो का निर्माण कार्य अपने कुशल सचालन मे कराये, वे चले गये, किन्तु अनेक निशानियाँ छोड गये जो उनके इरादो की प्रतीक हैं एव उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है।

दूरदर्शिता एव अनुशासनप्रियता उनके दो प्रमुख दृष्टिकोण थे। वे स्वय अनुशासित रहते सदैव प्रसन्नचित रहते। सघर्ष के क्षणो मे वे कभी विचलित नही हुए। जटिल से जटिल समस्याओ का निराकरण करने मे वे माहिर थे।

कई मामाजिक सस्थाओ, बैंक, व्यापारिक तथा सास्कृतिक सस्थानो के वे पदाधिकारी रहे एव उनकी निर्देशन कुशलता से कई सस्थाएँ आज भी उनकी ऋणी हैं।

ऐसे व्यक्तित्व के प्रति जितना भी लिखा जाय वह सदैव ही अपूर्ण रहेगा। उनके सानिध्य मे चार वर्ष तक जो कुछ मैंने सीखा वह मैं आजीवन नही भुला सकता।

उनको मेरी श्रद्धाजलि। उनकी सच्ची श्रद्धाजलि यही होगी कि उनके द्वारा दर्शाए हुए मार्ग-दर्शन पर चलकर उनके स्वप्नो को साकार कर सके। ✶

कार्यपरायण स्व० श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी

☐ श्री मोतीलाल लोढा, इन्दौर

श्रीमान गजेन्द्रसिह जी भण्डारी की छत्र-छाया मे कार्य करने का दो-ढाई वर्ष तक मुझे सौभाग्य मिला। मैंने पाया कि वे आदमी की पहचान वहुत जल्दी कर लेते थे। उन्होंने मुझे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड मे सेवा करने का आदेश दे दिया जव कि मैं इस कार्य से अनभिज्ञ था। उन्हे अपने कर्मचारियो से सदैव सहानुभूति रहती थी। यदि किसी दिन काम कम हो तो वे कर्मिक को तुरन्त अवकाश दे देते थे। इस सम्वन्ध मे उनका निर्णय ही अन्तिम होता था।

कार्यो मे व्यस्त रहते हुए भी वे समय-समय पर धार्मिक कार्यक्रमो के लिए भी समय निकाल ही लेते थे। यही कारण था कि उनमे सहृदयता एव दयालुता थी। वे स्वय ही सभी कर्मचारियो के कार्य के कार्य का निरीक्षण करते थे। यदि किसी कर्मचारी के पास अधिक कार्य होता तो स्वय उसमे हाथ वँटाते थे। कार्य के आधार पर वे अपने अधीनस्थ की शीघ्र पदोन्नति कर देते थे तथा फैक्ट्री के कार्य की देखभाल, वे वडी तत्परता एव परिश्रम से करते थे। यही कारण है कि उनके द्वारा स्थापित उद्योग आज प्रगति पथ पर अग्रसर है।

☆

सुसंस्कार के प्रणेता स्वर्गीय भैया साहब गजेन्द्रसिंह जी

□ रमेश जोशी
४२, भरत मार्ग, इन्दौर

होती जिनकी चाह धरा पर, प्रभु भी उन्हें बुलाते है,
योग्य तथा युग पुरुष धरा पर, कुछ ही दिन जी पाते हैं।

क्रूर काल की कराल छाया, ओजस्वी व्यक्तित्व को समय से पूर्व ही ग्रस लेती है, यही प्रकृति का सनातन विधान रहा है। ऐसे ही अद्भुत व्यक्तित्व के धनी चिरस्मरणीय स्वर्गीय सेठ गजेन्द्रसिंह जी साहब भण्डारी थे जो असमय ही भण्डारी परिवार एव समस्त स्नेही जनो पर वज्रप्रहार कर उनके होठो की मुस्कान छीन दिव्य-ज्योति मे लीन हो गए। आज वे शारीरिक रूप से हमारे बीच नही रहे, लेकिन उनकी सत्प्रेरणाओ की अमूल्य स्मृतियाँ हमारे बीच जीवित हैं। उन्होंने अपने मित्रो, परिजनो एव सहयोगियो को जो सुसस्कारो का बरगद सौंपा है उसके लिए हम सब आजीवन उनके ऋणी रहेगे।

१९७० के प्रारम्भ मे जब मैं स्वर्गीय भैयासाहब द्वारा प्रतिपादित एव उनके लघु भ्राता श्रीमान् राजेन्द्रसिंह जी साहेब भण्डारी द्वारा सचालित "भण्डारी क्रास फिल्ड्स प्राइवेट लिमिटेड" मे नियुक्त हो कर राजस्थान क्षेत्र का कार्य देख रहा था। राजस्थान के लम्बे प्रवास के पश्चात् मैं प्रधान कार्यालय इन्दौर आया हुआ था। कार्यालय का समय सध्या ६ बजे समाप्त हो चुका था। सभी कर्मचारी जा चुके थे। सिर्फ मैं एवम् क्रास फिल्ड्स के सचिव महोदय श्री चन्दनसिंह जी भण्डारी, कार्यालयीय कार्य मे व्यस्त थे। प्रवास की थकान एव दिन-भर की व्यस्तता की वजह से मैं वस्तुत थक चुका था। तथा सचिव महोदय से अनुरोध कर रहा था कि मैं सवेरे से कार्य मे व्यस्त हूँ और संध्या के ७-३० बज चुके हैं, अब मैं काफी थक चुका हूँ कार्य बन्द कर देना चाहिए और अवशिष्ट कार्य कल आकर पूर्ण कर लेवेंगे। स्वर्गीय भैया साहब फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के कार्यालय से कोठी जाते हुए न जाने कब से हमारा वार्तालाप सुन रहे थे। हमे उनकी उपस्थिति का जरा भी आभास नही था। वे तत्काल मेरे सम्मुख आकर कहने लगे—"मिस्टर जोशी"! देखो भाई, मैं भी तो सुबह ८ बजे से कार्य मे व्यस्त हूँ और अब जब घर जा रहा हूँ, कार्यालय के आवश्यक कागजात मेरे पास हैं जिनका कि निपटारा मैं घर जाकर करूँगा। काम से मनुष्य को कभी नही घबराना चाहिए।" उनके इस स्नेहपूर्ण सम्बोधन ने मेरे मन-मस्तिक मे नई चेतना जागृत कर दी, तभी वे मेरे समीप रखी मेरी दैनिक रिपोर्ट फाइलें उठाकर उसका अवलोकन करने लगे। क्षणिक अवलोकन के पश्चात् उन्होंने मेरे कार्य की

प्रशसा करते हुए कहा, "कठिन परिश्रम ही मनुष्य का श्रेष्ठ गुण है," यह कहकर श्रीमान् भैया साहव कोठी के लिये प्रस्थान कर गये किन्तु मेरा अन्तराल झकझोर उठा, यह स्मरण कर कि ये कितने महान हैं, ये देवला स्वरूप पुरुष, जिन्होंने एक करोडपति सेठ की गरिमा से परे हटकर मुझ जैसे साधारण कर्मचारी को स्नेह समर्पित कर गये, उनकी इस सीख को मैंने एक सत्प्रेरणा के रूप मे अंगीकार कर लिया, जो आज मेरे जीवन का अमूल्य निवि है। यह मेरा अहोभाग्य है कि आज मैं स्वर्गीय भैया साहव द्वारा अकुरित संस्थान फ्लोअर एण्ड फूड मे कार्यरत हूँ तथा उनके पूज्य पिताश्री श्रीमान् सेठ सुगनमलजी साहव भण्डारी एव स्वर्गीय भैया साहव के सुपुत्रो श्रीमान जसवीरसिहजी साहव, श्रीमान जम्बूकुमारजी साहव एव श्रीमान सतीशकुमार जी साहव भण्डारी के निकट सम्पर्क मे हूँ। इन दोनो पीढियो को देखकर मेरे हृदय मे हमेशा यह कचोट खलती है कि स्वर्गीय भैया साहव से और अधिक सम्पर्क हुआ होता तो मुझे जीवन मे और कई अच्छे मार्गदर्शन मिले होते।

"पुत्र ही पिता की प्रतिमूर्ति है," इस कथन के अनुसार स्वर्गीय भैया साहव के तीनो सुपुत्र शालीनता एव विनय की प्रतिमूर्ति के रूप मे है। इतने वडे धनाढ्य परिवार मे पलकर, वडे होने के वावजूद, वैभव एव पद का अहंभाव इन्हें छू भी नही पाया है। अपने आश्रित कर्मचारियो के प्रति इनके हृदय मे असीम सहानुभूति है और श्रीमान जसवीरसिहजी साहव मे तो स्वर्गीय भैया साहव के वे सस्कार ऐसे कूट-कूटकर भरे हुए हें कि सम्पर्क मे आने वाले सभी व्यापारी वर्ग एव कर्मचारीगण नि सन्देह उन्हें स्वर्गीय भैया साहव की प्रतिमूर्ति के रूप मे पाते है।

सद्गुणो के समुद्र स्वर्गीय श्रीमान् गजेन्द्रसिहजी भैया साहव की धर्मपत्नी आदरणीय भुवनेश्वरी जी के ममतामयी-हृदय रूपी स्नेह सागर की कितनी विशालता है कि वे अनाथालय मे वच्चो को खाना भिजवा देने मात्र से ही सन्तुष्ट नही होती अपितु वहाँ उपस्थित होकर अपने हाथो से खाना परोस कर खिलाती हैं, ऐसी धर्म-निष्ठ समाज सेविका ने अपने पुत्रो को सुसस्कृत किया है फिर क्यो न इनके सुपुत्र व्यवहार निपुण, विनयी होगे। आदरणीय भुवनेश्वरी आज भी सामाजिक एवं धार्मिक कार्यों मे अपूर्व योगदान दे रही हैं।

आज भी मैं कार्यालयीय प्रवास मे जहाँ-जहाँ भी जाता हूँ स्वर्गीय भैया साहव के सम्पर्क मे आये हुए व्यक्तियो के हृदय पटल पर, भैया साहव ने ऐसी अमिट यादें छोड दी है कि उनके सद्गुणो की व्याख्या किये वगैर नही रहते, ऐसे कई व्यापारी एवं वडे-वडे व्यक्ति मुझे मिले हैं, जो स्वर्गीय भैया साहव के व्यवहार एवं विनम्रता की व्याख्या करते-करते गद्गद हो जाते हैं। यही सोचता हुआ पुन. मैं उनके अप्रतिम व्यक्तित्व के सम्मुख नत-मस्तक हो जाता हूँ। ☆

उदारता एवं गम्भीरता के धनी स्व० श्रीमान कवर श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी

☐ श्रीमति केसरकुमारी वैद मेहता, वीकानेर

श्रीमान स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी साहव भण्डारी की स्मृति मे आज मुझे यह अभागी लेखनी चलानी पड रही है कि मैं किन शव्दो मे उनकी गरिमा का वर्णन करू। उनका सौम्य स्वभाव, हसमुख चेहरा, प्रतिभाशाली व्यक्तित्व एव निश्चल व्यवहार कभी नही भुलाया जा सकता है। वे लक्ष्मीपुत्र थे किन्तु उनमे दम्भ नाममात्र को भी न था। वे प्रत्येक व्यक्ति से वडी शालीनता से पेश आते थे, चाहे वह अमीर हो या गरीव। सचमुच ऊँच-नीच का भेद उनमे था ही नही। उनके इन्ही गुणो को देखकर उन्हे "स्वर्णजटित हीरा" कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

ऐसे महान् व्यक्ति की असामायिक मृत्यु का समाचार सुनते ही मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ, अभी उनकी उम्र ही क्या थी ? वे माता-पिता के परम भक्त थे, उनके हृदय पर क्या वीती होगी ? वे उस पुष्प जैसे थे जिसका सौरभ प्रात काल की वायु मे मिलकर दिग्दिगन्तो को सुरभित कर देता है। काश ! इस पुष्प का सौरभ हमे सदियो तक मिलता तो कितना अच्छा होता, लेकिन क्रूर काल ने उन्हे असमय मे ही दवोच लिया। वडे-वड़े वाहुवली भी इस कालवली से कव जीत पाये है ? विधि के इस अटल विधान को, सभी को स्वीकार करना पडा है।

कवर साहव स्वर्गीय भण्डारी जी सन १९६७ मे वीकानेर पधारे थे। उस समय घर के मायूस वातावरण मे उन्होने रुआसे स्वर मे कहा था, "मासी साहव को वैधव्य के रूप मे देखने की कल्पना मात्र से ही मेरे रोगटे खडे हो रहे हैं।" उनके कथन पर शायद यह कुटिल काल मुस्करा रहा था और आज वही वैधव्य मेरी माताजी चि० भुवनेश्वरी को भोगना पड रहा है। मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ है। दूसरो के दुख मे द्रवित होने वाले भण्डारी साहव के परिवार पर ऐसा क्यो ? नियति के विधान को स्वीकारना ही पडता है—यही सोचकर अपने हृदय की करुण-वेदना व्यक्त कर रही हूँ —

चाह नही है मुझको प्रभुवर ! ऊँचे से अरमानो की।
चाह नही है इस दुनियाँ मे भाग्यवान मेहमानो की ॥
चाह नही है सुन्दर सपनो की और न कोई अभिलाषा।
किन्तु चाह है मन मे प्रभुवर ! पूरी कर दे अव आशा ॥
धर्मप्राण, निष्काम स्वय थे अत स्वर्ग उनको देना।
भवसागर में नाव पडी है निजकर से प्रभुवर ! खेना
छोड गये सुकुमार पुष्प जो, रहे अधूरे जो सपने।
इन पुष्पो को विकसित करना, हृदय लगा लेना अपने ॥ ☆

एक सफल व्यक्तित्व

☐ श्री जवाहर लालजी डी नन्दवानी
आर्या कन्फैक्शनरी वर्क्स, इन्दौर

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी साहब मै० फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के सस्थापक एवं एक महान् व्यक्ति थे। वे कामयाव उद्योगपतियो मे से थे। आज फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड द्वारा निर्मित पदार्थ मध्यप्रदेश की और मिलो के मुकावले मे सर्वोच्च कोटि के माने जाते हैं। उसका श्रेय निस्सन्देह श्री भण्डारी साहव को ही है।

श्री भण्डारी, छोटे हो या वडे, सवको साथ मे लेकर काम करने वालो मे से थे। वे हमेशा उत्सुक रहते थे कि हर किसी सम्वन्धित व्यक्ति को अच्छी तरह सुनकर, समझकर, उनकी उपयोगी वातो का फायदा लेना चाहिये। प्रारम्भ मे जव उन्होंने अपनी मैदा मिल द्वारा तैयार माल वाजार मे लाने का विचार किया तो सर्वप्रथम उनके पिता सेठ श्रीमान् सुगनमलजी भण्डारी साहव ने उन्हें सलाह दी कि वे मण्डी मे जाकर कुछ पुराने अनुभवी व्यापारियो से मिलें। मण्डी की क्या स्थिति है, कैसा माल आता है एव विकता है, उसका पूर्ण अध्ययन करें। उसी समय श्री जी० एस० भण्डारी साहव प्रथम वार मेरे से आकर मिले थे और व्यापार-सम्वन्धी चर्चा की थी। उनका स्वभाव एव सूझवूझ मुझे वहुत ही अच्छा लगा। उसके पश्चात् तो मै उनकी मैदा मिल का अधिकृत वितरक वन गया और आज भी हूँ। श्री भण्डारी साहव समय समय पर जो भी समस्यायें उत्पन्न होती थी, उन पर विचार-विमर्श करके उनका समाधान करते थे। मध्यप्रदेश के समस्त व्यापारियो को वुलाकर उनसे चर्चा करते थे। कई व्यापारियो से उन्होंने मेरा परिचय भी करवाया था।

माल की ऊँची क्वालिटी कायम रखने के प्रति वे हमेशा कोई कसर नहीं रखते थे। मध्य प्रदेश के वेकरी उद्योग मे किस प्रकार का मैदा उपयोगी होगा व खाद्य पदार्थ किस प्रकार सर्वोच्च श्रेणी के निर्मित हो, इस उद्देश्य से उन्होने एक वार मध्यप्रदेश के समस्त वेकरी व विस्कुट फैक्टरी वालो की इन्दौर मे एक वैठक वुलाई थी। उसी सम्वन्ध मे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के कार्यालय मे एक तीन दिवसीय वर्कशाप की व्यवस्था का आयोजन किया गया तथा व्हीट असोसियेट आफ यू०एस०ए०, दिल्ली के कुछ अधिकारियो को भी आमन्त्रित किया गया था। व्हीट (गेहूँ) की क्वालिटि के प्रति व्हीट असोसियेट के श्री कन्वारीजी ने वेकरी वालो को अवगत कराया था। जिससे यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि अलग-अलग गेहूँ के प्रकारो को जानकर वेकरी निर्माण के कार्य मे भी थोडी-वहुत आवश्यक फेर वदल करनी पडती है। भिन्न-भिन्न वेकरी वालो ने अपनी समस्याएँ भी प्रस्तुत की थी। उन समस्याओ

का निदान गुजरात के आनन्द की टैक्नीकल संस्था की तरफ से आये हुए प्रतिनिधि ने किया था। मिल के श्री पार्थसारथी ने भी उनके अनुभव के आधार पर उद्योग से सम्बन्धित उपयोगी बातें बताई। सभी को इन बातो का पूर्ण लाभ हुआ। बेकरी उद्योग मे ऊँचे स्तर को लाने की चेष्टा केवल श्री भण्डारी साहब ने की थी।

मध्य प्रदेश मे सभी प्रकार के उद्योग बढें, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। उन्होंने आल इण्डिया मैन्यूफेक्चरर्स आरगेनाइजेशन बम्बई की एक शाखा इन्दौर मे खुलवाने की बहुत ही कामयाब कोशिश की जो शाखा आज भी मौजूद है। इस सस्था के वे हमेशा सक्रिय कार्यकर्ता रहे। उनके ही परिश्रम से सक्रिय कार्यकर्ताओ ने स्टेट बोर्ड आफ मध्य प्रदेश आल इण्डिया मैन्युफेक्चरर्स आरगेनाइजेशन का निजी भवन "इण्डस्ट्रीयल स्टेट" पोलोग्राउण्ड मे बनवाया, जहाँ कि वर्तमान कार्यालय चल रहा है। थोडे ही समय मे ऐसा महान् उद्योगपति हँसमुख एव विख्यात व्यक्ति हमसे अलग हो गया। आज भी उनकी अच्छाइयाँ और सद्‌गुण हम नही भूल पाये हैं। और वे हमेशा याद रहेगे। आर्या कन्फेक्शनरी वर्क्स, इन्दौर की ओर से इस महान आत्मा को सादर श्रद्धान्जलि अर्पित है।

☆

निष्काम कर्म-योगी स्वर्गीय श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी

☐ अ० का० भाण्ड

सहायक मिलर, फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड

आदरणीय श्रीमान् गजेन्द्रसिंहजी भैयासाहब की स्मृति मे आज जब मैं कुछ लिखने का प्रयास कर रहा हूँ, तो वरबस आसुओ से आखें डबडबा रही हैं। सोचता हूँ, क्या वास्तव मे भैयासाहब हमारे बीच नही रहे है ? कितना सौभाग्य होता जो आज वे हमारे बीच होते। और अपने भरे पूरे परिवार की श्रीवृद्धि को स्वय निहारते। लेकिन क्रूर एव अटल विधि के आगे मनुष्य अपने आपको असहाय पाता है।

आज से लगभग १० वर्ष पूर्व मैं "फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड" की सेवा मे आया था, उस समय मैं अपने भविष्य के प्रति चिन्तित था क्योकि यह संस्थान और उसके नियोक्ता मेरे लिये नये थे। साथ ही फ्लोअर मिलिंग लाईन का इतना अनुभव नही था जोकि आज आदरणीय भैयासाहब के आशीर्वाद से मुझे मिला है मेरे कार्यकाल के कुछ ही समय बाद मैं स्वर्गीय भैयासाहब के निकट सम्पर्क मे आया और उन्होने मुझे फ्लोअर मिलिंग के उच्च अध्ययन के लिये प्रोत्साहित किया। उनके प्रोत्साहन के फलस्वरूप मैंने फ्लोअर मिलिंग का विशेष अध्ययन करना प्रारम्भ कर दिया। अध्ययन पर समस्त व्यय सस्था के माध्यम से उन्होंने दिया, साथ ही फ्लोअर मिलिंग कोर्स के लिये सी०एफ०टी० आर० आई० मैसूर भेजकर शार्ट टर्म का तीन मास का कोर्स पूरा करवाया, जिसका भी सम्पूर्ण व्यय श्रीमान् भैयासाहब द्वारा वहन किया गया। आज उस बात का मुझे बेहद दु:ख है कि मैंने सिटि एण्ड गिल्ड्स, इग्लैण्ड से फ्लोअर मिलिंग का पूर्ण अध्ययन कर लिया है तो मेरी कामयाबी को देखने वाले हमारे पूज्य भैयासाहब आज हमारे बीच नही रहे।

श्रीमान् भैयासाहब के बहुमुखी जीवन-दर्शन को लेखनी से लिपिबद्ध कर सकना मेरे लिये सम्भव नहीं है। वे एक वास्तविक स्वभाव (प्रैक्टीकल मैन) के व्यक्ति थे। जो सोचते थे उसे वास्तविक रूप से धरातल पर उतारते थे। वे यह चाहते थे कि फ्लोअर एण्ड फूड लि० और मागलिया गाव जहाँ आज यह फैक्टरी स्थित है, दोनों ही आदर्श बने। वे अपने इस कारखाने मे इतना विशिष्ट उत्पादन चाहते थे कि सस्थान के साथ ही साथ उस स्थान का नाम भी पूरे देश मे जाना जावे। और यह बडी प्रसन्नता का विषय है कि आज उनका यह सपना साकार रूप ले चुका है। हमारे मिल का उत्पादन अपनी विशिष्टता की वजह से देश के कोने-कोने तक पहुँच चुका है। और अपनी उत्तमता की वजह से हमारी सस्था के साथ ही साथ मागलियाँ गाव फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड की वजह से पूरे देश मे जाना जाता है।

पूज्य भैयासाहव के सम्वन्ध मे कौन से पक्ष पर लिखूं और कौन से पक्ष पर नही लिखूं। वे दूरदर्शी, परिवार के तथा अपने कर्मचारियो के सुख एव उनके आत्म-निर्भरता के सम्वन्ध मे हमेशा सोचा करते थे । दूसरो का आदर सत्कार देना उनका विशिष्ट गुण था। वे काम के पुजारी थे। स्वय भी १२ से १४ घण्टे काम किया करते थे। वे कुशल, अनुभवी और लोकप्रिय व्यवसायी थे। अपने कार्यालय मे कभी किसी को उन्होंने निराश नही होने दिया। मध्यम एवं गरीव वर्गों के अधिकारो का उन्होंने सम्मान किया तथा उनके कल्याण के लिये हर समव सहायता की।

मैं उनका जीवनपर्यन्त आभारी रहूँगा जिनके शुभ-आशीर्वाद मे मुझे फ्लोअर मिलिंग लाइन का वहुत कुछ ज्ञान प्राप्त हो सका जिसने मेरा तथा मेरे परिवार का जीवन ही वदल दिया।

मेरी सच्ची श्रद्धान्जलि उनके प्रति यही है कि हमारी सस्थान के माध्यम से हम इतना विशिष्ट उत्पादन करें कि उसका नाम देश के कोने-कोने मे हमेशा रोशन होता रहे।

☆

प्रगतिपथ के प्रेरणा प्रदीप

☐ **श्रीमती स्नेहलता बोरदिया**
प्रसिद्ध डाक्टर श्री बोरदिया की धर्मपत्नी

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंहजी साहब भण्डारी हमारे परम प्रिय मित्रो मे से थे। यद्यपि उम्र मे हम से छोटे थे लेकिन उनसे जो घनिष्ठता बढती गई उसका श्रेय श्रीमती भुवन भण्डारी को ही दिया जा सकता है। उनसे मेरी छोटी बहन सा रिस्ता ही बना रहा, क्योकि दोनो के मैंके के परिवारो मे बडी घनिष्ठता थी। इसलिये भुवन बाई साहब के जरिये ही गजेन्द्रसिंह जी साहब से घनिष्ठ सम्पर्क बढता गया।

लेकिन दुर्भाग्य से जब से उन्होंने पूर्ण रूप से अपना उद्योग व व्यापार सँभाला तब से हम लोग इन्दौर से बाहर ही रहे। जब इन्दौर मेरे पति सयुक्त सचालक-उद्योग विभाग होकर आये तब से मेरा गजेन्द्रसिंह जी साहब से अधिक मिलना-जुलना होने लगा। हम लोग भी करीब ८, ९ वर्ष तक लगातार इन्दौर मे ही रहे। हमारी मित्रता की नीव मजबूत व दृढ थी, उसमे किसी प्रकार का स्वार्थ व उद्देश्य नही था। जो नि.स्वार्थ मित्रता होती है वह ही हमेशा के लिये टिक सकती है।

श्री गजेन्द्रसिंह जी साहब इन्दौर के एक धनाढ्य व प्रतिष्ठित परिवार के थे, लेकिन गरीब व अमीर सभी से इस आत्मीयता व स्नेह से मिलते थे कि किसी को यह कभी महसूस नही होने देते थे कि दोनो के स्तर मे किसी प्रकार की असमानता है।

उनकी सहृदयता का एक उदाहरण मैं छोटा-सा दे रही हूँ। कला से उन्हे बडा प्रेम था, व कलात्मक चीजो के लिये एक पैनी दृष्टि भी थी। मेरे यहाँ एक गरीब कलाकार आया करता था और नक्काशी का काम किया करता था। उन्होंने मुझसे कहकर उसे अपने आफिस मे बुलवाया और उसके साथ बडी इज्जत का व्यवहार किया। उसकी कला की बहुत तारीफ की और उसे बहुत प्रोत्साहित किया। उसका सामान खरीद कर व उसे नये आर्डर देकर अप्रत्यक्ष रूप से उसकी आर्थिक सहायता भी की। आज तो वह कलाकार खासा प्रसिद्ध हो गया है और भारत सरकार द्वारा प्रतिष्ठित भी किया गया लेकिन उस समय उसके प्रशसक बहुत ही कम थे। आज भी वह कभी भोपाल से मेरे यहाँ अपनी कोई कलाकृति लेकर आता है तो भैया साहब गजेन्द्रसिंह जी को बहुत याद करता है।

एक उद्योगपति होकर भी उन्हें अहकार छू भी नही पाया था। यह विशेषता उनके सारे परिवार मे है। उनकी माता जी तो एकदम देवी हैं। वे बहुत ही मातृ-पितृ भक्त थे व सयुक्त परिवार मे रहकर सबका ही मन रखते थे।

उनकी उदार प्रवृत्ति, शालीनता, गम्भीरता व स्नेहमय स्वभाव, एक वार जो उनके सम्पर्क मे आ जाता था वह भूल नहीं सकता।

मैंने उन्हे सामाजिक जीवन मे ही अधिकाश रूप से देखा है। वैसे वहुत व्यस्त रहते थे, इसलिये अधिक रूप से गपशप का अवसर कम ही मिलता था, फिर उन दिनो हमारा इन्दौर से वाहर तवादला भी हो गया। लेकिन जिस किसी के यहाँ पार्टी मे मुलाकात होती थी तो मैंने हमेशा यही देखा कि उस घर की छोटी से छोटी चीज की सजावट की व खाने की तारीफ ही करते थे। अहम् उनमे नही था वर्ना अपने घर से तुलना करके तो मित्रो के घरो मे तारीफ जैसी कोई चीज ही नजर नही आती। वैसे उनका स्वभाव इतना मिलनसार था कि गरीब व अमीर सभी उन्हें अपना ही समझते थे।

जीवन मे कोई घडी वहुत ही अशुभ आती है, उसी तरह एक घण्टे मे ही वे हम सवको छोडकर चल वसे। वह दृश्य और घटना वड़ी दर्दनाक थी। विश्वास नही होता कैसे क्या हुआ ? दो दिन पहले मेरे यहाँ पार्टी थी, श्रीमती भण्डारी अस्वस्थ थी मैंने टेलीफोन किया तो वहुत आग्रह करके उन्होंने भुवन वाई साहव को मेरे यहाँ भेजा।

किसने सोचा था कि एक दिन बीच मे छोडकर दूसरे दिन सुवह ही वे हम सभी को छोडकर हमेशा के लिए विदा हो जावेंगे।

उनका पति-पत्नी का प्रेम व एक-दूसरे के प्रति इज्जत उदाहरण योग्य थे। ऐसा लगता है शारीरिक रूप से वे एक-दूसरे से विछुड गये हैं लेकिन उनकी आत्माओ का सम्वन्ध चिरस्थायी है। उनके तीनो पुत्र भी उनके आदर्श पर चल रहे हैं।

यद्यपि वे हमेशा के लिये हम से विछुड गये हैं लेकिन उनकी मधुर स्मृति हम मित्रो के हृदय मे चिरस्थायी है। उस समय तो उनका विछुडना हम मित्रो के लिये भी इतना जवर्दस्त प्रहार था कि ऐसा महसूस हो रहा था कि इस आघात को कैसे वर्दास्त करेंगे। ईश्वर ऐसे दुखों को भी सहन करने की शक्ति देता है। जव हमारे जैसे मित्रो को भी सँभालने मे खासा समय लगा तो उनके वृद्ध माता-पिता पत्नी व वच्चो के तो दिल ही टूट गये। लेकिन उनकी पत्नी ने जिस तरह अपना व परिवार का सन्तुलन सम्हाला वह सराहनीय है। ☆

गुण-दृष्टि

□ श्री एल० आर० कन्धारी
डायरेक्टर
व्हीट असोसियेट्स, नई-दिल्ली

स्वर्गीय श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी की स्मृति मुझे कई बार होती रहती है।

गुण ग्रहण का भाव रहे
दृष्टि न दोषों पर जाये

यह पंक्ति मुझे लगा कि, उन्होंने अपने जीवन की गहराई मे आत्मसात् कर ली थी।

एक बार उन्होंने मुझसे कहा था कि इस दुनिया मे कोई भी मनुष्य बुरा नही है। हमे अवगुण छोडकर, हमेशा दूसरो की अच्छाइया और सच्चाइया देखनी चाहिए। सोचता हूँ, उनकी गुण दृष्टि कितनी अनुपम थी। यह हमारा दुर्भाग्य ही कहिए कि उन जैसे विनम्र, उदार-हृदय एवम् गुण-निष्ठ व्यक्ति का सुखद सान्निध्य अधिक नही मिला तथापि उनकी मधुर स्मृति आज भी लोक मानस मे तैर रही है। साथ ही गुण-ग्रहण के लिए यह मूल मन्त्र बता रही है।

काले काजल से भी नैन का शृंगार किया जाता है
कटीली झाड़ियो से भी खेत का प्राकार किया जाता है
गुणी आदमी बुराई मे से भी भलाई ढूंढ लेते हैं,
सडी गली खाद से भी बाग को गुलजार किया जाता है

अन्त मे उनके अलौकिक प्रवासित गुण-निष्ठ पवित्र पुनीत जीवन का शत-शत अभिनन्दन।

जनसेवी योजनाएँ उनकी सदैव याद दिलाती रहेंगी

☐ चन्दनमल लूंकड

प्रसिद्ध भण्डारी परिवार मे जन्म लेकर श्री गजेन्द्रसिंह भण्डारी ने इन्दौर लेडी कालेज मे प्राथमिक शिक्षण ग्रहण किया, पश्चात् वे इगलैण्ड मे व्यापार विशेषज्ञ का उच्च अध्ययन करने भी गये थे। वे सदैव हसमुख, निष्कपट, मितव्ययी, उत्साही, कार्य-कुशल एव अनेक गुणो से परिपूर्ण थे, मानो वे सब गुण उन्हें विरासत मे ही मिले हो। अपने व्यवसाय को सुसगठित, सुव्यवस्थित एव अनुशासित रूप से चलाने मे से हमेशा रुचि रखते थे। प्रसिद्ध या सस्ती लोकप्रियता के एव अन्य किसी झगडो मे न पडकर अपने कार्य को सम्पादित करना, उनकी विशेषता ही थी। नये-नये व्यवसाय धन्धो का आरम्भ कर, अत्यधिक आवश्यकता वालो को स्थान देकर उन्हे कार्यो मे सलग्न कर सहयोग देना ही उनका लक्ष्य था। ये ही गुण थे कि जिनके कारण वे अनेको के मार्गदर्शक, सलाहकार एव प्रेरणा पुंज कहलाये। मृदुभाषी थे, ईर्ष्या से दूर रहना, सदैव उत्तरदायित्व पूर्ण कार्य करते रहना, उनकी यह सर्वाधिक विशेषता थी। अल्पायु मे ही वे "बैंक आफ इण्डिया" के डायरेक्टर रहे, रोटरी क्लब के अध्यक्ष रहे एव कई सस्थाओ से प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष रूप से जुडे रहे तथा मार्गदर्शन देते रहे तथा उनके सुनिर्दिष्ट निर्देशन मे भण्डारी मिल का सचालन भी चल रहा था। उनकी स्वप्रेरणा से उनके कुछ साथियो ने जनसेवा की योजना बनायी थी, जिनके विशेष आग्रह पर अपनी व्यस्तता के बाद भी वे जनसेवा हेतु कुछ समय दे सकने की स्थिति मे पहुँचे थे। योजनाएँ बनी ही थी कि एक होनहार युवक को ईश्वर ने हमारे बीच से सदा के लिये उठा लिया। किसे पता था कि समय के कलुषित प्रहार से यह अपूरणीय क्षति होगी जनमानस की आकाक्षाओ पर कुठाराघात होगा। इन्दौर शहर मे एक के बाद एक अकाल युवा मौत हुई है, मानो लगता है कि ऊपर वाले के पास भी युवको की कमी हो गई है। विधि के विधान को बदला नही जा सकता।

उनके इस आकस्मिक व असमय निधन से न केवल भण्डारी परिवार को ही क्षति हुई अपितु इन्दौर शहर, प्रदेश एव देश के विकास मे कुछ धक्का-सा महसूस हुआ है। ऐसे दु खद समय मे परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि इस असहनीय दुख को सहन करने की शक्ति शोक-सतप्त परिवार को प्रदान करें।

☆

एक अविस्मरणीय व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा सुमन

☐ पी० सी० मेहता
सेल्स मैनेजर
फ्लोअर एण्ड फूड लि०, इन्दौर (म०प्र०)

भारतीय सस्कृति ने देश को कई विभूतियाँ दी हैं। कई विभूतियाँ अपने कार्यों से सुशोभित होकर अपनी अमिट छापें छोड गयीं। कुछ ऐसे व्यक्तित्व भी रहते हैं जो कि विशेष होते हुए भी प्रकाश मे नही आते लेकिन अपने व्यक्तित्व के प्रेरणास्रोत से कई असख्य लोगो का कल्याण कर जाते हैं लेकिन वो अपनी प्रशसा पाने की इच्छा नहीं रखते। ऐसी ही विभूतियो मे एक चिरस्मरणीय विभूति थे आदरणीय स्व० भैया साहव श्री गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी आज जिनकी स्मृतियाँ ही शेष हैं।

मनुष्य अपनी शिक्षा के समाप्ति पर जीवनयापन की खोज मे क्षेत्र खोजता है। उसी तारतम्य मे मैं स्वय अपने भविष्य निर्माण की नीव रखने के प्रयास मे अपने पथ-प्रदर्शक की खोज मे था। उसी समय मुझे सन् १९६० मे मेरे नियोजक प्रकाश-स्तम्भ एव प्रेरणा स्रोत स्वरूप आदरणीय स्व० भैयासाहव के सानिध्य मे कार्य शुभारम्भ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

मैंने अपनी १८ वर्ष की आयु मे उनके सानिध्य मे कार्य की शुरूआत की। उनके साथ लगभग ११ वर्ष तक कार्य करने का मुझ जैसे साधारण व्यक्ति को उनके निकट सम्पर्क मे रहने का सौभाग्य रहा है जोकि मेरे जीवन की एक अविस्मरणीय उपलब्धि है, लेकिन दुर्भाग्य है कि इस महान् व्यक्तित्व का मार्गदर्शन मैं केवल ११वर्षों तक ही ले सका। यह समय मेरे लिये निस्सन्देह वरदानस्वरूप था जिसके दौरान मैंने उन्हे सदैव शिक्षक, कर्तव्यपरायण, कुशल एव प्रभावशाली उद्योगपति, प्रखर अनु-शासक, सुलभ मृदु स्वभावी एव सहृदय व्यक्तित्व के रूप मे पाया। आज आदरणीय भैया साहव का सानिध्य मेरे साथ नही है, लेकिन उनके द्वारा प्रदान किया गया मार्गदर्शन आज मेरे जीवन का प्रमुख प्रेरणा स्रोत है। मेरे दैनिक जीवन के वे आज भी प्रकाश-पुंज हैं। मेरा कोई भी कार्य वह चाहे कार्यालयीन हो या पारिवारिक हो सभी पर उनकी एक अमिट छाप है, जो मेरे जीवन के लिये अमूल्य निधि है।

आदरणीय भैया साहव के गुणो के सम्बन्ध मे विश्लेषण करना मेरे जैसे साधारण व्यक्ति के लिये एक कठिन कार्य है, लेकिन यहाँ उनकी कार्य-कुशलता अनु-शासन एव सहृदयता के वारे मे कुछ अंशो मे लिखने का प्रयास कर रहा हूँ।

समाज-भूषण, जैन रत्न सेठ सुगनमलजी भण्डारी के ज्येष्ठ पुत्र के रूप मे श्रीमान गजेन्द्रसिहजी भैया साहव का भण्डारी परिवार मे दिनाक ९ नवम्वर १९२९ को एक जाज्वल्यमान नक्षत्र के रूप मे उदय हुआ था। अपने वाल्यकाल से युवावस्था तक पब्लिक स्कूल तथा इसके तदनन्तर विदेशो मे शिक्षा-दीक्षा पायी। अपनी

युवावस्था की २१ वर्ष की आयु मे (श्रीमती) भुवन भण्डारी से दिनाक १५-२-१९५१ को अजमेर मे विवाह हुआ। (श्रीमती भुवन भण्डारी आज कई समाज कल्याणकारी सस्थाओ एवं धार्मिक सस्थाओ का सचालन कर रही है।) आपको तीन पुत्र रत्नों की प्राप्ति हुई जोकि अपने आप मे आदरणीय स्वर्गीय भैया साहव की प्रतिमूर्ति के रूप मे विद्यमान है।

अपनी अल्पायु करीव २० वर्ष से ही भैया साहव ने पारिवारिक, सामाजिक कार्यो के साथ ही साथ व्यावसायिक प्रतिष्ठानो एव कारखानो के सचालन का कार्य-भार देखना प्रारम्भ कर दिया था जो उनके अन्तिम क्षणो तक निर्वाध रूप से उनके साथ रहा। इस वीच उन्होंने कई कारखानो के निर्माण कार्य, अपने वैज्ञानिक दृष्टि-कोण से कराये जो आज भण्डारी सस्थानो की धरोहर है। इन कारखानो के निर्माण के दौरान देश तथा विदेशो मे कई प्रयास किये। प्रत्येक विदेश प्रवास की वापसी मे हमेशा उपलव्धि एव सफलता उनके साथ थी।

सन् १९६६ मे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड, इन्दौर (मैदा मील) की स्थापना एव निर्माण कार्य उनकी सूझ-वूझ एव कुशल वुद्धि का परिचायक है जो आज देश की एक सवसे आधुनिक एवं प्रमुख मैदा मील है जिसके उत्कृष्ट गेहूँ निर्मित पदार्थ का हर क्षेत्र मे अपना एक विशिष्ट स्थान है।

आदरणीय भैया सा० के कार्य करने की अपनी एक विशिष्ट शैली थी जिसकी छाप आज भी उनके द्वारा सचालित समस्त सस्थाओं मे देखने को मिलती है। क्योकि सभी सस्थाओ का सचालन आज भी उनके द्वारा आधारित शैली पर ही चल रहा है और इसके ठोस होने का प्रमाण यह है कि ये सस्थाए दिनोदिन प्रगति की ओर अग्रसर हैं।

जिस तरह एक कलाकार मिट्टी को स्वरूप प्रदान कर तरह-तरह की मूर्तिया गढ़ता है उसी प्रकार स्वर्गीय भैया साहव की यह एक प्रमुख विशेषता थी कि वो अपने अधीनस्थ कर्मचारियो को उनकी कार्यक्षमता के अनुसार व्यक्तिगत रूप से तैयार करते थे। व्यक्ति जव पूर्णरूप से उनकी कार्य शैली को अपने आप मे ढाल लेता था तव उसे महत्त्वपूर्ण कार्य सौपने मे वे सदैव तत्पर रहते थे।

आदरणीय भैया साहव अनुशासन के पक्के धनी थे। वह स्वय भी अनुशासन-वद्ध रहते थे तथा अपने प्रत्येक कर्मचारी से यह अपेक्षा रखते थे कि वो अनुशासन मे रहे। उनकी यह मान्यता थी कि कार्यालयीन समय मे अनुशासनवद्ध रहने से कार्य की क्षमता वढती है। कार्य की क्षमता मे ही सफलता निहित है जो व्यक्ति एव संस्था दोनो को ही प्रगति की ओर अग्रसर करती है।

अपने व्यवहार कुशलता के लिये वो इतने सुप्रसिद्ध थे कि कई कठिन समस्याओ का अपनी तीक्ष्ण वुद्धि से तुरन्त देखते-देखते समाधान कर देते थे। समस्या चाहे वह

कार्यालयीन कर्मचारी, व्यावसायिक प्रतिनिधि अथवा सामाजिक कार्यकर्ता द्वारा उठायी गयी हो। कई मर्तबा ऐसे भी प्रसग देखने को मिलते थे जब आगतुक अपने आक्रोश मे श्रीमान भैयासाहब से मिलते लेकिन उनसे मिलने के वाद यह पाया जाता कि उसकी समस्या का समाधान हो गया है एव वह उनसे मिलने के बाद पूर्णतया सतुष्ट है। आज भी हमारे कार्यालय मे ऐसे कई व्यावसायिक प्रतिनिधि आते है जो उन्हे कभी नही भूलते और एक स्वर मे उनका यही कहना होता है कि उद्योगपति तो हमने कई देखे लेकिन श्रीमान गजेन्द्रसिह जी भण्डारी जैसा व्यक्तित्व विरले ही व्यक्तियो मे देखने को मिला।

श्रीमान भैयासाहब चाहते थे कि उनके अधिनस्थ समस्त कर्मचारी, खुशहाल रहे। इस वारे मे उन्होने अपने कर्मचारियो को कभी भी एक कर्मचारी की हैसियत से नही समझा अपितु वे उसे अपने परिवार के एक सदस्य के रूप मे मानते थे। अपने कर्मचारियो के सामाजिक कार्यो मे सदैव वह निश्चित रूप से उपस्थित रहकर यथासभव वित्तीय सहायता भी प्रदान करते थे।

अपनी प्रतिष्ठा के अनुरूप समाज मे तथा उद्योगपतियो मे उनका अपना एक विशिष्ट स्थान था। छोटे-वडे सभी समारोह मे वे समान रूप से उपस्थित रहते थे। अनेक सामाजिक एव व्यवसायिक सस्थाओ के वे पदाधिकारी रहे एव समय-समय पर अपने उचित मार्गदर्शन एव अनुदान द्वारा उन्हे निरन्तर लाभान्वित करते रहे।

मेरे जीवन का एक सस्मरण प्रस्तुत करते हुए मैं आत्मविभोर हूँ। यह दिन २० सितम्बर, १९७१ का था जिस दिन आदरणीय भैया साहब के कार्यालय मे आने का अन्तिम दिवस था। इस दिन उन्होने मुझे फ्लोअर एण्ड फूड लि०, इन्दौर के सैल्स मैनेजर का पद-भार (DESIGNATION) दिया।

मैं यह मानता हूँ कि उनके सानिध्य मे ११ वर्षो तक मुझसे उनकी जो भी सेवा हो सकी उसका उन्होने अपने अन्तिम प्रयाण के चार दिन पूर्व मुझे इसका प्रतिफल दिया जो उनके स्नेह का मेरे लिये एक वहुत वडा उपहार है।

२४ सितम्वर, १९७१ का वह दिवस मेरे जीवन का एक ऐसा हृदय विदारक एव दु खदायी दुर्दिन था जिस दिन भैया साहब अपने समस्त परिजनो, मित्रो एवं सहयोगियो को विलखता छोडकर ४१ वर्ष की अल्पायु मे दिव्य ज्योति मे लीन हो गये। उन्हे मेरी अश्रुपूरित श्रद्धाजलि।

आज भले ही वो शारीरिक रूप से हमारे वीच नही है लेकिन उनके वताये हुए मार्गदर्शन पर आज उनके यशस्वी पुत्र श्री जसवीरसिहजी भण्डारी जोकि वर्तमान मे फ्लोअर एण्ड फूड लि०, इन्दौर के प्रवन्ध सचालक हैं, सस्था को दिनोदिन सफलतापूर्वक नया स्वरूप प्रदान कर उनकी आकाक्षाओ को साकार करने मे सलग्न है। ☐

जब याद आती है...

□ श्रीमती प्रतापकुमारी मेहता
अजमेर

मात पिता ने एक लाल दिया
जिसने मानव सेवा का काम किया
जीवन उसका था अति निर्मल
मानो कीचड़ मे था खिला कमल
दुखियो का था वह वड़ा सहारा
अमीरो का भी था वह वड़ा दुलारा

कैसे इस कटु सत्य पर विश्वास करू कि एक देवता हमको हमेशा के लिए छोड कर चले गए।

मेरे दामाद (श्रीमान् गजेन्द्रसिंह साहव भण्डारी) मनुष्य के रूप मे एक देवता थे। उस महान आत्मा के गुणो का वखान करने की शक्ति मेरी इस लेखनी मे नही है, फिर भी सोचती हूँ कि उस महान् व्यक्ति के गुणो को लिखकर शायद मैं अपने आप को कुछ सान्त्वना दे सकूँ।

श्री गजेन्द्रसिंह जी एक धनाड्य व सम्पन्न परिवार मे पैदा हुए। लक्ष्मी जैसे उनके चरणो की दासी वनकर ही जव तक थे इस घर मे रही। परन्तु इतना सव कुछ होने के पश्चात् भी वे इतने विनम्र, स्नेही, कर्तव्यपरायणता से ओत-प्रोत व्यवहार। सहनशीलता मे तो सागर का साक्षात् स्वरूप था।

मैंने अपनी सुपुत्री भुवनेश्वरी को उस खानदानी धनी परिवार के एक महान व्यक्ति श्री गजेन्द्रजी के हाथो सौपकर अपने आपको वड़ा ही भाग्यशाली समझा और वडी शान्ति का अनुभव किया और जव-जव कँवरसाहव अजमेर पधारते, उनका वह स्नेहसिक्त शब्दो का सम्बोधन, 'वाईजी' मुझे तो आपकी यह हवेली इतनी पसद है कि यहा से जाने की ही मेरी इच्छा नही होती, देखिये इसीलिये साल मे मेरे दो-तीन चक्कर अजमेर के हो जाते हैं," ये शब्द वडे ही आत्मीयता एव स्नेह से फरमाते थे। वैसे उनकी भव्य कोठी के सामने मेरी हवेली का क्या मुकावला। जो सुख-सुविधायें उनको अपनी कोठी मे प्राप्त हैं, वह तो यहा पर सारी नही थी, पर फिर भी पता नहीं, क्यो इतना लगाव था। वह झरोका जहा कवरसाहव दिनभर विराजते थे, अभी भी उनकी यादें सजोये वही का वही अडिग, शायद पुन उनके आने की वाट मे खडा है।

मेरी पुत्री भुवन का जीवन भी सुख के सागर मे हिलोरें लेकर लहराता था।

कितनी भाग्यशाली थी, जो ऐसे गजेन्द्र को पति के रूप मे पाया था, कभी अवसाद के क्षण तो जैसे भुवन के जीवन मे आये ही नही थे। सदा कमल की भाति प्रफुल्लित चेहरा दोनो का रहता था। अह तो नाममात्र भी नही था और शायद उन्ही के कारण भुवन ने भी इस महान् गुण को अभी तक आत्मसात किया है। अनजान व्यक्ति उन्हे देखकर यह कह ही नहीं सकता था कि वे इतने धनी परिवार के हैं। उनकी महानता ने हर एक के हृदय पर ऐसी छाप छोडी है कि आदमी उन्हें भुलाये ही नही भूल सकता, क्या परिवार और क्या मिलने वाले। उनका मोहक चेहरा, स्नेहिल सम्बोधन, सौष्ठव से अभिसिंचित व्यक्तित्व एवं उनकी करुणा के सौरभ की अनुभूति नवागन्तुक व्यक्ति प्रथम परिचय मे ही पा जाता। वह तो एक ऐसा हीरा था जो अपने समस्त पहलुओ से प्रकाश फैलाता था। कौनसा पहलु ज्यादा प्रकाशमान था कहना अति कठिन है। अभी भी ऐसा लगता है कि वे कही वाहर गये हैं और वापस आयेंगे। वाहर पर से याद आया कि भुवन की शादी के वाद भी कवर साहव ७-८ वार विदेश गये पर भुवन को साथ नही लेकर गये। मुझे मन मे अन्दर ही अन्दर वडा खेद होता था कि क्या कारण है, वैसे तो ये दोनो १५ दिन भी अलग नही रहते और जब-जव विदेश पधारते हैं, भुवन को यही छोड जाते है। प्रोग्राम दो माह का वनता किन्तु कवर साहव २०-२५ दिन मे ही वापस इन्दौर, फिर भी यह प्रश्न सदैव मुझे विस्मय मे डाल देता जव कभी भी भुवन से इस विषय मे पूछा तो हंसकर ही सामने आई। मा, क्यो आप इतना आश्चर्य अनुभव करती हो। क्या पूज्य वावूजी की एक छोटी सी इच्छा को भी ये पूर्ण करने मे असमर्थ रहेंगी कभी ऐसा होने नही दूंगी। चाहे ये लाख चाहें जिस दिन वावूजी अपने श्रीमुख से फरमायेंगे उसी दिन हम दोनो विदेश की यात्रा पर जावेंगे। यहा कौन सी चीज को या जाने को वावूजी मना करते हैं। उनकी भी कोई परिस्थितिवश मजवूरी होगी। मुझे तो वडी खुशी और गर्व है कि आज भी पिता का आदेश सर माथे पर एव आँखो की पलको से पूजने वाले पुत्र इस धरती पर मौजूद है। और जव कभी कवर साहव से पूछा, वडे ही मजाक के लहजे मे कहते, आपकी वेटी को मेरे साथ विदेश जाना पसंद नही है। मेरा वन्धन तो यही वहुत हैं, वाहर तो आराम से घुम फिर लू। कितना दोनो का आपस मे एक विचारो मे सामन्जस्य था। आज के जमाने मे कौन इतना त्याग करेगा। एक वार नही अनेक वार परन्तु कवर साहव त्यागमूर्ति पिता की छवी थे। पिता श्री सेठ सुगनमलजी साहव का तो सारा जीवन ही त्यागमय रहा और माता चम्पावाई साहव तो साक्षात् लक्ष्मी है। उनकी जैसी महान् स्त्री तो इस स्त्री जगत मे मिलना असभव है। हालाकी मेरा साथ रहने का काम वहुत कम पडा पर जैसा मैंने भुवनजी को कहते इन लोगो के वारे मे सुना, अपने कानो पर विश्वास नही होता, सेठ साहव को यदि दशरथ एव व्याणसाहव को कौशल्या के नाम से सम्वोधित किया जावे तो शायद अतिशयोक्ति नही होगी। सेठ साहव को पुत्र रूपी राम और लक्ष्मण मिले थे। राम रूपी गजेन्द्र ने तो

अपना कर्त्तव्य आखिर क्षणो तक मरण शैया पर भी यह कहते हुये निभाया, बताते हैं कि बाबूजी मैं ठीक हूँ, आप फिकर मत करिये। सच्चे पितृभक्त थे। आखिर समय भी जैसा सब लोग कहते हैं, हँसते-हँसते ही विदा ले गये—क्या बीती होगी उस समय ऐसे पुत्र, पति, पिता और अनुज को खोकर ईश्वर ही जानता होगा।

जब भी उनकी बाते, उनकी महानता व सदैव मुस्कराता चेहरा मेरे सामने आता है, तो मेरा हृदय टूक-टूक हो जाता है, आंसू भी उस तड़पते हुये हृदय को सान्त्वना नही दे सकते लेकिन जब मुझे भुवन याद आती है कि वो किस तरह इस दुःख के सघन अँधेरे मे, बीहड मे, जहा सासारिक सुखो कि ज्योति विलीन हो गई है, अदम्य साहस से अपराजित स्त्री बनी होने का साहस कर रही है। उसमे तो क्या शक्ति है पर कवरसाहब की आत्मा ही उस समुद्र के टावर की भाति अन्धेरे मे घिरे हुये जीवन के जहाज का मार्गदर्शन कर रही है, वरना इतने छोटे बच्चे चि० जसवीर जम्बू, सतीश को लेकर इस जगत मे उसी सम्मान पूर्वक चलाना आसान काम नही है। इतनी छोटी-सी उम्र मे अपने परमपूज्य दादासाहब के मार्गदर्शन मे जो इन लोगो ने व्यापारिक व्यवसाय सभाला है, वह उस महान् आत्मा के आलोक से प्राप्त मूक ज्योतिर्मय निर्देशन ही है।

इस दुःख के विकट समय मे भी जरा-सी खुशी की झलक दिखती है तो बस यही कि आज बच्चे सम्मानपूर्वक अपने पिता श्री का हर क्षेत्र चाहे व्यापारिक, सामाजिक, पारिवारिक हो, पूर्ण अनुसरण कर रहे हैं। सदैव अपनी पूज्य मा का सम्मानपूर्वक आज्ञा का पालन करते रहे ? उसने तो इन सबो की खुशी के लिये पता नही दुःख को कौनसी पाताल की गहराई और नभ की ऊंचाई मे छिपा दिया है।

किसी व्यक्ति विशेष की तारीफ करना और खास करके जाने के बाद तो ऐसा होता ही है परन्तु मैं जो लिखने जा रही हूँ वह काल्पनिक या मनगढन्त घटना नही है, जैसा की मैंने आपको प्रारम्भ मे ही कहा कि महानता को शब्दो मे बांधने का मुझमे साहस नही है। उनकी मोहब्बत व बड़ो के प्रति आदर व सम्मान का उदाहरण तो सचमुच मे देखते ही बनता था। बात बहुत छोटी है, पर उसके अन्तर की गहराई को अनुभव करने वाला ही उस रहस्य को आत्मसात कर सकेगा।

एक बार मेरे पति (भुवनजी के पापा) किसी शादी मे इन्दौर पधारे और वहाँ पर अचानक तबियत बिगड गई, तत्काल डाक्टर साहब मुकर्जी जो वहाँ के सबसे नामी डाक्टर हैं, बुलाकर बताया, सारी जाँच इत्यादी करवाई, लेकिन एक छोटी-सी घटना जो मेरे मन एव मस्तिष्क मुझे नही भुला सकती कि एक इतना बडा भव्य व्यक्तित्व वाला आदमी, इतना छोटा और यह कहना उपयुक्त होगा कि घृणित सा काम अपने हाथ से करेगा, कल्पना करना भी मुश्किल है, परन्तु यह सही है कि अपने

ससुरजी के टट्टी एव पेशाव के डब्बे व शीशी खुद हाथ से उठाकर डाक्टर साहव जहाँ जाँच करते हैं, खुद लेकर आये। वह यह काम नौकर या ड्राइवर से या अन्य किसी व्यक्ति विशेष से भी करवा सकते थे। परन्तु अपने से वडो के प्रति कितनी अवस्था, असीम आस्था थी कि अच्छी और बुरी भावना का वहाँ कोई महत्त्व ही नही था। सेवा ही जिनका मुख्य उद्देश्य था। उनके महान हृदय की झाँकी को इन टूटे-फूटे शब्दो की परिभाषा मे परिभाषित करना वडा ही दुष्कर कार्य है, शायद और किसी की नजर मे यह वात महत्त्व न रखे लेकिन मेरे हृदय के तो ये ऐसे मर्मस्पर्शी उद्गार हैं, उनकी मानवीय महानता के अनेको उदाहरण है :—

एक वार मैं और भुवनजी अजमेर से दिल्ली गये। कवर साहव भी दिल्ली पधारे तो भुवनजी उनके साथ अशोका होटल मे ठहरी। मैं मेरी छोटी लडकी के पास नजफगढ ठहरी। इतनी दूर मेरा ठहरना उन्हे अच्छा नही लगा। भुवनजी को पहले उन्होंने लेने भेजा और जव मैं उनके साथ नही आई कि मैं होटल मे तुम लोगो के वीच क्या करूँगी—यह वात कवरसाहव को अच्छी नही लगी और मुझे आकर दिल्ली दिखाने घुमाने के वहाने वहाँ से ले पधारे और वापस मुझे आने नही दिया और वही पर ठहराया, कितना विशाल हृदय था।

इसी प्रकार मेरी छोटी पुत्री की शादी मे जव अजमेर पधारे १९५९ मे, तो एक वेटा भी क्या काम करेगा, इस तरह से उन्होंने हर क्षेत्र मे जिम्मेदारी से काम किया। वरात कलकत्ता की थी। नाज-नखरे वहुत थे। मेरे निकटतम रिश्तेदार नाज-नखरो मे तग आ गये। एकमात्र कवरसाहव ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने उस वारात के सारे वारातियो को अपने मृदु व्यवहार से इतना सन्तुष्ट किया कि जाते-जाते सभी लोग प्रशसा के अम्वार लगा गये। कहाँ तो वारात नाराज होकर जा रही थी और कहाँ इतनी खुश होकर कि उन्ही के शब्दो मे यह कह गई, "सोचा था नाको चने चववायेंगे, आखिर सेठ साहव के इकलौते लडके की शादी है, इसमे तूफान नही मचाया तो आगे मौका कव मिलेगा इत्यादि और वही लोग जाते-जाते कह गये कि आपके जवाई ने तो अपनी व्यवहार कुशलता से, मोहक चेहरे की मुस्कान से, हम सभी को लुभा लिया और हमे पानी-पानी कर दिया। प्रभु ऐसा दामाद या वेटा सभी को दे और अपने कटु व्यवहार की क्षमा माँग कर गये।

दया भाव भी मन के कौने-कौने मे भरा था, किसी को किसी भी प्रकार से सतप्त अवस्था मे देख नही सकते, चाहे आर्थिक हो, मानसिक हो या शारीरिक, सभी को समयोचित उपाय करने की कोशिश मे रहते। मुझे दमे की शिकायत वहुत पुरानी है। जव-जव भी पधारते, कुछ न कुछ नई दवायें लेकर पधारते या जहाँ भी पधारते इससे सम्वन्धित मिलने वालो से सदैव कुछ पूछ कर ही पधारते और नये-नये प्रयोग

व दवाइया लेकर पधारते या पार्सल से भिजवाते। जब तक अजमेर विराजते अपने हाथो से अपने सामने दवा खिलाते और जरा भी उठकर चलने नही देते। आप मेरे पास विराजिये, मैं तो दो दिन मे चला जाऊँगा। बाईजी, हाथ देखिये और बताइये, भविष्य कैसा है। आपकी बेटी बीच में ही तो धोका नही दे जावेगी क्योंकि भुवनजी की तबियत हमेशा गडबड़, कुछ न कुछ खराब चलती रहती थी और अब तो शायद एक दिन भी ठीक नही रहती है। पर उसने भी, लगता है कि कवरसाहब के उस गुण को आत्मसात किया है, "कितनी भी विपरीत परिस्थितियां हो, सदैव मुस्कुराते हुये उनका आलिगन करो, कभी दु ख से पराड् मुख न हो, दु ख एक कसौटी है जिसमे मनुष्य परखा जाता है कि वह कुन्दन है या पीतल। दु ख मे घबराकर विचलित होने वाले की गति पतझर से गिरे पत्ते के समान है, जिसे कोई जानता भी नही। सुख सध्या का लाल क्षितिज है, जिसके पश्चात् घनघोर अन्धकार है और दुःख प्रात काल का पुनीत प्रकाश है जिसके पश्चात् उज्ज्वल प्रकाश ही प्रकाश—जीवन मे महान वही है जो दूसरो की मुस्कानो के लिए अपने आँसू हँसते-हँसते पी ले।" भुवनजी ने भी लगता है यह पूर्णरूप मे अपना लिया है, अन्दर कितनी घुटन होगी, कितना दु ख होगा, इसकी कल्पना तो ईश्वर ही कर सकता है। पर जब कभी यदा-कदा बडी हिम्मत बटोर कर पूछने का प्रयास भी मैंने किया, तो बस एक ही जवाब देती है—माँ, दुखो का तो अब सागर मेरे सामने लहरा रहा है, सब मेरे कर्मो का ही तो फल है। सुख भी देखा, दु ख भी। जब सुख से नही घबराई तो दु ख से भी घबरा कर भागना नही है। जब तक दिमाग की अवस्था ठीक है और शरीर मे प्राण है तब तक दु खो से कभी भी मुह नहीं मोडूंगी। उसी प्रकार हँसते हुये इन परिस्थितियों का आलिगन करूँगी, उनकी आत्मा जरूर मुझको सबल देती रहेगी, दे रही है, वरना मेरी क्या बिसात जो मैं यह सब सह सकू। सच मे लगता है कि कोई आत्म शक्ति ही पथगामी बनकर उसे शक्ति दे रही है। जब-जब भुवनजी का वह भोला चेहरा याद आता है, बस यह पक्तियाँ बरबस निकलती हैं—

क्या ही भोली वह मूरत थी
कैसा वह ठाट निराला था
देखो ! जैसे श्री विधि ने निज कर से
यह जोडी सांचे मे ढाली थी ॥
जितनी ओपमा दे डारूं, वह सभी इसी पर वारी है
लेखनी मेरी लिख न सके, न मुझमे शक्ति भारी है।

इनके जीवन के सुखद प्रसंगो को मेरी यह पगु लेखनी लिखने मे असमर्थ है और मनोदशा तो और भी विकृत अवस्था मे है।

जब भी भुवनजी का विगत जीवन याद आता है कि कितना सुख-सुविधाओ से परिपूर्ण जीवन था, कोई चीज की तो कमी नही थी। कही पैसा होता है तो पति का आचरण ठीक नहीं, बच्चे नही। कुछ न कुछ जीवन मे अवश्य कमी रहती है, परन्तु यहाँ तो ईश्वर की कृपा से सभी कुछ मिला था। पैसे के साथ पति के रूप मे तो सच मे साक्षात् श्रीकृष्ण मिले थे। मेरे परिवार के सदस्य कोई लैला-मजनू कहता था, कोई राधा-कृष्ण कह कर इन दोनो को सम्बोधित करते थे। कितनी खुशहाली थी उनके जीवन मे जिसका सोचना भी कल्पना के बाहर है। प्रभु की कृपा से तीनो पुत्र जसवीर, जम्बू, सतीश भी ब्रह्मा, विष्णु, महेश सदृश्य है। क्या-क्या लिखूँ, बच्चो के बारे मे। जब याद आया तो मुझे याद है, तीनो भाईयो को जब छोटे थे, अपने हाथ से अपनी थाली मे साथ बैठकर खिलाना, कपडे यदि गन्दे कर दें तो अपने हाथ से बदल देना, अपने हाथ से उनको नहला देना। बच्चो के लिये शायद अपनी जान भी लगा दें तो कम था। दिनभर गोद और सर पर चढ़े रहते थे। बच्चो की हर फरमाईश पूरी होती थी पर फिर भी इतने प्यार से पले बच्चो मे अविवेक का कही नामोनिशान तक नही था, कितना शिष्टाचार था। छोटे-छोटे थे तब भी माँ से सदैव डरते थे। हमेशा भुवनजी कहती, माँ, इतना ज्यादा लाड-प्यार करती हो कि बच्चे बिगड जायेंगे। इतना प्यार होने के पश्चात भी तीनो भाई जसवीर, जम्बू, सतीश को जब ६-६ वर्ष के हुए देहरादून के स्कूलो मे पढने के लिये भेज दिया और जब हम पूछते कि आपने कैसे भेजा, आपका मन कैसे माना, आप तो क्षण भर भी रह नही सकते थे, वहाँ पर बस यही कहते, कर्तव्य व उद्देश्य के आगे अपने स्वार्थ को पीछे धकेलना पड़ता है और शायद कँवरसाहब की उस समय की दूरदर्शिता ही आज उभर कर सामने आ गई है कि जसवीर, जम्बू और सतीश ने इतनी अल्प आयु मे उनके द्वारा स्थापित फैक्टरी को एव दूसरे जो भी उनके अधूरे काम है उनको करने मे समर्थ हो रहे है। आखिर उस महान पिता की सन्तान हैं। उनकी आत्मा इनका पथ-प्रदर्शन सदैव-सदैव करती रहे। उनके बच्चे उनके जितने भी गुण थे, उनको ग्रहण करें ताकि उनका परिवार उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर वापस आरूढ हो। हमारा समाज, परिवार एव देश इन भविष्य के निर्माताओ पर नाज करे। उनके जीवन के उन सभी शाश्वत गुणो को ग्रहण करके दीर्घायु हो—इन बच्चो का भविष्य अपने पापाजी से भी ज्यादा सुखद एव ऐश्वर्यशाली हो।

सर्वगुण सम्पन्न सर्वोच्च सत्ता प्रभु से हमारी यही हार्दिक प्रार्थना है, जहाँ भी वह भव्य आत्मा विचरण कर रही है, चिर सुख-शान्ति मिले एव आत्मा के आलोक से हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहे। अब तो जिनकी पावन स्मृति और आशीष ही हमारे प्रेरणा के स्रोत है। उनकी स्मृति-मात्र से हमारी भावनायें शुद्ध होती है और हमारी निष्ठा सुदृढ होती है।

अन्त मे अपने पढ़ने वाले पाठको मे नम्र निवेदन करूगी कि यदि उनके जीवन का अश मात्र भी किसी ने अनुसरण किया तो हम बडे कृत-कृत्य होगे। मैंने तो मेरी अन्तरधारा मे जो रस वहा वह लेखनी द्वारा एक अश मात्र प्रवाहित कर दिया है। ज्यादा न लिखने की शक्ति है, न मन की मनोदशा ही आवद्ध करने की क्षमता रखती है।

और सबसे ज्यादा आभारी हूँ पूज्य गुरुदेव मोहनलालजी महाराज साहब के शिष्य महेन्द्रमुनिजी महाराज साहब की, जिनके ओजपूर्ण व्याख्यानो एवं प्रवचनो से मेरी पुत्री भुवनजी के मन मे इस पुस्तक की योजना आई और उसे मूर्तरूप देने का दृढ सकल्प किया और हमे भी अश्रुपूरित नेत्रो से उस महान् आत्मा के विषय मे दो शब्द लिखने का अवसर प्राप्त हुआ।
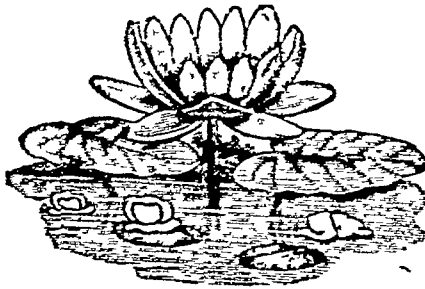
श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी · एक मधुर स्मृति

☐ श्री वी० एल० जैन

स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी साहब भण्डारी से मेरा सम्पर्क केवल एक वर्ष तीन माह का ही रहा। इस अल्पकालीन सम्पर्क मे ही कुछ अवसर ऐसे आये जिनकी स्मृति सदैव बनी रहेगी।

सन् १९७० की दीपावली के मुहूर्त पर अभिनन्दन के लिये मैं उनके निवास-स्थान 'नन्दनवन' कोठी पर गया। वहाँ भण्डारी परिवार के श्री सुरेन्द्रसिंहजी भण्डारी भी बैठे हुए थे जिनसे मेरा परिचय बहुत कम था। एम टी क्लाथ मार्केट इन्दौर के कुछ व्यापारी परिवार के एक सज्जन के पास अभिनन्दन के लिये आये, हम सब एक ही हाल मे बैठे थे। मैं और गजेन्द्रसिंहजी साहब कुछ कार्य सम्बन्धी वार्तालाप कर रहे थे। श्री सुरेन्द्रसिंहजी ने कपडे के व्यापारियो का स्वागत इलायची-सुपारी से किया लेकिन मुझे अनदेखा कर गये। यह बात श्री गजेन्द्रसिंहजी साहब को अच्छी नही लगी, और लगती भी कैसे, मैं उनका कर्मचारी था। मेरी अवहेलना वे सहन नहीं कर सकते थे। जैसे ही सुरेन्द्रसिंहजी ने इलायची सुपारी की ट्रे टेबल पर रक्खी श्री गजेन्द्र-सिंहजी साहब तुरन्त खड़े हुए और मेरा स्वागत किया।

श्री गजेन्द्रसिंहजी साहब अपने स्वभाव की शालीनता के कारण बडे लोकप्रिय थे। अपने कर्मचारियो के साथ, चाहे वह आफिसर हो या चपरासी हो, या मजदूर बडा स्नेह रखते थे व उन्हे यथोचित आदर देते थे। प्रत्येक मजदूर और कर्मचारी को वे व्यक्तिगत रूप से जानते थे और उसे कोई कष्ट तो नही है इसका सदैव ध्यान रखते थे।

वे एक कुशल उद्योगपति थे। कर्मचारियो के चुनाव के बारे मे उनकी दृष्टि बडी ही पैनी थी, किसी भी व्यक्ति की अव्यक्त कार्यक्षमता को वे फौरन पहचान लेते और उसे साहस देकर उसकी कार्यक्षमता विकसित करने मे पूरा योगदान देते थे। आज उनके उद्योग मे जितने भी जवाबदार आफिसर है उन्हे आगे लाने और उनमे कार्य-कुशलता की वृद्धि कर ऊपर उठाने का श्रेय श्री गजेन्द्रसिंहजी को ही है। कार्य के बारे मे वे कठोर नियोक्ता थे। उन्हें प्रत्येक कार्य के व्यवस्थित रूप से जल्दी से जल्दी सम्पन्न होने की अपेक्षा रहती थी, कार्य मे त्रुटियाँ और विलम्ब उन्हें बिल्कुल सहन नही होता था, उनकी इस प्रवृत्ति को मैंने 'जल्दबाजी' की सज्ञा दे रक्खी थी। मेरे मन मे यह धारणा बन गई थी कि जैसी साधारणतया सब उद्योगपतियो मे इस अनुभव की कमी रहती है कि किस कार्य के करने मे कितना समय लगता है, इनमे भी वह कमी है।

एक वार उनके औद्योगिक प्रतिष्ठान के सम्वन्ध मे एक स्टेटमेण्ट शीघ्र ही वनाना था। स्टेटमेण्ट वहुत वडा और साथ ही क्लिष्ट भी था। उन्होंने मुझे वह स्टेटमेण्ट वनाने का आदेश दिया, मैंने उनके सामने वैठकर ही वह कार्य शुरु किया। आवश्यक कार्यवश मुझे आफिस जल्दी छोडना था, मैंने वह स्टेटमेण्ट दूसरे दिन दोपहर तक वनाकर देने का वादा किया और आफिस से घर चला आया, दूसरे दिन सुवह आफिस जाने पर देखता हूँ कि वह स्टेटमेण्ट पूरा स्वय उनके हाथ से वना हुआ मेरी टेवल पर मेरे द्वारा जांच किये जाने के लिये रक्खा हुआ था। स्टेटमेण्ट वडे सुन्दर ढग से वना हुआ और त्रुटि रहित था। फिर तो मन का सव भ्रम दूर हो गया। जो व्यक्ति स्वय कोई भी कार्य इतनी अच्छी तरह से कर सकता है उसका दूसरो से भी ऐसी अपेक्षा रखना स्वाभाविक ही है।

अपने कर्मचारियो के प्रति आत्मीयता की भावना भी उनमे वडी प्रवल थी, उनके परिवार मे कोई भी आयोजन होता तो उसमे कर्मचारियो को अवश्य निमन्त्रित किया जाता और वे उस आयोजन मे सम्मिलित प्रत्येक कर्मचारी का ध्यान स्वय रखते। एक वार उनके पिताजी श्रीमान सेठ सुगनमलजी भण्डारी ने एक प्रतिष्ठान के टैक्स सम्वन्वित कार्य को देखने का आदेश दिया। श्री गजेन्द्रसिहजी साहव उन दिनो अस्वस्थ थे। उन्होंने दो दिन वाद ही टेलीफोन पर वात की और मुझसे कहा कि तुम कार्य के लिये कोई योग्य वकील ढूंढकर नियुक्त करवा दो। तुम्हारी अनुपस्थिति मुझसे सहन नही होगी।

श्री गजेन्द्रसिहजी साहव वड़े उत्साही, कर्मठ, सहृदय एव उदार व्यक्ति थे, जो कोई भी उनके सम्पर्क मे आता वह उनके भव्य व्यक्तित्व से प्रभावित हुए विना नही रह सकता था।

ऐसे श्री गजेन्द्रसिह जी साहव को कैसे भुलाया जा सकता है—

कहते हैं फानी जिन्हे हम,
वे फना होते नही।
मरने वाले असल मे,
हमसे जुदा होते नही॥

☆

एक अधूरी याद ...

☐ मन्मय पाटनी, इन्दौर

तुम्हे कहता है मुर्दा कौन, तुम जिदो के जिंदा हो।
तुम्हारी नेकियां वाकी, तुम्हारी खूबियां वाकी ॥

मेरा श्रीमान् गजेन्द्रसिंह जी भण्डारी साहव से परिचय सन् १९७० मे हुआ, जव मैंने इन्दौर की एक ब्रेड एव विस्कुट फैक्टरी मे प्रोडक्शन मैनेजर की हैसियत से कार्य प्रारम्भ किया। उस समय ब्रेड की क्वालिटी अच्छी नही आ रही थी। सवसे पहले मैंने मैदे की क्वालिटी देखी। मैदे की क्वालिटी खराव थी और इसी कारण ब्रेड खराव आ रही थी। मैंने मैदा मिल मे फोन किया। श्रीमान् भडारी साहव उस समय वही थे। उन्होने फोन पर सव वातें वडी धीरजता से सुनी और मैदे की क्वालिटी सुधारने का आश्वासन दिलाया।

मुझे आश्चर्य उस समय हुआ जवकि श्रीमान् भडारी साहव उसी दिन दोपहर को, उस समय के हैड मिलर श्री पोल साहव के साथ उस छोटी-सी वेकरी मे स्वय होकर आये। उन्होंने जो मैदा वहाँ थी और उससे जो ब्रेड वनी थी, उसे श्रीपोल साहव को वताया और उन्होंने विश्वास दिलाया कि अव आपको किसी प्रकार की शिकायत नही रहेगी और क्वालिटी अच्छी प्राप्त होगी। वेकरी मे वे करीव एक घटा रुके और मैदे की क्वालिटी के वारे मे मुझसे वात करते रहे।

इस छोटी-सी मुलाकात से मैं वहुत ज्यादा प्रभावित हुआ और मैंने अनुभव किया कि इतने वड़े आदमी होने के वावजूद वे किस प्रकार छोटी-छोटी वातो का ख्याल रखते थे।

मैंने उनके साथ हुई इस छोटी-सी मुलाकात से इतना अपनापन महसूस किया कि मैं उन्हे ब्रेड से सम्वन्धित कई छोटी-छोटी वातो के लिए उन्हे कष्ट देने लगा। परन्तु उन्होंने कभी किसी वात को टाला नही और उन्होंने मुझे सभी प्रकार का हर सम्भव सहयोग दिया।

दिनाक २४ सितम्वर, १९७१ को सुवह दस वजे मैंने उनसे मिलने के लिए अपाइन्टमेन्ट लिया था। मैं उनके ऑफिस मे जाने ही वाला था कि उस हृदय-विदारक दु खद घटना का समाचार मिला—और वह महापुरुष कई व्यथित हृदयो को विलखता हुआ दिव्यज्योति मे लीन हो गया।

आज मैं, उनके लगाये हुए पौधे फ्लोअर एण्ड फूड फैक्टरी, जो कि आज वट-वृक्ष की भांति वढ रहा है, उसी मे कार्य कर रहा हूँ। फैक्टरी मे लगी उनकी तस्वीर जव भी मैं देखता हूँ, उनसे हुई पहली मुलाकात का दृश्य मेरी आंखो के सामने से गुजर जाता है और सोचता हूं, काश ! मैं उनका सान्निध्य एव मार्ग-दर्शन का लाभ अधिक समय ले पाता !

वस, तस्वीर आपकी नजर आती है···

☐ एम० एस० सुराना
कैशियर फ्लोअर एण्ड फूड लि०

जव याद
आपकी आती है
वरवस आसू
टपक जाते है
चारो ओर,
नजर फेंकता हूं
वस तस्वीर
आपकी नजर आती है।

पूज्य श्रीमान् गजेन्द्रसिह जी भैया साहव (सुपुत्र जैनरत्न श्रीमान् सुगनमल जी भण्डारी साहव) से मेरा सम्पर्क अगस्त सन् १९६९ से हुआ, जव मेरी नियुक्ति फ्लोअर एण्ड फूड लि० मे हुई। मुझे उन्होंने कैशियर के पद पर चुना था, जव से आज तक मैं उसी पद पर हूँ।

भैया साहव विद्वान् होने के साथ-साथ कुशल उद्योगपति थे। आपका व्यक्तित्व वडा प्रभावशाली था, आँखो मे स्नेह की झलक थी जो वरवस आँखो को अपनी ओर आकर्पित कर लेती थी। स्पष्टवादिता, नम्रता, समय-तत्परता, आत्म-सम्मान आदि आपके चरित्र के विशेष गुण थे।

उन्हें ईमानदारी, कार्य-कुशलता व मेहनत से वडा लगाव था। वे स्वय वहुत मेहनत करते थे। प्रत्येक कर्मचारी पर उनका स्नेह था, चाहे वो आफिसर हो, क्लर्क हो या मजदूर हो, वे प्रत्येक के साथ एकसा व्यवहार रखते थे। अच्छा कार्य करने पर वहुत खुश होते थे, इतना ही नही वे कार्य करने का तरीका भी समझाते थे, वे प्रत्येक कर्मचारी को कुछ वनाना चाहते थे।

चूंकि भैया साहब ने मुझे कैश का काम दे रखा था, फिर भी वे मुझसे सेल्स, परचेज, गेहूँ डिसपेच, ओल्ड बारदाना सेल्स आदि कार्य करवाते थे। समय-समय पर मुझे कहते थे मि० सुराना मैं चाहता हूँ कि आप सब कार्य सीखें। मैं जब भी आपको किसी कार्य को करने को दूं तो आप उसे कुशलता से कर सकें। यह विचार उनके मेरे प्रति ही नही अपितु हर कर्मचारी के प्रति थे। वे चाहते थे, मेरा कर्मचारी इतना कुशल हो कि वह किसी भी कार्य को करने मे अपने आपको अक्षम न समझे।

भैया साहब मे व्यापारिक सूझ-बूझ इतनी थी कि कोई भी व्यापारी उनके पास जाता था तो वह इतना प्रभावित हो जाता कि बिना सौदा नोट कराए वापस नही जाता था।

भैया साहब इस कम्पनी (फ्लोअर एण्ड फूड लि०) को इतना रोशन करना चाहते थे कि इसका नाम मध्यप्रदेश मे ही नही अपितु पूरे भारत मे हो। उनके इस सपने को हमारे मैनेजिंग डायरेक्टर (स्व० श्री गजेन्द्रसिंह जी साहब के सुपुत्र) श्रीमान् जसवीरसिंह जी साहब साकार करने मे जुटे हुए हैं।

आदरणीय भैया साहब के दुखद एव असामयिक निधन पर हम गहन शोक मे समा गए।

उनकी स्वर्गीय आत्मा को परम शान्ती प्राप्त हो व हमारी श्रद्धाजलि अर्पित हो।

एक अधूरी इच्छा

□ श्रीमती पदमा कालानी
कालानी हाउस
इन्दौर—४५२००१

कार्यमित्येव यत्कर्म नियत क्रियतेऽर्जुन ।
संगं त्यक्त्वा फल चैव स त्यागः सात्विकोमत· ।

आज वर्तमान की न जाने कौन-सी अज्ञात प्रेरणा अतीत की किसी कथा को सम्पूर्ण मार्मिकता के साथ दोहराने को आकुल है। आज जब कलम हाथ मे लेकर लिखने बैठी हूँ तो मेरे सामने १७ वर्ष पूर्व के वे दिन याद आते हैं जब आदरणीय भाई साहब,भाभी साहिबा इलाहाबाद मे हमारे घर पर आए थे, न वो हमारे परिवार से परिचित थे, न हम लोग, सिर्फ मेरे पिताजी एव भाई साहब को वो अपने व्यवसाय के माध्यम से जानते थे। लेकिन पता नही भाई साहब और भाभी जी की बातो मे इतना अपनापन हम सभी परिवारीजनो को महसूस होने लगा कि व्यापार व्यवसाय की बाते तो एक तरफ रह गई और शादी व्याह की चर्चाएँ चलने लगी और इसी प्रसंग मे मेरे पिताश्री ने मेरे लिए कोई उपयुक्त लडका अगर भाई साहब के ध्यान मे हो तो पूछ लिया। भाई साहब ने तत्काल कालानी परिवार मे लडका है, सुझाया— यह भी कुछ सयोग ही समझिये कि उन्होंने तो सहज रूप से बात कही थी और भविष्य मे वह सम्बन्ध पक्का हो गया और मैं उस घर की बहू बन कर इस शहर मे आ गई। नये शहर और नये लोगो के बीच भाई साहब एव भाभी जी का स्नेहपूर्ण बर्ताव इतना आत्मीय लगा कि शब्दो से व्यक्त करना सम्भव प्रतीत नहीं होता है। मैंने इस घर को अपने बडे भाई का घर ही समझा और अब भी वही रिश्ता है, कहते हैं कि—

Friendship is the most precious of flowers that grows in the garden of life

मेरे जीवन की बगिया मे भाई स्वरूप मे एक ऐसा अनोखा पुष्प खिला था जिसकी प्रशसा मे वर्णन करना अत्यधिक कठिन है। आज मेरी स्मृति अतीत के उस गाढे होते हुए धुंधलेपन मे अनेक रेखाएँ खींच रही हैं। उन रेखाओ का उजलापन आज एक व्यथा से गीला-सा हो रहा है। कितने ही ऐसे प्रसग मेरे हृदय के स्मृति-पटल पर समुद्र की लहर के समान लहरा रहे हैं। मुझे याद आ रहा है, वह दिन जब मिलन क्लब की ओर से एक द्वि-दिवसीय मेला लगाया गया था। जिस लेडीज क्लब का मैं उल्लेख करने जा रही हूँ वह भी उनकी हार्दिक प्रेरणा से ही भाभीसाहब व

हम आठ-दस महिलाओ ने मिलकर वनाया था । नारी शक्ति पर उनकी वहुत श्रद्धा थी । सदैव ही उन्होंने नारी को वडी ही सम्मानीय दृष्टि से देखा व परखा था । मेले मे पहले दिन कुछ कम लोग आये । उस रात मेरा मन वहुत ही उद्विग्न था । अगले दिन सुवह जव मैं मेला मैदान मे कुछ वस्तुएँ ठीक करवा रही थी तभी भाईसाहव एव भाभी जी वहाँ आये । रात की मेरी उदासीन मनोदशा उन्होने भाँप ली थी । वातो ही वातो मे उन्होंने कुछ ऐसी वातें कही, जो भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के १८वे अध्याय के ११वे श्लोक मे अर्जुन को सम्वोधित करते हुए कहा था कि "कर्म ही कर्त्तव्य है, यही सोचकर कर्म करो फल की आशा मत रखो !" उनके इस उद्वोधन के पश्चात् हम लोग मेले की सजावट मे लग गये, लेकिन हमारे आश्चर्य का पारावार नही रहा, जव मेले मे अपार जनमेदनी आई और हमे प्रवेश टिकिट वन्द कर देने पडे । इस प्रकार से उस दिन हमारे उस मेले ने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की । जो उत्साह उस समय भाई साहव ने वढाया उससे उनके प्रति मेरे मन मे एक अगाध स्नेह जागृत हुआ और मैंने अपने मन-मस्तिष्क मे ये विचार वना लिए कि आने वाले रक्षावन्धन के महापर्व पर भाई साहव को रक्षावन्धन के कच्चे धागो से भाई के रूप मे वाँध लूंगी, किन्तु विधि के क्रूर चक्र के आगे जव वह समय आया तो मेरी इच्छा अधूरी रह गई और जव कभी भी भौतिक रूप से पूर्ण न हो सकेगी किन्तु आत्मा के आलोक से भाई साहव सदैव हमारे से वँधे हुए हैं । वह रिश्ता तो शायद ईश्वर भी तोडने मे समर्थ नही हो सकेगा, हमारा पथ सदैव अपनी आत्मा के उस ज्वाज्वल्यमान प्रकाश से एव सद्गत दिव्यानुभूति से निरन्तर प्रेरणा के माध्यम से देदीप्यमान करते रहेगे जिससे हम भी समन्वय के पथ पर वढकर उनकी आत्मा को शान्ति पहुँचा सकें और उनके मूक आदेशो का परिपालन अन्तरमन से कर सकें—

कि जिन्दगी की राह मे फूल भी हैं और काटे भी
फूलो को चुगते चलो और काटो को छोडते चलो
विष यदि अपना है तो भी मारक है
अमृत यदि पराया है तो भी तारक है ॥

इस प्रकार की न जाने कितनी ही वातें उनके सामीप्य मे रोज होती रहती थीं, जो वे विना वोले ही कार्यरूप मे परिणित कर सदैव कर्म करने की प्रेरणा देते रहते थे ।

वस, लगता है कि भगवान को भी उनके ये मूक सन्देश इतने मन भा गये कि उन्हे इतनी जल्दी हमारे वीच से अपने पास वुला लिया । हमारी तो प्रभु से यह वहुत वडी शिकायत है कि ससार रूपी रगमच पर उनको इतना छोटा-सा पार्ट अदा करने

को क्यो भेजा ! इतनी अल्पायु मे भाई साहब जितने भी लोगो के सम्पर्क मे आए उनके हृदय पर अमिट छाप छोड गये ।

लौ की कोमल दीप उन्ही से
तम की एक अरूप शिला पर
तूने दिन के रूप गढे शत
ज्वाला की रेखा अकित कर

अपने सद्कार्यो से आदरणीय भाई साहब अमर हो गये और अपनी अमिट स्मृतियाँ हमारे हृदय-पटल पर छोड गये । उन्हे मेरी सादर श्रद्धाजली । अन्तत सर्वज्ञ ज्योतिर्मय प्रभुश्री से मेरी हृदय की यही प्रार्थना है—

"When life's journey here is ended
And life pathway you have trod
May your name be written in the
autograph of God"

☆

स्व० भैया साहब का उद्घोष

खुदी को कर बुलन्द इतना
कि हर तकदीर से पहले ।
खुदा बन्दे से खुद पूछे
बता तेरी रजा क्या है ?

—इकबाल

अद्भुत व्यक्तित्व

☐ **डा० नेमीचन्दजी जैन**
सम्पादक, तीर्थंकर, इन्दौर

दिवगत श्री गजेन्द्रसिह जी भण्डारी से तो मेरे सम्पर्क वहुत कम रहे, किन्तु जव भी उनसे सक्षिप्त भेंट हुई मन पर एक अमिट प्रभाव काफी समय तक वना रहा। मैंने उन्हे एक मृदुभाषी, प्रवन्धपटु, व्यवहारनिष्ठ और सुदूरदृष्टि व्यक्ति के रूप मे देखा है। उत्तराधिकार मे उनको जो व्यक्तित्व मिला वह अप्रतिम था और किसी भी अपरिचित पर पहली ही भेट में चुम्वक जैसा प्रभाव डालने वाला था।

वैसे तो सम्पूर्ण भण्डारी परिवार उदार, सूझवूझ सम्पन्न और जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे अपनी गहरी पेठ रखने वाला है किन्तु इन सव गुणो के प्रतिनिधि के रूप मे गजेन्द्रसिह जी को सहज ही देखा जा सकता है। उनका हृदय इतना विशाल था कि वे न केवल उन लोगो के प्रति जो उनसे छोटे थे अथवा उनके अधिन कार्यरत थे, स्नेह, सम्मान और वात्सल्य की कृपा दृष्टि रखते थे। मुझे विश्वास है, उनका व्यक्तित्व जिस स्नेह तेज और प्रतिभा की धातुओ से वना था उनके कुटुम्वीजन अपने चरित्र मे उन्हे अक्षुण्ण वनाये रखेगे।

इस अवसर पर जवकि उनका एक स्मृतिग्रन्थ मुनिश्री महेन्द्र मुनिजी 'कमल' के प्रवचनो के साथ प्रकाशित किया जा रहा है, मैं उनके प्रति एक गहरा सद्भाव व्यक्त करता हूँ उनकी स्मृतियो की यह मजूषा उनसे सम्वन्धित स्नेह सम्पर्को को उत्तरोत्तर प्रगाढ वनायेगी यह आशा सहज ही की जा सकती है।
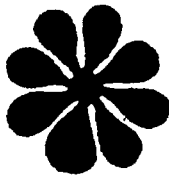
एक जिन्दादिल....

☐ डाक्टर मिसेस पी० नागरथ
मैनेजिंग ट्रस्टी, नागरथ चेरीटेबल ट्रस्ट
डायरेक्टर, पुष्पकुंज हास्पिटल, इन्दौर

गजेन्द्र भैया से मेरी प्रथम मुलाकात जनवरी १९६९ मे हुई थी। लन्दन से सिडनी कार रेस का दिन था। मैंने भी अपनी कार अन्य कारो की तरह बच्चो को रेस दिखाने के लिये सडक के किनारे खडी की थी। किसी ने कहा, 'गजेन्द्र भैया व भुवनजी के घर की छत से रेस का जैसा स्पष्ट दृश्य दूर तक दिखेगा वैसा दूसरा कही से नही।' बस मिनटो मे सब मित्रो की टोली गजेन्द्र भैया के घर जाने को तैयार हो गई। मैंने कहा—मैं तो उन लोगो को नहीं जानती। तो वे लोग बोले—इससे क्या होता है, वे बहुत अच्छे लोग है।

वैसे इन्दौर जैसे छोटे से शहर मे सभी एक-दूसरे को जानते है—न जानने का कोई विशेष सवाल न था। सवाल था केवल निकट सम्पर्क का। उस समय मुझे मालूम नही था कि मामूली-सी पहचान को निकटतम सम्पर्क मे बदलने के फन मे यह दम्पत्ति कितने माहिर थे।

खैर, हम रेस देखने उनकी छत पर पहुंचे। बहरहाल शायद गजेन्द्र भैया को लगा कि मैं उनके इष्ट मित्रो मे अपने आप को एक अजनवी महसूस कर रही हूँ—शायद दूसरो की दिलचस्पी मे खुद दिलचस्पी लेना उनका स्वभाव ही था—गजेन्द्र भैया ने धीरे से हमारे काम के बारे मे बात शुरू करदी।

मैं अजनवी लोगो को सहसा अपनी रामकहानी बताने की आदी नही हूँ। बल्कि एक डाक्टर होने के नाते खामोशी से दूसरो के दु:ख-सुख सुनना व नपी-तुली राय देना ही मेरा काम रहा है। किन्तु गजेन्द्र भैया मे ऐसा कुछ जादू था कि न जाने कैसे उन्होंने मुझसे बहुत कुछ कहलवा लिया, किस तरह मैंने खुद सरकारी नौकरी, बच्चे पालने के लिये छोडी। किस तरह भाई भतीजावाद के कारण अन्याय के साथ डा० चमनलाल को सेवा निवृत्त कर दिया गया और अब किस तरह जिन्दगी मे एक बड़ी भारी कसक रह गई है। मैंने अपने आप को सब कुछ कहते पाया मैंने उन्हें बताया कि हमारे पास काम भी आता है, पैसा भी आता है, निमन्त्रण भी आते हैं—जिन्दगी हँसते-खेलते गुजर जाती है किन्तु ऐसा लगता है कि हम अमीरो के डाक्टर बनकर रह गये हैं। हम सर्जन हैं—शल्य चिकित्सा हमारा काम है और यह काम अस्पताल मे ही

सफल हो सकता है। इन्दौर मे गैर-सरकारी अस्पतालो की कमी नही। नर्सिंगहोम वहुत हैं किन्तु प्राइवेट नर्सिंगहोम मे तो वही जा सकता है जिसके पास पैसा हो हमारे पुराने गरीव मरीज जो हमे ढूंढते हुए पहुँच जाते थे, उन्हे कई वार निराश होना पडता था दूसरी वात जो हमे हमेशा खटकती थी, वह थी विशेप प्रकार की शल्य चिकित्सा की। विशेपज्ञ होने के नाते हमे यह अखरता था कि हमारे पूरे प्रान्त मे हृदय रोग, फेफडे, दिमाग व प्लास्टिक सर्जरी के आपरेशन नही होते हैं। जो होते भी थे वन्द हो चुके हैं। जो आपरेशन हमे करने आते है वो भी सुविधाओ के अभाव से हम कर नही पाते प्राइवेट नर्सिंग होम्स मे तो वडी मामूली सुविधाये हैं और उसमे वहुत ही मामूली किस्म के आपरेशन हो पाते हैं। गजेन्द्रजी ने कुछ ही मिनिटो मे यह मुझसे कहलवा लिया—"इस सवका आपने सौल्युशन क्या सोचा है ?" उन्होंने पूछा।

मैंने वताया कि हमने एक Charitable trust वनाया है जिसमे चन्दा जमा करके हम एक ऐसी सस्था वनाना चाहते हैं जिसमे यह सव काम हो सके। गरीवो का निशुल्क आपरेशन भी हो सके व Specialization भी पनप सके।

उनकी तीव्र वुद्धि ने इन्दौर की इस वहुत वडी खामी को समझा और इस नये सुझाव को एकदम झेला। भुवनजी को उन्होंने आवाज लगाई—"भुवन, सुनो डाक्टर क्या कह रही है। तुम अपने लेडीज क्लव की तरफ से कुछ करो।"

भुवन ने उसी समय अपनी Ladies Club की अध्यक्षा से वात करी और पुष्पकुंज अस्पताल आने का प्रोग्राम वनाया। जव वह महिलाए आई तो उनके साथ गजेन्द्र भैया भी आये। उन्होने कुछ देखा, कुछ समझा, डा० चमनलाल से मिले व कुछ ठोस सुझाव दिये।

उनकी समझ-वूझ देखकर हमने उन्हे अपनी Trust मे एक Trustee वनाना चाहा किन्तु उन्होंने वावूजी (श्री सुगनमलजी) को ही Trustee वनाने का सुझाव दिया व वावूजी को Trustee वनने पर मजवूर भी किया। कहते थे मैं तो यूँ भी आपके साथ हूँ। Trustee वनने से ही कुछ ज्यादा निकट नही आ जाऊँगा और सचमुच हर तरह से सदैव मदद करते रहे।

आज पुष्पकुंज अस्पताल का नाम गजेन्द्र, वावूजी, डा० मुकर्जी, श्री चितले, सिस्टर वैपटिस्टा, मिसेस शिन्दे आदि के अथक प्रयत्न, सहयोग व आशीर्वाद से ग्रामीण वातावरण मे होते हुए भी शहर के वडे से वडे अस्पतालो के साथ लिया जाता है। यहाँ हृदय व फेफडे के आपरेशन के अलावा वाकी सव आम आपरेशन भी होते है।

हर शुक्रवार को डा० एम० के० मुकर्जी गरीब-अमीर सभी Medical Cases की जाँच व उपचार करते हैं और दो R.S.O ड्यूटी करते हैं। यहाँ भी Rural health team आसपास के ग्रामवासियो का Pracative inaculation, digno-sis, treatment व Health education का कार्य करती है।

पालदा मे एक Group of Villages को adopt करके उनके स्वास्थ्य, साफ सफाई व Pracative inaculation बालवाडी, बच्चो को दूध वितरण, बालाहार इत्यादि के लिये भी हमारी Team कार्य करती है। हमारे डाक्टर उनका नि:शुल्क इलाज करते हैं।

खैर, बात गजेन्द्रजी की हो रही थी और कहने का तात्पर्य यह है कि वह उन लोगो से से थे जो अपने को आगे न लाकर गुप्त रूप से मदद करना ज्यादा पसन्द करते थे। ऐसे मित्र विरले ही मिलते हैं।

गजेन्द्रजी मे कुछ ऐसा जादू था कि शीघ्र ही वह हमारे निकटतम मित्रो मे हो गये। उनके बिना हमारा कोई भी Function कोई भी पार्टी पूर्ण नही मानी जाती थी।

विचारात्मक तत्त्वो मे विचारात्मक, प्रीति-भोज मे हसमुख व बच्चो मे बच्चा बनके रहना उनके स्वभाव का एक अंग था।

जिस दिन हमे उनके स्वर्गवास की बुरी खबर मिली, एकाएक विश्वास नही हुआ। ऐसा लगा यह सब झूठ होना चाहिये। भगवान इतना अन्यायी नही हो सकता।

छ महीने बाद बगलौर मे एक Conference के लिए जाना पडा, वहाँ ब्रिगेडियर तलवार मिले। हम सब कार मे कही जा रहे थे कि उन्होने कहा गजेन्द्र मेरी चिट्ठी का जवाब क्यो नही देता ? और फिर जब हमने कारण बताया तो कार दुर्घटना (accident) होते-होते बची। ब्रिगेडियर तलवार के कार चलाने वाले हाथ काप गये। 'उन जैसा हर क्षण जीवित व जिन्दादिल इनसान मृत कैसे हो सकता है— इसका क्या जवाब है। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकती हूँ कि मित्रो के हृदय मे व मित्रो की याद मे वह हमेशा जीवित रहेगे।

यद्यपि वे पुष्पकुंज अस्पताल के ट्रस्टी नही थे किन्तु उसकी प्रगति के लिए सदैव सक्रिय रहते थे। अचानक उनके चले जाने से मानो ये अस्पताल जैसे लावारिस हो गया हो।

☆

कुछ यादें....

□ **हरिकिशन मुछाल**

प्रसिद्ध वस्त्र व्यवसायी

एम० टी० क्लाथ मार्केट, इन्दौर

श्रद्धेय गजेन्द्रसिंह जी भैया साहब के जीवन के सम्बन्ध मे मेरे कुछ संस्मरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ—

भण्डारी परिवार से हमारे परिवार के सम्बन्ध काफी वर्षो से घर-जैसे रहे हैं। वस्त्र व्यवसाय मे सलग्न होने की वजह से दिन-प्रतिदिन यह सम्बन्ध और निकटतम होते चले गये।

भण्डारी मील के सेल्स का समस्त कार्य आदरणीय श्रीमान् सुगनमल जी भैयासाहब स्वय देखते थे, अत उनका हमारे प्रतिष्ठानो के प्रति विशेष स्नेह रहा। यही कारण था कि हमारे समस्त प्रतिष्ठानो का व्यवसाय विशेषरूप से भण्डारी मील के साथ होना स्वाभाविक था। इसी तारतम्य मे मैं आदरणीय सुगनमल जी भैया साहब के ज्येष्ठ पुत्र श्रद्धेय गजेन्द्रसिंह जी के निकट सम्पर्क मे आया। वे भण्डारी परिवार के अत्यन्त उत्साही एव होनहार सदस्य थे। उद्योगो को बढाने मे उनकी एक विशिष्ट शैली थी और वे स्वय उसमे रुचि लेकर उनके विकास के लिए प्रयत्नशील रहते थे। मुझे भी अपने स्वय के उद्योग मे काफी अभिरुचि थी और जब कभी भी हम एक-दूसरे से मिलते थे स्वय चलकर मुझ से मेरे उद्योगो एव व्यवसाय के बारे मे पूछते रहते। उनके ये शब्द, 'क्या नया जूना चल रहा है' मैं कितनी आत्मीयता थी। जब कभी भी उनके इन शब्दो की स्मृति मुझे आ जाती है तो बरबस ही उनकी छवी मेरे सामने आ जाती है। वे सदैव कुछ न कुछ नई बात उद्योगो के सम्बन्ध मे बताते रहते थे, साथ ही तत्पर होकर अपनी राय भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करते। मुझे यह कहते हुए गर्व है कि आज भण्डारी परिवार के पास जो भी उद्योग हैं वे श्रद्धेय गजेन्द्रसिंहजी की अनूठी सूझबूझ से ही स्थापित हो पाये हैं। उनकी सूझबूझ से ही देवास मे प्रदेश का सर्वप्रथम साल्वेंट एक्सट्रैक्शन प्लाण्ट डाला गया और भण्डारी क्रासफिल्ड्स तथा फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड जैसे आधुनिक उद्योग स्थापित हो सके, जो आज भी सफलतापूर्वक चल रहे हैं।

श्रद्धेय गजेन्द्रसिंहजी किसी भी मुश्किल से घबराते नही थे। उनकी यह खास विशेषता थी कि वे अपने स्नेहीजनो से कोई भी बात छुपाते नही थे। ऐसे उत्साही व्यक्ति का हमारे बीच से चले जाना जहाँ भण्डारी परिवार के लिए महान् क्षति है वही उद्योगो के विकास एव उनके स्नेहीजन जिन्हे वे निस्वार्थ सहयोग

एव मार्गदर्शन देते थे उनके लिए भी श्रद्धेय गजेन्द्रसिंह जी के न रहने से एक ऐसी क्षति है जो आने वाले इन वर्षो मे पूरी होती दिखाई नही देती।

वे न सिर्फ उद्योग एव व्यवसाय को ही उन्नत करने मे लगे रहे लेकिन साथ ही साथ सामाजिक कार्यो मे भी काफी रुचि लेते रहे तथा उन्हे सक्रिय योगदान भी दिया। उनका न होना सभी सस्थानो के लिए भारी क्षति है। मेरी तो ऐसी मान्यता है कि श्रद्धेय गजेन्द्रसिंह जी का न होना ही भण्डारी मील का जाना है।

☐ श्री भवरलाल धाकड़, इन्दोर

जन्म और मृत्यु, यह एक विधाता का अटल नियम है—किन्तु बहुत कम व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो जीवन को सार्थक कर जीने योग्य बनाते हैं।

श्री गजेन्द्रसिंह भैया ने अल्पायु मे ही हम सब स्नेहीजनो से विदा लेली। वे मेरे सामने ही बडे हुए, देश व विदेश मे उच्च शिक्षा प्राप्त की और अपना कार्य अत्यन्त ही योग्यतापूर्वक सम्हाला। वे हमेशा मुझसे बडी ही आत्मीयता एव श्रद्धा के साथ मिलते थे।

हर समय उन्हे मैंने मुस्कराते देखा। उनका स्वभाव बडा सरल, सौम्य और उदार था। कार्य करने को उनमे अदम्य उत्साह था और साथ ही हर कार्य मे दृढ निश्चय एवं आत्म-विश्वास की एक झलक भी।

उनकी मधुरवाणी, मिलनसारिता और हर एक के प्रति सहानुभूति हम सब के लिये एक उदाहरण है। उनके गुणो को याद करना ही आज उनकी सच्ची स्मृति है।

उनकी याद मे जो स्मारिका बन रही है, उसके लिये मेरी हार्दिक शुभकामनाए हैं। मुझे बडी ही प्रसन्नता हुई है कि यह शुभ कार्य हाथ मे लिया गया है।

☐ एम० टी० तातेड

फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड
२७ महात्मागाधी रोड, इन्दौर

सन् १९४४ मे प्रथमवार मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध उद्योगपति श्रीमान जैनरत्न सुगनमलजी साहव भण्डारी से नौकरी के सम्बन्ध मे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्होंने मुझे भण्डारी मिल्स स्टोर्स मे नियुक्त कर अनुग्रहीत किया। सन् १९५० मे मुझे इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स मे डेप्यूटेशन पर भेजा गया और वही मैं स्वर्गीय श्रीमान गजेन्द्रसिहजी भण्डारी के निकट सानिध्य मे आया और तव से लेकर आज तक उन्ही की विभिन्न कम्पनियो मे सेवा करते आ रहा हूँ। इस समय मे फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड मे सैक्रेटरी के पद पर कार्य कर रहा हूँ। स्वर्गीय गजेन्द्रसिहजी भैया साहव के सम्बन्ध मे, मैं अपने कुछ संस्मरण यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स की भोपाल शाखा से जव मेरा स्थानान्तर इन्दौर किया था तो श्रीमान भैया साहव ने मुझसे कहा, मि० तातेड, जितना कमीशन आप भोपाल मे प्राप्त कर रहे थे, उतनी रकम की वृद्धि फिलहाल आपके वेतन मे नही की जा सकती। अत आपको कुछ समय के लिए क्षति उठानी पडेगी परन्तु नया उद्योग प्रारम्भ होने पर मैं आपकी इस क्षति की पूर्ति कर दूँगा। उन्होने वडी ही आत्मीयता से मुझे समझाया कि, "वर्तमान की क्षति भविष्य की उन्नति के लिए आवश्यक हो तो उसे उठानी पडती है। उद्योग के सभी कर्मचारी सयुक्त परिवार के सदस्य होते है, अत. परिवार की आय कम होने पर सवको ही उसका समायोजन करना चाहिये।" श्रीमान भैया साहव के स्नेह व आत्मीयता को देखकर मैंने विना किसी हिचकिचाहट के उनके आदेश का पालन किया। समय आने पर श्रीमान भैया साहव ने जैसे मुझे कहा था उसके अनुरूप करके मुझे अनुगृहीत किया।

स्वर्गीय श्रीमान गजेन्द्रसिहजी भैया साहव के प्रतिष्ठानो मे काउ एण्ड गेट इण्डिया लिमिटेड भी एक सस्था थी। इसकी स्थापना उन्होंने उज्जैन जिले के मक्सी नामक स्थान पर की थी। इस सस्था मे भी मैंने अपनी सेवाएँ दी थी।

एक वार जीप द्वारा पाट डाक वगले से दूध के लिये दूध उत्पादको से मिलते हुए जव घोसला के निकट आये तो ड्राइवर का सन्तुलन विगड जाने से हमारी जीप रेल्वे पटरी को पार करती हुई गढ्डे मे जा गिरी। ड्राइवर को तो वही लकवा हो गया और मुझे काफी चोटें भी आई। जीप को गाँव वालो के सुपुर्द कर हम उज्जैन अस्पताल लाये गये। वहाँ हमारी जाँच और एक्सरे किये गये। मैं तो रात मे ही इन्दौर आ गया। दूसरे दिन सुवह श्रीमान भैयासाहव को जव इसकी सूचना मिली तो वे स्वय उसी वक्त मुझे देखने पधारे तथा ड्राइवर को भी जिसकी कि हालत अत्यधिक नाजुक थी, देवास देखने भी गये। ड्राइवर को उन्होंने तसल्ली दी तथा उसके इलाज का सम्पूर्ण खर्च वहन किया और माकूल आर्थिक सहायता भी दी।

भैया साहव के इस नैतिक एव सहानुभूति पूर्ण व्यवहार से कर्मचारी एवं दुर्घटनाग्रस्त परिवार काफी प्रभावित हुए।

कार्यालयीन कार्य के सम्बन्ध मे श्रीमान भैया साहव पूरी जानकारी रखते थे। उनमे कुशल प्रशासक के समस्त गुण विद्यमान थे। एक वार सभी कर्मचारियो की टेवल तथा दराज का अवलोवन किया। कुछ ऐसे पत्र मिले जिनका प्रत्युत्तर नहीं दिया गया था। उन्होंने मुझे केविन मे बुलाकर कहा, जो भी पत्र कार्यालय मे प्राप्त हो, वे चाहें आवश्यक हो या अनावश्यक किन्तु उनके प्रत्युत्तर कार्यालय से दिया ही जाना चाहिये। श्रेष्ठ प्रशासक की यह पहली आवश्यकता है। उस दिन से मैं प्रत्येक पत्र का प्रत्युत्तर कार्यालय मे ही नही वल्कि अपने व्यक्तिगत जीवन मे भी देता हूँ। यह उनकी ही प्रेरणा का प्रतिफल है।

आज श्रीमान भैया साहव हमारे वीच नहीं रहे किन्तु उनकी अनगिनित स्मृतियाँ आज भी हमे अपने कर्तव्य से विमुख नही होने देती और हम उनके मार्ग-दर्शन से निरन्तर प्रगति के पथ पर वढते चले जा रहे हैं।

☆

☐ श्री आर० एम० वंसल
रवीन्द्रनाथ टैगौर मार्ग, इन्दौर

यो तो क्षितिज पर कई तारो का उदय होता है इनमे से कई लुप्त हो जाते है, कई काल के अनत गर्भ मे समा जाते हैं परन्तु इनमे से कुछ ही ऐसे होते हैं जिनका कि प्रकाश अद्यावधि तक दूसरो को मार्ग प्रशस्त करता रहता है। ऐसे ही महान पुरुष स्वर्गीय श्रीमान गजेन्द्रसिंह जी साहव भण्डारी थे।

मेरी उनसे पहली वार मुलाकात तव हुई थी जवकि मैं नौकरी वावत उनसे मिलने गया था। तव ही मैं उनसे इतना प्रभावित हुआ कि मैं उनके समक्ष मन्त्रवत् निरूपित हो गया। उनके ये शब्द आज भी मुझे ध्यान आ जाते हैं आदमी को पैसे के लिये ही सव कुछ नही करना चाहिये वल्कि उसे अपने को इस लायक वनना चाहिए की वह काम मे कही भी किसी से पीछे न रहे, तुम पैसे की कमी फिक्र मत करना वस मुझे तो काम करके दिखाओ" आज भी मैं कभी भी ऐसा महसूस नहीं करता हूँ कि मैं कही वाहर काम कर रहा हूँ। वे हमेशा कहते थे कि आप लोग इसे अपनी ही फैक्ट्री समझ कर काम करें। इसमे होने वाले हानि-लाभ को भी स्वयं का ही समझें। और यही कारण है कि आज भी यहा कार्य करने वाला प्रत्येक व्यक्ति इसमे होने वाले नुवसान को स्वय का नुवसान समझता है क्योकि स्वय भैया साहव प्रत्येक कर्मचारी के साथ एक पारिवारिक सदस्य जैसा वर्ताव किया करते थे। प्रत्येक व्यक्ति को आदमी वनाने वाले एक सफल शिल्पज्ञ के, मैं और कई सैंकडो कर्मचारी उनके ऋणी रहेगे।

भुलाना असंभव है...

☐ श्रीमती शशिमिश्रा
नई दिल्ली

स्नेहशीला श्रीमति भण्डारी,

सस्नेह नमस्कार,

आपके पत्र से विदित हुआ कि आप पूज्य भाईसाहव श्री गजेन्द्रसिंह जी साहव की स्मृति मे एक प्रवचन पुस्तक का प्रकाशन करवाने जा रही हैं, जानकर मन मे वडी खुशी भी हुई और मन भारी भी हो गया। ईश्वर आपको एव परिवार को इस कार्य मे सत्-सत् सफलता प्रदान करें यही हम दोनो की हार्दिक प्रार्थना है।

आपने हमको भण्डारी साहव के प्रति कुछ सस्मरण लिखने को कहा, लिख तो रही हूँ, पर यह मानने को मन तैयार नही है कि भण्डारी साहव हमारे वीच मे नही हैं, पर फिर भी सच्चाई को झुठलाई नही जा सकती।

श्री भण्डारी साहव के सम्पर्क मे जो भी एक वार आ गया उनके व्यक्तित्व को भुलाना सम्भव नही हो सकता, हम लोग अपनी जीवन-यात्रा मे शायद ही किसी ऐसे मित्र के सम्पर्क मे आये हो जिसका व्यवहार इतना सरल एव प्रेमपूर्ण और स्वभाव इतना मधुर एवं दमन रहित हो। साक्षात् लक्ष्मी-पुत्र होने के पश्चात् भी जो सरलता एव विनम्रता उनमे थी, वह गुण तो उनका अनुकरणीय है। कभी परिस्थितियो से हारना सीखे ही नही। हार को जीत मे वदलने का अदम्य साहस उनमे था, हमने वह इन्दौर मे रहे तव देखा।

भण्डारी साहव के जीवन का अत तो एक शानदार अन्त है—जितनी कम आयु मे भगवान ने उन्हे हमसे छीन लिया उससे यही सिद्ध होता है कि जो इस ससार मे सभी को प्रिय होते है, वह भगवान को भी शायद अत्यधिक प्रिय होते हैं। उनके विषय मे जितना लिखूँ उतना थोड़ा है। जो आदर व सम्मान हमारे मन मे उनके लिये है, वह लिख कर शायद मैं शब्दो मे सीमित नही कर सकूगी। उनकी स्मृतियो को भुलाना कभी भी सम्भव नही है परन्तु 'अन्तर्दृष्टि' के माध्यम से उनकी स्मृति सदा हमारे हृदय पटल पर अंकित रहेगी। उनका नाम हमेशा अमर रहेगा। वे सद्गत दिव्यानुभूति से यहा ऐसी प्रेरणा भेजते जायें कि जिससे आप समन्वय के पथ पर आगे वढें।

इन्ही शुभ कामनाओ सहित

गजेन्द्रसिंहजी : एक कर्मयोगी व्यक्तित्व

☆ सौ० कृष्णा अग्रवाल
सदस्या, केन्द्रिय समाज कल्याण बोर्ड
इन्दौर

स्वर्गीय गजेन्द्रसिंहजी का व्यक्तित्व एक ऐसी प्रतिमा थी—जिसने जीवन में विचारधारा और कर्म का समन्वय किया और जो कुछ कहा—उसे विचारो मे परिवर्तित किया। मैंने उन्हें बहुत निकट से देखा और पाया कि उन विशाल काया में जो महान् हृदय छिपा था—उसके रग-रग मे समाज के लिए कुछ काम करने की तड़पन थी। दीन-दुखियो के लिए वेदना थी और कुछ काम कर उन्हे राहत देने की इच्छा थी। वे अपने व्यवसाय के माध्यम से ही कुछ ऐसा रास्ता निकालना चाहते थे—जिससे वे बेरोजगारी कम करने मे सहायक हो सकें और साथ ही गरीबो की कुछ आर्थिक मदद भी हो सके। यह उन्हीं का सुझाव एव कल्पना थी कि हमारी सस्था ग्रामीण जीवन-ज्योति रा० मे एक बेकरी यूनिट की स्थापना की जावे। जिससे गरीब, असहाय एव निर्धन बहिनो की कुछ आर्थिक सहायता हो सके। आज वे पार्थिव शरीर से अपनी उस योजना को मूर्त्त रूप होते हुए नही देख सकते है। लेकिन मेरा मस्तिष्क उनकी इस सूझ-बूझ से श्रद्धापूर्वक नत-मस्तक है। प्रभु उनकी उस महान आत्मा को चिरस्थायी शान्ति प्रदान करें। तथा गरीबो के हृदय से निकलने वाली दुआए उनकी आत्मा के महाप्रयाण मे सहायक हो।

मैं तो मानती हूँ कि लक्ष्मी की गोद मे पलने वाले विरले ही ऐसे व्यक्ति होते हैं जो दूसरो का दुःख अपना समझें और उसके लिए कुछ विचार करें। स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी ऐसे ही कर्मयोगी व्यक्तित्व थे। आज वे नहीं हैं। लेकिन उनकी जिन्दगी की प्रेरणा स्रोत भुवनकुमारी बहिन भण्डारी को समाज हित की पूर्ति करने हेतु हम सबके बीच मे छोड़ गये। एक सच्ची जीवन साथिन होने के नाते भुवनकुमारी बहन उनकी कल्पानाओ को साकार करने का अपना कर्त्तव्य निभा रही हैं और जिस सस्था मे वे जब कभी भी अध्यक्ष रही उन्होने कुछ न कुछ समाज के चिरस्थायी कार्य के लिए समर्पित किया। मेरी शुभ कामना है कि प्रभु उनमें स्वर्गीय गजेन्द्रसिह जी की समस्त शक्ति भर दें जो उनके जीवन की ज्योति द्विगुणित होकर प्रकाशित हो। जिससे इस दुःखी पीडित समाज को अधिक से अधिक राहत मिल सके और एक आदर्श पति-पत्नि की प्रतिमा का स्वरूप समाज मे प्रतिष्ठापित हो।

□

☐ **श्री जयन्तिभाई मनसुखभाई**

हेमानी एण्ड कम्पनी, इन्दौर

फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड के संस्थापक सेठ श्री गजेन्द्रसिहजी साहव भण्डारी से मेरे व्यावसायिक सम्बन्ध थे। वे एक समदृष्टि भावना के व्यक्ति थे, हर विचारो को परखने वाले सही पारखी थे। चेहेरे से वे हमेशा प्रसन्नचित्त नजर आते थे तथा अपने आगत का मधुर मुस्कान के साथ स्वागत करते थे।

विशाल बुद्धि, विशाल कार्य एव रिद्धि-सिद्धि के धनी श्री गजेन्द्रसिहजी वास्तव मे 'गजेन्द्र' ही थे।

सेठ श्री गजेन्द्रसिह जी से मेरी प्रथम भेंट सन् १९६७ मे हुई थी। जव कुछ समय पूर्व ही मैं अपने गृहनगर (धोराजी) गुजरात से इन्दौर आया था तथा यहाँ पर व्यावसायिक काम-काज की खोज मे था, उस समय फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड का चापड (wheat bran) गुजरात के मार्केट मे जाना प्रारम्भ हो गया था। हमारी दुकान पर भी कुछ माल आया। माल की क्वालिटी एव पैंकिग से गुजरात के व्यवसायी एव उपभोक्ता वहुत प्रभावित हुए और उसी सन्दर्भ मे मेरी उनसे प्रथम भेंट उनके कार्यालय मे हुई थी। उनके व्यक्तित्व से मैं वहुत अधिक प्रभावित हुआ। उनमे अपने ग्राहको को समझाने की अद्भुत शक्ति थी। जव मैंने अपने को गुजरात का रहवासी वताया तथा वहाँ के वाजारो की जानकारी दी तो उन्होंने मेरे मार्फत ही गुजरात मे चापड का व्यवसाय करने का आश्वासन दिया जिसे उन्होने हमेशा निभाया तथा मुझे मेरे व्यावसायिक कार्य को वढाने मे वहुत वडा योगदान किया।

स्व० सेठ गजेन्द्रसिह जी भण्डारी द्वारा किए गये सहयोग का ही प्रतिफल है कि गुजरात के कई क्षेत्रो मे मेरे व्यावसायिक कार्यों मे आशातीत प्रगति हुई है।

अत्यधिक व्यस्त होने के वावजूद भी जव-जव मैं उनके कार्यालय मे जाता तो वे मुझसे मिलने के लिए समय अवश्य निकाल लेते थे। पता नही उनमे क्या देवी शक्ति थी कि उनसे मिलने के वाद नए-नए अनुभव एव ज्ञान प्राप्त हो जाता था।

आज सेठ गजेन्द्रसिहजी हमारे वीच मे नही रहे लेकिन उनकी कार्य-कुशलता की अमिट छाप सदैव हमारे वीच विद्यमान रहेगी।

☆

आदमी के पारखी......

☐ श्री छोटेलाल लुनिया

मृदुभाषी और सरल स्वभावी, कर्मनिष्ठ गुण ग्राही ।
करुणा आवे आप हृदय मे, देखत पीर पराई ।।

श्री गजेन्द्रसिहजी भण्डारी के सम्पर्क मे मुझे कुछ लम्बे अरसे तक रहने का मौका मिला। उनके व्यवहार और विचारो मे मैंने जो विशेषता देखी उसी आधार पर उपरोक्त पक्तियाँ लिखने को मैं प्रेरित हुआ।

श्री गजेन्द्रसिह भैया मे अटूट साहस, और अदम्य उत्साह यह गुण विशेष रूप से पाये जाते थे। मुझे सन् १९६४ के उनके कहे हुए शब्द जब भी याद आते है तो कार्य करने मे विशेष चेतना आ जाती है। उन दिनो एक नया उद्योग स्थापित करने की योजना भैया गजेन्द्रसिह जी के सम्मुख थी। उस योजना से सम्बन्धित स्थानो पर अध्ययन किया गया और विदेशो मे भी जाकर भइया गजेन्द्रसिहजी ने जानकारी प्राप्त की। योजना को मूर्त रूप देने के पहले उद्योग का मुख्यालय कहाँ रक्खा जाय इसका सर्वे करने का कार्य मुझे सौंपा गया, सर्वे रिपोर्ट मे जब मैंने यह बतलाया कि मालव क्षेत्र मे इस योजना के सफल होने की सम्भावना नही है तब भैया के यह शब्द थे कि कठिनाइयो से झूझकर सफलता प्राप्त करना इसी मे विशेषता है। दूसरे के किये हुये कार्य को करने मे क्या महत्त्व है। मक्सी जैसे छोटे से गाँव मे विशाल उद्योग की शुरूआत होते ही पूरे शाजापुर जिले के पशुपालको मे एक नई जागृति आ गई। भण्डारी उद्योग समूह उन दिनो मालवे मे अपना विशेष स्थान रखता था, इस कारण उद्योग के कार्यकर्ताओ को जिले के हर स्थान पर जनता का सहयोग मिला।

भैया गजेन्द्रसिहजी गर्मी के दिनो मे भी दोपहर को मक्सी आते, मशीनो के पास खडे रहकर काम करने वालो का मार्गदर्शन देते हुये कोई अपरिचित इन्हे देख कर यह नही जान पाता कि वातानुकूलित कक्ष मे बैठकर ठण्डी हवा लेने वाले यही गजेन्द्रसिह भैया है। बोलचाल की भाषा मे मृदुता और आत्मीयता के व्यवहार ने कार्यकर्ताओ को इतना प्रभावित किया कि उद्योग के उत्थान मे हर श्रमिक पूरी शक्ति के साथ लग जाता था।

जिले के कृषक भी भैया को विशेष सम्मान देते थे। एक बार शाजापुर के पास किसी गाँव के प्रगतिशील कृषक ने शादी मे भैया को निमन्त्रित किया। मैं भैया के साथ था। कार्यक्रम से निवृत्त होकर जब हम लोग विदा होने लगे तो उपस्थित जन-समुदाय

जिन मे जिले के प्रभावशाली व्यक्ति और कई वयोवृद्ध सज्जन भी थे। सव के सव भैया को गाडी तक विदा करने आये। नवयुवक उद्योगपति ने अपने व्यवहार का असर गाँव मे भी वता दिया।

अव अन्त मे भैया गजेन्द्रसिह जी के जीवन की मुख्य विशेषता की ओर आपका ध्यान आकर्पित करना चाहता हूँ। जिस प्रकार जौहरी हीरे की पहचान करने मे सिद्धहस्त होता है उसी प्रकार योग्य कार्यकर्ता की पहचान अपनी पैनी निगाह से यह कर लेते थे। आज भी उनके उद्योग मे ऐसे कई पदाधिकारी हैं जिन्हे साधारण श्रेणी मे प्रवेश मिला था।

एक युवक महाशय जो अपनी शिक्षा पूर्ण करने के वाद भण्डारी परिवार की सेवा मे आये थे। सर्वप्रथम उन्होंने मेरे मातहत दो वर्ष तक कार्य किया। इस युवक की कार्य-कुशलता को श्रीमान गजेन्द्रसिह जी भैयासाहव की पैनी निगाह ने पहचान लिया और वे इस युवक को मेरे पास से अपनी सस्था मैसर्स इण्डस्ट्रियल ट्रेडर्स के लिए ले गये। मुझे याद है कि उन्होंने इस युवक को इतना प्रशिक्षित किया कि आज यही युवक उनके भारी उद्योग मैसर्स फ्लोअर एण्ड फूड लि० इन्दौर के सेल्स मैनेजर है।

मनुष्य का उज्ज्वल वनना यह हर व्यक्ति की योग्यता पर निर्भर है ही साथ ही जिसके कार्य का पारखी भी उदार एव सहृदय होना भी जरूरी है। यह गुण विशे-पता भैया मे पूज्य पिताश्री जैनरत्न सेठ सुगनमलजी की ही देन थी। भण्डारी उद्योग समूह के मेरे ४५ साल मे एक सौ व्यक्तियो से भी अधिक मेरी स्मृति मे हैं जो सेठ साहव के मार्गदर्शन मे साधारण श्रेणी से उच्च अधिकारी वने।

यह देखकर प्रसन्नता होती है कि भैया गजेन्द्रसिह जी के उन्नत विचारो के स्वप्नो को साकार करने के लिये उनके ज्येष्ठपुत्र श्री जसवीरसिहजी और उनके वन्धु पूर्ण प्रयत्नशील हैं।
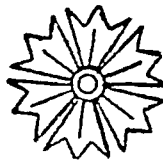
गुणों की मूर्ति थे....

☐ मोहनलाल कीमती, इन्दौर

गजेन्द्रसिंह नाम के अनुरूप गजेन्द्र ही थे। सूर्य के उदय के साथ जैसे उनकी किरणो का प्रकाश आसमान मे चारों ओर फैलता है वैसा ही एक अभूतपूर्व व्यक्तित्व का आगमन उनके जन्म के साथ ही भण्डारी परिवार मे हुआ। सभी दोस्तो मे प्रगति एव अभिवृद्धि हुई। वे अपने पिता के अनन्य भक्त थे। गजेन्द्रसिंह मेरा वडा आदर करते थे मेरे प्रति उनका अगाढ स्नेह एव श्रद्धा थी वो मुझे दादा कहते थे।

वचपन से ही गजेन्द्रसिंह जव वे भण्डारी मिल पर रहते थे वडे ही मिलन-सार थे।

किशोर अवस्था मे भी चुलवुले नहीं थे कहने का तात्पर्य है वे (वालक) थे—वडे ही समझदार और सन्तोषी।

जव वे डेली कालेज की किट मे नीली नेकर और श्वेत शर्ट मे आते तो मानो ऐसा प्रतीत होता था जैसे कोई अनुशासनवद्ध वालक आ रहा है उस वचपन मे भी उनकी अनुशासन के प्रति एक निष्ठा थी।

यद्यपि ये श्याम सलौने वचपन मे शारीरिक तौर पर काफी छोटे थे परन्तु दिल के वडे ही गजेन्द्र थे (नाना के अनुरूप ही)।

उनका जीवन वडा ही नियमित था। डेली कालेज से जव तव छुट्टी मे घर आते तो सीधे माता का सानिध्य पाने को लालायित रहते। आते ही पूछते नाना वाईना कहाँ है और उनकी गोद मे लोटना जो कि उनकी माता के प्रति प्रमुख आदतो मे से एक था अगाढ़ प्रेम और श्रद्धा का प्रतीक था। वे एक आज्ञाकारी पुत्र थे, सरल हृदयी निरभिमानी जैसे महान मानवीय गुणो की साक्षात् मूर्ति थे।

आत्म विश्वास तो गजव का था उनमे। उद्योगो को आगे वढाने मे नई-नई फैक्ट्रियाँ खोलने मे व्यस्त रहने के वाद भी वो सामाजिक कार्यो मे भाग लेने मे हमेशा तत्पर रहते थे। उदयपुर मे निर्मित संस्थान इसके उदाहरण है। प्रगतिशील युवक थे, अनेको वार विदेशो की यात्रा कर आये थे किन्तु पश्चिम की सभ्यता उन्हे डिगा नही पाई थी हर वार विदेश से आने पर उनका परिवार के प्रति, भारतीय संस्कृति के प्रति जो प्रेम भाव था उसमे वृद्धि ही होती थी। जैनदर्शन के पुजारी गजेन्द्रसिंह एक अपूर्व व्यक्तित्व के धनी थे।

उनके दिवगत होने के साथ ही ऐसा प्रतीत होता था जैसे आज नन्दनवन का वह सूर्य अस्त हो चुका है।

☆

स्मृति के साथ अन्तर्दृष्टि

☐ श्री हस्तिमल झेलावत, इन्दौर

आत्मार्थी सन्त प० मुनिश्री रामनिवासजी महाराज, मेवाड केसरी मुनिश्री मोहनलालजी महाराज एव युवा कविरत्न श्री महेन्द्रकुमारजी 'कमल' आदि सन्त मडल का इन्दौर नगर का यह वर्षावास दीर्घकाल तक स्मृति-पटल पर अकित रहेगा। विद्वान वक्ता श्री महेन्द्रमुनिजी 'कमल' ने अपने ओजस्वी विचारो द्वारा काव्य का सुमधुर पुट देकर जन-जन के हृदय को जिस प्रकार सिंचित किया वह विशेषरूप से स्मरणीय रहेगा। सन्त मण्डल के इस वर्षावास ने सफलता के उन्नत शिखर को छू लेने के साथ ही इतिहास के पृष्ठो को भी मुखरित किया है। ऐसे विद्वान सन्त के मानव कल्याणकारी विचारो को मात्र चार दिवारी तक सीमित रखने मे उन्हे उन्मुक्त वातावरण मे प्रसारित करना समय का तकाजा है। इसी पावन उद्देश्य के प्रति विचारो को केन्द्रित करते हुये वर्षावास के रचनात्मक स्वरूप के अनुरूप मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी 'कमल' के सामयिक प्रवचनो को पुस्तक रूप मे प्रकाशित किया जाना अति आवश्यक कार्य था।

श्री स्थानकवासी जैन श्रावक सघ इन्दौर के अध्यक्ष जैन रत्न श्रीमान सेठ सुगनमलजी भण्डारी व उनके परिवारीजनो ने इस पावन कार्य को अपने हाथो मे लेने का निर्णय किया। स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की धर्मपत्नि श्रीमती भुवन भडारी ने इस कार्य मे विशेष रुचि लेकर मुनिश्री के प्रवचनो का कुशलता के साथ सकलन किया। स्व० श्री गजेन्द्रसिंहजी भण्डारी की स्मृति मे, ज्ञान ज्योति के दिव्य प्रकाश मे व्यक्ति स्वय का सूक्ष्म अवलोकन करने की दिशा मे प्रवृत्त हो इसी उद्देश्य से "अन्तर्दृष्टि" पुस्तक का प्रकाशन किया जा रहा है। पुस्तक प्रकाशन का जो जनोपयोगी महत्त्वपूर्ण कार्य भण्डारी परिवार ने किया है, वह सराहनीय एव आदर्श है। इस पुनीत कार्य के द्वारा उन्होने अपने अर्थ को सार्थक किया है।

मैं इस ज्ञानवर्धक मगल कार्य के प्रति हार्दिक शुभकामना व्यक्त करता हूँ। आशा है यह पुस्तक मानव जाति को सन्मार्ग प्रदर्शित कर सार्थक सिद्ध होगी।

इसी शुभ अपेक्षा के साथ…

☐

स्व० भण्डारी साहब का बहुमुखी व्यक्तित्व

□ श्यामसुन्दर पण्डित

श्री गजेन्द्रसिंह जी से मेरी पहली मुलाकात एक मित्र के घर हुई। इसके पश्चात् तो कई वार मिलना हुआ जो एक अत्यन्त प्रगाढ और विश्वसनीय दोस्ती के स्वरूप मे विकसित हुआ। श्री गजेन्द्रसिंह जी मेरे एक अनन्य मित्र थे, जिनके प्रेम एव विश्वास की पूर्ति अव समव नही है। उनके साथ सघर्पो का एक अनूठा सिलसिला है जिसका पूर्ण विवरण देना समव नहीं है। किसी भी उत्सव या पार्टी मे उनसे मिलना होता था। उनके स्वभाव की कई विशेपतायें निकट सम्पर्क से सामने आयी। वे एक अत्यन्त विश्वासपूर्ण मित्र थे। उनकी काम के प्रति अटूट लगन थी। किसी भी कार्य को करने मे वे अपने को उस कार्य के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित कर देते थे। समय-समय पर उस कार्य के वारे मे विचार-विमर्श कर वे दूसरो के दृष्टिकोण को महत्त्व देकर उसके वारे मे अपना निश्चय वडे सरल-भाव से व्यक्त करते थे। उनकी यह विशेपता मुझे तव पता लगी जव उनके द्वारा स्थापित फ्लोअर एण्ड फूड लि० की स्थापना के सिलसिले मे मैं उनसे काफी दिनो तक इसके व्यावसायिक पक्ष पर विचारविमर्श करता रहा। इस कारखाने की स्थापना पर उन्होंने कितना श्रम किया था, वह वे ही लोग जान सकते हैं जो उनके निकट सम्पर्क मे इस समय रहे। हर काम को वारीकी से लेने पर तथा आश्वस्त हो जाने पर ही वे विराम लेते थे।

उनको हर शाम मित्रो के साथ वैठने व सव विपयो पर वातचीत करने मे वडा आनन्द प्राप्त होता था। इस समय श्रीमती गजेन्द्रसिंह जी (भाभी साहव) हमेशा साथ रहती। उनके साथ कई शाम हमने नन्दन वन के लान पर दरी विछाकर वैठ कर विताई। उस समय उनके अन्तरग मित्रो के अलावा और कोई नही होता था। सभी वैठको का अन्त एक सहभोज के रूप मे होता। उनको सवके साथ भोजन करने मे वडा आनन्द आता था। उनके स्वभाव को देखते हुए मेरा ऐसा ख्याल है कि उन्होंने शायद अकेले भोजन कभी नही किया होगा। ज्योतिप पर वहस, जिसमे भाभी साहव काफी रुचि लेती है, भी कई वार लम्वे विवाद का विषय होता था। उनके स्वभाव का मानवीय पक्ष भी विलक्षण ही कहूँगा। एक वार की घटना याद आती है, जव एक शाम लान की वैठक के पश्चात् यह तय हुआ कि सव घूमने चलें। सव लोग देव गुराडिया जाने को तैयार होकर वहाँ पहुंचे। इच्छा हुई कि पहाड पर चढाई करें। थोडी दूर तक

तो सब लोग साथ चढे उसके पश्चात् चढाई अधिक होने के कारण सभी रुके, लेकिन मैं आगे बढ़कर काफी दूर तक जाकर पहाड के ऊपर पहुँचा। वहाँ से नीचे उतरते समय कुछ कठिनाई हुई लेकिन मैंने उन्हे हाथ हिलाकर अभिवदन किया। वे मुझे देख कर एकदम बैचेन हो उठे। वे समझे कि मैं उतरने मे कठिनाई महसूस कर रहा हूँ एव सहायता के लिये इशारा कर रहा हूँ। इसी समय उन्होंने एक साथी को दौडाया व बडी बेसब्री से मेरा इन्तजार करने लगे। जब मैं उतरकर आया तो सवालों की झडी लगा दी। इतना ही नही मेरे हाथ सहलाकर देखने लगे कि कही लगी तो नही ? हम समझे आप फिसल रहे हैं। उनकी बेसब्री उस समय देखने लायक थी।

एक और बात भी उनके जीवन मे, कि वे दिखावे के बिलकुल पक्ष मे नही थे। उन्हे कभी इस बात का एहसास नही था कि वे एक अत्यन्त सभ्रान्त व्यक्ति है तथा दूसरे उस स्तर के नही हैं। यहाँ तक कि वे उन्हे यह महसूस तक नही होने देते थे। दोस्तो मे बराबरी का निर्वाह उनकी एक बडी विशेषता थी जो आजकल आमतौर पर लक्षित नही होती। दोस्ती मे स्तर कभी आडे नहीं आता, उनके साथ रात के १२-१ बजना तो मित्र-मण्डली मे मामूली बात थी। सगीत मे भी उनकी विशेष अभिरुचि थी। अभिनव कल समाज के प्रोग्रामो मे अधिकतर हम साथ ही जाते और रात्रि के २-३ बजे लौटते। उसके पश्चात् कॉफी और फिर सभा विसर्जन। एक रोज तो प्रोग्राम इतना रोचक व लम्बा था कि सुबह ६ बजे लौटे (शायद अमजद खाँ का सरोद वादन था उस रोज) उस दिन उनका सगीत मे विभोर होना भी देखने लायक था।

विधाता का भी विधान अजीब है। हमे क्या पता था कि जिसके साथ हम इतनी घनिष्ठता रख रहे हैं वे हमे छोडकर एकदम चले जावेंगे। यह क्षति अब अपूरणीय है और शायद ही इस जीवन मे हमे उनके जैसा अभिन्न मित्र व शुभेच्छु प्राप्त हो। हमारे जीवन मे यह क्षति हमेशा ही बनी रहेगी और उन्हे हम कभी भी नही भूल सकेंगे।

☆

भाई सा० गजेन्द्रसिंहजी : जैसा कि मैने उन्हें जाना ...

☐ हीरा बहन मेहता
सुस्मित फेव्रिक्स, इन्दौर

इन्दौर आये हुए हमे आज करीव ११-१२ साल होते आये हैं। जव आये थे, तव लगा था कि महानगरो की जिन्दगी के मुकावले यहाँ की जिन्दगी कितनी शान्त है न दौड-धूप, न कोई हलचल-न भागमभाग। यहाँ धीमी गति से वहती जीवन की धारा है। भीड-भाड व्यस्तता के हम लोग आदी थे। शुरू मे लगा था कि कैसे मन लगेगा यहाँ ?

इस शहर के लिये हम अजनवी जरूर थे, पर था कुछ ऐसा यहाँ के लोगो मे कि जिससे हमे वडे शहरो जैसा अजनवीपन नही महसूस हुआ। एक अपनापन मिला ऐसा लगा कि जैसे यहाँ वनावट नही है—न चेहरो मे, न व्यवहार मे।

आज जव उन वीते हुए दिनो पर नजर डालती हूँ तो कई चेहरे एक साथ सामने आते हैं—विश्वास भरे, अपनापन लिए मित्रता का वादा करने वाले चेहरे। उनमे से एक चेहरा सवसे अलग दिखाई देता है—सौम्य, मृदु, हंसमुख, निष्कपट चेहरा। और वह चेहरा है भाई साहव गजेन्द्रसिंहजी का।

वहुत से परिचितो की भीड मे कोई एक चेहरा ही क्यो साफ-साफ उभरता है ? दुनियाँ मे वहुतेरे ऐसे भी होते हैं जो एक साथ भाग्यवान भी होते हैं, सुशिक्षित भी और अभिजात भी। व्यक्तित्व का ऐसा सयोग किसी के भी मन मे अहंकार का कारण वन सकता है और दूसरो के लिये ईर्ष्या का। मगर भाई साहव के व्यक्तित्व मे वह विशेषता थी जो आमतौर पर कम ही देखने मे आती है। उन्हें जरा भी अहंकार न था। दिखावा और झूठी शान तो जैसे उन्हे मालूम ही न थी। इतने सरल और मिलनसार। आश्चर्य होता है कि कैसे इस व्यक्ति को जरा भी अहकार नही था। छोटे-वडे सभी से वे वडी मिठास से वात करते थे।

इतने वडे उद्योगपति, इतनी व्यस्तता पर मैंने कभी नही जाना कि उनके पास घर के लिये, घर वालो के लिये, वाल-वच्चो के लिये या मित्रो के लिये समय की कमी रही हो। उन्होंने कभी घर की उपेक्षा नही की। घर वाहर सव ओर उनकी वरावर नजर रहती थी। आए, गये लोगो के स्वागत-सत्कार मे वे कोई कमी नही होने देते थे।

अक्सर उनके यहाँ दावतें होती रहती थी। अक्सर हम लोग मिलकर पिकनिक पर जाते थे। वे भी जव हमारे यहाँ आते तो भोजन चाहे वैसे ही वनता था जैसा कि आमतौर पर वना करता है, पर वे थे कि तारीफ किये जाते थे। उन जैसे सुरुचि सम्पन्न, शौकीन व्यक्ति के सत्कार मे मेजवान को भी वेहद खुशी होती थी।

यो प्रोत्साहन देना, वढावा देना, उनका स्वभाव था। यह उनकी शालीनता थी। किसी का हौसला वढाना, धीरज वँधाना, जिन्दगी मे जरूरी होता है। तभी आगे वढने की मुसीवर्ते झेलने की हिम्मत वढती है।

मुश्किल के समय, दुख या चिन्ता मे तो यह और भी जरूरी होता है कि हमे सहारा मिले तो ऐसा जो मजवूत भी हो और कोमल भी। मेरे पूज्य श्वसुरजी का जव देहान्त हुआ तो मेहता साहव वहुत विचलित हो गये थे। वेटे के लिये पिता का निधन मानसिक आघात होता है। और मेहता साहव स्वभाव से ही भावुक और कोमल चित्त हैं। उनके लिये वह आघात गहरा था। लेकिन भाई गजेन्द्रसिहजी ने जो आश्वासन दिया धीरज वँधाया वह सचमुच एक भाई की तरह ही था।

पता नही उनमे वह कौन सी ऐसी वात थी, जो यह महसूस कराती थी कि इस व्यक्ति से किसी का कोई नुकसान नही हो सकता कोई दुख किसी को हो नही सकता, किसी को कोई चोट नही पहुँच सकती, यह किसी को सहसा गलत नही समझ सकता, जो हरदम सवके लिये खुला है, जिस तक आसानी से पहुँचा जा सकता है मन की, तकलीफ की, सुख-दुख की वात कही जा सकती है।

अपने वारे मे दूसरे के मन मे यह विश्वास पैदा करना क्या साधारण व्यक्ति का काम है ? उन जैसा व्यक्तित्व, जो सारे मानवीय रिश्तो की सुन्दर मिसाल हो शायद ही कभी होता है और अगर होता भी है तो वह अपने तमाम मित्रो, स्नेहीजनो, परिवार वालो के लिये जीवन की चिरस्मरणीय निधि वन जाता है।

☐

☐ **श्रीमान रतनलालजी गंगवाल**
७ नसीया रोड, इन्दौर।

श्री गजेन्द्रसिहजी भाव प्रवण व्यक्ति थे। मेरे वे अनन्य मित्र थे। जव भी दो चार रोज का अवकाश होता तो वे वाहर जाने का प्रोग्राम वना लेते और हम लोग रवाना हो जाते।

एक वार जवकि फ्लोअर एण्ड फूड लिमिटेड की फैक्टरी का काम शुरू हुआ था तव वे काफी व्यस्त रहते थे। एक दिन मैं उनके कार्यालय गया और उनसे पूछा कि आप इन दिनो काफी व्यस्त रहते हैं तो उन्होंने कहा कि हर काम की शुरूआत के लिये जोरदार तैयारी की ही जरूरत होती है। अगर इस समय मेहनत कर ली तो धीरे-धीरे काम कम होने लगता है और वाद मे जरूरत सिर्फ देख भाल की ही रह जाती है। जैसे इमारत वनाने के पूर्व प्रारम्भ मे मेहनत करके नीव को मजूवत वनाया जाता है तथा दीवालें वगेरे भी अच्छी वनाई जाती हैं ताकि इमारत सुन्दर और मज-वूत वने और वाद मे सिर्फ उसकी देखभाल करने की जरूरत रह जाय। वे अपने

धुन के पक्के थे। उन्होंने मेहनत करके फैक्टरी की इमारत सुन्दर और मजबूत बनाई तथा बहुत ही कम समय मे फैक्टरी चालूकर उत्पादन प्रारम्भ कर दिया। यह फैक्टरी, मे देख रहा हूँ कि आज भी खूब ही चल रही है और अपने उत्पादन के लिये सम्पूर्ण देश मे अपना विशिष्ट स्थान रखती है।

एक दिन मैंने उनमे कहा कि कुल्लु का दशहरा ससार प्रसिद्ध है अत हमलोग इस बार दशहरा मनाने कुल्लु-मनाली चलेंगे। उन्होंने तत्काल अपनी सहमति दे दी और हमने कुल्लु कार द्वारा जाने का प्रोग्राम बना लिया और निर्धारित दिनाक को हम कार द्वारा कुल्लु के लिये रवाना हो गये। कुल्लु मे हमे होटल मे जगह नहीं मिली। हम वहा से कटरादून जो कि कुल्लु और मनाली के बीच मे पडता है, वहा गये और वहा के डाक बंगले मे रुके। रात को करीब एक-डेढ बजे उनकी तबीयत खराब हुई और जोर का दर्द उठा। कटरादून एक छोटा ग्राम है, वहा न तो अस्पताल है और न ही कोई डाक्टर। हमने कुल्लु अस्पताल मे फोन किया तो वहा भी कोई डाक्टर नही मिला। गजेन्द्रसिंहजी कहने लगे सब ठीक हो जायेगा आप फिकर न करें। इतना दर्द होने के बाद भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी और न किसी को परेशान ही किया। मतलब यह कि विपत्ति मे भी वे घबराते नही थे। जब हम सब मनाली से दिल्ली के लिये रवाना हुए तब रास्ते मे हमारी कार का गियर खराब हो गया। इसकी भी उन्होंने कोई चिन्ता नहीं की और बोले कोई बात नही हम सब बस द्वारा दिल्ली चले जावेंगे और हम सब बस द्वारा दिल्ली आये। किसी भी विपत्ति का धैर्य पूर्वक सामना करते थे, कभी घबराते नही थे। हमेशा हसमुख रहते और नौकर चाकरो का भी बडा ख्याल रखते थे। काम के वक्त फालतू बातो मे ध्यान नही देते थे। वे अत्यन्त अनुशास प्रिय व्यक्ति थे। अपने कर्मचारियो के प्रति अपार स्नेह रखते थे और उन्हे अपने परिवार का ही सदस्य मानते थे। उनकी वजह से ही हम कुछ लोगो का एक ग्रुप बन गया था जो हर छुट्टी मे एकत्रित होना किन्तु उनके जाने के बाद अब सब कुछ खत्म हो गया है। बडे ही मिलनसार व्यक्ति थे। हमने एक बहुत ही सहृदय व्यक्ति खो दिया जिसकी पूर्ति होना अब मुश्किल है। परमात्मा से प्रार्थना है कि दिवगत आत्मा को शाति प्रदान करें।

□